वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास

पी. एन. ओक

प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सदन
2, बी० डी० चैम्बर्स, 10/54, डी० बी० गुप्ता रोड़,
करोल बाग, नई दिल्ली–5 (समीप पुलिस स्टेशन)
फोन: 23553624, फैक्स: 25412417
E-mail: indiabooks@rediffmail.com

संस्करण : 2003

मूल्य : 65.00 रुपये

मुद्रक : संजीव आफसैट प्रिंटर्स
कृष्णा नगर, दिल्ली–51

वैदिक विश्वराष्ट्र का इतिहास

(भाग ४)

अर्पण

सार्वजनिक उपेक्षा, उदासीनता और विरोध के फलस्वरूप मेरे अनोखे इतिहास-संशोधन को बीस वर्ष पूरे हो जाने पर भी मुझे ऐसे धनी और पढ़े-लिखे लोग मिलते हैं जो कहते हैं हमने कभी आपके संशोधन की बाबत कुछ वार्ता तक नहीं सुनी। ऐसे अनेक संकटों में मेरा एकमेव जीवन-आधार एक विदेशी दूतावास के सम्पादक पद की मेरी नौकरी भी समाप्त कर दी गई। ऐसी कई संकट मालिकाओं का सामना करते हुए विश्व के झुठलाए इतिहास का भण्डाफोड़ करने का मेरा ज्ञानव्रत एवं सत्यव्रत अविरल और अविचलित चलाते रहने की क्षमता और दृढ़निश्चय जिस परमात्मा ने मुझे प्रदान किया उस भगवान् की कृपा में भी यह ग्रन्थ सादर समर्पित है।

—पुरुषोत्तम नागेश ओक

इतिहास का महत्त्व

अविचारशील लोग या स्वार्थी नेतागण इतिहास को न केवल निरर्थक अपितु कलहोत्पादक या कलहोत्तेजक विषय समझकर उसे टालना या दबा देना चाहते हैं। यह उनकी भारी भूल है। भारत में ८वीं शताब्दि से १८वीं शताब्दि तक एक सहस्र वर्ष लगातार मुसलमान आक्रामकों से हिन्दू जनता का संघर्ष चलता रहा।

१५ अगस्त, १९४७ को भारत का विभाजन होने के पश्चात् भी पाकिस्तान (तथा बांग्लादेश) के मुसलमान, कश्मीर के बहुसंख्य मुसलमान और भारत में बसने वाले करोड़ों मुसलमान हिन्दुओं से शत्रुतापूर्ण व्यवहार करते रहते हैं।

उस संघर्ष के अध्ययन तथा विवरण को टालने हेतु भारत का शासन चलाने वाले कांग्रेसी नेताओं ने चुपके से शनैः-शनैः इतिहास का महत्व कम कर स्वतंत्र विषय वाला उसका अस्तित्व मिटाकर इतिहास को समाजशास्त्र की पुस्तकों में एक गौण स्थान दे दिया ताकि दो-चार पाठों में वेदोपनिषद्, बायबल, कुराण, बुद्ध, महावीर, अशोक, मुसलमान सुल्तान-बादशाह, राणा प्रताप, आदि का चलते-चलते कुछ अस्पष्ट-सा उल्लेख कर किसी प्रकार इतिहास-शिक्षा से निपटने की बेगार निभा ली जाए।

इस प्रकार नागरिकों में इतिहास द्वारा देशभक्ति और अपनी संस्कृति के प्रति निष्ठा दृढ़मूल करने का निजी कर्त्तव्य निभाने की बजाय जिन कांग्रेसी नेताओं ने इतिहास को एक निकम्मा और कलह-प्रवर्त्तक विषय समझकर उसे तेजोहीन कर दिया, वे देशद्रोही कहे जाने चाहिएँ।

इतिहास के प्रति उदासीनता

भारत के प्रदीर्घ परतन्त्रताकाल में इस्लामी और ईसाई शासकों ने भी इतिहास को इसी प्रकार खानापूर्ति करने वाला एक औपचारिक विषय बना रखा था। इनसे राष्ट्रीयता की भावना दृढ़ करने की बजाय हिन्दू-मुसलमान, आर्य-द्रविड़ आदि विविध विवाद एव संघर्ष निर्माण करने वाला इतिहास जानबूझकर पढ़ाया जाता रहा। वही प्रणाली आगे चलाते हुए वर्तमान सत्तारूढ़ दल गिरिजन, हरिजन, नवबौद्ध, सिख, आदि हिन्दू समाज में कई प्रकार की फूट डालता रहा है। परिणाम यह हुआ कि इतिहास से स्फूर्ति पाने की बजाय भारत के सुविज्ञजन इतिहास से मुंह फेरते रहे। करते-करते कई लोग इतिहास का तिरस्कार करने लगे या उसे अर्थहीन विषय समझने लगे।

ऐसी अवस्था में जब प्रचलित ऐतिहासिक धारणाओं में आमूल क्रान्ति कराने वाले मेरे ग्रन्थ एक के पश्चात् एक प्रकाशित होने लगे तब इतिहास के अध्यापक और सरकारी अधिकारी कांग्रेसी शासन के डर से मेरे सिद्धान्तों को अग्राह्य कहकर टालते रहे।

उधर इतिहास का कोई विशेष ज्ञान न रखने वाले वाचक यह कहकर चुप रह जाते कि "भाई हम तो इतिहासकार हैं नहीं, आप जानें और इतिहास के अन्य पदवीधर जानें कि क्या सही है, क्या नहीं।"

प्रत्येक नागरिक को उसकी आयु के १८ या २० वर्ष तक अध्ययन में राष्ट्रीय दृष्टि से लिखा इतिहास लगातार पढ़ाया जाना चाहिए। वह राष्ट्रीय कहलाएगा जिसके द्वारा वैदिक संस्कृति उर्फ सनातन धर्म के प्रति प्रत्येक व्यक्ति की श्रद्धा बढ़ेगी। इस्लामी और ईसाई देशों में भी ऐसा ही इतिहास पढ़ाया जाना चाहिए। इस्लाम और ईसाइयत आपस में भले ही स्पर्धा या शत्रुता करते रहें, किन्तु सनातन उर्फ वैदिक धर्म से उनकी कोई बराबरी नहीं हो सकती। ईसाइयत और इस्लाम आजकल के झगड़ालू बच्चे हैं जबकि वैदिक सभ्यता तो मानवता की जननी है।

प्रत्येक व्यक्ति को निजी दादा-पड़दादाओं का इतिहास जानना जितना आवश्यक होता है उतना ही प्रत्येक मानव को वैदिक सभ्यता का इतिहास जानना उपयुक्त होगा। कई बार मेरे भाषण सुनने के पश्चात् या ग्रन्थ

पढ़ने के पश्चात् ऐसे व्यक्ति मिलते हैं जो कहते हैं कि महाविद्यालयों में उन्होंने इतिहास विषय के साथ कोई पदवी पाई नहीं अतः वे अपने आपको इतिहासकार नहीं मानते। ऐसी मनोवृत्ति को निजी जिम्मेदारी टालने का एक बहाना ही कहना चाहिए।

इतिहास कोई गणित जैसा जटिल विषय तो है नहीं जो सामान्य व्यक्ति की समझ में न आए, इतिहास तो कथारूप होता है। मेरे जैसा व्यक्ति जो पारम्परिक धारणाओं को चुनौती देता है, उसे वाचकों को पारम्परिक धारणाओं के आधार बतलाकर उनके खण्डन करने वाले प्रमाण प्रस्तुत करने पड़ते हैं। अतः श्रोता या पाठकों के सम्मुख हर प्रकार के तर्क और प्रमाण होते हैं। इतना होते हुए भी यदि पाठक हिचकिचाते रहें और ताजमहल आदि भवन हिन्दू हैं या मुस्लिम इस विवाद पर निजी निर्णय देना इस बहाने टालते रहें कि हमने कॉलेज में इतिहास पढ़ा नहीं है, तो उस कथन में उनमें आत्मविश्वास का अभाव ही प्रकट होता है।

उधर कॉलिजों में इतिहास पढ़े हुए और पढ़ाने वाले अध्यापक भी इन नए तथ्यों से इसलिए मुँह मोड़ लेते हैं क्योंकि जिस शासन में उन्हें नौकरी करनी है वह इन तथ्यों को पसन्द नहीं करता और अलीगढ़ आदि इस्लामी केन्द्रों के मुस्लिम इतिहासज्ञ, जिनसे हिन्दू इतिहासज्ञों का मेलजोल और व्यावसायिक आदान-प्रदान होता रहता है, उनसे संघर्षनिर्माण होकर इतिहास शिक्षा विभाग में फूट पड़ जाएगी, इस डर से हिन्दू इतिहासज्ञ, अंग्रेज और मुसलमानों द्वारा लिखा गया झूठा इतिहास ही चुपचाप पढ़ाते, दोहराते रहना पसन्द करते हैं।

इसी कारण मेरे ग्रन्थों में चर्चित इतिहास के नए तथ्य और नया दृष्टिकोण अपनाना उन व्यावसायिक इतिहासज्ञों के लिए असुविधाजनक है। उस असुविधा को सीधे कबूल करने की बजाय व्यावसायिक इतिहासकार उन नए तथ्यों को इस बहाने टाल देते है कि "हमें ओक जी का संशोधन जंचता नहीं।" उन्हें पूछने वाला कोई नहीं है कि "भाई ओक जी का संशोधन तुम्हें क्यों नहीं जंचता? क्या उनके गिनाए प्रमाणों का आप क्रमशः खण्डन कर सकते हैं? इस प्रश्न का उत्तर उनके पास नहीं है। फिर भी वर्तमान शासन को उन जैसे झूठे इतिहास के समर्थकों की ही

आवश्यकता है। इस प्रकार इतिहास से नए तथ्य ठुकराने से ही वेतन मिलता रहेगा और पदोन्नति होती रहेगी, यही दीखते रहने के कारण इतिहास के नए तथ्यों को ठुकराना ही वे अपना कर्त्तव्य मानते हैं। अतः इतिहास के नए तथ्य तथा दृष्टिकोण बगैर कोई प्रमाण दिए एक तानाशाह की तरह अस्वीकृत करने का मार्ग वे अपनाते हैं।

सामान्य व्यक्तियों का भी उसी प्रकार का रवैया

यह तो हुई व्यावसायिक इतिहासकारों की बात। किन्तु सामान्य व्यक्ति भी किसी दूसरे बहाने मेरे ढूंढे तथ्यों को स्वीकार करने में असमर्थता प्रकट करते हैं। कई विद्वान तथा अधिकारी व्यक्ति मेरी पुस्तकें पढ़कर या उनका ब्योरा सुनकर प्रभावित होते हैं, लेकिन विवश स्वर में कहते हैं कि "आपके द्वारा दिए प्रमाण और निकाले हुए निष्कर्ष सशक्त तो लगते हैं किन्तु मेरा कॉलिज का विषय तो फिजिक्स या कैमिस्ट्री रहा है। इतिहास तो मैंने कॉलिज में पढ़ा नहीं। अलबत्ता मेरी पत्नी ने बी० ए० या एम०ए० तक इतिहास पढ़ा है। अतः वे आपके तथ्यों में कोई रुचि लेंगी। उधर उनकी पत्नी यह समझ बैठती है कि भला मैंने परीक्षाओं में जो बातें लिखकर बी० ए०, एम० ए० आदि की पदवियां पाई हैं, वह ज्ञान निराधार सिद्ध होने से मेरी पदवियां किसी काम की नहीं रहेंगी। अतः वह भी यह कह कर बात को टाल देती हैं कि "ओक जी का किया संशोधन मुझे मान्य नहीं।"

जो व्यक्ति कॉलिज में इतिहास विषय न पढ़ने के कारण मेरे तथ्यों पर अपना अनुकूल मत प्रकट करने से भी झिझकते हैं कि जब वे ताजमहल आदि ऐतिहासिक स्थल देखने जाते हैं तो क्या वे यह कहकर बाहर खड़े रह जाते हैं कि "भाई मैंने तो इतिहास पढ़ा नहीं, तो मैं ताजमहल देखकर क्या करूंगा और क्या समझूंगा! मेरी पत्नी ने इतिहास पढ़ा होने से वह भले ही ताजमहल में चक्कर लगा आए, तब तक मैं बाहर ही खड़ा रहना ठीक समझता हूं।" जब कोई व्यक्ति इस प्रकार नहीं कहता तो मेरे संशोधन के तथ्य जंचने पर भी उन पर निजी अभिप्राय व्यक्त करने से झिझकना बौद्धिक कायरता का लक्षण है।

स्थलदर्शकों का भी असहकार

ताजमहल आदि इमारतों में प्रेक्षकों का मार्गदर्शन करने वाले guides उर्फ स्थलदर्शक भी निजी स्वार्थ से मेरा संशोधन लोगों को विदित कराने में हिचकिचाते हैं। ताजमहल सम्बन्धी मेरे तथ्यों से प्रभावित हुए एक गाइड को मैंने पूछा, "क्यों भाई, अब जबकि मेरा संशोधन तुम्हें जँच गया है क्या ताजमहल देखने वाले सारे पर्यटकों को तुम यह बताओगे कि ताज-महल एक प्राचीन हिन्दू राजमन्दिर है?" तो वह बोला, "ओक साहब! आपके संशोधन का समर्थक होने पर भी किसी पर्यटक को अपने आप आपके तथ्य विदित कराने की हिम्मत मैं भी नहीं करूंगा।"

आश्चर्यचकित होकर मैंने पूछा, "क्यों भाई, ऐसा क्यों?" तब उसने कहा, "ओक साहब! बात यह है कि ताजमहल देखने आने वाला व्यक्ति हिन्दू है या मुसलमान, समाजवादी है या कांग्रेसी आदि हम नहीं जानते। ऐसी अवस्था में मैं यदि उसे बतलाने लगूं कि ताजमहल शाहजहांपूर्व हिन्दू इमारत है; तो हो सकता है कि वह क्रोध से कोई विवाद खड़ा कर कहे कि 'ओक साहब कौन बड़े विद्वान हैं? विश्व के आज तक के विद्वान और सारे अधिकारी कैसे झूठे हो सकते हैं? मैं तुम्हारी शिकायत कर दूंगा', इत्यादि इत्यादि। ऐसे विवाद में समय वृथा नष्ट होगा, उससे मानसिक क्षोभ होगा और अन्य कई पर्यटक हाथ से निकल जाने से मेरी आर्थिक हानि होगी। अतः जब तक बोलचाल से किसी प्रेक्षक को शाहजहांपूर्व ताजमहल के अस्तित्व में रुचि है ऐसा हमें पूर्ण विश्वास नहीं हो जाता तब तक हम गाइड लोग अपने आप प्रेक्षक को आपके ढूंढे तथ्य कहना उचित नहीं समझते।"

इस प्रकार पाठक देख सकते हैं कि सैकड़ों वर्ष तक जब कोई असत्य रूढ़ हो जाता है तो समाज के हर वर्ग के व्यक्ति उसी झूठ को दोहराते रहने में इतिकर्त्तव्यता और सुरक्षा अनुभव करते हैं। अतः इतिहास के सत्य को बड़े कष्ट से ढूंढ निकालने के पश्चात् भी झूठे इतिहास को जनमानस के सिंहासन से पदच्युत करना एक जटिल कार्य होता है।

किसी भी क्षेत्र के पढ़े-लिखे व्यक्तियों को निडर होकर इतिहास में निजी निष्कर्ष स्पष्टरूप से कह देना चाहिए। क्योंकि इतिहास तो कथारूप

ब्यौरा होता है, जो हर प्रौढ़ व्यक्ति को समझ में आता है। उसमें ऐसी कोई क्लिष्टता नहीं होती कि जो इतिहास कॉलेज में न पढ़ा हो तो समझ में नहीं आ सकता।

व्यावसायिक इतिहासज्ञों पर निर्भर रहना उचित नहीं

द्वितीय महायुद्ध के समय इंगलैण्ड के प्रधानमन्त्री सर विंस्टन चर्चिल ने एक बार कहा था कि युद्ध करना तो सैनिक जानते हैं फिर भी युद्ध कब करना ? किससे करना ? कितनी अवधि तक करना ? आदि प्रश्नों का निर्णय उन पर छोड़ना अनुचित होगा।' (War is too serious a matter to be left to professional armymen)। इसी प्रकार हम भी वाचकों को सावधान करना चाहते हैं कि इतिहास के सही तथ्य चुनने का कार्य वे स्वयं करें, व्यावसायिक इतिहासकारों पर निर्भर न रहें। व्यावसायिक इतिहासज्ञ इतिहास, पुरातत्व, पर्यटन आदि से सम्बन्धित सरकारी अधिकारी, सरकारी गाइड आदि लोग निजी स्वार्थ के कारण झूठे इतिहास को ही दोहराना किस प्रकार सुविधाजनक समझते हैं उसका विवरण हमने ऊपर दिया है। अतः सामान्य व्यक्तियों ने उन पर निर्भर न रहकर ऐतिहासिक प्रमाण आदि से स्वयं निष्कर्ष निकालने की परिपाटी अपनानी चाहिए।

इतिहास एक सर्वव्यापी विषय है

प्रत्येक वस्तु तथा व्यक्ति का इतिहास होता है। आपको कोई अपरिचित व्यक्ति मिलने आए तो वह जब तक अपना पूरा परिचय (यानि इतिहास) नहीं देता तब तक आप उससे बातचीत आरम्भ भी नहीं करते। उसके इतिहास पर आपका उससे संभाषण निर्भर रहेगा। प्रत्येक देश का अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण उसके इतिहास पर आधारित होगा। व्यक्ति जिस देश, जाति, धर्म और सभ्यता में पला होगा उसका दृष्टिकोण वैसा ही बनेगा। भारत के हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि लोगों की दृष्टि-भिन्नता उनके इतिहास भिन्नता से ही निर्माण होती है। अतः सारे राष्ट्र में किस प्रकार का इतिहास पढ़ाया जाता है इस पर शासकों ने कड़ा नियन्त्रण रखना चाहिए। भारत के वर्तमान शासकों को इस बात का जरा भी ध्यान नहीं है। ईसाई, इस्लामी तथा समाजवादी संस्थाओं में वैदिक संस्कृति के प्रति

शत्रुतापूर्ण इतिहास पढ़ाने की प्रथा रही है। उस पर रोक लगाना आवश्यक है। अतः अन्य विद्यालयीन विषयों से पूर्णतया भिन्न प्रकार का कड़ा शासकीय नियन्त्रण इतिहास के अध्ययन पर होना अनिवार्य है।

इतिहास का प्रतिदिन अध्ययन आवश्यक

वैदिक दिनचर्या में कहा गया है कि राजा (अर्थात् सर्वोच्च शासक वर्ग) प्रतिदिन डेढ़ से दो घण्टे पुरोहित के मुख से निजी पूर्वजों का इतिहास सुना करें। यह नियम यदि जवाहरलाल नेहरू आदि स्वतन्त्र भारत के कांग्रेसी शासकों को पता होता और यदि वे उस पर अमल करते तो मन्त्रि-मण्डल की हर सभा से पूर्व उन्हें भारतीय क्षत्रियों की वीर परम्परा का इतिहास सुनाया जाता कि जब नियत समय में जयद्रथ को अर्जुन मार न सका तो उसने चिता में आत्मसमर्पण करने की सिद्धता की। जयपाल के हाथों जब मोहम्मद गजनवी ने गांधार प्रान्त (वर्तमान अफगानिस्तान) छीन लिया, तब जयपाल ने राजधानी के केन्द्रीय चौराहे पर चिता जला कर अपने आपको देह दण्ड दिया। यह इतिहास यदि जवाहरलाल नेहरू को वैदिक प्रथा के अनुसार यदि बार-बार सुनाया जाता, तो हो सकता है कि आधा कश्मीर तथा कच्छ का कुछ भाग पाकिस्तान द्वारा छीना जाने पर और अक्षयचिन का भाग चीन द्वारा ले लेने पर जवाहरलाल और उनके कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल को शायद उसी प्रकार चिता जलाकर उसमें अपने आपको झोंक देने की बुद्धि होती।

इतिहास को पुरोहित के मुख से सुनना—यह सूचना भी अपने आप में बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है। क्योंकि जवाहरलाल, मोहनदास गांधी, विनोबा भावे आदि कांग्रेसी व्यक्ति जब भी इतिहास पढ़ते तो वे ऊपर कही घटनाओं को या तो टाल देते या भूल जाते और अन्य घटनाओं का निजी मतलब का मनमाना अर्थ लगा लेते।

ऊपर दिए विवरण से इतिहास एक प्रकार से राष्ट्र की नाड़ी कहा जा सकता है। वर्तमान शासन में उस इतिहासरूपी नाड़ी से भारत की राजनयिक स्थिति स्पष्टतया रोगजर्जर दिखाई देती है। क्योंकि ताजमहल आदि ऐतिहासिक भवन मुसलमानों के नहीं हैं, यह सत्य कथन करने का या

अपनाने का साहस या शक्ति जिस शासन में न हो, वह शासन अपने आपमें अन्दर से कितना दुर्बल तथा खोखला होगा, इसका पाठक स्वयं अनुमान लगा सकते हैं। इस प्रकार इतिहास की अवस्था से नाड़ी की तरह किसी राष्ट्र की दुर्बलता या सशक्तता जानी जा सकती है।

प्रत्येक नागरिक को सैनिक शिक्षा की आवश्यकता

यूरोपीय देशों ने जब एशिया, अफ्रीका आदि खण्डों में निजी साम्राज्य बढ़ाना आरम्भ किया तब उन्होंने प्रत्येक युवक के लिए सैनिक शिक्षा अनिवार्य कर दी। इससे यूरोपीय नागरिकों में शिस्त पालन, युद्ध में एक-जुट होकर लड़ना आदि कई गुण निर्माण हुए। उनके टुकड़ी-नायकों का एक टुकड़ी से दूसरी टुकड़ी में तबादला हुआ करता था, अतः कोई भी एक सेनाधिकारी किसी एक टुकड़ी का सर्वेसर्वा नहीं बन पाता था। इधर मरहठों की सेना में शिन्दे, होल्कर, भोंसले, गायकवाड़ आदि निजी सेना के कायम नेता बने रहने की प्रथा चल पड़ी। सेनानायक की जैसी पगड़ी होती उसी प्रकार की पगड़ी उसकी सारी टुकड़ी पहनती। अतः प्रत्येक सेनानायक एक प्रकार से निजी सेना का कायम राजा बन गया। उसकी टुकड़ी से उसे अलग करके यदि शिन्दे, होल्कर, भोंसले, गायकवाड़ आदि एक दूसरे की सेना पर अधिकारी नियुक्त होते रहते तो वे एक विशिष्ट सेना के और विशिष्ट प्रदेश के राजा नहीं बन पाते और न ही अंग्रेजों से अलग-अलग कोई सन्धि कर शरण जाते।

यूरोपीय सेनानायकों ने कभी भी राष्ट्रद्रोह या राजद्रोह नहीं किया। उनका राजा भारत से ५००० मील दूर निवास करता था। वहाँ से कोई भी आज्ञा भारत स्थित आंग्ल या फ्रेंच केन्द्रों में पहुँचने में छह महीने भी बीत जाते तथापि उनकी राष्ट्रीय तथा सैनिकी शिस्त इतनी अच्छी थी कि किसी भी यूरोपीय व्यक्ति ने कभी कोई विश्वासघात नहीं किया। उसी प्रकार जब कभी भारत के हिन्दू राजा या मुसलमान नवाब किसी यूरोपीय अधिकारी के कर्तृत्व से प्रसन्न होकर पूछते कि "तुम्हें क्या चाहिए?" तो वह यूरोपीय व्यक्ति निजी केन्द्रों के लिए या निजी सरकार के लिए सुविधाएँ माँगा करता। यूरोपीय अधिकारियों ने धन या भूमि हड़पकर स्वयं नवाब

बन बैठने की चेष्टा कभी नहीं की। उनका यह गुण प्रशंसनीय है।

वैदिक विश्व साम्राज्य के अन्तर्गत एक ही सार्वभौम राजा सर्वाधिकारी होता था। उसके आधिपत्य में सेनाधिकारी और धर्माधिकारी विश्व के विविध भागों में समाज पर नियन्त्रण रखा करते थे। उन विभाग अधिकारियों को 'क्षेत्रप' कहा जाता था। यह जानकारी हमें आंग्ल शब्द 'सत्रप' (Satrap) से मिलती है क्योंकि वह स्पष्टतया 'क्षेत्र-प' इस संस्कृत शब्द का अपभ्रंश है। वैदिक शासन के अन्तर्गत ऐसे शासकों की विविध प्रदेशों में आवश्यकतानुसार नियुक्ति हुआ करती क्योंकि उस समय "वसुधैव कुटुम्बकम्" तत्त्व प्रणाली के अनुसार सारे विश्व में एक ही सार्वभौम वैदिक शासन चलाया जाता था।

इतिहास की अध्ययन पद्धति

इस ग्रन्थ का यह चौथा एवं अन्तिम खण्ड है। इसमें हम मुख्यतः इतिहास के पठन-पाठन, लेखन तथा संशोधन पद्धति की ही चर्चा करेंगे।

पहले तीन खण्डों में हमने वर्तमान इतिहास ग्रन्थों के दोष या त्रुटियाँ बतलाईं। जैसेकि इतिहास की वर्तमान पाठ्य-पुस्तकें लाखों वर्षों के प्राचीन इतिहास को छोड़ केवल सीरिया, असीरिया आदि राष्ट्रों से आज तक की चार-पाँच हजार वर्ष की ही रूपरेखा प्रस्तुत करती हैं। सृष्टि उत्पत्ति तथा जीवोत्पत्ति का इतिहास कहने की बजाय वर्तमान इतिहास ग्रन्थ भौतिक शास्त्रज्ञों के Big Bang तथा डार्विन के जीवोत्क्रान्ति के सिद्धान्त जैसी अटकलों को ही इतिहास में जोड़ देते हैं। भाषा उत्पत्ति सम्बन्धी भी ऐतिहासिक ब्योरा प्रस्तुत करने की बजाय मानव ने पशुपक्षियों की ध्वनियों की नकल करते-करते भाषाएँ बना ली होंगी, ऐसा अनुमान लगाते हैं। इस प्रकार गत चार-पाँच हजार वर्षों का इतिहास कई बातों में केवल अनुमान ही प्रस्तुत करता है। आर्य नाम का कोई वंश न होते हुए भी उसे वंश मान कर आर्य लोग भारत में आक्रामक बनकर आए आदि सरासर कपोलकल्पित झूठा इतिहास पढ़ाया जा रहा है।

ईसामसीह नाम का कोई ऐतिहासिक व्यक्ति कभी हुआ ही नहीं, तब भी ईसाइयों के प्रतिपादन को सही मानकर ईसामसीह का काल्पनिक चरित्र वर्तमान इतिहास में सम्मिलित किया गया है। इस्लामी वास्तुकला या स्थापत्यकला का एक भी ग्रन्थ अस्तित्व में न होते हुए भी उस कला का अनाप-शनाप वर्णन इतिहास में अन्तर्भूत किया गया है।

अकबर, शेरशाह सूरी, मुहम्मद तुगलक आदि कई सुल्तानों तथा बादशाहों को इतिहास में श्रेष्ठ तथा गुणी इसलिए कहा गया है कि भारत का शासन चलाने वाले कांग्रेसी नेता प्रसन्न होकर लेखकों को मान-सम्मान, सम्पत्ति, अधिकार-पद आदि देते रहे हैं। मुसलमानों का बनाया एक भी नगर या ऐतिहासिक इमारत न होते हुए भी हजारों इमारतें तथा नगर मुसलमानों के बनाए माने गए हैं। पोप, आर्चबिशप आदि के स्थान शंकराचार्य मठ होते हुए भी इसका उल्लेख वर्तमान इतिहास में नहीं आता।

वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत तथा पुराण आदि प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ यूरोप, अफ्रीका, अमेरिका आदि देशों में भी पढ़े जाते थे, क्योंकि वहाँ भी वैदिक सभ्यता थी। इसका उल्लेख तक इतिहास में नहीं है।

ऐसे अनेक दोषों की वर्तमान इतिहास में भरमार है। ऐसे दोष इतिहास में कैसे प्रविष्ट हुए? यह पाठकों को विदित कराने हेतु हम इतिहास की व्याख्या, इतिहास पठन का उद्देश्य, इतिहास लेखन-पाठन-संशोधन-पद्धति आदि प्रश्नों की चर्चा इस खण्ड में करने जा रहे हैं।

सामान्य पाठकों का दोष

इतिहास के अध्यापक, लेखक या इतिहास-पुरातत्व-पर्यटन आदि संस्थाओं से वेतन पाने वाले लोग सामान्यतया इतिहासकार समझे जाते हैं। अतः उनके मुख से या कलम से निकला इतिहास सही समझने की सामान्य व्यक्ति की प्रवृत्ति होती है। किन्तु हम पाठकों को सावधान करना चाहते हैं कि ऊपर कहे व्यावसायिक इतिहासकारों पर कभी विश्वास न रखें। मान-सम्मान, धन, अधिकार आदि की लालसा से लिखा इतिहास उसी प्रकार घटिया होता है जैसे लालची दुकानदार से खरीदी खाद्य वस्तुएँ मिलावट वाली होती हैं। अतः दुकानदार से खरीदी वस्तुएँ शुद्ध है या अशुद्ध, यह परखने की जैसी कसौटियाँ होती हैं, वैसे ही व्यावसायिक इतिहासकारों द्वारा लिखा इतिहास सही है या गलत, यह भी आजमाया जा सकता है, यदि सामान्य श्रोता या पाठक जागरूक हो।

इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण लें। शाहजहाँ ने मुमताज के शव की कब्र हेतु ताजमहल बनवाया। यह इतिहासकारों का कथन सुनते ही एक सामान्य

व्यक्ति के मन में यह प्रश्न उठना चाहिए कि यदि मृत मुमताज के शव के लिए शाहजहाँ ने इतना सुन्दर और विशाल भवन बनवाया तो जीवित मुमताज के लिए तो इससे कई गुना अधिक और बड़े भवन बनवाए होने चाहिएं। वे कहाँ हैं ? यदि वैसा एक भी भवन नहीं है तो मृत मुमताज के लिए ताजमहल बनवाए जाने का दावा निराधार होना चाहिए।

इसी प्रकार ख्यातनाम इतिहासकारों द्वारा लिखे गए या दोहराए इतिहास का भांडा एक सामान्य व्यक्ति भी फोड़ सकता है यदि वह जागरूक है तो।

शिक्षक का दोष

सामान्य व्यक्ति तथा इतिहासकार कहलाने वाले लोगों में और एक दोष 'भय' पाया जाता है जिससे सही ऐतिहासिक तथ्य छिपे रहते हैं। जैसे ईसामसीह का उदाहरण लें। यद्यपि ईसामसीह नाम का कोई व्यक्ति कभी हुआ ही नहीं तथापि ईसाई धर्म का विश्वभर में फैला आडम्बर देखकर किसी की हिम्मत ही नहीं पड़ती कि वह संसार को बताए कि ईसामसीह नाम का कोई व्यक्ति था ही नहीं।

ताजमहल के सम्बन्ध में यही एक भारी अड़चन थी। शाहजहाँ ही ताजमहल का निर्माता था, इस बात का इतना हल्ला-गुल्ला मचा हुआ था कि उसके ब्योरे में कई त्रुटियाँ तथा असंगतियाँ बार-बार दिखाने पर भी मूलतः ताजमहल की ही सारी शाहजहानी-कथा झूठ है, यह कहने की किसी में कभी हिम्मत ही नहीं हुई।

इससे यह जान लेना चाहिए कि सार्वजनिक धारणा के विरुद्ध निष्कर्ष प्रकट करने का धैर्य न हो तो भी ऐतिहासिक तथ्य छिपे रहते हैं। अतः इतिहासज्ञ कहलाने वाले लगभग सारे ही व्यक्ति वही इतिहास दोहराते रहते हैं जो सरकार द्वारा मान्य या जनमान्य हुआ हो।

इतिहास लेखन पर आने वाला दबाव

भूगोल, अर्थशास्त्र आदि विषयों के विद्यालयीन ग्रन्थ निष्पक्ष भूमिका से लिखे जाना स्वाभाविक होता है किन्तु इतिहास एक ऐसा विषय है जिसमें

लेखक की व्यक्तिगत भूमिका और दृष्टिकोण के अनुसार ही विवरण दिया जाता है। अतः इसमें इस बात का बहुत ध्यान रखा जाना चाहिए कि क्या इतिहासलेखक का दृष्टिकोण राष्ट्रीय है या नहीं ? यानि हिन्दुत्व और हिन्दुस्तान का इतिहास लिखने वाले व्यक्ति की भूमिका प्रेम, श्रद्धा और आत्मीयता की होनी चाहिए। हिन्दुत्व और हिन्दुस्तान का रक्षण, गौरव और बलवर्द्धन जिससे हो वे बातें वैध, प्रशंसनीय और राष्ट्रीय हित की मानी जानी चाहिएं। अन्य सारी बातें अराष्ट्रीय मानी जानी चाहिएं।

क्योंकि भारत का इतिहास अधिकतर यूरोपीय इसाईयों द्वारा और मुसलमानों द्वारा लिखा गया है, इस कारण वह अधिकतर अराष्ट्रीय और शत्रुता की भूमिका से लिखा गया है। इतना ही नहीं अपितु जहाँ-जहाँ इतिहासग्रन्थ लेखक या ऐतिहासिक लेखों के लेखक यदुनाथ सरकार, रमेश चन्द्र मजूमदार, महात्मा गांधी या विनोबा भावे आदि नाममात्र हिन्दू व्यक्ति थे वहाँ-वहाँ उनका दृष्टिकोण भी राष्ट्रीय नहीं कहा जा सकता। क्योंकि वे या तो मुसलमानों को अल्पसंख्यक मानकर उनको प्रेम करते हुए उनके दुष्कृत्यों का भी समर्थन करते हैं या बगैर सोचे-समझे हथियाई हिन्दू इमारतों को मुसलमानों द्वारा बनवाई कब्रें और मस्जिदें कह देते हैं या पराई विचारधाराओं को भी इस देश में वैदिक सभ्यता की बराबरी के साथ पनपने का अधिकार है, ऐसा कह देते हैं।

देश के व्यक्तित्व से राष्ट्रीयत्व पहचाना जाता है

प्रत्येक व्यक्ति की बोलचाल, रंग, कद आदि से उसका व्यक्तित्व पहचाना जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक देश का व्यक्तित्व भी उसके रहन-सहन, साहित्य, आचार-विचार से ही जाना जाता है। इस दृष्टि से भारत का व्यक्तित्व है — वेद, उपनिषद, पुराण, ग्रन्थ, रामायण, महाभारत, योग, प्राणायाम, संस्कृत भाषा आदि। अतः इन सबका संरक्षण, संवर्द्धन, प्रसार आदि जिस व्यक्ति या कृति से होगा इसे उस सीमा तक ही राष्ट्रीय माना जाना चाहिए। जिस व्यक्ति से या कृति से भारत के उस वैदिक व्यक्तित्व को धक्का पहुँचे उस सीमा तक वह व्यक्ति या कृति अराष्ट्रीय मानी जानी चाहिए। इस कसौटी के अनुसार महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू

जैसे कई व्यक्ति जो महान देशभक्त कहे जाते हैं, उनकी राष्ट्रभक्ति बड़ी हीन सिद्ध होगी।

वर्तमान युग में गले में हार डलवाने और भाषण सुनने को लाखों लोग इकट्ठे होंगे, ऐसी बातों से देशभक्ति या राष्ट्रभक्ति नापी जाती है। वह सर्वथा गलत है। हमने जो ऊपर कसौटी कही है उससे प्रत्येक व्यक्ति के प्रतिक्षण की बोलचाल का मूल्यांकन किया जा सकता है। वही इतिहास राष्ट्रीय माना जाना चाहिए, जिसमें नागरिकों को ऐसी विविध बातों पर पूरा मार्गदर्शन मिले। इसके विपरीत ईश्वरीप्रसाद आदि ने इतिहास, कांग्रेस के राजनयिक दृष्टिकोण से लिखा। हिन्दू-मुसलमान-ईसाई को एक नाप से तोलने वाला साहित्य अनार्ष साहित्य कहा जाना चाहिए। आर्ष साहित्य वह होता है जो किसी की आज्ञा से या दबाव से या उसकी तुष्टि के हेतु न लिखा गया हो अपितु निर्भीकता से सत्य, ज्ञान, न्याय, समता और सार्वजनिक भलाई के हेतु ही लिखा गया हो। इसी कारण रामायण, महाभारत, पुराण आदि अक्षय आर्ष साहित्य है।

इस्लामी और ईसाई इतिहास

ऊपर कही गई कसौटी के अनुसार इस्लामी तथा ईसाई पंथों के और देशों के इतिहास बड़े घटिया स्तर के माने जाने चाहिएँ। क्योंकि उनमें इस तथ्य का उल्लेख ही नहीं किया जाता कि मोहम्मद और ईसामसीह से पूर्व वे सारे देश वैदिक सभ्यता को मानते थे और ईसाई या इस्लामी कहलाने वाले लोगों के पूर्वज सारे वैदिकधर्मी थे। इस्लामी तथा ईसाई धर्म परम्परा तथा परिभाषा भी वैदिक स्रोत की है, इस तथ्य का भी कभी उनके ग्रन्थों में उल्लेख नहीं होता। उन्होंने जिस छल-बल, क्रूरता, दहशत, अनाचार, अत्याचार, आतंक और ठगी से इस्लामी और ईसाई पंथों का प्रसार किया उसे दबाकर उसके स्थान पर उन पंथों पर बड़े गौरव और प्रतिष्ठा का मुलम्मा चढ़ाकर उन्हें प्रस्तुत किया गया है।

इस्लामी और ईसाई बने देशों का मूल व्यक्तित्व भी वैदिक ही था। उस मूल वैदिक व्यक्तित्व को दबा देने वाले उन देशों के इतिहास भी धिक्कार योग्य माने जाने चाहिएं। उन देशों को भी राष्ट्रीयत्व की वैदिक

कसौटी ही लागू करानी चाहिए। इससे पता चलेगा कि वे निजी मूल व्यक्तित्व से कितने बदल गए हैं।

वैदिक प्रतिज्ञा

वैदिक परम्परा के सारे संस्कार तथा प्रतिज्ञाएँ अग्नि को साक्षी रखकर की जाती हैं। जैसे विवाह संस्कार, विविध होम यानि यज्ञों के साथ किया जाता है। सप्तपदी के फेरे भी उसी पवित्र यज्ञ की अग्नि के किए जाते हैं। उसका गर्भित अर्थ यह होता है कि विवाह-बन्धन का उल्लंघन हुआ तो अग्निदाह करना होगा यानि चिता में कूदकर जल जाना होगा। अतः सिख पंथ में पचास-साठ वर्षों से अग्नि की बजाय वर और वधू द्वारा गुरु ग्रन्थ साहब के फेरे लगाने की चलाई प्रथा एक नकल मात्र है। विवाह-बन्धन का उल्लंघन करने वाले सिख वर या वधु गुरु ग्रन्थ साहब पर कूद पड़ने से वह परिणाम नहीं होगा जो यज्ञकुण्ड में कूदकर होगा। अतः एक पवित्र वस्तु के बदले में अन्य कोई वस्तु रख देने की विचार-प्रणाली सर्वथा अयोग्य है।

प्रतिज्ञा भंग करने वाले व्यक्ति द्वारा स्वयं अपने आप को दोषी पाकर अग्नि में भस्मसात कर लेने की तेजस्वी प्रथा वैदिक संस्कृति में बराबर रही है। रामायणकाल में सीता पर राजद्रोह का आरोप तो इतना गहरा लगा था कि प्रथम तो उसे अग्निदिव्य कराना पड़ा। उससे भी प्रजा का समाधान न होने पर उसे सीमा पार रहने का दण्ड हुआ। और उससे भी आरोप धुल न जाने पर भूमि में किस प्रकार समाधि लेनी पड़ी इसका वर्णन हमने रामायण प्रकरण में कुछ विस्तार से किया है। अर्जुन ने भी प्रतिज्ञा की थी कि सूर्यास्त तक जयद्रथ का वध यदि वह नहीं कर पाया तो वह चिता जलाकर उसमें निज प्राण दे देगा।

वह तेजस्वी परम्परा सन् १००० तक भारतीय इतिहास में बराबर बनी रही। जयपाल से जब महमूद गजनवी ने अफगानिस्थान (यानि गांधार प्रान्त) छीन लिया तब एक क्षत्रिय शासक के नाते अपने आप पर दौर्बल्य दोषपाकर जयपाल ने राजधानी के चौराहे में चिता जलाकर उसमें आत्म-समर्पण कर दिया।

वर्तमान भारत में क्या होता है? देखिए राष्ट्रपति, न्यायाधीश,

राज्यपाल, सांसद आदि व्यक्ति उच्चस्वरदण्ड (Loud speaker) के पास खड़े होकर आजकल जो शपथ लेते हैं वह एक बन्दर की भांति एक विडम्बना या नकल बनकर रह गई है। प्रतिज्ञा वह होती है जिसके प्रथम भाग में कुछ नियमबद्ध निष्कलंक कृति करने की घोषणा होती है और उत्तरी भाग में यदि प्रतिज्ञाभंग हुआ तो अग्निकुण्ड में अपने आपको जला डालने की घोषणा होती है।

इस प्रकार की व्रतनिष्ठा का वैदिक सभ्यता में बराबर पालन और संवर्द्धन होता रहा अतः मुसलमानों से हुए छह सौ वर्षों के युद्ध मे संकट में फँसी वीर नारियों द्वारा अग्नि में कूदकर निजी प्राण निर्भीकता से न्योछावर करते रहने की प्रथा बराबर चलती रही।

वर्तमान युग में अधिकारी या निर्वाचित जनप्रतिनिधि जब अपना कार्यभार सम्हालने की शपथ लेते हैं तो "मैं ईश्वर को साक्षी रखकर यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अपना उत्तरदायित्व दक्षता से और निष्ठा से निभाऊँगा।" ऐसी प्रतिज्ञा से जनता की आँखों में धूल झोंकने वाला केवल एक नाटक या तमाशा ही होता है। क्योंकि इस प्रतिज्ञा के उत्तरी भाग में जो स्वेच्छा से स्वीकृत दण्डविधान होना चाहिए उसका सम्पूर्ण अभाव है। इस शपथ में आगे ऐसे शब्द होने चाहिएं कि "यदि मेरे द्वारा कर्त्तव्यपूर्ति में कोई भी दोष पाया गया तो मैं अपने आप निजी जीवन कलंकित मानकर स्वयं चिता रचाकर उसमें प्राण दे दूँगा।"

वर्तमान युग में ग्राम पंचायत से लेकर लोकसभा के सदस्यों तक के निर्वाचित जनप्रतिनिधि तथा तहसीलदार से राष्ट्रपति तक के विविध अधिकारी जो पदाधिकार की शपथ लेते हैं उसमें थोड़ा-सा भी धब्बा लगने पर यदि स्वयं चिता सुलगाकर जल मरने की शर्त अन्तर्भूत करा दी गई तो निर्वाचित पद या अधिकारी पद के लिए हजारों प्रत्याशियों की जो भीड़ लगी रहती है, वह एकदम समाप्त हो जाएगी।

वास्तव में प्रत्येक जनाधिकारी का पद सेवाभाव से प्रेरित तथा विरक्त व्यक्ति को सौंपा जाना चाहिए। किन्तु वर्तमान युग में तो लालायितों की होड़ और दौड़ में सर्वाधिक लालायित व्यक्ति को ही सारे अधिकार-पद प्राप्त होते रहते हैं, इसी से भ्रष्टाचार बढ़ता रहता है।

इतिहास की व्याख्या

प्रचलित आंग्लभाषा में इतिहास को Histroy कहा जाता है। यह मूल ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ है 'पूछताछ'। किन्तु इस अर्थ से इतिहास विषय की विशेषता व्यक्त नहीं होती। पूछताछ तो हर एक विषय में होती है। प्रत्येक विषय में और ज्ञान क्या प्राप्त किया जा सकता है, इसकी पूछताछ तो होती है।

संस्कृत भाषा में प्रत्येक शब्द के अर्थ की पूरी व्याख्या होती है। जैसे इति-ह-आस (इतिहास)। इस शब्द में 'इति' यानि 'ऐसा' 'ह' यानि निश्चय से और 'आस' यानि 'हुआ था'। अतः इतिहास का अर्थ है 'गत घटनाओं का कालक्रमबद्ध सत्यकथन'।

तथापि विश्व के वर्तमान इतिहास 'इति-ह-नास' यानि 'ऐसा वास्तव में घटा नहीं था' कहने योग्य झूठे और हेरा-फेरी से भरे वर्णन हैं। क्योंकि वर्तमान इतिहास अधिकतर मुसलमान तथा यूरोप के ईसाई लोगों के ग्रंथों पर आधारित है। पूर्ववर्ती वैदिक संस्कृति से उन्हें विरोध था और इसी को दबाकर उन्होंने करोड़ों लोगों को ईसाई तथा मुसलमान बनाया। ऐसे अप-हरणकर्त्ता स्वभावतः ही पूर्ववर्ती सभ्यता को हीन या निरर्थक बतलाकर निजी पंथ की आवश्यकता और महत्व का बखान करेंगे ही। अतः मुसलमान तथा ईसाईयों से लिखे इतिहास पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए।

यहाँ इस बात का ध्यान रहे कि राजा, सुल्तान, बादशाह के शासनकाल कह देना या लड़ाइयों के सन् बता देना आदि तो केवल बाहरी ढांचा है, अतः उनमें मतभेद की कोई बात ही नहीं। किन्तु उस ढांचे के अतिरिक्त जो इतिहास का तफसील होता है वह बहुत बड़े प्रमाण में भ्रमपूर्ण है। जैसे इस्लामी तथा अंग्रेजों के आक्रमण से भारतीय सभ्यता में बड़ा मौलिक योगदान हुआ यह धारणा; या मुसलमानों ने भारत में अनेक मस्जिदें और मकबरे बनवाए यह दावा ऐसी झूठी और निराधार बातों की वर्तमान इतिहास में भरमार है। आर्य लोग कौन थे? सीरिया, असीरिया आदि देशों से लाखों वर्ष पूर्व विश्व में कौन-सी सभ्यता तथा कौन-सी भाषा थी? पोप का धर्मपीठ कब और किस प्रकार स्थापन हुआ? रोम और जेरूसलेम नगरों के नाम भगवान राम तथा कृष्ण से कैसे पड़े? आदि अनेक प्रश्नों

का जो विवरण वर्तमान इतिहास ग्रन्थों में दिया जाता है वह सर्वथा कपोल-कल्पित है। अतः पूरे विश्व का इतिहास आरम्भ से अन्त तक सत्य के आधार पर दुबारा लिखने की आवश्यकता है।

इतिहास प्रमुख घटनाओं तथा सत्ताकेन्द्रों का ब्योरा होता है

वैसे तो किसी देश-प्रदेश का परिपूर्ण इतिहास वह होगा जिसमें सारे नागरिकों ने पूरे जीवन में प्रातः से रात्रि तक क्या किया उसका पूरा वर्णन दिया गया है, किन्तु ऐसे वर्णन में किसी की रुचि नहीं होगी। ऐसे वर्णन के ढेर के ढेर निरर्थक ग्रन्थ रखना भी कठिन होगा और उनका किसी को कोई लाभ भी नहीं होगा। अतः प्रमुख घटनाओं का ही इतिहास में अन्तर्भाव होना स्वाभाविक है। जिन घटनाओं में वीरता, त्याग, सत्तांतरण आदि कुछ विशिष्टता हो, वही घटनाएँ ऐतिहासिक कहलाती हैं।

समाचार-पत्रों में जिस प्रकार नवीन, विचित्र, विशिष्ट या महत्वपूर्ण घटनाओं का ही अन्तर्भाव होता है उसी प्रकार इतिहास में भी वैसी ही घटना अंकित होती रहती है। अन्तर इतना ही होता है कि समाचार-पत्रों में दैनंदिन महत्व की बातें लिखी जाती हैं जबकि इतिहास में कई वर्षों में जो प्रमुख घटना होगी, उसका उल्लेख होता है।

इतिहासकार की व्याख्या

इतिहास की व्याख्या देखने के पश्चात् इतिहासकार या इतिहासज्ञ किसे कहा जाना चाहिए यह जान लेना योग्य होगा। इस सम्बन्ध में वर्तमान धारणाएँ बड़ी धुंधली-सी हैं। इतिहास विषय लेकर बी० ए०, एम० ए० आदि पदवी आने वाले या इतिहास पढ़ाने वाले अध्यापक या इतिहास सम्बन्धी लेख या ग्रन्थ लिखने वाले या पुरातत्व आदि विभागों के कर्मचारी सामान्यतया इतिहासज्ञ माने जाते हैं।

ऐसे व्यक्ति भले ही इतिहास से धन कमाते हों तथापि केवल इसी आधार पर उन्हें इतिहासज्ञ समझना भारी भूल होगी। क्योंकि विश्व में ऐसे लोग होते हुए भी विश्व के इतिहास में निर्मूल धारणाओं की कैसी भरमार है? यह हम इस ग्रन्थ में भली प्रकार बता चुके हैं। अतः केवल इतिहास

से सम्बन्धित व्यवसाय द्वारा धन कमाना या पेट पालना, यह इतिहासकार का लक्षण नहीं है। इतिहासज्ञ उसे कहना चाहिए जिसकी इतिहास विषय में निरन्तर समाधि लगती रहती है। समाधि लगते रहने के कारण इतिहास के शंकास्थलों का जो पता लगाता रहता है और उनका समाधान ढूंढता रहता है, ऐसा इतिहासकार विश्व में शायद ही कोई होगा। विद्यालयों में इतिहास का ज्ञान करा लेना और स्वयं अध्यापक या लेखक के नाते वह इतिहास दूसरों को विदित कराना यह तो कोई भी दूत या Tape recorder जैसा निर्जीव यन्त्र भी करता रहता है।

उसी प्रकार सब्बल और फावड़े से उत्खनन में निकले मटकों के टुकड़ों पर भाष्य करने वाले व्यक्ति को इतिहासकार या पुरातत्वविद् समझना ठीक नहीं होगा। एक मामूली मजदूर भी उत्खनन करे तो पुराने खपरैल या राख आदि समाग्री मिलेगी ही। उस राख की प्राप्ति से उस समय के लोग आग सुलगाना जानते थे आदि प्रकार के हास्यास्पद और बालिश वक्तव्यों को वर्तमान युग में बड़ा भारी पुरातत्वीय संशोधन मानने की प्रथा बड़ी निन्दनीय है।

इतिहास के अनेक शंकास्थलों का पता लगाना और उनका तर्कसंगत विवरण प्रस्तुत करना, यह जो कर दिखाएगा, उसको ही इतिहासकार कहना योग्य होगा। ऐसे व्यक्ति सारे विश्व में गिने-चुने ही होते हैं।

इतिहासज्ञ कहलाने वालों के गुण

इतिहास का मूल सत्य ढूंढने का दृढ़ प्रयास और निश्चय तो दूर ही रहा, हमारा अनुभव तो यह है कि इतिहास के नए संशोधित सत्य बने बनाए, तैयार विद्वानों के हाथों में देने लगो तो वे उसे छूते तक भी नहीं।

इसका एक मोटा उदाहरण सुनें। सन १९६१ से मैं विविध लेख, भाषण, पुस्तकों आदि द्वारा विद्वानों को बता रहा हूँ कि भारत (तथा विश्व) में जितने नगर, बाड़े, महल, मीनार, ह , मकबरे, मस्जिदें, पुल आदि ऐतिहासिक सम्पत्ति मुसलमानों द्वारा निर्मित बताई जाती है वह वास्तव में हिन्दुओं से कब्जा की इस्लामपूर्व सम्पत्ति होने से इस्लामी स्थापत्यकला सम्बन्धी सारी बातें निराधार हैं।

इस मेरी घोषणा को अट्ठाईस वर्ष बीत चुके हैं। इस प्रदीर्घ अवधि में देश-विदेश के लाखों यात्री और मेरी पुस्तकों के वाचक मेरे उस सिद्धान्त से बड़े प्रभावित हैं। मेरा शोध-साहित्य पढ़ने के पश्चात् उन्होंने ताजमहल आदि इमारतों का बड़ी बारीकी से अध्ययन तथा निरीक्षण किया है। मेरे द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों और तथ्यों को आजमाकर वे बड़े प्रसन्न हुए। मेरी कहीं बातें उनको जँची और ऐतिहासिक इमारतों की इस्लाम द्वारा निर्मिती की बात झूठ है, ऐसा दृढ़ विश्वास हुआ। तथापि मन ही मन में प्रभावित होने वाले व्यक्ति प्रकट रूप से मेरे सिद्धान्तों का डटकर विरोध करते हैं, यह सुनकर पाठकों को शायद आश्चर्य होगा।

विरोध करने वाले इन गुटों की निजी भूमिकाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं किन्तु उस विरोध के पीछे एक समान डर, झिझक तथा स्वार्थ ही उनकी प्रेरणा के स्रोत होते हैं।

सामान्यतया मुसलमान इस कारण मेरे शोध-सिद्धान्तों का विरोध करते हैं कि विश्वभर में बनी सैकड़ों इमारतों का श्रेय उनसे छिन जाएगा। इतना ही नहीं अपितु मस्जिदें तथा कब्रें कहकर कब्जे में रखी, उन इमारतों को छोड़ देने का संकट भी निर्माण होगा। ऐसी कठिनाइयों को टालने के लिए सबसे सरल और सीधा रास्ता वे यही समझते हैं कि 'ओक साहब का सिद्धान्त ही गलत है', कह दो ताकि उसकी जाँच-पड़ताल की आवश्यकता ही न हो।

जिन सिद्धान्तों ने ताजमहल, कुतुबमीनार आदि इमारतों को इस्लामी समझकर उनकी सुन्दरता, विशालता आदि के अनाप-शनाप और अण्ट-शण्ट वर्णन से भरे लेख या ग्रन्थ प्रकाशित किए हैं, वह सारा साहित्य निराधार सिद्ध होना, उन्हें ठीक नहीं लगेगा। अतः वे भी मेरे शोध-सिद्धान्तों की सत्यासत्यता जाँचने के झंझट में न पड़कर मेरे शोध-सिद्धान्तों को सीधे अमान्य करने का ही मार्ग अपनाते हैं।

इसी प्रकार विश्वविद्यालयों में और महाविद्यालयों में इतिहास पढ़ाने वाले अध्यापक, कांग्रेसी शासन के पुरातत्व तथा पर्यटन विभाग के कर्मचारी आदि सबको इस्लामी निर्माण की धौंस को ही दोहराते रहना सबसे सुविधाजनक मार्ग दिखाई देता है। अतः विश्वभर के कला समीक्षक, पत्रकार, इतिहासकार आदि परम्परागत प्राप्त ऐतिहासिक इमारतों के इस्लामी निर्मिती

का असत्य ही चुपचाप दोहराते रहना निजी भविष्य के लिए सुविधाजनक मानते हैं।

अतः पाठक यह न समझें कि सत्य प्रकट किए जाने पर सभी उसे चुपचाप मान लेते हैं। सत्य बात को स्वीकार करना जब असुविधाजनक हो तब सत्य को झूठ और झूठ को सत्य कहकर ही सामान्य लोग काम चला लेते हैं। उनके लिए सत्य वह है जिससे उनके स्वार्थ या ऐहिक लाभ पर कोई आँच न आए।

कई बार मैं इस विचार से बेचैन होता था कि ताजमहल आदि ऐतिहासिक भवनों के बाहर प्रदर्शित उनके इस्लामी निर्मिती के पुरातत्व विभाग द्वारा लगाए गए सूचनाफलक तोड़ने का सत्याग्रह करूँ। परन्तु अपनी ढलती आयु के कारण नहीं कर सका। उनके इस्लामपूर्व हिन्दू निर्माण का सिद्धान्त, भाषण, लेख तथा ग्रन्थों द्वारा घोषित करने में ही मुझे समाधान मानना पड़ा। किन्तु जब मैंने सारी परिस्थिति का सिंहावलोकन किया तब मुझे यह दिखा कि मैं जिन तथ्यों को सार्वजनिक मंचों से उद्घोषित करता रहा हूँ उन तथ्यों का अनुमोदन, स्वीकृति या मण्डन करने से भी विश्व के अधिकांश विद्वान डरते रहे हैं। सारे विश्व का विरोध सहन करते हुए इन तथ्यों को बराबर प्रस्तुत करते रहने की मेरी लगन तथा निर्भीकता कोई साधारण बात नहीं, ऐसा समाधान मैं मानता हूँ।

अतः सच्चे इतिहासज्ञ का एक गुण है निर्भीकता। झिझक, लज्जा, डर या किसी की मर्यादा (यानि लिहाज) के कारण जो सत्य घोषित नहीं करता, उसे इतिहासज्ञ कहना अयोग्य है।

फारसी, अरबी आदि भाषा जानने वाले को इतिहासकार मान लेने की प्रथा छोड़ देनी चाहिए। विश्व में कई भाषाएँ हैं तथा दो या अधिक भाषाएँ जानने वाले लोग भी अनेक हैं। उन्हें भाषाविद् कहना योग्य होगा किन्तु इतिहासज्ञ कहना ठीक नहीं होगा। अरबी, फारसी आदि भाषाओं में भले ही हजारों या लाखों दस्तावेज, तवारीखें आदि होती हों, किन्तु उन्हें पढ़कर उनका आशय सुनने वाले व्यक्ति को इतिहासकार समझना गलत होगा।

कोई भी इतिहासज्ञ कहलाने वाला व्यक्ति सत्य का शोध करने के लिए

कृतसंकल्प है या नहीं ? यह देखना आवश्यक है। यदि नहीं है तो उसे इतिहासकार कभी नहीं कहना चाहिए।

यह शर्त भले ही सादी या सरल लगे किन्तु यदि देखा जाए तो लाखों लोग इसी पर लड़खड़ा जाएँगे। जैसे किसी मुसलमान इतिहासज्ञ को कहा जाए कि मोहम्मद पैगम्बर ऐतिहासिक व्यक्ति होने के कारण उनके व्यक्तित्व का वर्णन करो। उनका कद कैसा था ? रंग-रूप कैसा था ? दाढ़ी रखते थे या नहीं ? वस्त्र क्या पहनते थे ? इत्यादि, तो लगभग कोई भी मुसलमान के नाते, स्वयं ऐसा करने से हिचकिचाएगा या यद्यपि वह स्वयं नास्तिक या कम्युनिस्ट विचारधारा का हो, वह अपने जाति-बांधवों के डर से मोहम्मद का वर्णन करने से डरेगा। इतना ही नहीं अपितु उस सम्बन्ध में कोई संशोधन करने की हिम्मत भी वह नहीं करेगा। इसी प्रकार मोहम्मद पैगम्बर ने जितने संघर्ष किए उसमें कोई जुलुम, जबरदस्ती, अनाचार, अत्याचार का वर्णन करने का साहस कोई मुसलमान नहीं करेगा। इससे पाठक देख सकते हैं कि 'इतिहासज्ञ' की योग्यता पाना सामान्य बात नहीं है। विश्व-विद्यालय से इतिहास विषय में पदवी पाना या इतिहास संस्था के सदस्य बनना या इतिहास-सम्बन्धी सरकारी विभाग में नौकरी करना या इतिहास के अध्यापक बनना आदि बातों से धन कमाने वाले को या समय बिताने वाले को इतिहास का नौकर कहा जा सकता है किन्तु स्वामी (master) नहीं कहा जा सकता।

समाजवादी लोग या मुसलमान आदि लोग जब तक निजी पक्ष के दबाव के अधीन हैं तब तक वे सही अर्थ में इतिहासकार नहीं बन सकते क्योंकि ऐतिहासिक शोध के लिए आवश्यक मानसिक स्वतन्त्रता उन्हें नहीं होती।

ईसाई लोगों का भी यही हाल है। मुसलमानों से ईसाई लोग कई बातों में प्रगतिशील और स्वतन्त्र विचारी होते हैं। अतः ईसामसीह एक काल्पनिक व्यक्ति है ऐसा सिद्ध करने वाली सैकड़ों पुस्तकें यूरोप के ईसाई विद्वानों ने अवश्य लिखी हैं। फिर भी करोड़ों ईसाई लोग उस बात को जनसामान्य से छिपाकर ईसाई पन्थ के प्रसार में बराबर जुटे हुए हैं। इतना ही नहीं अपितु वे ईसाई मूर्तियाँ, धर्मस्थल में देखे गए चमत्कारों के बारे में

समय-समय पर अफवाएँ उड़ाते रहते हैं। अतः धार्मिक, आर्थिक या गुट-बन्धन आदि के दबाव में आने वाले व्यक्ति कभी सच्चे इतिहासकार नहीं बन सकते।

स्पष्ट वक्ता

मैंने अनुभव किया है कि कई व्यक्ति ऐतिहासिक सत्य को प्रकट करने में भी झेंप जाते हैं, लज्जा का अनुभव करते हैं या झिझकते हैं। ऐसे व्यक्ति भी इतिहासकार कहलाने के पात्र नहीं होते। अतः इतिहासकार को स्पष्ट वक्ता होना चाहिए।

नए तथ्य सीखना और गलत धारणाएँ त्यागना

इतिहासकार कहलाने योग्य व्यक्ति में नए तथ्य अपनाने और गलत सिद्ध किए गए सिद्धान्त त्याग देने का धैर्य होना आवश्यक है।

सैकड़ों वर्षों से इतिहास द्वारा यह भावना रूढ़ कराई गई है कि इस्लाम जैसे-जैसे फैलता गया वैसे-वैसे मुसलमानों ने अनेक नगर बसाए और स्थान-स्थान पर मस्जिदें और कब्रों की भरमार कर दी। एक आंग्ल लेखक ने ठीक ही कहा है कि आभास ऐसा निर्माण किया जाता है कि जैसे 'बस मोहम्मद पैगम्बर के हवा में तलवार घुमाने की ही देर थी कि यकायक खेती में अनाज की तरह सर्वत्र मस्जिदें तथा कब्रें निर्माण होती गईं'।

मेरे भाषण जिन्होंने सुने हैं या लेख तथा ग्रन्थ जिन्होंने पढ़े हैं ऐसे हजारों व्यक्ति होंगे जिन्हें मेरे सिद्धान्त जँचे होंगे कि इस्लामी शिल्पकला नाम की कोई कला है ही नहीं क्योंकि मुसलमानों ने कोई ऐतिहासिक इमारत या नगर नहीं बसाए। फिर भी ऐसे व्यक्ति दृढ़संकल्प नहीं होते, वे हिचकिचाते हैं। लिखित या मौखिक परीक्षा, चर्चा, भाषण, लेख, ग्रन्थ, सरकारी कामकाज आदि माध्यमों द्वारा दृढ़ता से ऐसा कहने वाला शायद ही कोई व्यक्ति होगा कि प्राचीन पारम्परिक कल्पनाओं को त्यागकर ऐतिहासिक इमारतें तथा नगर मुसलमानों की नहीं, इस नए तथ्य के प्रचार का जिसने बीड़ा उठाया हो। अभी भी ऐसे कई व्यक्ति हैं जो ताजमहल आदि ऐति-हासिक इमारतें हिन्दुओं की बनवाई हैं, या अकबर को श्रेष्ठ समझना योग्य

नहीं, इन तथ्यों को निजी मन में दृढ़मूल नहीं कर पाए हैं। अतः लोगों में इन तथ्यों को प्रकट रूप से कहने में भी वे डरते हैं। इस प्रकार द्विविधा की अवस्था या हिचकिचाहट तभी होती है जब किसी व्यक्ति के मन में निजी स्वार्थ, सामाजिक प्रतिष्ठा आदि का स्थान प्रमुख होता है और सत्य को गौण माना जाता है। जो व्यक्ति सत्य को सर्वोच्च स्थान देता है वही तत्परता से उत्पादित सिद्धान्तों को तुरन्त त्यागकर नवप्रस्थापित सिद्धान्तों का गर्व तथा निर्भीकता से प्रतिपादन करने लगता है।

स्वतन्त्र विचारशक्ति

एक अच्छा और सच्चा इतिहासज्ञ होने के लिए स्वतन्त्र विचारशक्ति की बड़ी आवश्यकता होती है। साधारण व्यक्ति जब कोई ऐतिहासिक स्थान देखने जाता है तो वहां के सरकारी स्थलदर्शक (guides) जो कह देते हैं वह मान लेने की उसकी प्रवृत्ति होती है। इसी प्रकार ख्यातनाम इतिहासकारों द्वारा लिखी या सुनी बातों को सामान्यतया प्रामाणित माना जाता है। किन्तु इस सम्बन्ध में मेरा अनुभव बड़ा कटु रहा है। अकबर को लगभग सारे ही इतिहासज्ञों ने श्रेष्ठ ठहराया है तथा ताजमहल आदि इमारतें मुसलमानों की बनवाई हैं ऐसा सारे इतिहासज्ञ तथा स्थलदर्शक (गाइड्स्) कहते आ रहे हैं। लेकिन मेरे शोधों से वह सारा निराधार सिद्ध हुआ। फिर भी वे सारे सुनी-सुनाई बातें ही दोहराते रहे। अतः सच्चे इतिहासकार को कभी किसी पर विश्वास न रखते हुए प्रत्येक प्रश्न का स्वतन्त्र रूप से विचार करने की आदत डाल लेनी चाहिए।

जैसे सफदरजंग, एतमाद्उद्दौला, हुमायूँ, मुमताज आदि के नाम जब बड़े-बड़े महलों जैसी कब्रें बताई जाती हैं तो प्रेक्षकों के मन में अपने आप यह प्रश्न उठना चाहिए कि यदि इनके प्रेतों के इतने सुन्दर और विशाल महल किसी पराए व्यक्ति (यानि पति, पत्नि, पुत्र, भतीजे, भांजे आदि) ने बनवाए तो वे व्यक्ति जब हुकूमत करते हुए जीवित थे तब कौन से महल में रहते थे? यदि उनके जीवित होते हुए उनका प्रासाद नहीं था तो उनके शव के लिए अनेक मंजिलों की और सैकड़ों कक्षों की हवेली कौन बनवाएगा? ऐसे प्रश्नों का विचार करने की आदत लोगों में डालने की आवश्यकता है।

इतिहास और देशनिष्ठा

दीर्घकालीन परतन्त्रता, कांग्रेसी विचारधारा तथा करोड़ों मुसलमानों का अन्तर्भाव आदि कई कारणों से भारत में सुशिक्षित लोगों की भी यह धारणा करा दी गई है कि भारत एक खिचड़ी देश है जिसमें कई धर्मों के और पन्थों के लोगों को रहने का समान अधिकार है; अतः यहां का शासन केवल हिन्दू धर्म का समर्थन करे, सार्वजनिक या सरकारी अवसरों पर हिन्दू प्रणाली, पूजा विधि आदि का पुरस्कार न हो, इतिहास की शिक्षा में मुसलमानों से संघर्ष, मुसलमानों के अत्याचार आदि का उल्लेख न किया जाए; इतिहास निष्पक्षता से न लिखा जाए इत्यादि।

ऊपर उल्लिखित सारे तत्त्व सही हैं। फिर भी उनके दो अर्थ हैं और इनमें से अयोग्य अर्थ ही वर्तमान शासन में स्वीकृत किया जा रहा है। जैसा कि ऊपर कहा है कि भारत में अनेक धर्म, पन्थ तथा वर्ण के लोग रहते हैं, अतः भारत एक खिचड़ी देश है जिसमें हिन्दुत्व को प्रधानता नहीं दी जा सकती।

विश्व में अमेरिका, इंग्लैण्ड, रूस आदि कई अन्य देश हैं जिनमें भारत की तरह भिन्न जातियों, धर्म, पन्थ, वर्ण आदि के लोग रहते हैं, लेकिन फिर भी उन देशों में ईसाई प्रणाली को ही प्रधानता दी जाती है।

किन्तु भारत की विशेषता यह है कि यहाँ की हिन्दू जीवन पद्धति कोई एकपक्षीय पद्धति नहीं है। हिन्दू धर्म अपने आपमें मानव धर्म है। इसमें झूठ मत बोलो, स्वार्थी जीवन मत बिताओ, सेवाधर्म से रहो आदि शाश्वत तत्व ही कहे गए हैं। अतः इसमें नास्तिक से लेकर आस्तिक तक सबका अन्तर्भाव होता है। यह वैचारिक स्वतन्त्रता तथा निःस्वार्थ सेवारत जीवन पद्धति टिकाना यही हिन्दू धर्म का आदेश है। अतः भारत ने देशान्तर्गत इस सनातन मानव धर्म की रक्षा तो करनी ही है अपितु इसे सारे विश्व में लागू कराना है। अतएव भारत में केवल हिन्दू प्रणाली लागू न की जाए यह सर्वथा अनुचित है। क्योंकि इस्लाम, ईसाइयत आदि से हिन्दुत्व की बराबरी करना ही अनुचित है। वे एकपक्षीय धर्म हैं जिनमें एक ही गुरु और एक ही ग्रन्थ को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। अतः भारत में हिन्दू पद्धति को ही प्रमुखता प्रदान करना मानव कल्याण के लिए आवश्यक है।

कुछ लोगों का यह भी आग्रह है कि भारत में करोड़ों मुसलमान बसते हैं अतः विद्यालयों में पढ़ाए जाने वाले इतिहास से हिन्दू-मुसलमान की लड़ाइयों, संघर्ष आदि की बातें मिटा दी जाएँ। यह तो नितान्त अनुचित है। संघर्ष तो दो पक्षों में होता है। जिस संघर्ष का इतिहास हिन्दू विद्यार्थी राजी-खुशी से पढ़ते हैं उसमें हिन्दुओं की विजय के प्रसंग बहुत कम हैं, तथापि वही इतिहास पढ़ते हुए मुसलमान विद्यार्थी बुरा क्यों मानें? यदि मुसलमान लोग उस इतिहास को इसलिए पसन्द नहीं करते क्योंकि उसमें मुसलमानों के अनाचार, अत्याचार, क्रूरता, दुष्टता, दुर्व्यवहार, विश्वास-घात आदि के प्रसंग आते हैं तो इसका कोई तर्क नहीं है। इतिहास विषय ही ऐसा है जिसमें भूतकाल में घटी बातें ज्यों-की-त्यों इसलिए कही जानी चाहिएँ कि उनसे आगामी पीढ़ियों का मार्गदर्शन हो। वे अपने पुरखों की गलतियाँ न दोहराएँ तथा जो गौरवपूर्ण हो उसका अनुकरण करें। अतः इतिहास जैसा घटा हो वैसा ही पढ़ाना यह प्रत्येक देश का पवित्र तथा महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य है।

इतिहास निष्पक्षता से लिखने की तथा पढ़ाने की जो बात है उसे भी ठीक तरह से समझना आवश्यक है। निष्पक्षता का अर्थ वर्तमान कांग्रेसी विचारधारा के नेता इस प्रकार लगाते हैं कि यदि हिन्दुओं में अशोक को श्रेष्ठ माना जाता है तो मुसलमानों में भी अकबर या और किसी को उसी के समान श्रेष्ठ कहा जाना चाहिए।

यह निष्पक्षता नहीं है, यह तो अन्याय और पक्षपात है। आक्रामक, क्रूर, दुष्ट, अत्याचारी इस्लामी शासकों में भला कौन अच्छा हो सकता था? मन्दिरों पर आक्रमण कर उन्हें मस्जिदें या कब्रें कह देना, हिन्दुओं से जुल्मी जजिया कर वसूल करना, हिन्दू स्त्रियों पर बलात्कार करना, हिन्दुओं को छल-बल से मुसलमान बनाना आदि बातें यदि कोई इस्लामी शासक समाप्त करता तो ही वह श्रेष्ठ कहलाता, किन्तु किसी भी इस्लामी शासन में ऊपर वर्णित दुर्व्यवहारों की मात्रा कभी कम नहीं हुई। ऐसा इतिहास ज्यों-का-त्यों पढ़ाना ही निष्पक्षता कहलाएगा।

गणित या भूगोल आदि विषयों में प्राप्त सामग्री जिस प्रकार ज्यों-की-त्यों पढ़ाई जाती है उसी प्रकार इतिहास में भी भूतकाल की घटनाएँ बिना

हेरा-फेरी के जैसी घटीं वैसी कही या लिखी जानी चाहिएं।

इतिहास विषय की दूसरी विशेषता यह है कि वह आत्मीयता की (Subjective) भूमिका से पढ़ाने का विषय है। हमारा देश, हमारी सुरक्षा, हमारे आदर्श, हमारे उद्दिष्ट, हमारे शत्रु, हमारी सभ्यता आदि आत्मीय दृष्टिकोण से ही लिखा इतिहास अर्थपूर्ण होगा। अन्य शालेय विषयों में 'आप-पर' का कोई भेदभाव नहीं होता। किन्तु इतिहास में तो हर क्षण अपना कौन और पराया कौन यह देखना पड़ता है। उसी आधार पर इतिहास की चर्चा या पढ़ाई होती है। किन्तु अपना या पराया का निर्णय करते समय भारत में किसका जन्म हुआ या कौन कितने वर्ष रहा उससे उसकी भारतीयता सिद्ध नहीं होती। मुसलमान चाहे भारत में जन्में हों और भारत से कभी किसी अन्य देशों में न गए हों, फिर भी यदि हिन्दू व्यक्ति और हिन्दू-जीवन पद्धति को शत्रुता से देखते हों तो ऐसे मुसलमान भारत के कानूनी तथा नाममात्र नागरिक होने पर भी भारत के शत्रु ही समझें जाने चाहिएँ। यह नियम हिन्दू नाम धारण करने वाले समाजवादी लोग या ईसाई पन्थी लोग आदि सब पर लागू होगा।

इतिहास विषय की तीसरी विशेषता यह है कि छात्रों को देशभक्त, संस्कृतनिष्ठ आदि बनाने की जिम्मेदारी इतिहास शिक्षक पर ही होती है। गणित आदि अन्य विषयों में यह बात नहीं होती। अतः इतिहास और अन्य विद्यालयीन विषयों में बड़ा अन्तर है।

पूर्ववर्ती या पाश्चिमात्य सभ्यता का संशोधन आवश्यक ?

अठारहवीं शताब्दी में भारत में जैसे-जैसे अंग्रेजों के पैर जमने लगे वैसे-वैसे सर विलियम जोन्स एवं मैक्समूलर आदि पाश्चात्य विद्वानों ने भारत की प्राचीन सभ्यता का संशोधन आरम्भ कर दिया। उन्हें यहाँ की सभ्यता एकदम भिन्न प्रकार की दिखाई दी।

वास्तव में वेद-उपनिषदों वाली यही सभ्यता यूरोप, अफ्रीका, पश्चिमी एशिया आदि प्रदेशों में भी थी, किन्तु मुसलमान तथा ईसाई लोगों ने उस सभ्यता को दबाकर मिटा दिया। अतः यूरोपीय लोगों द्वारा भारत की पूर्ववर्ती वैदिक सभ्यता को पराई समझकर यहाँ उसका संशोधन करने की

बजाय यूरोप, जेरूसलेम, इराक, ईरान आदि देशों में ईसापूर्व काल में स्थित वैदिक सभ्यता का पता लगाना आवश्यक है।

यूरोप के पोप, इंग्लैण्ड के आर्चबिशप आदि वैदिक शंकराचार्य पद थे। यूरोप तथा अफ्रीका में भी रामायण थी। अतः रोम रामनगर है। जेरूसलेम कृष्णनगर है। Dome on the Rock स्वयंभू महादेव का मन्दिर है आदि वे लुप्त तथ्य हैं जिन्हें पूर्णतया खोजकर विश्व के लोगों को उनका ज्ञान कराना होगा। यूरोपीय लोगों ने भारत में आकर पौर्वात्य सभ्यता (Oriental Studies) का अध्ययन आरम्भ किया। उसी प्रकार यूरोपीय लोगों ने तथा अन्य सारे ही लोगों ने ईसापूर्व समय की वैदिक संस्कृति का अन्वेषण तथा अध्ययन आरम्भ करना आवश्यक है। इसे चाहे तो 'Oriental Studies of Occidental Lands' (यानि पाश्चात्य देशों की मूल वैदिक सभ्यता का अध्ययन)' कहा जा सकता है।

इतिहास प्रत्येक देश को या जाति की नाड़ी है

जिस प्रकार किसी भी व्यक्ति का स्वास्थ्य उसकी नाड़ी ठीक चलने से पता लगता है, वैसे ही किसी भी जाति का या देश का राष्ट्रीय स्वास्थ्य उसके इतिहास से जाना जा सकता है। जो देश या जाति निजी इतिहास सुरक्षित नहीं रख सकती या सही इतिहास कहने की हिम्मत नहीं करती उसका राष्ट्रीय स्तर गिरा हुआ माना जाना चाहिए। यूरोप के सारे देशों ने ईसापूर्व समय का निजी इतिहास मिटा डाला है और भुला दिया है। उसी प्रकार मुसलमान बने देशों ने मुहम्मद पूर्व निजी इतिहास मिटा डाला है। यह उनका एक अपराध है। जैसे कोई हत्यारा किसी मानव की चोरी-छुपे हत्या करता है, तत्पश्चात् यदि वह उस वध को छिपाने के लिए और कोई तिकड़म करता है तो वह उसका दूसरा अपराध है। ईसाइयत और इस्लाम इन दोनों ही प्रकार के अपराधों के दोषी हैं। निहत्थे लोगों पर अत्याचार कर दहशत और क्रूरता से उन्होंने निजी पन्थों के अनुयायी बढ़ाए। उस क्रूरता के समर्थन में उन्होंने दूसरा एक झूठ इतिहास में गढ़ दिया कि भूले-भटके-अज्ञानी-अशान्त-पाखण्डी अवस्था में फँसे लोगों को ईसा ने, मुहम्मद ने मोक्ष पाने का सही मार्ग बतलाया। इस प्रकार दहशत और आतंक के साथ-साथ ईसाई और इस्लामी पन्थ-प्रसार एक झूठ छिपाने के लिए दूसरा झूठ इस पद्धति से किया गया।

अतः ईसाई और मुसलमान बने देशों की जनता को इस बात से अवगत कराना आवश्यक है कि काल का अपार असीम प्रवाह ईसा या मुहम्मद से लाखों करोड़ों वर्ष पूर्व से चलता आ रहा है। उस प्रदीर्घ काल में जन्मे लोगों के लिए आरम्भ से ही वेद, उपनिषद् आदि दैवी ग्रन्थों का मार्गदर्शन परमात्मा ने उपलब्ध करा रखा है। अतः ईसाइयत् या इस्लाम से पूर्व जनता का कोई आध्यात्मिक मार्गदर्शक नहीं था यह कथन तर्कसंगत नहीं है।

स्पेन का इतिहास तो किस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट हुआ होगा इसकी कल्पना स्पेन के अतीत पर एक दृष्टिक्षेप कर आ सकती है। ईसापूर्व काल में स्पेन वैदिक देश था लेकिन ईसाई आक्रमण ने वह सारा इतिहास मिटा दिया। तत्पश्चात् स्पेन पर भारत जैसा ही इस्लाम का क्रूर, अत्याचारी, अनाड़ी, अनपढ़ शासन पाँच-छः सौ वर्ष रहा। तब मुसलमानों ने स्पेन के इतिहास को छिन्न-भिन्न तथा विकृत कर डाला। इसके पश्चात् स्पेन के ईसाई लोगों ने बड़ी शूरवीरता और समझदारी से स्पेन की भूमि से इस्लाम का पूरी तरह उच्चाटन किया।

ऐसी उथल-पुथल में स्पेन की जनता को उनकी ईसापूर्व मूल निजी वैदिक संस्कृति का इतिहास तनिक भी ज्ञात न रहना स्वाभाविक है।

भारत के कांग्रेसी शासक यदि जागृत होते और सही मायने में देशभक्त होते तो हिन्दुस्थान-पाकिस्तान विभाजन के समय भारतभूमि से प्रत्येक मुसलमान को पाकिस्तान जाने पर बाध्य करना क्रमप्राप्त था। उस राष्ट्रीय कर्त्तव्य को न निभाने के कारण भारत के कश्मीर प्रदेश में और अन्य प्रान्तों में मुसलमानों की राष्ट्रविरोधी गतिविधियों से भारतीय शासन सर्वदा त्रस्त और संकटग्रस्त रहता है। भारत के कांग्रेसी शासकों ने न तो स्पेन जैसा इस्लाम का निपटारा किया और न ही विभाजन की सीधी-सादी कार्यवाही से भारत का इस्लाम से छुटकारा किया। ऐसे गम्भीर देशद्रोह के आरोप में गांधी-नेहरू आदि तत्कालीन नेताओं पर मरणोपरान्त अभियोग चलाने की शक्ति जिस दिन भारतीयों में आएगी तभी भारत सही रूप में सशक्त

और स्वतन्त्र देश कहलाएगा। मुसलमान और ईसाई भी इस देश के सही नागरिक हो सकते हैं यदि वे वैदिक सभ्यता के नियमों से रहें।

भारत पर जिन इस्लामी आक्रामकों ने हमले किए या शासन किया उन्हीं के हस्तकों से लिखी तवारीखों में जिन अत्याचारों का, विश्वासघात का या गाली भरा वर्णन है उसको जनता से छिपाकर इस्लामी शासन को स्वर्णयुग आदि बखानने वाले इतिहास स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ाना जनता की कितनी बड़ी वंचना है। और तो और, यह वंचना 'सत्यमेव जयते' का सरकारी ढिंढोरा पीटने वाला कांग्रेसी शासन कर रहा है इससे कांग्रेस की ऐतिहासिक नाड़ी में बड़े गम्भीर दोष प्रतीत होते हैं। ऐसा पक्ष यदि दीर्घकाल तक सत्तारूढ़ रहा तो वह स्वयं मरेगा और साथ ही देश को यानि भारत से हिन्दुत्व को अर्थात् वैदिक संस्कृति को भी ले डूबेगा।

योजना मण्डल

आधुनिक राजनयिक पक्षों में ऐसी एक भावना दृढ़मूल हो गई है कि जो पक्ष देश की आर्थिक पुनरंचना के लिए सबसे अच्छी योजना प्रस्तुत करेगा वही अच्छा शासन करेगा। भोले-भाले लोग ऊपर कहे वचन से धोखा खा जाते हैं। जवाहरलाल नेहरू आदि कांग्रेस के धूर्त अंग्रेजी नेता जनता को लालायित और प्रभावित करने वाली कई योजनाएँ प्रकाशित कराकर सत्तारूढ़ होते रहे। फिर भी स्वतंत्रता प्राप्ति के चालीस वर्ष बीत जाने पर भी पचास प्रतिशत नागरिक दरिद्र हैं और ७५ प्रतिशत निरक्षर हैं। अतः प्रश्न योजना बनाने का नहीं अपितु देश को समृद्ध, सशक्त और शिक्षित बनाने का है।

स्वतन्त्र देश का योजना आयोग कैसा हो ?

हिन्दू राष्ट्र उर्फ वैदिक संस्कृति का पुनरुत्थान जवाहरलाल नेहरू अपने इतिहास के अज्ञानवश नहीं कर सके। उन्होंने जागतिक इतिहास पर एक पुस्तक अवश्य लिखी है तथा निजी पुत्री इन्दिरा को लिखे पत्रों में उन्होंने कई बार इतिहास सम्बन्धी उल्लेख भी किए हैं किन्तु जवाहरलाल का ऐतिहासिक दृष्टिकोण भारत के दो (इस्लामी आक्रामक तथा यूरोपीय

ईसाई विद्वान्) शत्रुओं के लेखों से घड़ा था। अतः जवाहरलाल के द्वारा स्थापित योजनामण्डल से भारत का पुनर्गठन ठीक नहीं हुआ। परिणामतः पाकिस्तान के तीन आक्रमणों और चीन द्वारा की गई चढ़ाई में भारत के विस्तीर्ण प्रदेश छीने गए और नागरिकों की दरिद्रता भी नहीं सुधरी।

अतः योजनामण्डल का नेतृत्व इंग्लैण्ड या अमेरिका के पढ़े अर्थशास्त्रियों के हाथों में सौंपने की बजाय वीर सावरकर और श्यामाप्रसाद मुखर्जी जैसे कट्टर हिन्दुत्ववादी नेताओं को सौंपना ठीक होता। इससे सबक यह सीखना चाहिए कि हिन्दुत्व उर्फ वैदिक सभ्यता का सही इतिहास जानने वाले व्यक्ति को ही योजनामण्डल की धुरी सौंपनी चाहिए थी। ऐसे हिन्दुत्ववादी सूत्रधारक के सहायक व्यक्तियों में भले ही आधुनिक अर्थशास्त्री आदि हों, किन्तु केवल पाश्चात्य अर्थशास्त्र पढ़े लोगों पर स्वतंत्र भारत का पुनर्निर्माण सौंपने में नेहरू की बड़ी गलती हुई।

उन पाश्चात्य दृष्टिकोण वाले अर्थशास्त्रियों द्वारा बनाई पंचवार्षिक योजनाओं में विविध नदी घाटी योजनाएँ, नहर, कारखाने, तकनीकी विद्यालय आदि की चमक-धमक बतलाई गई थी जो भारतीयों की आर्थिक परिस्थिति बदल नहीं सकी। धनिक अधिक धनी होते रहे और निर्धन लोग अधिकाधिक दरिद्र होते गए।

वर्तमान सारी यांत्रिक प्रणाली खनिज तेल पर आधारित होने के कारण इराक, ईरान, सऊदी अरब जैसे हिन्दू-द्वेषी इस्लामी शत्रु राष्ट्रों पर खनिज तेल के लिए निर्भर रहना सबसे बड़ी परतन्त्रता थी। अतः किसी योग्य राष्ट्रीय नेता का यह आद्य कर्त्तव्य था कि वह स्वतन्त्र भारत में तेल शोधन कराकर भारत को केवल आत्मनिर्भर ही नहीं अपितु खनिज तेल का प्रतिष्ठित निर्यातक बनाता। दूसरी बड़ी योजना चम्बल घाटी की लाखों एकड़ ऊबड़-खाबड़ बंजर भूमि को समतल बनाकर उस पर भूमिहीन मजदूरों द्वारा सामूहिक सरकारी खेती कराने की हो सकती थी। भारत की तीसरी बड़ी समस्या है जल की। ईशान्य प्रदेश में वर्षा के बाहुल्य से और नदियों की बाढ़ से जीव तथा माल की बड़ी हानि होती है जबकि भारत के अन्य प्रदेशों में वर्षा के अभाव से खेत सूखते रहते हैं। इस परिस्थिति को बदलने के लिए ईशान्य की नदियों को नहरों द्वारा अन्य नदियों से जोड़ना आवश्यक है

ताकि शरीर में जैसे सुनियन्त्रित रक्तप्रवाह की यन्त्रणा होती है उसी प्रकार भारत की सारी नदियों में जलधारा अखण्ड बहती रहे।

धार्मिक स्थानों का प्रबन्ध

भारत में ऐसे कई स्थान हैं जहां पर भावुक भक्तगण पैसा तथा गहने आदि मौलिक वस्तुएं भेंट चढ़ाते हैं। वहां के पुजारी, मुजावर, इमाम आदि को सरकारी कर्मचारी का दर्जा देकर प्रतिदिन के पूरे चढ़ावे का डाकघरों जैसा सरकारी हिसाब-किताब रखा जाना चाहिए। उस कोष से रुग्णालय, अनाथ-बाल आश्रम, निराश्रित महिला आश्रम, दरिद्राश्रम, मूक-बधिरों के आश्रम, बेघर वृद्ध लोगों के आश्रम आदि संघटन चलाए जाने चाहिएं।

भिखारियों का प्रबन्ध

भारत में भिखारी बड़ी संख्या में हैं। १२३५ वर्ष तक मुसलमान आक्रामकों तथा यूरोपीय शासकों द्वारा लूटे जाने से भारत का दरिद्री बनना अपरिहार्य था। उन दरिद्री लोगों के तुरन्त पालन-पोषण की व्यवस्था करना स्व० जवाहरलाल का आद्य कर्त्तव्य था जो उन्होंने नहीं पहचाना। पराए आक्रामकों की प्रदीर्घ लूटमार से भारत के अधिकांश लोग भूखे और नंगे हो गए। यह ऐतिहासिक सत्य बार-बार इतिहास द्वारा भारत की जनता को तथा विदेश के लोगों को कहा जाना चाहिए था। उसकी बजाय कांग्रेसी शासन द्वारा वह सत्य जानबूझकर छिपाया गया। इतना ही नहीं अपितु लोगों के चिन्तन से भी उस सत्य को हटाकर उसके स्थान पर एक झूठा निष्कर्ष यह गढ़ दिया गया कि पराए आक्रमणों से भारत का अपार सांस्कृतिक लाभ हुआ। भारत के कांग्रेसी शासक इसी झूठ सिखलाई के आधार पर पाश्चात्य प्रणाली की पंचवार्षिक योजनाएं बनाते रहे जो निरर्थक साबित हुई।

भारत में नाममात्र के भिखारी प्रतिबन्धक कानून तो बने हुए हैं तथापि उन पर अमल नहीं होता। उनके अन्तर्गत पुलिस तथा अन्य नागरिकों का यह कर्तव्य होना चाहिए कि भिखारी दीखते ही उसे पकड़कर सार्वजनिक दरिद्राश्रम में पहुंचा दिया जाए। वहां स्त्री-पुरुषों का प्रबन्ध अलग-अलग

हो। रुग्ण तथा स्वस्थ अलग किए जाएं। रुग्णों की चिकित्सा का (विशेषतः प्राकृतिक चिकित्सा का) प्रबन्ध हो। हट्टे-कट्टे दरिद्रों को सार्वजनिक खेती, उद्यान, सूत-कताई, बुनाई आदि कामों पर लगाया जाए और रोज प्रातः उन्हें सेवानिवृत्त सैनिकों द्वारा कवायद, शारीरिक शिक्षा, शिस्त-पालन आदि का प्रशिक्षण दिया जाए। इससे सेवानिवृत्त सैनिकों को भी कार्य तथा वेतन की प्राप्ति होगी।

अभय आश्रम

स्वतन्त्र भारत में स्थान-स्थान पर अभय आश्रम होने चाहिएं जहां किसी कारण अपने आपको असुरक्षित समझने वाले व्यक्ति आकर तुरन्त संरक्षण पा सकें। शत्रुओं की धमकियों से डरा हुआ व्यक्ति, दहेज, सास या सौतेले व्यवहार आदि कारणों से त्रस्त तथा भयभीत व्यक्ति को अभय प्रदान करने वाला आश्रय स्थान सदैव उपलब्ध रखना किसी भी देश के शासन का आद्य कर्त्तव्य होना चाहिए। ऐसे अभय आश्रमों की देखभाल वयोवृद्ध महिलाओं को सौंपी जानी चाहिए।

पशुओं के लिए भी ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए। ऐसी योजनाओं को चलाने का उत्तरदायित्व धनिक व्यापारियों की विविध संस्थाएं, महिला सभा, लायन्स क्लब, रोटेरी क्लब आदि विविध सेवाभावी संघटनों को सौंपना चाहिए ताकि उनका बोझ सरकारी कोष पर ना पड़े।

ऊपर कहे उपायों को चलाने के लिए धन की कोई कमी नहीं होगी। धन पर्याप्त है। किन्तु वह धनराशि कांग्रेस के कार्यकर्त्ता गत चालीस वर्षों से निजी चैन, आराम, निरर्थक आपसी मतभेद मिटाने के लिए किए गए विमानप्रवास, रिश्वतखोरी, बड़ी-बड़ी सभाओं तथा जुलूसों के लिए पैसे के लालच से या मोटर लॉरियों से विशाल जनसमूह इकट्ठा करने में, और समय-समय पर होने वाले राष्ट्रीय, प्रान्तीय या स्थानीय चुनावों के लिए निजी कार्यकर्त्ताओं को पोसने में या मतदाताओं को ललचाने के लिए जनता को विविध प्रकार से डांटकर या प्रलोभन दिखलाकर खसोटते रहे हैं। इसी कारण स्वतन्त्र भारत में दिन-प्रतिदिन भ्रष्टाचार बढ़ता ही रहा है। भारत का शासन चलाने वाली मशीन जब सारी ही भ्रष्टाचार पर चलाई जा

रही हो तो और क्या होगा।

एक प्रबुद्ध और प्रखर राष्ट्रवादी संयोजक स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् किसी समाज का पुनर्गठन किस प्रकार कर सकता है इसकी केवल एक झलक ऊपर प्रस्तुत की गई है। इस दृष्टि से स्वतन्त्र भारत का कांग्रेसी शासन केवल अयशस्वी नहीं अपितु हानिकारक रहा है। इससे वैदिक विश्व-राष्ट्र बनाने की बात तो दूर भारत के ही इस्लामी तथा ईसाई राष्ट्र बनने का संकट निर्माण हो गया है।

इतिहास से भविष्य कथन

ग्रीक दन्तकथाओं में ओरेक्लिस (Oracles) नाम के मन्दिरों का उल्लेख है। राजा या दरबारियों जैसे तत्कालीन नेता युद्ध की आशंका या तत्सदृश महत्त्वपूर्ण मोड़ के समय देवता के सम्मुख खड़े होकर उच्चस्वर में पूछते कि "हे भगवन्, अमुक-अमुक घटना का परिणाम क्या होगा ?" तो आकाशवाणी द्वारा उस प्रश्न का उत्तर मिल जाता और भविष्य में वैसा ही होता।

इसी प्रकार आजकल कम्प्यूटर नाम का यन्त्र है। उसमें यदि कुछ संख्याएँ भर दीं और उनका गुणाकार, भागाकार आदि से फल माँगा तो कुछ ही क्षणों में तुरन्त उत्तर मिलता है। विविध ग्रहों पर आकाशयान भेजते समय पृथ्वी का भ्रमण वेग, लक्ष्य ग्रह की भ्रमणगति, कोण, तिथि आदि का ब्योरा कम्प्यूटर में भरकर यदि यान उस ग्रह पर कौन से दिन, कौन से स्थान पर, कितने बजे उतरेगा ? ऐसा प्रश्न लिखा तो कम्प्यूटर सारा हिसाब करके कुछ ही क्षणों में सारी तफसील प्रदान करता है।

इसी प्रकार किसी देश का इतिहास भी एक यन्त्र की भाँति राष्ट्रीय भविष्य जान लेने के काम में लाया जा सकता है। किन्तु जिस तरह कम्प्यूटर यन्त्र सुस्थिति में हो तभी वह ठीक काम करेगा उसी तरह देश-प्रदेश का इतिहास भी यदि खण्डित, त्रुटित, विकृत अवस्था में न होकर पूरा सत्य और अखण्ड रहा हो तो ही वह देश का भविष्य भी कह सकेगा।

सन् १९४७ में भारत का हिन्दू-मुस्लिम तत्त्व पर प्रादेशिक विभाजन हुआ। उससे भयभीत होकर कई लोगों के मन में यह प्रश्न उठता रहता है

कि क्या भविष्य में भारतभूमि के इस प्रकार और भी विभाजन होते रहेंगे ? इस प्रश्न का उत्तर कोई सिद्धपुरुष या निष्णात फलज्योतिषी ही दे सकता है। किन्तु ऐसे व्यक्ति बड़े विरल और दुष्प्राप्य होते हैं। किन्तु इतिहास के 'कम्प्यूटर' से इस प्रश्न का उत्तर पूछा जा सकता है कि "भविष्य में भी विविध अल्पसंख्य जमातें निजी टुकड़े अलग-अलग काटकर माँगती रहेंगी क्या ?" तो कम्प्यूटर एक प्रतिप्रश्न आपसे यह पूछेगा कि "अल्पसंख्य जमातों की तुष्टि की सेवा में बहुसंख्य हिन्दुओं के अधिकार निछावर करते रहने के कांग्रेसी रवैये के कारण जो हिन्दुस्थान-पाकिस्तान बँटवारा हुआ, वह नीति क्या अभी भी कांग्रेसी शासन बरत रहा है ?"

इसका उत्तर हमें देना पड़ेगा कि "दहशतवादी सिख, अलगाववादी मुसलमान, आंग्लभाषा प्रेमी द्रविड़ मुनेत्र कणघम् आदि की धमकियों पर उनकी सारी माँगें एक के पश्चात् दूसरी देते रहने की कांग्रेसी नीति बराबर अखण्ड चलाई जा रही है।"

तब इस पर इतिहास के कम्प्यूटर का उत्तर आएगा कि "जिस परिस्थिति उर्फ नीति के कारण भारत का पहला बँटवारा हुआ वही नीति यदि अभी भी कायम है तो एक तो क्या भारतभूमि के कई खण्ड होंगे।"

ठेठ उसी के अनुसार पंजाब के दहशतवादी सिख व भारत भर में रखवाए गए कई मुसलमान, द्रविड़ मुनेत्र कणघम्, पश्चिम बंगाल के गोरखा निवासी और ईशान्य प्रदेश की कई जमातें हिन्दुस्थान के अलग-अलग भू-खण्ड माँग रहे हैं।

इस भयंकर राजनयिक विभाजन की समस्या का और बहुसंख्य हिन्दुओं को अल्पसंख्यकों के दासानुदास बनाने का उत्तरदायित्व पूर्णतया मोहनदास गांधी और जवाहरलाल नेहरू—इस गुरु चेले के जोड़ी पर है। एक सहस्र वर्ष मुसलमानों से संघर्ष कर भारत का अखण्डत्व टिकाने वाले दाहिर से नानासाहब पेशवा तक के वीर योद्धा कहाँ और केवल बातों-बातों में मुस्लिम लीग के नेता मुहम्मद अली जिन्ना को हँसते-हँसते पश्चिम पंजाब और पूर्व बंगाल के भू-खण्ड काटकर प्रदान करने वाले गांधी-नेहरू कहाँ ?

बात यहीं समाप्त नहीं होती। मुसलमानों को दो भू-खण्ड भेंट करने पर भी गांधी-नेहरू युगल ने करोड़ों मुसलमानों को भारत के सीमा पार

भेजने की बजाय उन्हें कई सहूलियतें देने के आश्वासनों पर भारत में बड़े आग्रह से रखवा लिया।

इस द्रोह का और एक सर्वथा अनपेक्षित दुष्परिणाम यह हुआ कि सिख पन्थ, जो हिन्दुओं का एक अविभाज्य अंग है, उसमें भी ऐसा एक दहशतवादी विभाग उठ खड़ा हुआ जो 'खालिस्तान' के नाम से एक अलग सिख राज्य की मांग कर रहा है। क्योंकि पाकिस्तानी विभाजन से वे जानते हैं कि जिस प्रकार पाकिस्तान देने पर भी जब करोड़ों मुसलमान उर्वरित भारत में बड़े मजे से रह सकते हैं तो खालिस्तान प्राप्ति के पश्चात् अन्य हिन्दुओं को तो खालिस्तान से नष्ट किया जाएगा किन्तु उर्वरित भारत में बसे हुए लाखों सिख ज्यों-के-त्यों आनन्द से बसे रहेंगे।

इतना ही नहीं अपितु सीमा पर कश्मीर आदि के निमित्त पाकिस्तान जिस प्रकार भारत की भूमि छीनकर सशक्त होता रहता है वैसे सिख भी उर्वरित भारत पर आक्रमण कर निजी राज्य बढ़ाते रहेंगे।

गांधी-नेहरू की भोली-भाली, दुर्बल, अनाड़ी नीति के इस प्रकार के भीषण परिणाम भारत को निरन्तर त्रस्त करते रहेंगे। भारत का राष्ट्रीय रक्त शोषण करने वाली यह शत्रुरूप जुएँ भारत की कोख में चिपका देने का दोष गांधी-नेहरू युगल के मत्थे लगाकर मरणोपरान्त भी उन पर देशद्रोह का अभियोग चलाने से कम-से-कम भविष्य के शासकों को तो कुछ सबक मिलेगा।

विभाजन की घटना से दूसरा एक निष्कर्ष यह निकलता है कि यदि सन् १९४७ में हिन्दुओं को ऐसे नेता मिले जिन्होंने अमृतसर नगर के ३० मील अन्तर के पार वायव्य दिशा का भाग और पूर्व बंगाल का हिस्सा मुसलमानों को दे डाले तो भविष्य में हिन्दुओं का अन्य कोई नेता युगल यह कह दे कि किसी प्रकार शान्ति बनाए रखने के लिए दिल्ली तक का भाग दहशतवादी सिखों को दे दो। उसके कुछ वर्ष पश्चात् किसी अन्य जमात के उत्पातों के कारण आगे तक का प्रदेश देना पड़ जाएगा। इस प्रकार वैदिक सभ्यता तथा हिन्दू जाति को शून्यत्व को पहुंचाने का कुचक्र चलाने का सारा उत्तरदायित्व गांधी-नेहरू के मार्गदर्शन में अपनाए गए कांग्रेसी कुचक्र और कुनीति पर है।

सन् १९०५ में जब अंग्रेजों ने पूर्व बंगाल को एक अलग राज्य नहीं केवल एक अलग प्रान्त घोषित किया था तब कांग्रेस ने ही एक उग्र आन्दोलन चलाकर ब्रिटिश शासकों को वह विभाजन रद्द करने पर बाध्य किया। उस समय कांग्रेस पक्ष की बागडोर गांधी-नेहरू इन अनाड़ी और दुर्बल नेताओं के हाथों में नहीं थी। केवल शासकीय प्रान्त के नाते भी बंगाल का जो विभाजन कांग्रेस ने अमान्य किया उसे १९४७ में एक पराए देश के रूप में कैसे मान्यता दी जा सकती है ऐसा ऐतिहासिक निष्कर्ष भी जो गांधी-नेहरू जोड़ी को नहीं सूझा। ऐसे नेता देश के लिए सर्वथा हानिकारक साबित होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। उन्होंने भारत को अनन्त संकटों की ऐसी खाई में धकेल दिया है कि टुकड़े-टुकड़े होने से भारत का बचाव और पूर्ण विध्वंस से सनातन धर्म का बचाव प्रभु की असीम कृपा और किसी अद्भुत चमत्कार से ही हो तो हो, अन्यथा सनातन धर्म तथा भारत का भविष्य बड़ा अन्धकारमय दिखाई देता है।

बेकार पड़ी राजशक्ति के भीषण परिणाम

यदि किसी विद्युत निर्माण केन्द्र से निर्माण होने वाली बिजली यंत्रोद्योग चलाने में या घर-घर प्रकाशित कराने के कार्य में जुटाने के बजाय तीव्र विद्युत्प्रवाही तारें यदि रास्तों में या मैदानों में बिखरी छोड़ दी जाएँ तो उनके सम्पर्क से आग लगती रहेगी और लोग बिजली के संसर्ग से मरते रहेंगे। वही नियम राजसत्ता पर भी लागू है। यदि कोई शक्तिमान राजपीठ जनता के हित में जुटाया न गया हो तो वह राजपीठ निजी दुर्व्यवहार से जनता के लिए विविध प्रकार के संकट निर्माण करता रहेगा। भारत में प्रस्थापित अनेक इस्लामी सल्तनतों का इतिहास देखें।

भारत में सर्वप्रथम सन् ७१८ ईसवी में सिंध प्रान्त में इस्लामी सल्तनत स्थापित हुई। तत्पश्चात् महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी, गुलाम, खिलजी, तुगलक, सय्यद, लोदी, मुगल, निजाम, बहमनी, बहामनी सल्तनत टूटने पर बने पाँच इस्लामी राज्य, मदुराई के माबार सुल्तान, अर्काट के नवाब, जंजिरा के सिद्दी, मालवा के सुल्तान, बंगाल के सुल्तान, खानदेश के सुल्तान, जौनपुर के सुल्तान, अवध के नवाब, रामपुर, छत्रपुर, मलेरकोटला

एक के पश्चात् एक निर्माण होते रहे।
सुल्तान आदि इस्लामी सत्ता केन्द्र
इनके पास इस्लामी गुण्डों की सेनाएँ थीं और बार-बार कराई जाने वाली
अपार लूट की सम्पत्ति थी। साथ ही सूफी कहलाने वाले फकीर भी निर्धन
मुसलमानों के गिरोह जुटाकर उनके द्वारा हिन्दुओं को लूटकर उन्हें
छल-बल से मुसलमान बनाते। इस प्रकार एक शक्तिमान बिजली केन्द्र की
भाँति बेशुमार इस्लामी शक्ति की तारें लोगों के घर-बार और उद्योग-
व्यवसाय समृद्ध कराने के कार्य में लगाए जाने की बजाय फकीरों से
सुल्तानों तक विविध रूपों में लोगों को लूटने और उनका धर्मान्तर कराने
में लगी रहीं। अतः प्रत्येक राजसत्ता को अविलम्ब जनहित में जुटाया
जाना आवश्यक होता है। उसमें जितना बिलम्ब होता रहेगा उतनी अवधि
वह राजसत्ता भूत की भाँति लोगों को पछाड़ती रहेगी।

शास्त्रीय पद्धति से इतिहास का अध्ययन

इतिहास विषय का समावेश वर्तमान विद्या-प्रणाली में समाजशास्त्र विभाग में किया जाता है। तथापि सामान्य विद्वान को यदि पूछा जाए कि क्या इतिहास शास्त्रीय विषय है ? तो वह कहेगा "नहीं" इतिहास शास्त्रीय विषय नहीं है। इतिहास के बारे में इस प्रकार का जनमत तैयार होने का मुख्य कारण ही यह है कि भारत की परतंत्रतावश हिन्दू जो इतिहास पढ़ते हैं इससे पूर्णतया विपरीत इतिहास मुसलमानों ने रूढ़ कर रखा है। उधर अंग्रेजों का लिखा इतिहास किसी और तीसरे ढंग का है। इस प्रकार इतिहास एक अखाड़ा बन गया। जिसमें जो चाहे अपने दाव-पेंच लगा ले। वास्तव में जो घटना जैसी हुई वैसी तफसील समेत दी जानी चाहिए। इस्लामी तवारीखों में प्रत्येक घटना को मिर्च मसाला लगाया गया है। एक तरफ सुल्तान, बादशाह, दरबारी, मुल्ला, मौलवी, फकीर इत्यादि की अपार प्रशंसा की गई है तो दूसरी ओर हिन्दुओं का उल्लेख काफिर···कुत्ते··· हरामजादे आदि गालियों के मसाले के साथ किया गया है। ऐसी अवस्था में आधुनिक इतिहास अध्यापक, लेखक, संशोधकों का यह कर्त्तव्य बनता है कि उन्हें जहाँ क्रूरता, बीभत्सता, अत्याचार, अनाचार, जुल्म, आतंक, विश्वासघात, द्रोह, विकृतिकरण आदि दिखाई दे, उन कृत्यों की या घटनाओं

की कड़ी भर्त्सना करें और जिस पक्ष में न्याय, सहनशीलता, सहिष्णुता, उदारता, दया, वीरता, निर्भयता, न्याय, प्रतिकार आदि दिखें उसकी वह प्रशंसा करे। इसी को निष्पक्ष इतिहास-लेखन अध्ययन ऐसा कहा जा सकता है।

किन्तु गांधी-नेहरू युगल के नेतृत्व में कांग्रेसी तथा समाजवादी विद्वानों ने सर्वधर्म-समभाव का बहाना बनाकर मुहम्मद बिन कासिम से लेकर अहमदशाह अब्दाली तक के इस्लामी अत्याचारों को यह कहकर टाल दिया कि जो हुआ सो भूल जाओ, या अत्याचार, विश्वासघात आदि तो सभी आक्रामक करते हैं, या हिन्दुओं के भी प्रतिकारों में क्रूरता का अंश था इत्यादि, इत्यादि।

हम पाठकों को सावधान कराना चाहते हैं कि वे ऊपर वर्णित कांग्रेसी और समाजवादी इतिहास लेखन शैली के पंजे में न फँसें। किसी ऐतिहासिक घटना को भूल जाना या वह क्रूर हो तो भी उसका ठण्डे शब्दों में उल्लेख करना आदि उपदेश किसी साधु को या राजनयिक व्यक्ति को भले ही शोभा दे, एक इतिहासकार के लिए वह सूचना निरर्थक है। इतिहास अध्यापक, लेखक, अन्वेषक का कर्त्तव्य है कि वह किसी ऐतिहासिक घटना की या उसकी बर्बरता या अच्छाई को कभी छुपाए नहीं या विकृत नहीं करे। निष्पक्ष इतिहास लेखन उसी को कहा जाएगा जो अच्छे कर्मों को अच्छा कहे और बुरे को बुरा।

इतिहास यदि अखण्डित और सत्यनिष्ठ रखा गया तो उसमें गणित जैसी सूक्ष्मता और निश्चितता आ सकती है। इस प्रकार का इतिहास बड़ा आकर्षक तथा उद्बोधक भी सिद्ध होता है और इससे किसी की देशभक्ति परखना, तिरंगे जैसे खिचड़ी ध्वज का शास्त्रीय विश्लेषण कर पाना, भविष्य में राष्ट्रीय विभाजन की माँगों से जन-नेताओं को सावधान कराना आदि कई राष्ट्रीय समस्याओं में मार्गदर्शन भी प्राप्त हो सकता है। उदाहरणार्थ ईसाई तथा इस्लामी देशों को यदि यह बात समझा दी जाए कि ईसा और मुहम्मद से हजारों वर्ष पूर्व भी इस विश्व में मानव थे। उस प्रदीर्घ काल में सारा मानवीय समाज सनातन धर्म के ही नीति-नियम पालन करता था। अतः मानव का मूल धर्म वही है। इतिहास के इस सत्य के ज्ञान से सारे मानवों में कितनी दृढ़ एकता हो सकती है ? उस एकता के यत्नों को राह

देने के हेतु कुछ जातीयवादी लोग ईसा या मुहम्मद के पूर्व के इतिहास से निजी अनुयायियों को वंचित रखते हैं।

इतिहास आत्मनिष्ठ विषय है

सभी शास्त्रीय विषयों में इतिहास subjective यानि सबसे आत्मनिष्ठ विषय है। यदि पृथ्वी पर रहने वाले मानवों पर मंगलग्रह के निवासियों ने हमला किया तो हमें मानवों का पक्ष लेकर पृथ्वी-विरुद्ध मंगल वाले संघर्ष का इतिहास लिखना पड़ेगा। इसी प्रकार भारत के हिन्दुओं पर जब विदेशों के मुसलमान हमलावरों ने चढ़ाई की, उन आक्रामकों को शत्रु ही कहना पड़ेगा। वर्तमान समय में भारत में मुसलमान रहते हैं अतः मुहम्मद बिन कासिम, महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी, अलाउद्दीन, नादिरशाह आदि सारे आक्रामक भारत के परम मित्र थे ऐसा लिखना या सिखाना बहुत बड़ा अपराध होगा। कांग्रेसी नेता वही करते रहे हैं।

वर्तमान समय में तीन प्रकार के राष्ट्र-विरोधी इतिहास भारत में प्रचलित हैं। एक कांग्रेसी ढंग का, दूसरा यूरोपीय ईसाइयों का लिखा, तीसरा मुसलमानों का लिखा। तीनों ही भारत तथा सनातन धर्म विरोधी होने से त्याज्य हैं। आत्मनिष्ठ इतिहास ही स्वीकृत किया जा सकता है। ऐसे आत्मनिष्ठ इतिहास में दुष्ट इस्लामी शत्रु का प्रतिकार उतनी ही कठोरता से न करने में हिन्दुओं ने बड़ी गलती की और उसी कारण सैकड़ों वर्ष हिन्दुओं को इस्लामी जुल्म सहन करना पड़ा। इस प्रकार की लेखन शैली से ही संत्री से मन्त्री तक सबको सही ऐतिहासिक मार्गदर्शन प्राप्त होगा। शत्रु या मित्र, भारतीय या विदेशी, सभी बराबर हैं, आक्रामक भी पड़ोसी जैसा पूज्य है, इस्लाम, ईसाइयत और सनातन धर्म सभी समान हैं इत्यादि बातें आध्यात्मिक क्षेत्र में भले ही चल जाती हों इतिहास में कभी नहीं चलेंगी। प्रत्येक क्षेत्र के अपने-अपने नियम होते हैं। जैसे वैद्यकीय क्षेत्र में किसी वस्तु को हाथ लगाते समय वह धोकर निर्जंतुक कराने पड़ते हैं, किन्तु लोहार या सुनार का काम करना हो तो हाथ नहीं धोने पड़ते। अतः इतिहास लेखन के हमने ऊपर जो नियम बतलाए हैं उनसे कांग्रेसी, समाजवादी, इस्लामी या ईसाई लोगों के आक्षेप निराधार सिद्ध होंगे।

शत्रु का अन्त होना आवश्यक

शरीर को रोग के कीटाणु जैसे मार छोड़ते हैं वैसे ही देश में घुसे शत्रु का निर्दालन न किया जाए तो सारे देश पर शत्रु छा जाता है। ईसायइत ने इसी प्रकार सारे यूरोप को निगल लिया। इस्लाम ने प्रथम सऊदी अरब को निगला और बाद में अफगानिस्थान से अल्जीरिया-मोरक्को तक एक विस्तीर्ण भू-खण्ड को निजी पंजे में जकड़ लिया। उत्तरपूर्व में भी इण्डोनेशिया, मलयेशिया जैसे देशों पर अरबों ने इस्लाम थोपा। भारत में करोड़ों लोग मुसलमान बना दिए गए हैं। कश्मीर लगभग सारा ही मुसलमान बना दिया गया है। पूर्व बंगाल तथा पश्चिम-पंजाब इस्लामग्रस्त होने से रोग-ग्रस्त अवयवों की भांति हिन्दुस्थान के शरीर से काटकर अलग करने पड़े। इससे यह सबक सीखना आवश्यक है कि हिन्दुस्तान से इस्लाम का निपटारा नहीं किया गया तो भविष्य में एक दिन इस्लाम सनातन वैदिक धर्म को समाप्त कर देगा।

इतिहास द्वारा देश की नाड़ी परीक्षा

प्रत्येक व्यक्ति जैसे समय-समय पर शैत्य, खांसी, थकावट, ज्वर आदि पीड़ा होने पर निजी शरीर की वैद्यकीय जांच करवा लेता है वैसे ही प्रत्येक देश के शासकों ने भी राष्ट्रीय इतिहासकारों द्वारा देश के स्वास्थ्य की नाड़ी-परीक्षा करते हुए देशविघातक शत्रु तत्वों का बन्दोबस्त करने के उपाय सुझाने चाहिएँ। औषधोपचार सम्बन्धी वैद्यजी की सारी सूचनाएँ बारीकी से पालन करने की अपेक्षा जैसी रोगी से की जाती है वैसे ही राष्ट्रीय स्वास्थ्य ठीक रखने की दृष्टि से शासकों द्वारा राष्ट्रीय इतिहासकारों द्वारा सुझाए उपाय अपनाना आवश्यक है।

राष्ट्रीय इतिहासज्ञों की परिपाटी

राष्ट्र के स्वास्थ्य पर जागरूक दृष्टि रखने वाले राष्ट्रीय इतिहासकारों की आवश्यकता होती है ऐसा हम अभी कह चुके हैं। किन्तु दुर्भाग्यवश वर्तमान भारत में ऐसा एक भी इतिहासकार नहीं दिखाई देता। अभी तक स्वातंत्र्य वीर विनायक दामोदर सावरकर ऐसे व्यक्ति थे। किन्तु उनका

देहान्त भी हो गया है और उनकी कोई सुनवाई भी नहीं थी। क्योंकि स्वतंत्र
भारत के कांग्रेसी शासन की सही ऐतिहासिक दृष्टि ही नहीं थी। किसी काणे
व्यक्ति की आँखों का रुख कहीं होता है और वह देखता कहीं और है, उसी
प्रकार स्वतंत्र भारत के कांग्रेसी शासक बहुसंख्य हिन्दुओं के मतों पर निर्वाचित
होकर इस्लामी और ईसाई लोगों के हित में दिन-रात मग्न रहते हैं।

चन्द्रगुप्त के समय चाणक्य एक ऐसे इतिहासकार थे। पांडवों के समय भगवान कृष्ण को वैसी दृष्टि थी। अत: स्वतंत्र भारत में ऐसे राष्ट्रीय इतिहासकारों की परम्परा आरम्भ करने की बड़ी आवश्यकता है। वर्तमान समय में कांग्रेसी शासन ने राष्ट्रीय इतिहासकारों को छोड़ अराष्ट्रीय इस्लामी और ईसाई दृष्टिकोणों को प्रोत्साहन देना ही अपना परम कर्त्तव्य है ऐसी उल्टी विचारगंगा बह रही है। वह इसलिए कि भारत का कांग्रेसी शासन यह समझ बैठा है कि हिन्दू-मुस्लिम-सिख-ईसाई तथा अन्य जमातें ऐसे भारत के खिचड़ी पंचप्राण हैं जबकि उसे यह अवगत होना चाहिए कि केवल भारत के अन्दर ही नहीं बल्कि सारे विश्व में भारत की जो विशिष्टता है वह उसके खिचड़ी जनसमूह में नहीं (क्योंकि ऐसी खिचड़ी तो आजकल सारे देशों में पकती है) अपितु भारत की वैदिक संस्कृति और संस्कृत भाषा में है। अत: भारत का जीवन, भारत का व्यक्तित्व, भारत का राष्ट्रीय स्वास्थ्य, उसकी वैदिक सभ्यता पर यानी हिन्दुत्व पर निर्भर करता है। भारत का हिन्दुत्व जिस मात्रा में स्वस्थ, अबाधित और सुरक्षित रहेगा उसी मात्रा में भारत सुरक्षित तथा स्वस्थ रहेगा।

जब तक भारत के शासक (चाहे वे कांग्रेसी हों या किसी और राजनीतिक पक्ष के) यह मूल तथ्य ग्रहण नहीं करेंगे तब तक वे भारत का शासन ठीक नहीं चला पाएँगे। भारत को सुखी, समृद्ध तथा सन्तुष्ट रखने के लिए यह पहचान लेना होगा कि वैदिक सभ्यता उर्फ हिन्दुत्व ही भारत की आत्मा है।

ऐसी सही राष्ट्रीय दृष्टि का शासन कब आएगा यह भविष्य बतलाएगा किन्तु तब तक स्वतंत्र प्रवृत्ति के राष्ट्रीय इतिहासकारों की परम्परा तो स्थापित हो जानी चाहिए। हो सकता है कि स्वतंत्र आनबान के इतिहासकार निर्माण हुए तो शायद उनके प्रयास तथा प्रभाव से शासकों में राष्ट्रीय

दृष्टिकोण का निर्माण हो। हाल के शासक तो केवल आर्थिक और सामाजिक पुनर्गठन को आवश्यक समझकर राष्ट्रीय योजना आयोग में समाजशास्त्र तथा अर्थशास्त्रियों का ही समावेश करते रहते हैं। वस्तुत: राष्ट्रीय पंचवार्षिक योजना आयोग का अध्यक्षपद राष्ट्रीय दृष्टि के इतिहासकारों को दिया जाना चाहिए क्योंकि राष्ट्र के सर्व अंगों को बलवान करने की सर्वंकष दृष्टि इतिहासकार को ही होगी। जल सिंचाई, विद्युत, खान आदि के इंजीनियर या आयात-निर्यात से देश के आय-व्यय का हिसाब करने वाले अर्थशास्त्री केवल आर्थिक दृष्टि से विचार करेंगे। केवल इतिहासकार ही ऐसा व्यक्ति होगा जो अतीत, वर्तमान तथा भविष्य का सर्वांगीण विचार कर देश की सर्वांगीण क्षमता बढ़ाने पर विचार करेगा।

किन्तु भारत की प्रदीर्घ परतंत्रता की परंपरा में राष्ट्रीय इतिहासकारों का स्रोत ही सूख गया है। वर्तमान इतिहासज्ञ या तो पुस्तकों में छपी लकीरों के फकीर हैं या कांग्रेस सरकार के 'जी हुजूरी' नौकर है, या किसी तरह पेट पालकर पैसा कमाने वाले मजदूर हैं, या राष्ट्रविघातक इस्लामी तथा ईसाई उद्देश्यों को बढ़ावा देने वाले हस्तक हैं, या 'हम क्या करें'? कहने वाले हताश, उदासीन, निष्क्रिय कर्मचारी हैं।

राष्ट्र का आयात-निर्यात, आय-व्यय, उद्योग आदि का अध्ययन-निरीक्षण कर राष्ट्र की आर्थिक क्षमता बढ़ती रहे इसके प्रति ध्यान रखने वाले अर्थशास्त्रज्ञों को वर्तमान शास्त्र में महत्त्व दिया जाता है, इससे कितना ही अधिक महत्त्व राष्ट्र की सीमाओं की सुरक्षा, सर्वांगीण क्षमता, अन्तर्गत सन्तुलन, नए-नए प्रदेशों में वैदिक संस्कृति का प्रसार या विस्तार किस प्रकार से हो आदि सर्वंकष बातों का ध्यान रखने वाले राष्ट्रीय इतिहासकारों को दिया जाना चाहिए। ऐसे इतिहासकारों की परम्परा का बीजारोपण या वृक्षारोपण होना आवश्यक है।

भारत में चलाए जाने वाले दो अराष्ट्रीय इतिहास

भारत में प्रदीर्घ पराए शासन के कारण राष्ट्रीय विचारधारा तो बन्द ही हो गई किन्तु दो प्रकार की अराष्ट्रीय इतिहास परम्परा चल पड़ी। एक अराष्ट्रीय दृष्टिकोण वह है जो ऐसा आभास निर्माण करता है कि भारत

पर इस्लामी तथा यूरोपीय आक्रमण हुआ जो बहुत अच्छा हुआ, नहीं तो भारत अकर्मठ और पिछड़ा ही रह जाता।

यही नियम हम यूरोप और सऊदी अरब पर लागू कर यूँ क्यों न कहें की अरब-ईरान-तुर्कस्थान आदि में १४०० वर्षों इस्लाम ही इस्लाम छाया होने के कारण वे देश तथा यूरोप में १६०० वर्षों तक ईसाइयत के कारण यूरोप पिछड़ी अवस्था में रहा है? इंग्लैण्ड और रूस को भी दोष लगाया जा सकता है कि वे यदि हिटलर की चढ़ाई को ना रोकते तो वे आज बड़ी शास्त्रीय प्रगति न कर पाते? ऐसे ऊटपटांग तर्क प्रस्तुत करने वालों को हम यह विदित कराना चाहते हैं कि पराए आक्रमणों से, शिकार देशों को कभी कोई लाभ नहीं होता। बुरे में अच्छाई की परछाईं देखना विवशता का लक्षण है।

वर्तमान भारत में अराष्ट्रीय इतिहास पढ़ाने की एक अन्य परम्परा इस्लामी स्कूलों में, अरबी तथा फारसी भाषा के केंद्रों में, अलीगढ़ तथा देवबन्द जैसे मुस्लिम विद्यालयों में और मस्जिदों में होने वाले प्रवचनों में चलाई जाती है। इसके प्रति कांग्रेसी शासन पूर्णरूपेण आँखें बन्द किए हुए है। इन केन्द्रों में इस प्रकार की शिक्षा दी जाती है कि हिन्दू सारे काफिर हैं, उनसे तिरस्कारपूर्ण घृणित व्यवहार करना ही प्रत्येक मुसलमान का कर्त्तव्य है। इस हेतु से किसी-न-किसी बहाने हिन्दुओं से झगड़ा तथा दंगा-फसाद का कुछ-न-कुछ बहाना ढूँढते रहना ही मुसलमानों का कर्त्तव्य है। नगर के किसी भी भाग में हिन्दू बाजा बजा तो प्रत्येक मस्जिद से ईंट, पत्थर, बन्दूक, पिस्तौल आदि से हिन्दुओं पर धावा बोल देना चाहिए; देश में एक भी अन्य धर्मी व्यक्ति जीवित रहने से इस्लाम को खतरा रहता है, अतः मुसलमानों ने अन्य सारे लोगों को या तो मार देना चाहिए या जीवित रखने के उपकार का मूल्य जजिया नाम का कर देकर चुकाना चाहिए। फिलीपीन, भारत आदि देशों में जहाँ नरम शासन करने वाली सरकारें हैं वहाँ ऊपर कहे अनुसार विवाद, दंगा-फसाद आदि चालू रखते हुए इस्लाम का प्रसार करने के रवैये के अनुसार पाठ्य-पुस्तकों में दिए किसी ब्यौरे के बारे में असन्तोष प्रकट करना, किसी डाकटिकट के चित्र पर आक्षेप उठाना, कोई भी इमारत मस्जिद से ऊँची बनाए जाने पर शिकायत करना, आदि

बहानों से इस्लामी जनता को सर्वदा संतप्त तथा लड़ाकू दायरे में रखने की मुसलमान नेताओं की परम्परा रही है।

वस्तुतः भारत में जितने इस्लामी नागरिक हैं वे सारे हिन्दू पूर्वजों के वंशज हैं। इनमें से अरब, ईरानी, तुर्क आदि एक भी नहीं हैं। समय-समय पर जो २०-२५००० विदेशी आक्रामक भारत पर चढ़ाई करते रहे वे या तो मारे गए या वापस चले गए या निस्संतान मर गए। अतः भारत में जितने भी मुसलमान हैं वे हिन्दुओं की ही सन्तान हैं। यह इतिहास उन्हें समझाकर उन्हें भारत के शासन में रखना चाहिए।

राष्ट्रीय इतिहास विभाग

भारतीय शासन का एक राष्ट्रीय इतिहास विभाग होना आवश्यक है। इस विभाग के अनेक कर्त्तव्य होंगे। एक कर्त्तव्य यह होगा कि ग्रामसभा, राज्य विधान मण्डल, लोकसभा आदि में चुनाव जीतकर या मनोनीत जो भी सदस्य बैठेंगे उन्हें राष्ट्रीय इतिहास की शिक्षा देना कि भारत के नागरिकों में भले ही विभिन्न धर्मों के और जाति के लोग हों, भारत की विशिष्टता है उसकी वैदिक सभ्यता (यानि सनातन धर्म) और संस्कृत भाषा। अतः इनका संवर्धन, संगोपन करना प्रत्येक भारतीय का कर्त्तव्य है। वह उत्तरदायित्व जो जितने प्रमाण में निभाएगा उतनी ही उसकी देशभक्ति की श्रेणी होगी। उस वैदिक संस्कृति और संस्कृत भाषा के प्रति जो जितनी लापरवाही या शत्रुता आदि बरतेगा उतना वह व्यक्ति देशद्रोही या समाज-द्रोही माना जाएगा।

उस विभाग का दूसरा काम होगा ईसाई, इस्लामी, कम्युनिस्ट आदि संघटनों की राष्ट्रीय इतिहास को विकृत करने की गतिविधियों का पता लगाकर उन्हें रोकना।

तीसरा कर्त्तव्य होगा विद्यालयीन पाठ्य-पुस्तकों में प्रभु रामचन्द्र, श्रीकृष्ण, राणाप्रताप, शिवाजी जैसे एतद्देशीय श्रद्धापुरुषों का इतिहास विस्तृत और प्रमुख रूप में अन्तर्भूत हो और आक्रामक शत्रुओं की क्रूरता, बर्बरता, दुष्टाचार, विश्वासघात, आदि का विस्तृत विवेचन कर प्रत्येक नागरिक में राष्ट्रीयता की भावना जगाने का प्रबन्ध करे।

भारत में या भारत के बाहर जहां कहीं भी झूठ, गलत या विकृत इतिहास पढ़ाया जाता हो वहां उसे ठीक कराने का यत्न करना।

इतिहास परिषदों में सम्मिलित होने वाले अध्यापक आदि के ऐतिहासिक दृष्टिकोण की जाँच करना। अखिल भारतीय इतिहास परिषदों में सम्मिलित होने वाले अनेक इतिहासज्ञ कहते आ रहे हैं कि राजपूत राजाओं ने अकबर, जहांगीर, शाहजहां आदि इस्लामी सुल्तान बादशाहों को दामाद बनाया; तथा अकबर ने दीनेइलाही धर्म स्थापन किया। ऐसे-ऐसे कपोलकल्पित गुणों का हवाला देते हुए इतिहासकार अकबर को एक श्रेष्ठ सम्राट् कहते आ रहे हैं। ऐसे अध्यापकों को सरकारी इतिहास विभाग ने यह पूछना चाहिए कि क्या उस विवाह के निमन्त्रण-पत्र हैं? क्या वधू का नाम प्राप्य है? मुहूर्त का कोई उल्लेख है? दोनों पक्षों द्वारा दी गई दावतों का उल्लेख है?

इसी प्रकार अकबर ने यदि दीनेइलाही धर्म स्थापन किया तो क्या उसने किसी दिन इस्लाम का त्याग किया? क्या उसने दीनेइलाही का कोई धर्ममन्दिर या कर्मकाण्ड या तत्त्वज्ञान बनाया? ऐसी किसी प्रकार की तफसील दिए बगैर अकबर श्रेष्ठ व्यक्ति था या उसने दीनेइलाही धर्म स्थापन किया आदि जो भ्रष्ट-मष्ट दावे करने की अयोग्य परम्परा इतिहास क्षेत्र में रूढ़ हुई है उसे उनपर रोक लगाना सरकारी इतिहास विभाग का कर्तव्य होगा।

अध्यापक को इतिहास-संशोधन तथा शिक्षा-पद्धति का प्रशिक्षण देते रहना, पाठ्य-पुस्तकों के द्वारा दी जाने वाली इतिहास शिक्षा पर निगरानी रखना, पुरातत्त्व विभाग तथा पर्यटन विभाग आदि की इतिहास-सम्बन्धी सूचनाएँ, विज्ञप्तियाँ आदि पर निगरानी रखना शासकीय इतिहास विभाग के कर्तव्य होंगे।

म्युनिसिपैलिटी यानि नागरी व्यवस्था आयोग अथवा प्रांतिक या राष्ट्रीय मन्त्रिमण्डल द्वारा सारा कारोबार क्षमता से चलाए जाने के लिए प्रत्येक नागरिक को तथा शासकों को राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय इतिहास का सम्यक् ज्ञान होना आवश्यक है।

भारत के वैदिक व्यक्तित्व को मानने वाले व्यक्ति को ही किसी सार्व-

जनिक चुनाव में खड़े होने योग्य समझा जाना चाहिए। भारत के संविधान में इस शर्त का अन्तर्भाव किया जाना चाहिए।

ऐतिहासिक सबूत

विद्यमान इतिहास अध्यापकों का ऐतिहासिक प्रमाण या सबूत तथा संशोधन पद्धति का ज्ञान आधा-अधूरा, उल्टा-पुल्टा तथा गड़बड़-घोटाले वाला है। उदाहरणार्थ ताजमहल आदि ऐतिहासिक इमारतें इस्लाम निर्मित हैं यह उनका दावा किस प्रमाण पर आधारित है इसका उन्होंने कभी विचार नहीं किया। यदि यह दस्तावेज और इस्लामी तवारीखों पर आधारित हैं ऐसा वह समझते हों, तो हम उन्हें कहना चाहेंगे कि शाहजहाँ या औरंगजेब के समय के किसी भी दरबारी दस्तावेज में या इस्लामी तवारीख में 'ताजमहल' का नाम तक उल्लिखित नहीं तो ताजमहल के निर्माण का ब्यौरा होना तो दूर ही रहा। यदि वे समझते हों कि ताजमहल में गुम्बज तथा मीनारें हैं अतः वह इस्लामी इमारत है तो यह धारणा भी गलत है। क्योंकि सऊदी अरब के मक्का नगर में जो काबा (मुसलमानों का प्राचीनतम धर्मक्षेत्र) है उसमें न तो गुम्बज है न ही मीनारें हैं। अतः गुम्बज तथा मीनारों को इस्लामी आकार-प्रकार समझना ही भारी भूल है। विश्व में जितने भी इतिहासज्ञ गुम्बज तथा मीनारों को इस्लामी चिह्न मानते हैं वे सभी गलत हैं। यदि पुरातत्वीय आधार पर ताजमहल आदि इमारतों को इस्लामी कहा गया है, ऐसी जनता की धारणा हो, तो वह भी सरासर गलत है क्योंकि ताजमहल की ईंट, पत्थर, लकड़ी आदि की जाँच आजतक कभी किसी ने की ही नहीं। हमने जब १९७२-७३ में ताजमहल की लकड़ी की प्रथम बार कार्बन-१४ पद्धति की जाँच करवाई तब ताज-महल शाहजहांपूर्व इमारत साबित हुई। इससे पाठकों को विदित होगा की प्रचलित इतिहास सारा गप्सप्, धौंसबाजी तथा कही-सुनी बातों पर ही आधारित है। विद्यालयों में तथा इतिहास ग्रन्थों द्वारा वही निराधार इतिहास दोहराया जाता है।

निराधार निष्कर्ष निकालने की प्रथा

इतिहास के प्रचलित निष्कर्ष सारे शेखचिल्ली प्रणाली के, मनमाने और

निराधार ही जनता पर ठूँसे गए है। फतेहपुर सीकरी नगर अकबर ने बनवाया
इसका कोई प्रमाण नहीं है। तथापि बुलन्द द्वार पर अकबर की गुजरात विजय
और खानदेश के जो दो शिलालेख है उनसे यह दूरान्वेषी अनुमान लगाया
गया है कि उनमें से किसी एक विजय के स्मारक के निमित्त वह द्वार
बनवाया गया। वह अनुमान बड़ा ही अटपटा-सा है। क्योंकि उन शिलालेखों
में बुलन्द द्वार स्मारक रूप में निर्माण किया जाने का तनिक उल्लेख नहीं है।
इन दोनों में से एक भी शिलालेख उस भव्य द्वार के किसी महत्त्वपूर्ण मध्यम
केन्द्रीय भाग में नहीं है। इससे यह अनुमान निकलता है कि उस विद्यमान
द्वार पर लेख खोदने वाले व्यक्ति का हाथ और छेनी जहां तक सरलता
से पहुँची वहां उस आलसी, नगण्य व्यक्ति ने बादशाह की विजय की बात
अंकित कर दी। वह शिलालेख बादशाह की आज्ञा से उत्कीर्ण किया गया
ऐसा भी नहीं लगता क्योंकि द्वार के नगण्य भाग में वे शिलालेख अंकित हैं।
और एक मुद्दा यह है कि उस नगरी का निर्माण ऐसे प्रसंगवश एक-एक,
भिन्न-भिन्न भागों के रूप में थोड़े ही होता रहा कि एक विजय के लिए
एक द्वार, दूसरी विजय के स्मारक रूप में कोई खिड़की इत्यादि। अकबर से
सैंकड़ों वर्ष पूर्व वह सीकरवाल राजपूतों की राजधानी रही है। अकबर का
बाप हुमायूं और दादा दोनों ही अकबर से पूर्व-फतेहपुर सीकरी में रह चुके
थे। इसके इतिहास में उल्लेख है, चित्र भी हैं।

प्रचलित इतिहास इस्लामी सुल्तान बादशाहों के खुशामदकारों ने तथा ब्रिटिश शासन के अधिकारियों ने जैसा जनता पर थोपा वैसा रूढ़ है। अध्यापक उसे वैसे ही पढ़ाते रहे हैं। ग्रंथों के लेखक उन्हीं निष्कर्षों को दोहरा रहे हैं। उन कपोलकल्पित निष्कर्षों के सबूत या तर्क असंगत हैं आदि बातें अध्यापकों ने कही नहीं और छात्रों ने सोची नहीं। सभी सुना-सुनाया इतिहास लिखने, दोहराने में सार्थकता तथा इतिकर्त्तव्यता मानते रहे।

सबूत किस प्रकार का होता है ?

इतिहास के अध्ययन में कई लोग दस्तावेजों को बड़ा महत्त्व देते हैं। यह सर्वथा अयोग्य है। यदि चोर या खूनी व्यक्ति स्वयं लिख दे कि वह निर्दोष है, तो क्या वह दस्तावेज उसे निर्दोष घोषित करने के लिए स्वीकृत

किया जाएगा ? बैंक में जब कोई उल्टे-सीधे आंकड़े लिखकर कई जमाकारों के खातों से धन बटोर लेगा तो क्या बैंक पुस्तकों में लिखी वह रकम, हेरा-फेरी करने वाले की सम्पत्ति मानी जाएगी। अतः इतिहास संशोधन क्षेत्र में दस्तावेजी प्रमाणों को ही अत्यधिक महत्व देना सर्वथा अयोग्य है। मुख्य बात यह है कि किसी भी संशोधन में हर प्रकार के छोटे-मोटे सबूतों का इकट्ठा संकलित तुलनात्मक विचार करना ही बुद्धिमानी का लक्षण है। कभी एकाध् सूक्ष्मातिसूक्ष्म मुद्दा बड़ा महत्त्वपूर्ण साबित हो सकता है तो कभी ढेरभर लिखित प्रमाण बनावटी सिद्ध होते हैं। ताजमहल की बाबत यही तो बात हुई है। कई लुच्चे-लफंगे, खुशामदी लोगों ने उर्दू और फारसी में शाहजहाँ द्वारा ताजमहल निर्मिती के छोटे-बड़े कपोल-कल्पित वर्णन, पत्थर तथा कागजों पर लिख छोड़े हैं, अतः अध्यापक तथा सरकारी अधिकारी आपसी कानाफूसी में उन दस्तावेजों का या शिलालेखों का आधार पर्याप्त समझकर विवाद टालते रहते हैं। तथापि किसी खुले सार्वजनिक मंच पर उन दस्तावेजों को अन्तिम निर्णायक प्रमाणों के रूप में प्रस्तुत करने की उन अध्यापकों की या सरकारी अधिकारियों की हिम्मत नहीं होती। क्योंकि मन-ही-मन वे अधिकारी जानते हैं कि वे सारे दस्तावेज या तवारीखें कपोलकल्पित, झूठी एवं निराधार गठन हैं।

सारासार निष्कर्ष पद्धति का महत्व

ऐतिहासिक घटनाओं की सत्यासत्यता का निर्णय करते समय सबसे लाभदायी सिद्ध होने वाली कोई बात है तो वह है प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में निवास करने वाली सारासार का निष्कर्ष करने वाली उसकी अपनी तर्क-बुद्धि। जैसे आपके घर अचानक कोई आकर कहे कि "साहब आपके घर की बिजली में कुछ बिगाड़ है वह मैं सुधारने आया हूँ" तो आपको पहला आश्चर्य तो यह लगेगा या लगना चाहिए कि "मेरे बुलाए बगैर ही यह व्यक्ति कैसे आ टपका ?" यदि वह कहे कि घर के नौकर ने बुलवाया है तो भी आप शक करेंगे कि आपकी सम्मति लिए बिना नौकर ने बिजली वाले को क्यों बुलाया ? क्या दोनों का मिलकर घर में चोरी करने का तो षड्यंत्र नहीं है ? फिर यदि वह कहे की "अभी मुझे और कहीं जाना है अतः आपके

दफ्तर जाने के पश्चात् मैं आराम से आकर बिजली ठीक कर जाऊंगा," तो आप यदि भोले-भाले व्यक्ति न हों तो आपका शक और भी बढ़ेगा कि यह ऐसी बहकी-बहकी, उल्टी-सीधी बातें क्यों कर रहा है ? उससे आप ताड़ जाएँगे कि अवश्य ही दाल में कुछ काला है और तत्पश्चात् आप उस व्यक्ति की बोलचाल की बारीकी से जाँच करते रहेंगे। इतिहास में ऐसी ही सावधानी बरतनी पड़ती है। क्योंकि इतिहास में तो कितनी ही त्रुटियाँ निर्माण होती रहती हैं। शत्रु के हमलों से कागजात जला दिए जाते हैं। शिलालेख तोड़ दिए जाते हैं। झूठे दावे किए जाते हैं। असत्य आरोप किए जाते हैं। समय के साथ-साथ पीढ़ियाँ समाप्त होती जाती हैं और प्रमाण नष्ट होते जाते हैं। ऐसी अवस्था में एक बड़ी मौलिक वस्तु बच जाती है, वह है मानव की श्रेष्ठ तर्कबुद्धि।

अब हम देखेंगे की ऐतिहासिक निर्णयों में मानव की व्यावहारिक बुद्धि का कितना बड़ा योगदान है। इसमें भोलापन छोड़कर तनिक शक्की होने की आपको आदत डाल लेनी होगी। जैसे आपको यदि कहा जाए कि मिस्र देश में एक विशाल पिरामिड है जिससे ट्यूटनखामेन् नाम के सम्राट् के मरने के पश्चात् उसके शव की कब्र के रूप में बनवाया गया ? यह कथन सुनकर आपके व्यवहारी मन में कई प्रश्न उठने चाहिएं। पहला प्रश्न यह उठना चाहिए कि यदि ट्यूटनखामेन् का उतना महत्व और वैभव था कि केवल इसके मृत शरीर के लिए इतना विशाल पिरामिड बनवाया गया तो जीवित ट्यूटनखामेन के निवास का बाड़ा तो पिरामिड से कई गुणा बड़ा और सुन्दर होना चाहिए। तो उस बाड़े का नाम कभी सुनाई क्यों नहीं देता ? दूसरा प्रश्न यह उठना चाहिए कि मृत ट्यूटनखामेन के शव के लिए इतना बड़ा पिरामिड जिस ट्यूटनखामेन के वंशजों ने बनवाया उनका अपना विशाल निवासस्थान होना चाहिए। किन्तु उसका भी नाम तक सुनाई नहीं देता।

इसी से ताड़ जाना चाहिए कि पिरामिड ट्यूटनखामेन् की मृत्यु से पूर्व ही रेगिस्तान के एक विशाल किले के रूप में बना हुआ था। ट्यूटनखामेन का शव अपार सम्पत्ति सहित दफनाना था, अतः उस किले के एक कक्ष में सुरक्षा के लिए उसे दफनाया गया।

अब देखिए आपने घर बैठे, बगैर कोई पुस्तक पढ़े यह जो निष्कर्ष निकाला उसने अनेक पीढ़ियों तक अंग्रेज आदि, पाश्चात्य विद्वान, पिरामिड के कब्र निर्माण की बाबत जो अटकलें प्रस्तुत करते रहे, उन सब पर मात कर दी। इसी प्रकार कई बातें केवल तर्कबुद्धि से ही जानी जा सकती हैं। उनके लिए उस स्थान पर दखल होना आवश्यक नहीं होता।

प्रत्येक व्यक्ति सारे स्थानों पर उपस्थित नहीं हो सकता। जैसे सूर्य के करोड़ों मील दूर मानव को रहना पड़ता है। तथापि दूर से केवल तर्क-बुद्धि और अध्ययन, निरीक्षण, इत्यादि द्वारा सूर्य के सम्बन्ध में मानव कितनी ही बातें जानता है। अतः ऐतिहासिक संशोधन में हर स्थान पर जाने की या अरबी-फारसी जानने की या अनेक दस्तावेज देखने की आवश्यकता नहीं होती। ऐसी सारी सुविधाओं का आपको तनिक भी उपयोग नहीं होगा, यदि आप निजी व्यवहारी सारासार बुद्धि खो बैठे हैं। आज इतिहासकार कहलाने वाले विद्वानों ने वही निजी तर्कबुद्धि खो दी है। अतः अपार सबूत और साधन होते हुए भी उनका इतिहास संशोधन आज तक नगण्य और निरर्थक सा रहा। ऐसी प्रखर तर्कबुद्धि हो तो शिलालेख और दस्तावेजों से भी सामान्य वाचकों को प्रतीत न होने वाले निष्कर्ष उनसे निकाले जा सकते हैं या उनमें की गई हेरा-फेरी का पता लगाया जा सकता है। फतेहपुर सीकरी में जो शिलालेख हैं, मांडवगढ़ में ताजमहल सम्बन्धी जो शिलालेख हैं, उनका अर्थ विश्वविद्यालयछाप इतिहासकारों ने कुछ और लगाया और हमने कुछ और। उसका विवरण हम इससे पूर्व समय-समय पर दे ही चुके हैं। अतः विश्वविद्यालय से इतिहास विषय में बी० ए०, एम० ए०, पी-एच० डी० आदि पदवियाँ पाने वाले या अरबी-फारसी जानने वाले बड़े इतिहासज्ञ होते हैं या वे इतिहास संशोधन पद्धति जानते हैं, यह वर्तमान विद्वानों की कल्पना पूर्णतया निराधार है। उन्हीं विद्वानों की गलत-सलत इतिहास अध्ययन लेखन पद्धति के कारण ही उनका लिखा विश्व का इतिहास कितना उल्टा-पुल्टा और भ्रमपूर्ण है इसका हमने इस ग्रंथ में प्रस्तुत किए विश्व इतिहास की अनोखी, अज्ञात रूपरेखा से पाठकों का परिचय करा ही दिया है।

इतिहास संशोधन में लिखित यानी दस्तावेजी या शिलालेखी प्रमाणों

को अत्यधिक महत्त्व नहीं देना चाहिए। और तो और जब परिस्थिति से निर्माण सबूत लिखित ब्योरे से मेल न खाएँ तो समझ लीजिए कि लिखित प्रमाण दोषपूर्ण है। उदाहरणार्थ बैंक के खजाने में जो शेष रकम हिसाब के अनुसार कम बची हो किन्तु बहीखाते में हेरा-फेरी के कारण कोई दोष दिखाई दे रहा हो, तो समझ लेना चाहिए कि 'दस्तावेज' (यानि बहीखाता) ठीक होते हुए भी प्रत्यक्ष नगदी रकम हिसाब में कम पड़ जाने के कारण किसी ने गबन अवश्य किया है।

सत्य की खोज : मानसिक स्वतंत्रता अनिवार्य

किसी भी खोज के लिए शोधकर्ता के मन पर किसी प्रकार का बोझ नहीं होना चाहिए। यह गुण सीधा-सादा, सरल दिखाई देता है किन्तु वह इतना सरल नहीं है। एक मुसलमान व्यक्ति के मन पर कितने बोझ होते हैं देखें। मुहम्मद पैगम्बर का जीवन-चरित्र लिखते या पढ़ते समय उसे यद्यपि यह दिखाई दे कि विरोधियों से निपटने में और इस्लाम की स्थापना में मुहम्मद पैगम्बर ने बड़ी क्रूरता बरती या अत्याचार किए तब भी इस्लामी जमात के भय से वह उल्टा यह लिखेगा कि पैगम्बर ने जो कुछ किया उसमें उसने दयार्द्रता, परोपकार, साहस, वीरता आदि अनेक दैवी गुणों का परिचय दिया। इसी प्रकार हदिस, शरीयत, चार विवाहों की प्रथा, स्त्रियों को परदे के अन्दर बन्द रखने की परम्परा, कुराण का अद्वितीयत्व आदि मुसलमान समाज की मान्यताओं का मण्डन करना किसी मुस्लिम वक्ता या लेखक को अनिवार्य हो जाता है। ऐसा न करने पर उसे जातिभाइयों द्वारा मारे जाने का डर होता है। अत: किसी मुसलमान से सत्य इतिहास की अपेक्षा करना अनुचित होगा। क्योंकि अब इस्लाम से असम्बन्धित घटना भी मनमाने प्रकार से प्रस्तुत करने की एक मुसलमान को आदत-सी बन सकती है। ईसाई और कम्युनिस्टों का भी वही हाल है। उनका समाज इतना असहनशील होता है कि एक ईसाई या कम्युनिस्ट व्यक्ति को उनकी निजी मान्यताओं के विपरीत इतिहास सम्बन्धी लेखों में या भाषणों में मत प्रतिपादन करना जान से खेलने के बराबर है। वामपन्थियों द्वारा मारे जाने के भय से उसे इतिहास झुठलाने की आदत-सी हो जाती है। प्रत्येक घटना

को ईसाई, इस्लामी या कम्युनिस्ट धारणाओं के अनुसार मोड़ देने की कला वह सीख जाता है। अत: किसी नवीन विचारधारा से जकड़ा व्यक्ति सही, सत्यनिष्ठ इतिहास कभी नहीं लिख सकता।

विपक्षियों में सन्तुलन रखने का अतार्किक तत्व

वर्तमान पत्रकारिता में तथा इतिहासलेखन में दो विरोधी पक्षों के उल्लेख में सन्तुलन बनाए रखना कई लोग बहुत आवश्यक समझते हैं। यह बड़ा अन्यायी तत्व है। अकबर और राणा प्रताप दो समकालीन परस्पर विरोधी व्यक्ति थे। इनमें अकबर को दुष्ट एवं अत्याचारी कहना और राणा प्रताप को वीर देशभक्त कहना ही सन्तुलित उर्फ न्यायी लेखनशैली होगी। पापी को पापी, शत्रु को शत्रु और देशभक्त को देशभक्त कहना ही इतिहासकार का कर्त्तव्य होता है। अकबर और राणा प्रताप दोनों बड़े अच्छे थे या दोनों बड़े गुणी थे, या दोनों में गुण-अवगुण समान थे, या उनमें से अकबर की सेना, सत्ता, सम्पत्ति इत्यादि विशाल थी अत: वह राणाप्रताप से कई मामलों में श्रेष्ठ था आदि कथन एक अंग्रेजी या अफ्रीकी लेखक को भले ही शोभा दे एक भारतीय हिन्दू इतिहासकार की वह भूमिका नहीं हो सकती। क्योंकि इतिहास सर्वदा अपस्पर भाव से यानि Subjective पद्धति से लिखा जाता है। निर्दलीय, निष्पक्ष भावना से भी देखना हो तब भी अकबर को ही दोषी ठहराया होगा। क्योंकि अकबर भले ही भारत में रहता हो, एक फारसी बोलने वाले मुसलमान के नाते उसका पक्ष भारतीयता उर्फ हिन्दुत्व का (यानि वैदिक सभ्यता का, सनातन धर्म का, संस्कृत भाषा का) भक्षक था। अकबर जिस अधिसत्ता का प्रतीक था उसका ध्येय था हिन्दुओं को लूटना, उन्हें छल-बल से मुसलमान बनाना, उनके मन्दिर तोड़ना या हथियाना, उनकी स्त्रियों से इस्लामी जनानखाने भर देना और भारत की सम्पत्ति लूटकर उसको इराक, ईरान और मक्का-मदीने में खैरात करना। ऐसे दो विरोधी तत्वों या पक्षों की बाबत लिखते समय झूठ और सत्य, पाप और पुण्य, न्यायी और अन्यायी आदि बातों का योग्य विश्लेषण ही सन्तुलित लेखन कहलायेगा। अंग्रेज एक त्रयस्थ जब भारत के शासक बने तब उन्होंने बड़ी धूर्तता से सन्तुलन के भद्दे अन्यायी तत्व को इतिहास लेखन तथा पत्र-

कारिता में घुसेड़ दिया। दोनों पक्षों को समान दोषी या गुणी कहने की यह प्रथा विष तथा अमृत को मानवोपयोगी दो समान पदार्थ बखान करने की भाँति अनुचित होगा।

परीक्षाओं में पूछे जाने वाले प्रश्न

वर्तमान विद्यालयीन परीक्षाओं में मध्ययुगीन इतिहास सम्बन्धी जो प्रश्न पूछे जाते हैं वे लगभग पूर्णतया इस्लामी और अंग्रेज शासकों के सम्बन्ध में होते हैं। उन प्रश्नों से ऐसा लगता है कि इन शासकों को शत्रु मानने की बजाय स्वाभाविक तथा प्राकृतिक रूप से भारतीय शासक ही माना जाता है। क्या यह ठीक है ? क्या वे सारे पराए आक्रामक नहीं थे ? क्या वे हिन्दुत्व और हिन्दुओं को पराए भाव से नहीं देखते थे ? तो इतिहास परीक्षाओं द्वारा छात्रों से उन पराए शत्रुओं का गुणगान कराने के बजाय उन्होंने क्या-क्या अत्याचार किए, लोगों को छल या कपट से मुसलमान या ईसाई कैसे बनाया ? भारत से सम्पत्ति लूटकर उन्होंने भारत को किस तरह नंगा, भूखा, गटरों और मक्खी-मच्छरों का देश बनाया ? ऐसे प्रश्न पूछने चाहिएँ। रूस के अध्यापक इतिहास की परीक्षाओं में छात्रों से क्या ऐसे प्रश्न पूछेंगे कि नेपोलियन तथा हिटलर के आक्रमणों से रूस को कैसा-कैसा लाभ हुआ ? आक्रामकों ने रूस में बाग-बगीचे तथा मस्जिदें और कब्रें बनाकर रूस को कैसा समृद्ध और सशक्त बनाया ? विश्व में कौन-सा स्वतन्त्र देश आक्रामक शत्रुओं के गुणगान करता है ? तो भारत में ही ऐसा क्यों किया जा रहा है ? क्या हमारे विद्वान् तथा शासकीय अधिकारी निजी तौर पर बुद्धि खो चुके हैं ?

इतिहास द्वारा केवल अतीत का ज्ञान ही नहीं अपितु छात्रों तथा नागरिकों को राष्ट्रीयता, देशभक्ति और देश का भविष्य ढालने की प्रेरणा देना शासकों का और अध्यापकों का कर्त्तव्य होता है। प्रचलित इतिहास शिक्षा-पद्धति उससे पूर्णतया विपरीत संस्कार छात्रों के मन पर डालती है। अप्रत्यक्ष रूप से वह ऐसा करती है कि इस्लामी तथा यूरोपीय ईसाई आक्रामकों को पराए न मानकर उनके आक्रमणों से भारत पर अनेक उपकार हुए ऐसा ही समझकर वे चलें।

वास्तव में इतिहास की परीक्षाओं में भारतीय राजा, योद्धा, वीर, समाज सेवक, समाज सुधारक आदि से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जाने चाहिएँ। आक्रामकों के सम्बन्ध में यदि प्रश्न हों तो वे केवल उनकी क्रूरता, विश्वास-घात, अन्य दुर्गुणों आदि के सम्बन्ध में ही हों। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि भारतीय परीक्षाओं में दाहिर, पृथ्वीराज, राणाप्रताप, शिवाजी, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई आदि की बाबत प्रश्न होते ही नहीं। पानीपत की तीन लड़ाइयों के सम्बन्ध में प्रश्न पूछते समय छात्रों से ऐसा विवरण भी माँगना चाहिए कि किस पक्ष की जीत होने में हिन्दुत्व का हित होता ? उस पक्ष की जीत क्यों न हो सकी ? किन दोषों के कारण हिन्दुओं की हार होती रही ? हिन्दुओं की प्रमुख विजय और प्रमुख पराजय कौन-कौन-सी थीं जिससे परिस्थिति में बड़ा परिवर्तन आया ? इस प्रकार के विवेचनात्मक प्रश्न पूछे जाने चाहिएं, जिनसे छात्रों को भविष्य में शासक बनने पर सेवा में, शासन में, युद्धनीति आदि में आवश्यक सुधार कराने की प्रेरणा मिले।

वर्तमान भारत के नागरिकों में अहमद, मुहम्मद या विलियम सेबस्टियन आदि नामों के लोग हैं अतः वैसे नाम धारण करने वाले जो इस्लामी या ईसाई आक्रामक भारत में घुसे वे तभी से भारतीय ही माने जाने चाहिएँ यह कहाँ की बुद्धिमानी है। वे तो अभी भी अपने आपको पराए मानकर पाकिस्तान, ईसाइस्थान आदि माँग रहे हैं।

इस्लामी आक्रामकों जैसे ईसाई आक्रामक क्यों नहीं ?

वर्तमान इतिहास शिक्षा तथा परीक्षा पद्धति दोषपूर्ण है, इसके हम समय-समय पर कई पहलू बता चुके हैं। यहाँ हम एक और पहलू प्रस्तुत कर रहे हैं।

भारत पर आक्रमण करने वाले मुसलमान शत्रु पठान, तुर्क, ईरानी, अरबी, हबशी आदि विभिन्न देशों के थे। फिर भी जब पृथ्वीराज, राणा प्रताप या शिवाजी जैसे एतद्देशीय हिन्दू वीरों से उनका टकराव होता तो यह कहा जाता कि संघर्ष हिन्दू और मुसलमानों का है। यह नहीं कहा जाता कि हिन्दुओं की लड़ाई पठानों से, तुर्कों से, अरबों से या ईरानियों से हुई।

किन्तु जब आगे चलकर हिन्दू राजाओं की लड़ाई पुर्तगाली, फ्रांसीसी और अंग्रेज लोगों से हुई तो ऐसा नहीं कहा जाता कि हिन्दुओं की लड़ाई ईसाइयों से हुई, यद्यपि वे सारे ईसाई थे। कहा यह जाता है कि फलानी लड़ाई पुर्तगालियों से, फ्रांसीसियों से या अंग्रेजों से हुई।

वर्तमान अध्यापकों को यदि पूछा जाए कि इतिहास में ऐसा भेद क्यों किया गया है? तो प्राय: कोई भी विद्वान् उस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे पाएगा। इसका कारण यह है कि वर्तमान इतिहास शिक्षा-पद्धति बड़ी दोषपूर्ण है। उसमें छात्रों को केवल प्रश्न तथा उत्तर की बनी बनाई सामग्री की रट लगाने की आदत डाली गई है। प्रत्येक प्रश्न या परिस्थिति का स्वतन्त्ररूपेण सर्वांगीण विचार-विमर्श करने की क्षमता अध्यापकों में तथा छात्रों में होनी चाहिए। वर्तमान शिक्षा-पद्धति में तो उसका पूर्णत: अभाव है।

उस प्रश्न का उत्तर यह है कि प्रत्येक पक्ष इतिहास में निजी भूमिका का जो परिचय देता है वही उससे निगड़ित हो जाता है। मुहम्मद बिन कासिम, महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी, अलाउद्दीन, अकबर, औरंगजेब, नादिरशाह, अहमदशाह अब्दाली आदि जो भी इस्लामी आक्रामक या शासक होता था वह अपने आपको ईरानी, अरब, तुर्क, हब्शी आदि न कहकर यह घोषित करता था कि "मैं बुत् शिकन्द, गाझी, मुसलमान, काफिरों का कत्ल करने आया हूँ।" इसी कारण इतिहास में उन्हें विशिष्ट देश के बाशिन्दे न कहकर मुसलमान ही कहा जाता है।

यूरोपीय लोगों की बात पूर्णतया भिन्न थी। वे अपने आपको ब्रिटिश, फ्रेंच, डच, पोर्चुगीज आदि कहकर व्यापार द्वारा निजी देश को समृद्ध बनाने के उद्देश्य से आए थे। ईसाई होने के नाते काफिरों को कत्ल करने का उनका ध्येय नहीं था। अत: उन्हें इतिहास में उनकी विशिष्ट राष्ट्रीयता से ही पहचाना जाता है, ईसाइयत से नहीं।

व्यवहार में ऐसा ही होता है। आपके घर यदि कोई अपरिचित व्यक्ति मिलने आए तो वह जो निजी नाम और वकील या डॉक्टर आदि व्यवसाय बताएगा उसी के अनुसार आप उसे डॉक्टरसाब या वकीलसाब कहकर पुकारेंगे। इसी प्रकार जब सारे ही इस्लामी आक्रामक लगातार यही घोषित

करते रहे कि "हम मूर्तिभंजक काफिरों को कत्ल करने वाले मुसलमान गाझी हैं" तो इतिहास में उनका वैसा ही उल्लेख होता रहना अनिवार्य है।

ऐतिहासिक इमारतों की शैली के प्रति अनवधानी

आजतक के लगभग सभी विद्वानों ने ऐतिहासिक इमारतों की शैली के प्रति ध्यान नहीं दिया। ताजमहल आदि इमारतें इस्लामी हैं इस जनश्रुति पर विश्वास कर सारे विद्वान उन इमारतों की शैली इस्लामी होनी चाहिए, ऐसी धारणा कर बैठे। इस्लामी शिल्पकला की क्या-क्या विशेषताएँ क्यों और कैसे आरम्भ हुईं? इसका कभी उन विद्वानों ने स्वतन्त्र रूप से विचार या अध्ययन नहीं किया। अत: James Frgusson, Prercy Brown, Sir Bannister Fletcher, Sir Kenneth Clarke आदि पाश्चात्य विद्वानों ने इस्लामी स्थापत्यकला से बँधी जो लेख या पुस्तकें लिखी हैं वे सारी निराधार हैं। उन्होंने हिन्दू वैदिक शैली को ही इस्लामी शैली मानकर उसकी विशेषताओं को इस्लामी विशेषताएँ बताया है।

उन सब में E. B. Havell ही ऐसा एकमेव अंग्रेज विद्वान निकला जो उन सबका विरोध करते हुआ कहता है कि मुसलमान तो विशाल इमारतें बनाना जानते ही नहीं थे। उन्होंने कब्जा किए मन्दिरों में से मूर्तियाँ हटाकर उन्हीं इमारतों को मस्जिद या कब्र कहना आरम्भ किया।

उन विद्वानों का निरीक्षण कितना धुँधला और धाँधली भरा रहा है इसका एक उदाहरण देखें। हिन्दू ध्वज का रंग केसरिया है। दिल्ली के चाँदनी चौक में लालकिले के सामने जो जैन मन्दिर है वह भी केसरिया उर्फ गेरुए रंग का है। उसी के समीप रास्ते के उस पार जो दीवान हॉल, आर्य-समाज की इमारत है वह भी गेरुए रंग की है। उत्तरी भारत की लालकिला, कुतुबमीनार तथा भारत में अन्य जितनी भी प्राचीन ऐतिहासिक इमारतें हैं वे सारी बादामी, नारंगी, केसरिया उर्फ गेरुए रंग की हैं। वह रंग किसका है? वह हिन्दू ध्वज का रंग है? सनातन धर्म का रंग है। सारे हिन्दू मन्दिरों पर उसी रंग की पताका फहराती है। सारे हिन्दू संन्यासी, यात्रि आदि उसी रंग के वस्त्र पहनते हैं। अब देखें कि चाँदनी चौक में ही जिन इमारतों को जामा मस्जिद या फतेहपुरी मस्जिद कहा जाता है वे भी गेरुए रंग की

हैं। फतेहपुरी का अर्थ भी सोचिए। जिस पुरी को मुसलमानों ने फतह किया वह फतहपुरी कहलाई। मुसलमान यदि कोई इमारत बनाते हैं तो उसे वे हरा रंग लगाते हैं या चूना पोत देते हैं। अब दूसरा उदाहरण देखें। दिल्ली में जो इमारत निजामुद्दीन की दरगाह कहलाती है उसका मूल रंग भी केसरिया था। अभी कुछ ही वर्षों से मुसलमानों ने इसे हरा रंग पोतना आरम्भ किया है। तब भी कहीं-कहीं उसका प्राचीन हिन्दू नारंगी रंग अब भी दिखाई देता है, क्योंकि वह कब्जा किया हिन्दू मन्दिर है।

सन १९७४ में एक दिन संध्या समय मैं कुछ व्यक्तियों को (तथाकथित) कुतुबमीनार परिसर की हिन्दू विशेषताएँ समझा रहा था। हम आलय द्वार के पास खड़े थे। कुछ अन्य प्रेक्षक भी उस स्थल पर ही हमारे आगे-पीछे घूम रहे थे। उस विशाल गेरुए रंग के आलय द्वार के समीप ही पुरातत्व विभाग की एक सूचनाशिला लगी हुई है। उस पर कनिंगहम की धौंसबाजी परम्परा में प्रेक्षकों को गुमराह करने के उद्देश्य से लिखा हुआ है कि वह द्वार "प्राय: अलाउद्दीन ने बनवाया, अत: उसका नाम 'अलाई द्वार' पड़ा।"

वस्तुत: उसका 'अलाई' नहीं अपितु 'आलय' द्वार है। वहाँ २७ नक्षत्र मन्दिरों का अण्डाकृति आलय होता था। उसमें प्रवेश कराने वाले उस विशाल द्वार का उसी से 'आलय द्वार' नाम पड़ा। सुल्तान बादशाहों के समय में 'आलय' शब्द का उल्लेख अज्ञानवश 'अलाई' होना स्वाभाविक ही था। वैसा कोई विशाल द्वार बनवाने का उल्लेख भी अलाउद्दीनकालीन दरबारी कागजात या तवारीखों में नहीं है। उस द्वार पर सारी कमलपुष्पों की नक्काशी है। उस पत्थर का रंग भी गेरुआ है। अलाउद्दीन के समय वह सारा परिसर खण्डहर बन गया था। उस द्वार के आगे या पीछे ऐसा कोई भव्य, सुन्दर परिसर था ही नहीं कि जिसमें प्रवेश करने के लिए उतना विशाल और राजशाही द्वार बनवाया जाए। वीरान खण्डहर में निरर्थक ही इतना महान द्वार कौन किसलिए बनवाएगा?

ऐसी बातें मैं अपने साथियों को भारतीय भाषाओं में समझा ही रहा था कि मेरे पीछे खड़े एक वृद्ध विदेशी व्यक्ति ने मेरे कन्धे पर हाथ से स्पर्श किया। मैंने पीछे देखा। उनके साथ उनकी वृद्ध पत्नी भी थी। वह व्यक्ति बोला, "हम मूलत: फ्रेंच लोग हैं। प्रॉटेस्टंट पन्थी ईसाई होने से

कैथलिक पन्थी ईसाइयों के हमलों के कारण हमें प्राण बचाने हेतु जर्मनी में शरण लेनी पड़ी। अत: हम जर्मन में बसे फ्रेंच यूजेनॉटस (Hugenots) हैं। मेरी पत्नि को एक आशंका है कि इस द्वार पर पूरी कमलपुष्पों की नक्काशी होते हुए इसे इस्लाम द्वारा निर्मित द्वार कैसे कहा जा सकता है? इस्लामी प्रथा में तो कमल का कभी उल्लेख भी नहीं होता।"

यह सुनकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। जो बात मैं अपने साथियों को समझा रहा था बिल्कुल वही बात अचानक उस वृद्ध जर्मन महिला के मुख से निकली थी जबकि वह चन्द दिनों पूर्व भारत में प्रथम बार ही आई थी। उसे उस सीमित समय में जो आशंका आई वह हमारे आंग्ल विद्याविभूषित विद्वानों को गत १०० वर्षों में भी नही आई। वीरान रेगिस्तान से आए मुसलमान कमल की कल्पना भी नही कर सकते जबकि हिन्दु वैदिक बोल-चाल में चरणकमल, मुखकमल, हस्तकमल, नेत्रकमल आदि अनेक प्रकार के उल्लेख बार-बार होते रहते हैं।

धोखाधड़ी वाला आक्षेप

इस्लामी कही जाने वाली सभी ऐतिहासिक इमारतें इस्लामपूर्व हिन्दू राजाओं की हैं यह अपना शोध जब से मैंने उद्घोषित किया तब से कई पारम्परिक विद्वानों को वह अखरने लगा। उन इमारतों को इस्लामी कहने वाला उनका गद्य-पद्य साहित्य सारा निकम्मा और निराधार साबित हुआ। इसका उन्हें जबरदस्त धक्का लगा। तब से कई विद्वानों ने निजी रुख बदलकर यह कहना आरम्भ किया कि "अजी शाहजहाँ आदि सारे सुल्तान बादशाह तो मर ही गए हैं। अत: ऐतिहासिक इमारतें उनके द्वारा बनी हों या उनसे पूर्व हिंदुओं की, इससे हाल में क्या अन्तर पड़ने वाला है? और वे इमारतें है तो भारत में ही। उनको बनाने वाले मजदूर भी भारतीय थे; तब बनवाने वाले भी यदि हिन्दू हों तो क्या अन्तर पड़ता है? गत सौ वर्षों से एक अज्ञानमूलक तथा भ्रमपूर्ण सिद्धान्त इतिहास में ठूँस देने के पश्चात् अब यह कहना कि उस प्रश्न का कोई महत्त्व नहीं है, इतिहास से धोखाधड़ी है।

इतिहास से शत्रु तथा मित्र की पहचान

इतिहास से शत्रु तथा मित्रों की पहचान हो सकती है। उदाहरणार्थ अफगानिस्थान से सऊदी अरेबिया तक के मुसलमानों ने लगातार ६०० वर्ष भारत पर अपार अत्याचार करके भारत को लूटा। अभी भी उन देशों में हिन्दुजन तथा हिन्दु सभ्यता पर कड़े नियंत्रण हैं। उनके बगलबच्चे भारत में दंगाफिसाद करते रहते हैं, कश्मीर के लिए अलग दर्जा माँगे हुए हैं, पाकिस्तान का निर्माण उन्होंने ही करवाया। तथापि भारत के कांग्रेसी शासन मुसलमानों की उसी शत्रुता को एक सहस्र वर्षों की मित्रता कहते रहे है। ऐसे प्रमाणों से कांग्रेस पक्ष का विपरीत राष्ट्रविघातक राजनयिक दृष्टिकोण दिखाई देता है। परमशत्रु को परममित्र बखान करने वाले कांग्रेसी पक्ष के हाथों में भारत का शासन गत ४० वर्षों से होना हिन्दुस्थान का परम दुर्भाग्य है।

भारतीय राजदूतों का कर्त्तव्य

यदि स्वतन्त्र भारत का कांग्रेसी शासन इतिहास के प्रति जरा सा भी जागरूक होता तो वह अपने राजदूतों को यह सूचना देता कि इराक, ईरान इंग्लैण्ड, फ्रांस आदि देशों में भारत के जो स्मृतिस्थल हों वहां स्मारक बनवाए जाएँ और जो लूट ली गई जो वस्तुएँ हों उन्हें वापस लाने का यत्न किया जाए। जैसे सोमनाथ मन्दिर से उखाड़ा हुआ शिवलिंग या दमस्कस (अथवा बगदाद) नगर के जिस महामार्ग से दाहिर की दो कन्याओं को इस्लामी घोड़ों की पूंछ मे बांधकर घसीटा गया था। वहां उन हिन्दू कन्याओं का स्मारक बनाया जाना चाहिए। ऐसा आग्रह करना हमारे पर-राष्ट्रमंत्रालय तथा स्थानीय राजदूतों का कर्त्तव्य होता है। ऐसी बातों में इस्राइल के यहूदी लोग बड़े तेज होते हैं। वे अपने राष्ट्रीय अपमान का बदला लेना कभी नहीं भूलते।

जेरूसलेम नगर पर किसका हक है ?

सन् १९८०-८२ के लगभग इस्राइल के यहूदी लोग अरबों के कब्जे वाले जेरूसलेम नगर में यह कहकर घुस गए कि जेरूसलेम नगर यहूदियों

की प्राचीन धर्मभूमि होने से वही इस्रायल की प्राकृतिक राजधानी है। तब से इस्राइल सरकार जेरूसलेम में स्थानापन्न है।

उस समय भारत सरकार ने राष्ट्रसंघ की बैठक में निजी राजदूत से यह कहलवाया कि भारत जेरूसलेम को अरबी नगर मानते हुए इस्राइल की घुसपैठ की कड़ी भर्त्सना करता है।

भारत के कांग्रेसी शासन का वह निर्णय सरासर अनुचित था। अतः मैंने भारत के तत्कालीन परराष्ट्रमंत्री श्री पी० वी० नरसिम्हाराव को एक पत्र लिखकर अवगत कराया कि जेरूसलेम उर्फ यरुशलम उर्फ यदुईशालयम यानि श्रीकृष्ण नगर होने से वह भगवान कृष्ण का नगर होने से कृष्ण की मूर्तियाँ तोड़ने वाले अरब मुसलमानों को उस नगर का स्वामी कभी माना नहीं जाना चाहिए।

जेरूसलेम में Dome on The Rock तथा Al Aqsa इमारतें प्राचीन हिन्दू, वैदिक, सनातन धर्म देवताओं के मन्दिर हैं। इतिहास का सही ज्ञान न रखने वाले शासक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार में भी कैसे गलत निर्णय लेते हैं इसके ऊपर कुछ उदाहरण दिए हैं।

इस्लामी घुसपैठियों का उपाय

पाकिस्तान, बांग्लादेश आदि का बँटवारा होने पर भी उन देशों के मुसलमान हजारों की संख्या में भारत में घुसकर भारत के नागरिक होने का दावा करने लगते हैं। यदि बँटवारे के पश्चात् भारत में एक भी मुसलमान को रहने न देते तो प्रत्येक घुसपैठी मुसलमान उसके नाम से ही पकड़ा जाता। किंतु अब परिस्थिति ऐसी है कि भारत में करोड़ों मुसलमान पहले ही होने से नए घुसपैठी मुसलमान उनमें घुलमिल जाते हैं। अभी भी भारत अपने आपको हिन्दूराष्ट्र घोषित कर दे तो घुसपैठ से भारत में प्रवेश करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को ऐसा नियम लागू कराना होगा कि विद्यालय, राशन कार्ड, मतदातों की सूची, बैंक खाता, सम्पत्ति खरीद-पत्र आदि सारे सरकारी कागजों में उसका हिन्दू नाम लिखा जाएगा। वही नाम उसे धारण करना होगा और हिन्दू बनकर ही रहना होगा। इस डर से पाकिस्तानी तथा बांग्लादेशी मुसलमान घुसपैठ नहीं करेंगे। यदि भारत में घुसते ही उन्हें

हिन्दू बनकर रहना पड़ा तो हिन्दू जनसंख्या बढ़ने से भारत का हिन्दुत्व सशक्त बनेगा। इस्लामी घुसपैठ रोकने का यह सीधा एवं सरल उपाय है जिसमें कांग्रेसी शासन को एक कौड़ी भी खर्च नहीं पड़ेगा।

इस्लामी गुटों में पढ़ाया जाने वाला इतिहास

मुसलमानों के घरों में, देवबंद तथा अलीगढ़ जैसे इस्लामी विद्या केन्द्रों में, अरबी-फारसी माध्यमों के विद्यालयों में, मुस्लिम लीग, मजलिस ए मुशावरात जैसे संगठनों में, मस्जिदों आदि में सर्वत्र बचपन से बुढ़ापे तक प्रत्येक मुसलमान के मन पर दिनरात विविध क्रियाकर्म, पाठ, वार्तालाप आदि द्वारा ऐसे संस्कार पैदा किए जाते हैं कि दुनिया में केवल मुसलमानों को ही जीवित रहने का अधिकार है। दूसरों को या तो मुसलमान बनने पर बाध्य करना चाहिए या उन्हें जान से मार देना चाहिए। किन्तु यदि वे दोनों में से एक भी उपाय नहीं हो सके तो गैर इस्लामी जनता को अति तिरस्करणीय काफिर कहकर पग-पग पर और प्रतिक्षण लज्जित और अपमानित कर उनका जीना मुश्किल कर देना चाहिए। उनसे लिया हुआ ऋण या उनके हिस्से की सम्पत्ति कभी वापस नहीं लौटानी चाहिए।

यह शिक्षा सन् ७९२ ईसवी के मुहम्मद बिन कासिम की चढ़ाई के समय से मुसलमानों को लगातार दी जा रही है। इतिहास में इसके अनगिनत उदाहरण हैं। इस्लामी तवारीखों में हिन्दुओं का उल्लेख "हराम जादे...कुत्ते" आदि गालियों से किया गया है। उनमें ऐसे भी उल्लेख हैं कि हिन्दू करदाताओं को मुसलमान अधिकारियों के सामने मुंह खुला रखकर खड़ा होना पड़ता था, ताकि यदि वह मुसलमान अधिकारी हिन्दुओं के मुंह में थूकना चाहे तो थूक सके।

ऐसी शिक्षा का परिणाम आज भी इस्लामी लोगों में सर्वत्र दिखाई देता है। इराक, ईरान, सऊदी अरब आदि देशों में हिन्दुओं पर कड़े प्रतिबन्ध लगाए जाते हैं। पाकिस्तान के परराष्ट्र मन्त्री जुल्फिकारअली भुट्टो ने एक बार राष्ट्रसंघ में भाषण करते हुए हिन्दुओं को 'कुत्ते' कहा था। वे गालियां भुट्टो और अन्य सारे मुसलमानों को उनकी तवारीखों द्वारा सिखाई गई हैं। किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि वे गालियां अरब-तुर्क-ईरानी

आदि जो पराए आक्रामक हिन्दुओं को देते रहे हैं वही गालियां अब भुट्टो जैसे छल-बल से मुसलमान बनाए गए हिन्दू अपने पूर्वकाल के हिन्दू भाईयों को दे रहे हैं। उसी शिक्षा के अनुसार बंटवारे का ४५० करोड़ रुपए का ऋण जो पाकिस्तान ने हिन्दुस्थान को देना था पाकिस्तान ने आजतक नहीं दिया। क्योंकि "काफिरों की सारी चीज वस्तु लूटो" ऐसा कुरान का भी आदेश है। १४ नवम्बर, १९८७ को जब अरब मुसलमानों ने ही काबा पर हमला किया था तो पाकिस्तानी मुसलमानों ने अमेरिकन स्त्रियों को पकड़ कर उनके मुंह में मूता था ऐसे समाचार कई दैनिकों में छपे थे। भारत की क्रिकेट टीम जब पाकिस्तान से खेल जीतने लगती है तो पाकिस्तानी खिलाड़ी और जनता उन्हें गालियां देती है और अन्य कई प्रकार से लज्जित करती है। भारतीयों को न्याय, पारितोषिकआदि भी नहीं दिए जाते। इस प्रकार पौराणिककाल में जो राक्षसों की भूमिका थी वही वर्तमान युग में मुसलमानों की है। अतः सारी सुसंस्कृत जनता ने इस्लाम को एक सामूहिक शत्रु समझ कर आवश्यक नीति अपनानी चाहिए।

जागतिक अज्ञानकोश

विविध जमातें अपना-अपना ज्ञानकोश बनाती हैं, जैसे इस्लामी ज्ञानकोश, यहूदी ज्ञानकोश इत्यादि। किन्तु पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि जागतिक इतिहास सम्बन्धी इतनी विकृत, विपरीत और अज्ञानी कल्पनाएँ जनता के मन में समाई हुई हैं कि उनका भी एक खासा बड़ा कोश बन सकता है।

उदाहरणार्थ ताजमहल, कुतुबमीनारआदि इमारतों के निर्माण के बारे में प्रचलित धारणाएँ प्रस्तुत कर, वे किस प्रकार निराधार हैं, वे इमारतें किस प्रकार इस्लामपूर्व हिन्दू सम्पत्ति हैं इसकी जानकारी इतिहास के अज्ञानकोश में संकलित की जा सकती हैं।

इसी प्रकार पोप और आर्चबिशप हिन्दू धर्मगुरु होते थे, ईसाई पन्थ कृष्ण पन्थ था, रोम रामनगर है आदि असीम तथ्य उस ज्ञानकोश में दिए जा सकते हैं।

लन्दन नगर के Pergamon नाम के प्रकाशक ने Encyclopaedia

of Ignorance यानि अज्ञानकोश आंग्लभाषा में प्रकाशित किया है। किन्तु उसमें भी उन दोषों का उल्लेख नहीं है जो हमने इस ग्रन्थ में तथा अपनी अन्य पुस्तकों द्वारा पाठकों को अवगत कराए हैं। इससे पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि विद्याक्षेत्र में एक से बढ़कर एक अनेक विद्वानों के नाम बार-बार लिए जाने पर भी विश्व के साहित्य में कितना अज्ञान अभी तक भरा पड़ा है।

निराधार धारणाएँ

इस्लामी इतिहास में निराधार धारणाओं की भरमार है। उदाहरणार्थ ऐतिहासिक इमारतें तथा ऐतिहासिक नगर मुसलमानों द्वारा बनवाए गए हैं, मुसलमानों का संगीत-कला वर्द्धन में बड़ा योगदान रहा, मुसलमानों ने यूरोप के लोगों को गणित, ज्योतिष आदि विषयों का ज्ञान दिया, बादशाह औरंगजेब का बड़ा भाई दारा संस्कृत का बड़ा पंडित था, अमीर खुसरो, अब्दुररहीम खानखाना आदि ने नए-नए वाद्य तैयार किए, वे हिन्दी तथा संस्कृत भाषाओं के पण्डित थे, इस्लामी फकीर शान्ति, समता तथा एकता का उपदेश करने वाले सन्त महात्मा थे—ऐसी कई गलत बातें इस्लामी शासनकाल में खुशामदकारों ने इतिहास में प्रविष्ट करा दीं। वही आंग्ल शासकों ने तथा कांग्रेसी शासन ने ज्यों-की-त्यों इतिहास में दोहरा रखी हैं।

मन्दिर और मठों के पास औरंगजेब के दान-पत्र

इतिहास में एक तरफ तो मन्दिर तुड़वाने के लिए और हिन्दुओं को छल-बल से मुसलमान बनाने के लिए औरंगजेब के जुल्मों का इतिहास में ढिंढोरा पीटा जाता है तो दूसरी तरफ कई मुसलमान लेखक अनेक हिन्दू मठ तथा मन्दिरों को औरंगजेब के नाम दिए गए दान-पत्रों का उल्लेख कर यह सिद्ध करने का यत्न करते हैं कि औरंगजेब तो शिवाजी तथा राणा प्रताप से भी बड़ा दानी, गौ-ब्राह्मण प्रतिपालक था।

इसी प्रकार कई अलीगढ़छाप इस्लामी लेखक इस यत्न में लगे रहते हैं कि महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी, अलाउद्दीन खिलजी, मुहम्मद तुगलक, फिरोजशाह तुगलक, तैमूरलंग, बाबर से बहादुरशाह तक सारे मुगल बादशाह, इस्लामी अफगान बादशाह, मुसलमानों से भी अधिक हिन्दुओं को लाड़-

प्यार करते थे। इसके मण्डन के लिए उल्टी विचारधारा के लोग (जिनमें समाजवादी और कांग्रेस विचारधारा के लोग भी सम्मिलित हैं) तोड़-मरोड़, उल्टी-सीधी, टेढ़ी-मेढ़ी खींचातानी कर यह सिद्ध करने का यत्न करते रहते हैं कि हिन्दू प्रजा से इस्लामी शासन ने कोई भेदभाव नहीं बरता जबकि तत्कालीन मुसलमानी तवारीखों में ही हिन्दुओं का उल्लेख भी गालियों से होता रहा है और हत्याओं तथा छल-बल से मुसलमान बनाए जाने के प्रसंगों की तो गिनती ही नहीं थी। इतिहास को झुठलाने का तथा कुकर्मों को सुकर्म सिद्ध करने का आधुनिक मुसलमान विद्वानों का यह यत्न Academic Sabotaging यानि शैक्षणिक घातपात है। वर्तमान समय में हिन्दू तथा मुसलमान मेल-जोल से रहें यह उद्देश्य तो अच्छा है, किन्तु उस बहाने अतीत की घटनाओं की लीपापोती करना निन्दनीय है। इतिहास जैसा घटा वैसा ही लिखा जाना चाहिए। उसके आधार पर ऐसा कहना उपयुक्त होगा कि इस्लामी शासन में हिन्दुओं को जैसा तुच्छ मानकर उनसे क्रूर बर्ताव किया जाता था, वैसा अब नहीं होना चाहिए।

औरंगजेब आदि मुसलमान सुल्तान, बादशाह, नवाबों द्वारा हिन्दू मठ तथा मन्दिरों को दिए गए दान-पत्रों का मुसलमान लेखक या उनके समर्थक हिन्दू भी कभी-कभी उल्लेख करते रहते हैं। उन सबको तथा हमारे पाठकों को हम इस सम्बन्ध में सावधान करना चाहते हैं कि यदि कोई आपसे किसी उर्दू, फारसी या अरबी दस्तावेज की बात करे या उनका उल्लेख करे तो उस पर एकायक विश्वास न करें। ऐसे दस्तावेज अधिकतर नकली तथा बनावटी होते हैं। जैसे ताजमहल में मुमताज की कब्र की रखवाली में बैठने वाले मुसलमान 'तारीख-ए-ताजमहल' नामक एक फारसी दस्तावेज लोगों को बताया करते हैं। अंग्रेज लेखक H. G. Keene आदि ने उस दस्तावेज की जाँच करने पर उसे बनावटी पाया। इसी प्रकार शाहजहाँ के लगभग १५० वर्ष पश्चात् ताजमहल के शाहजहाँ द्वारा निर्माण का कपोलकल्पित वर्णन देने वाली एक पुस्तक किसी मुसलमान ने लिखी। उसका हवाला कई इतिहासज्ञ गत १५० वर्ष से बड़े गर्व से देते रहे किन्तु वह पुस्तक भी नकली साबित हुई। इसी प्रकार इस्लामी शासनकाल में नकली तथा निराधार दस्तावेजों की भरमार होती थी। कई इस्लामी गुण्डे, फकीर या

सरदार, दरबारी अथवा बादशाह या सुल्तान की सेना के अचानक हमले या लूटमार से बचने के लिए हिन्दू मन्दिर, मठ आदि अपने पास एक नकली दान-पत्र का दस्तावेज बनवाकर रखवा लेते ताकि हमला बोलने वाले इस्लामी गुण्डों को वह 'शाही फरमान' दिखाकर कुछ बचाव हो सके। कई बार हिन्दू मन्दिर तथा मठों को शाही सुरक्षा प्रदान करने वाला फरमान मुसलमान कर्मचारी को रिश्वत देकर भी पा लिया जाता था। कई बार उस पर छपी शाही मुहर नकली होती थी। कभी शाही मुहर असली भी हो तो वह दरबारी कर्मचारी को घूस देकर लगवा ली जाती थी। कई बार ऐसा भी हुआ है कि हिन्दू राजा-महाराजों के शासन जैसे-जैसे समाप्त होते गए वैसे इस्लामी नवाब, सुल्तान, बादशाह ने पुराने हिन्दु दान-पत्र रद्द कर निजी छप्पे से उन्हीं पुराने दान-पत्रों की इस्लामी नकल प्रदान कर दी। अत: इस्लामी दस्तावेज या तवारीखों आदि की जांच बड़ी सावधानी से तथा कुशलता से करने की आवश्यकता है। भोले-भाले पन से उन पर या उनमें प्रस्तुत ब्यौरे पर एकाएक विश्वास करने की आजकल की प्रथा छोड़ देनी चाहिए।

इतिहास के प्रयोग

प्रत्येक व्यक्ति, कारखाना, उद्योग, व्यवसाय या किसी भी वस्तु का आरम्भ से इतिहास होता है। ऐसा इतिहास अखण्ड और शुद्ध तथा सत्य रखना बड़ा आवश्यक होता है ताकि उसकी अधोगति या प्रगति क्यो हुई, कैसे हुई, कब हुई और कहाँ तक हुई ? आदि प्रश्नों का सही ब्यौरा आवश्यकता पड़ने पर किसी समय उपलब्ध हो। देश के इतिहास का भी ठीक ऐसा ही उपयोग है। महमूद गजनवी तथा मुहम्मद गोरी आदि के अत्याचार इतिहास द्वारा पढ़ाए जाने से वर्तमान हिन्दू-मुसलमान शत्रुता बढ़ेगी इस कारण वह इतिहास दबा दिया जाए या भुला दिया जाए यह तर्क ठीक नहीं। इतिहास दबाने या झुठलाने हेतु किया वह वर्तमान राजनयिकों का एक ढोंग या बहाना मात्र है। अतीत की घटनाओं को दबाने का या झुठलाने का किसी को कोई हक या अधिकार नहीं। इतिहास ज्यों-का-त्यों रखने से ही समय-समय पर परिस्थिति के तुलनात्मक अध्ययन में उसका

उपयोग हो सकता है। केवल आत्मिक समाधान हेतु उपन्यास जैसा कुछ मनगढ़न्त वर्णन यदि कोई व्यक्ति अलग से लिखना चाहे तो भले ही लिखे किन्तु उस हेतु इतिहास की तोड़-मरोड़ सर्वथा निन्दनीय तथा दण्डनीय होगी।

ऐतिहासिक इमारतों के झूठे नामों से गलत निष्कर्ष

विश्वभर में बड़ी-बड़ी प्रेक्षणीय ऐतिहासिक इमारतों को जामा-मस्जिद, फतेहपुरी मस्जिद, मोती मस्जिद, मक्का मस्जिद, इब्राहीम रोजा, चारमीनार या तैमूरलंग, जहाँगीर, अकबर, एतमाद्उद्दोला, सफदरजंग की कब्र आदि झूठे नाम दिए गए हैं। हम सब इतिहास प्रेमियों को सावधान करना चाहते हैं कि वे सारी इस्लामपूर्व हिन्दू इमारतें हैं। उनके अन्दर बनाई कब्रों से या बाहर खुदे उर्दू-फारसी लेखों से जनता को धोखा नहीं खाना चाहिए।

महाराष्ट्र के मराठवाड़ा प्रदेश में औरंगाबाद से कुछ मील दूर खुल्दाबाद नाम के नगर में औरंगजेब का मुकाम कई वर्षों तक था। मराठों के विरुद्ध किए संघर्ष में छब्बीस वर्ष औरंगजेब वहाँ उलझा रहा। उस समय औरंगजेब और उसकी मुसलमान सेना हिन्दू मन्दिरों में ही डेरा लगाए हुई थी। अत: सभी मन्दिरों के प्रांगण में मुसलमान फकीरों के नाम की कब्रें बनी हुई देखी जा सकती हैं। उनसे धोखा खाकर प्रेक्षक यह समझ बैठते हैं कि उनमें दफनाए गए व्यक्तियों के पश्चात् उन कब्रों के ऊपर इमारतें बनाई गईं। अन्दर कब्र होने से इमारत की शैली भी इस्लामी समझी जाती है तथा दफनाए व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् इमारत के निर्माण की तिथि मानी जाती है। इस प्रकार एक मूल ऐतिहासिक गल्ती से अन्य कई गलत निष्कर्ष निकाले जाते हैं। अत: प्रेक्षकों को यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि मस्जिदें तथा कब्रें कहलाने वाली ऐतिहासिक इमारतें कब्जा की हुई हिन्दू इमारतें हैं। उनकी शैली हिन्दू है तथा उनका निर्माणकाल मस्जिद या कब्र कहे जाने से अनेक वर्ष पूर्व का है।

खुल्दाबाद में औरंगजेब तथा उसके कोई फकीर गुरु आदि एक विशाल हिन्दू मन्दिर के प्रांगण में भिन्न-भिन्न स्थानों पर दफनाए गए हैं। खुल्दाबाद

भी थोपा हुआ इस्लामी नाम है। उस पवित्र हिन्दू तीर्थस्थान का नाम कुछ और था। औरंगजेब को एक मन्दिर के तुलसी बृन्दावन में दफनाया गया। काफीखान ने लिखी तवारीख में औरंगजेब की बुढ़ापे में शय्या पर मृत्यु हुई ऐसा लिखा है। किन्तु औरंगजेब को जिस प्रकार एक मन्दिर के खुले चबूतरे में दफनाया गया है उससे अनुमान यह निकलता है कि पीछा करने वाली मराठों की सेनाओं ने औरंगजेब के डेरे को घेरकर औरंगजेब का वध किया।

इस्लामी शासन तथा ब्रिटिश शासन के इतिहास के अध्ययन में इतिहासज्ञ तथा सामान्यजन किस-किस प्रकार के प्रमाद करते रहे हैं या वर्तमान गलत शिक्षा-पद्धति के कारण उनके मन में कैसे भ्रम निर्माण होते रहते हैं या दोषपूर्ण तर्क पद्धति द्वारा निकले उनके निष्कर्ष कितने निराधार होते हैं, इसका विवेचन हमने इस अध्याय में किया।

रामायण, महाभारत

उसी दृष्टि से रामायण तथा महाभारत का भी अध्ययन होना चाहिए। वे भी इतिहास हैं। इस ग्रन्थ के पिछले एक खण्ड में हमने रामायण का विवरण प्रस्तुत कर यह बतला दिया है कि उसके विविध प्रसंगों की यथार्थता ऐतिहासिक दृष्टि से ही स्पष्ट होती है। भावुक, धार्मिक या आध्यात्मिक दृष्टि से रामायण के कई प्रसंग तर्कसंगत प्रतीत नहीं होते। वाल्मीकि स्वयं एक संशोधक थे। नारदजी ने जब वाल्मीकि को भूतकाल की रामकथा का सार सुनाकर ग्रन्थ लिखने को कहा और ब्रह्माजी ने भी उस सूचना का अनुमोदन किया तब वाल्मीकि ऋषि ने पठन, अध्ययन, अन्वेषण आदि द्वारा प्राचीनकाल का रावण वध के इतिहास का संकलन तथा लेखन किया। वह इतिहास 'रामायण' उर्फ 'दशग्रीव रावण का वध' इन नामों से प्रचलित है। त्रेतायुग के हिसाब से रामावतार हुए लगभग दस लाख वर्ष बीते हैं।

इसी प्रकार महाभारत की घटनाएँ ईसवी सन् पूर्व लगभग ३८१३ वर्ष की हैं। इस ग्रन्थ के विविध अध्यायों में प्रस्तुत अनेक प्रमाणों से महाभारत की ऐतिहासिकता सिद्ध होती है। जैसे जेरुसलेम उर्फ यरुशलम यह यदुईशालयम् यानि श्रीकृष्ण नगर है। मेड्रिड नगर (माद्रि + द) माद्रि

के विवाह मण्डप का स्थान है। आंग्लद्वीपों में चक्रव्यूह के आकार का किला है। भगवद्गीता श्रीकृष्ण द्वारा प्रत्यक्ष दिया गया वक्तव्य है। उसमें अविश्वास बतलाते हुए यदि कोई नास्तिक कहे कि भगवद्गीता एक कपोलकल्पित ग्रन्थ भी हो सकता है तो उसके उत्तर में हम यह कहेंगे कि विश्वयन्त्रणा का जो विवरण भगवद्गीता में प्रस्तुत है वह किसी सामान्य मानव के वश का ज्ञान नहीं है। उस समय के विविध शब्द जैसे ऋषि, गुरुकुलम्, अस्त्र, सुर, असुर, राम, रावण, दैत्य, कंस दैत्य, ईश कृष्ण (उर्फ जीझस क्रुस्त), कृष्ण-मास आदि वर्तमान युग में भी स्थान-स्थान पर कैसे विद्यमान हैं यह हमने इस ग्रन्थ में समय-समय पर बतलाया है। यद्यपि आजकल रामायण तथा महाभारत केवल हिन्दुओं के और हिन्दुस्थान के ग्रन्थ माने जाते हैं, ईसवी सन के पूर्व वे सारे विश्व के गण्यमान्य ग्रन्थ थे और उनकी छवि सारे विश्व में फैली हुई प्रतीत होती है। इसका विवरण हमने इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है। रामायण और महाभारत की प्राचीन विश्वमान्यता तथा उनके प्रसंगों और व्यक्तियों के उल्लेख सारे विश्व में पाया जाना इस बात को सिद्ध करते हैं कि वे प्राचीन इतिहास ग्रन्थ हैं।

इतिहास संशोधन पद्धति

१९६१ में, 'विशिष्ट इतिहास शोध सिद्धान्त' पुणे नगर से प्रकाशित होने वाले 'केसरी' नाम के समाचार-पत्र के दिसम्बर १६, २२ तथा २६ के अंकों में सम्बन्धी मेरे लेख छपे। उन लेखों में मैंने यह सिद्ध किया था कि मुसलमानों की कही जाने वाली ऐतिहासिक इमारतें तथा नगर वास्तव में इस्लामपूर्व हिन्दुओं के बनवाए हुए हैं।

तत्पश्चात् सन् १९६३ के दिसम्बर २२ से ३१ तक अखिल भारतीय इतिहास परिषद् का अधिवेशन पुणे में हुआ। उस अधिवेशन में मैंने उसी विषय पर अपना प्रबन्ध भी पढ़ा। भारत के लगभग सारे ही मान्यवर इतिहास प्राध्यापक तथा विदेशों के कुछ इतिहासज्ञ भी उस अधिवेशन में उपस्थित थे।

ऐतिहासिक इमारतों तथा नगरों के इस्लामी निर्माण के सम्बन्ध में विश्व के समस्त इतिहासज्ञों की धारणाएँ अपने प्रबन्ध के द्वारा मैंने पूर्णतया उखाड़ फेंकीं। इससे भारत भर के सारे इतिहासज्ञ विचलित हो उठे। इस्लामी शिल्पकला, मुगल स्थापत्य शैली, मुस्लिम कला सम्बन्धी उन्होंने आज तक जो ग्रन्थ या लेख लिखे थे, वे सारे मेरे शोध-प्रबन्ध से निराधार एवं निकम्मे सिद्ध हुए। इसका उन्हें बड़ा धक्का लगा। इतिहास के ज्ञान सम्बन्धी उनकी सारी प्रतिष्ठा धूल में मिल गई। अत: वे सारे मुझसे खार खाने लगे।

सन् १९६४ में इस अनोखे शोध की मेरी पहली पुस्तक 'Tajmahal is a Rajput Palace' प्रकाशित हुई। वह लगभग ९७ पृष्ठों की थी।

विश्वविद्यालयों में इतिहास पढ़ाने वाले सारे अध्यापक अब मेरे विरोध बन गए थे। तब भी उनकी वह छिपी शत्रुता प्रकट कराने के हेतु मैंने अपनी ताजमहल पुस्तिका मुम्बई विश्वविद्यालय को पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्ति हेतु भेजी। उस समय मुम्बई विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग प्रमुख गोवा के निवासी कोई भारतीय ईसाई थे। उनका नाम मैं भूल गया हूँ—D'Costa या D'Souza ऐसा कुछ था।

चेहरे से वे बड़े शान्त स्वभावी, सुशील और सुलझे हुए व्यक्ति लगते थे। फिर भी जब स्वार्थ का प्रश्न आता है तो प्रत्येक सामान्य व्यक्ति 'नरो वा कुंजरो वा' वाली हेरा-फेरी कर ही जाता है।

मुम्बई विश्वविद्यालय के उस इतिहास विभाग प्रमुख के सम्मुख एक पेचीदा समस्या खड़ी हो गई। ताजमहल शाहजहाँ द्वारा बनवाई इमारत नहीं है इस निष्कर्ष वाली मेरी पुस्तक को मान्यता प्रदान कर यदि वे मुझे पी-एच० डी० की उपाधि के योग्य घोषित करते तो गत सौ वर्षों में ताज-महल सम्बन्धी अनेक विद्वानों द्वारा लिखा गया विश्व भर का सारा साहित्य खोखला एवं निराधार सिद्ध होता। इससे 'सौ सुनार की एक लोहार की' वाली परिस्थिति निर्माण होती। मेरे शोध को मान्यता देने वाले कलम के फटकारे से एक शताब्दि की इतिहास परम्परा निर्मूल ठहराने की हिम्मत या सत्यनिष्ठा, तत्त्वनिष्ठा आदि गुण आजकल के व्यक्तियों में कहाँ होते हैं। अपने निष्कर्षों के समर्थन में मैंने जो तर्क तथा प्रमाण दिए थे वे अकाट्य थे। अत: उनका भी खण्डन करना कठिन था। उधर विश्व-भर के इतिहासज्ञों की सौ वर्ष की परम्परा निराधार घोषित करने की उनकी हिम्मत नहीं होती थी। उनके मन की ऐसी द्विविधा अवस्था हो गई। ऐसी पेचीली परिस्थिति में उन्होंने एक सीधा सादा व्यवहारी हल यह निकाला कि ओक साहब का पलड़ा बड़ा ही हलका-फुलका है। उन्हें ना तो कोई सरकारी पद या अधिकार प्राप्त है और न ही वे कोई बड़े धनी व्यक्ति हैं। उधर सारे विश्व की सरकारें, उनके पर्यटन विभाग, पुरातत्व विभाग तथा सभी विश्वविद्यालयों के समस्त अध्यापक और निदेशक, उपनिदेशक जैसे अधिकारी, ग्रन्थकार आदि सारे ही शाहजहाँ को ही ताजमहल का निर्माता मानते हैं। अत: परम्परागत सिद्धान्त का ही पल्ला पकड़कर ओक

साहब का शोध पी-एच० डी० के योग्य नहीं ऐसा कहकर ठुकरा देना ही मक्खी मारने जितना सरल है। अतः मुझे पी-एच० डी० की उपाधि न देने का निर्णय वे ले चुके थे। उसी समय अखिल भारतीय इतिहास परिषद् का अधिवेशन सन् १९६६ के अन्त में मैसूर में होने जा रहा था। मैं उस अधिवेशन में पहुंचा। मुम्बई विश्वविद्यालय के वे इतिहास विभाग प्रमुख भी वहां पहुंचे थे। ऐसे अधिवेशनों में गवर्नर, मेयर आदि की तरफ से अधिवेशन में पधारे विद्वानों के सम्मान में शाम के समय उद्यान वाटिका में स्वागत समारम्भ आयोजित किए जाते हैं। ऐसे ही एक स्वागत समारम्भ को जाते हुए मुम्बई विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग प्रमुख मुझे देखकर बोल पड़े कि "ओक साहब हमारा आपसे कोई विरोध नहीं है, किन्तु आपकी संशोधन पद्धति हमें ठीक नहीं लगती"।

मैंने तो कोई बात छेड़ी ही नहीं थी, वे अपने आप बोल पड़े थे। मुझे पी-एच० डी० की उपाधि न देने का जो निर्णय उन्होंने लिया था वह अन्यायी था, यह बात उनके मन में अखर रही थी। अतः मुझे देखते ही कुछ लीपा-पोती करने के बहाने मेरा निष्कर्ष अमान्य करने की बजाय मेरी शोध-पद्धति में ही दोष निकालना उचित समझा। मेरी पुस्तक पर निर्णय लेने के लिए उन्होंने जिन तीन इतिहासज्ञों की जाँच-समिति नियमानुसार नियुक्त की थी। उसके अध्यक्ष वे स्वयं थे। अन्य दो अध्यापक इन्हीं के हस्तक थे। अतः विभाग प्रमुख ने बहाना बनाया कि "ओक साहब की शोध-पद्धति कुछ जंचती नहीं अतः उन्हें पी-एच० डी० की उपाधि नहीं दी जा सकती।" विभाग प्रमुख ने जब ऐसा मत प्रकट कर एक कठिन उलझन से निपटने का यह सीधा-सादा मार्ग बतलाया तो बेचारे कनिष्ठ अध्यापक कहते भी क्या? वे कोई भीष्मपितामह थोड़े ही थे। वे तो निजी पेट पालने में मग्न इतिहास पदवीधर थे। उन्होंने अपनी-अपनी मुण्डी हिला दी। उन्हें भी तो मेरा सिद्धान्त अखर रहा था। सारे पदवीधारी व्यावसायिक इतिहासज्ञों का 'मूलेकुठारः' वाला मेरा निष्कर्ष एक महान् सार्वजनिक आपत्ति-सी दिखाई देने लगी थी। अतः उन्होंने एकमत से निर्णय ले लिया कि ओक साहब को पी-एच० डी० की उपाधि नहीं दी जा सकती।

निष्कर्ष में दोष निकालने की बजाय संशोधन-पद्धति को अनुचित

ठहराना बड़ी अटपटी-सी बात थी। यदि अंकगणित का या बीजगणित का कोई उदाहरण सुलझाने में अनेक गणितज्ञ अयशस्वी रहने पर किसी अन्य व्यक्ति ने उस उदाहरण का सही उत्तर ढूंढ निकाला तो किसकी पद्धति सही कही जाएगी? जो उस उदाहरण को सुलझा पाएगा उसी की पद्धति सही मानी जानी चाहिए। इसी प्रकार ताजमहल शाहजहाँपूर्व की इमारत है इसका शोध मैंने जिस पद्धति से लगाया उस पद्धति का कौतुहलपूर्ण स्वागत करने की बजाय उसमें दोष निकालने की हीन मनोवृत्ति का मुम्बई विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के अध्यापकों ने प्रदर्शन किया था।

इससे बालकों को कही जाने वाली एक कथा का मुझे स्मरण हुआ। एक झरने पर एक भेड़िया पानी पी रहा था। उससे कुछ अन्तर नीचे एक भेड़ का बच्चा भी पानी पीने लगा। किसी बहाने उस भेड़ पर झपटकर उसे खा लेने की अनिवार्य इच्छा भेड़िये को हुई। इस उद्देश्य से भेड़िये ने कुछ विवाद खड़ा करना चाहा। अतः उसने भेड़ से कहा, "अबे तू मेरा पानी झूठा कर रहा है?" भेड़ ने नम्रता से कहा, "अजी साहब पानी तो आपसे होकर मेरी तरफ बह रहा है।" तब भेड़िये ने दूसरा आरोप किया, "कि एक वर्ष पूर्व तूने मेरा अपमान किया था।" उस पर भेड़ बोला, "मेरी आयु ही जब छह मास की है तो मैं आपको एक वर्ष पूर्व अपमानित कैसे करता?" उस पर चिढ़कर भेड़िये ने कहा—'तूने नहीं तो तेरी माँ ने किया होगा।' यह कहते हुए उसने झपटकर भेड़ पर हमला किया और उसे मारकर खा लिया। इसी प्रकार के विश्वविद्यालय के अध्यापक इतिहासज्ञ, भारत इतिहास संशोधन मण्डल आदि स्वतन्त्र शोध संस्थानों से सम्बन्धित विद्वान् तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, पुरातत्त्व विभाग, पर्यटन विभाग आदि सरकारी नौकरी में बंधे इतिहासज्ञ उदारता से मेरे शोधों का स्वागत करने की बजाय निजी प्रतिष्ठा को महत्त्व देते हुए या तो छुपा या प्रकट विरोध करते रहे हैं या पूर्ण मौन धारण किए हैं।

अतः सही इतिहास संशोधन-पद्धति क्या है इसका मैं यहां पाठकों को परिचय करा देना चाहता हूँ। वह पढ़कर पाठक समझ जाएंगे कि मैं वास्तव में अनजाने में जिस पद्धति का प्रयोग कर रहा था वही सही संशोधन पद्धति है। पारम्परिक इतिहासकार जिस प्रकार से इतिहास का अध्ययन करते हैं

से ही तो मैंने अनेक शोध किए। वे
वह आरम्भ से अन्त तक दोषपूर्ण होने
इतिहास विषय की बड़ी-बड़ी उपाधि धारण कर नित्य इतिहास पढ़ाने वाले
तथा बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखने वाले इतिहासज्ञों को ठीक नहीं लगे। इसी से
किसी भी विचारशील व्यक्ति को पता चलना चाहिए कि वर्तमान इतिहास
पठनपाठन शैली बड़ी निकम्मी है।

विश्वविद्यालयीन सरकारी ठप्पे वाले इतिहासकार जब मेरी संशोधन
पद्धति को दोषी ठहराने लगे तब मैंने सोचा कि सही इतिहास-संशोधन-
पद्धति का विवरण देने वाली यदि कोई आधुनिक विद्वानों की पुस्तकें हों
तो उन्हें पढ़कर देखा जाए कि उनमें कौन-से नियम या कौन-से तत्त्व बताए
गए हैं।

मुझे तो उन पुस्तकों के नाम भी ज्ञात नहीं थे और मैं यह भी नहीं
जानता था कि इतिहास संशोधन पद्धति की चर्चा करने वाली कोई पुस्तकें
है भी या नहीं। ऐसी डाँवाडोल मनःस्थिति में मैं मैसूर से नागपुर पहुँचा।
वहाँ के विश्वविद्यालय में और अन्य संस्थाओं में मुझे व्याख्यानों का निमंत्रण
था। वहाँ पहुँचते ही नागपुर विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग प्रमुख श्री
आप्टे जी से मैंने कहा कि "इतिहास-संशोधन-पद्धति पर कोई ग्रन्थ विश्व-
विद्यालय के ग्रन्थालय में हो तो कृपया मुझे दीजिए मैं उसे पढ़ना चाहता
हूँ।" उन्होंने मुझे तीन-चार पुस्तकें ला दीं जो मैंने पाँच-सात दिन के अपने
नागपुर निवास में पढ़कर उन्हें लौटा दीं।

वे पुस्तकें पढ़कर मुझे बड़ा समाधान प्राप्त हुआ। क्योंकि मैं अनजाने
में जिस शोध-प्रणाली का अनुसरण कर रहा था, वही उन पुस्तकों में वर्णित
थी। सरकारी ठप्पे के पारम्परिक इतिहासज्ञ उस शोध-पद्धति के नियमों
को बेदरकार कर ठुकरा रहे हैं। इसी कारण भारत के तथा विश्व के
इतिहास की जो रूपरेखा वे प्रस्तुत कर रहे हैं वह सर्वथा गलत है।

सही इतिहास संशोधन-पद्धति सम्बन्धी आधुनिक आंग्ल विद्वानों द्वारा
लिखे कुछ ग्रन्थों के नाम है–(१) Practising Historian लेखक प्रोफेसर
W. H. Welsh, (२) The Idea of History लेखक R. G. Colling-
wood, (३) History : Its Purpose and Method लेखक Dr. G.
J. Renier, (४) Our Human Truths लेखक F. C. S. Schiller।

इन ग्रन्थों में सर्वप्रथम तत्व यह कहा गया है कि कोई भी निष्कर्ष चाहे
कितना ही दृढ़ या सर्वमान्य हो उसमें यदि कोई दोष प्रतीत हो तो उसकी
दुबारा आरम्भ से अन्त तक पूरी जाँच करनी चाहिए।

मैंने ठीक वही किया था। ताजमहल तथा अन्य ऐतिहासिक इमारतें,
मस्जिदें, दरगाहें आदि मुसलमानों द्वारा बनवाई हैं ऐसा दृढ़ विश्वास विश्व
के सारे लोग कर रहे थे। तथापि मुझे उसमें सन्देह हुआ। अतः मैंने उस
विषय का आरम्भ से बारीकी से शोध करना आरम्भ किया। उसका
आश्चर्यकारी परिणाम यह हुआ कि मैंने एक व्यापक निष्कर्ष निकाला जिससे
विश्व के सारे इतिहासज्ञ गलत सिद्ध हुए। मेरा वह शोध था कि विश्व में
जितनी भी ऐतिहासिक इमारतें या नगर मुसलमानों के बनवाए कहे जाते
हैं वह सारी सम्पत्ति इस्लाम के कब्जे में आई इस्लामपूर्व की है। अतः
इस्लामी कला या इस्लामी स्थापत्यकला का सिद्धान्त भी साथ-ही-साथ
निराधार सिद्ध हुआ। इतिहास में शायद ही इतना व्यापक और इतना
मूलग्राही शोध इससे पूर्व कभी हुआ हो जिससे सारे इतिहास का ढाँचा ही
बदल गया हो।

मेरे इस शोध से मुझे यह जान पड़ा कि अरबी, फारसी पढ़ने वाले
द्विभाषी-त्रिभाषी विद्वान तथा इतिहास के क्षेत्र के बड़े ओहदेदार या
अध्यापक आदि सभी गत १०० वर्षों से इस्लामी या ब्रिटिश अफवाहों पर
या कही-सुनी धौंसबाजी पर ही विश्वास करते रहे। यहाँ तक कि ताज-
महल, कुतुबमीनार, लालकिला, जामा मस्जिद, हुमायूँ तथा सफदरजंग के
मकबरे आदि के नाम तत्कालीन दरबारी कागजात या तवारीखों में नहीं हैं,
तो बनवाने का वर्णन या मजदूरी का हिसाब-किताब नहीं है इसमें कोई
आश्चर्य की बात नहीं। शाहजहाँ तथा औरंगजेब के दरबारी दस्तावेजों में
तो क्या तत्कालीन इस्लामी तवारीखों में ताजमहल यह शब्द भी उल्लिखित
नहीं है। तथापि विश्व के साहित्य में शाहजहाँ द्वारा ताजमहल के निर्माण
के निराधार वर्णन से भरे हजारों ग्रन्थ और लाखों लेख प्रकाशित हो चुके
हैं। इससे पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि किस प्रकार की अनाधूनी और
अनवधानी इतिहास के क्षेत्र में मची हुई है। यह केवल भारत के इतिहास
की ही बात नहीं, सारे विश्व के इतिहास का यही हाल है। वहाँ मुसलमानों

ने मुहम्मदपूर्व इतिहास और ईसाइयों ने ईसापूर्व इतिहास मिटाने का
भरसक यत्न किया। और बाद का इतिहास निजी आवश्यकतानुसार तोड़-
मरोड़कर विकृत कर छोड़ा।

इसी कारण विश्व इतिहास को पुनः आरम्भ से आज तक सत्य के
आधार पर ढालने के लिए हजारों नए ग्रन्थ लिखने होंगे। उस कार्य के लिए
इस नई शोध पद्धति का प्रशिक्षण लिए हुए विद्वानों की एक नई श्रेणी तैयार
करनी होगी। उनके सहाय्य से जागतिक इतिहास का एक नया विश्व-
विद्यालय स्थापन करना होगा। विविध देश-प्रदेशों में उस विद्यालय के
केन्द्र होंगे। उस विश्वविद्यालय द्वारा सारी मानव जाति को उसकी प्राचीन
प्रदीर्घ एकता का ज्ञान कराया जाएगा कि कृतयुग के आरम्भ से महा-
भारतीय युद्ध तक सारे विश्व में संस्कृत भाषा और वैदिक संस्कृति ही थी।
वह महत्त्वपूर्ण और लम्बा-चौड़ा इतिहास लुप्त होने का कारण ही यह है कि
इतिहास लेखन एवं संशोधन-अध्ययन पद्धति ही बिगाड़ दी गई। आधुनिक
इतिहास कही-सुनी बातों पर ही आधारित है। किसी अधिकारी व्यक्ति ने
कुछ कह देना और उसे सही समझकर दूसरों ने उसी को दोहराकर आगे
चला देना, यही वर्तमान इतिहास की प्रथा बन गई है।

अतः सही इतिहास संशोधन का दूसरा महत्त्वपूर्ण नियम यह है कि
जिस प्रकार गुप्त पुलिस किसी हत्या, डकैती या गबन का पता लगाते समय
प्रत्येक छोटे-मोटे नुक्ते का सम्बन्ध जोड़-जोड़कर पूरी घटना आरम्भ से
अन्त तक किस प्रकार घटी उसका पुनर्गठन कर लेती है उसी प्रकार की
कार्य-प्रणाली इतिहास संशोधक की होनी चाहिए।

वर्तमान इतिहासज्ञ इस दूसरे नियम से भी पूर्णतया मुंह मोड़े हुए हैं।
छोटे-छोटे नुक्ते तो छोड़ो, मोटी-मोटी त्रुटियों की ओर भी इन्होंने कभी
ध्यान नहीं दिया। जिस टेवरनियर नाम के फ्रेंच यात्री के कुछ आधे-अधूरे
उल्लेख वर्तमान इतिहासज्ञ उद्धृत कर शाहजहाँ द्वारा ताजमहल के निर्माण
की बात कहते हैं उसी टेवरनियर ने आरम्भ में ही यह स्पष्ट किया है कि
"जो ताज-ए-मकान (यानि ताजमहल) देखने के लिए विदेशी यात्री बड़े
चाव से आते हैं उसी के पास शाहजहाँ ने मुमताज को इसलिए दफनाया कि
सारे प्रेक्षक उस स्थल की प्रशंसा करें।" इसी से पता चलता है कि 'ताज-
ए-मकान' नाम का प्रेक्षणीय भवन मुमताज की मृत्यु से पूर्व ही अस्तित्व में
था। पीटर मण्डी एक अंग्रेज प्रवासी मुमताज की मृत्यु के पश्चात् केवल
एक-डेढ़ वर्ष में ही भारत से इंग्लैण्ड वापस चला गया। तथापि अपने
संस्मरणों में उसने लिखकर रखा है कि आगरा और आसपास के परिसर में
जो प्रेक्षणीय स्थल हैं उनमें मुमताज की कब्र का भी अन्तर्भाव है। यदि
ताजमहल मुमताज की मृत्यु के पश्चात् १५-२० वर्ष तक बनता रहा तो
मुमताज की मृत्यु से एक वर्ष के भीतर ही पीटर मण्डी उसे प्रेक्षणीय भवन
न कहता।

वर्तमान इतिहासज्ञों की ताजमहली कथा ऐसी अनेक विसंगतियों से
भरी पड़ी है तथापि एक भी इतिहासकार को उसके नकली रूप की कभी
तनिक शंका भी नहीं आई। इसी से वर्तमान इतिहास किस प्रकार ऊल-
जलूल बातों का भण्डार बना हुआ है इसकी पाठक कल्पना करें।

सही इतिहास संशोधन-प्रणाली का तीसरा नियम यह है कि एक
वकील जैसे किसी प्रश्न के सारे पहलुओं का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण करता
है या कपास धुनने वाला व्यक्ति कपास के तन्तु-तन्तु अलग करता है उसी
प्रकार इतिहास-संशोधकों को प्रत्येक घटना की बारीकी से जाँच करनी
चाहिए।

वर्तमान इतिहासज्ञों ने मोटी-मोटी बातों पर भी जब ध्यान नहीं दिया
तो उनसे सूक्ष्म मुद्दों पर ध्यान देने की क्या आशा की जा सकती है? जैसे
शाहजहाँ का मुमताज पर असीम प्रेम था इसलिए उसने ताजमहल बनवाया
—ऐसा प्रतिपादन करने वाले इतिहासकारों ने हमें कभी यह नहीं बताया
कि लैला-मजनू या Romeo and Juliet की प्रेमकहानियाँ जैसे विपुल
प्रमाण बाजार में उपलब्ध हैं उसी प्रकार शाहजहाँ-मुमताज की प्रेमकथा
या प्रेमगाथा किस दुकान से मँगवाई जा सकती है?

इतिहासकारों ने अपने आपसे कभी ऐसा प्रश्न नहीं किया कि मृत
मुमताज के लिए यदि शाहजहाँ इतना विशाल और सुन्दर ताजमहल बन-
वाता तो जीवित मुमताज के लिए वह इससे कितने ही अधिक सुन्दर और
विशाल महल बनवा सकता था। वे सारे कहाँ हैं?

सही इतिहास संशोधन पद्धति का चौथा नियम यह है कि मूल स्रोत

चाहिए। जैसे जहाँगीरनामे में आरम्भ
पर भी यकायक विश्वास नहीं करना
में जो दावा किया गया है कि "मैं सलीम जहाँगीर अपने हाथों से निजी
कलम से यह तवारीख लिख रहा हूँ।" जांच करने पर पता चलता है कि
वह तवारीख किसी ऐरे-गैरे ने जहाँगीर के नाम से लिखी है।

और एक नियम यह है कि किसी ऐतिहासिक निष्कर्ष पर दृढ़तम
विश्वास होने पर भी यदि उसमें किसी प्रकार का कोई सन्देह प्रकट किया
गया हो तो उस निष्कर्ष की दुबारा कड़ी जाँच की जानी चाहिए।

फौजदारी कानून की विधि के अनुसार मजिस्ट्रेट को अपराधी व्यक्ति
को यह समझा देना पड़ता है कि "तुम पर जो आरोप है उसके सम्बन्ध में
तुम्हें कुछ भी वक्तव्य देने को तुम बाध्य नहीं हो। तथापि यदि तुम स्वेच्छा
से कुछ कहोगे तो वह हम लिख तो लेंगे किन्तु हो सकता है उस कथन का
उपयोग तुम्हारे बचाव के लिए तो नहीं, अपितु तुम्हारा अपराध सिद्ध करने
के लिए तुम्हारे विरोध में किया जाए।" यही नियम इतिहास संशोधन
में भी लागू है। इस्लामी तवारीखों में या शिलालेखों में जो बातें कही गई
है उनसे मुसलमानों की कुछ काली करतूतें भी पता लग सकती हैं।

उदाहरणार्थ बादशाहनामे में (भाग १, पृष्ठ ४०३ पर) यह कहा गया
है कि मुमताज को दफनाने के लिए जयपुर नरेश जयसिंह तेजोमहालय
नाम का मानसिंह महल निःशुल्क भी देता किन्तु हमने (बादशाह शाहजहाँ
ने) सोचा कि मुमताज की मृत्यु की शोकाकुल अवस्था में किसी की सम्पत्ति
क्यों ली जाए अतः जयपुर नरेश जयसिंह को मानसिंह महल के बदले में
सरकारी भूमि दी गई।"

यह कथन शाहजहाँ की तरफ से बादशाहनामे में दर्ज नहीं होता तो
कोई बात नहीं थी, किन्तु जब वह बादशाहनामे में अंकित है तो इससे सीधा
निष्कर्ष यह निकलता है कि जयपुर नरेश से ताजमहल जबरदस्ती हड़प
लिया गया और उसके बदले में उसे फूटी कौड़ी भी नहीं दी गई। क्योंकि
बदले में जो भूमि देने का उल्लेख किया गया है उसमें भूमि का अता-पता,
नाप-तौल कुछ भी नहीं दिया गया है, जबकि वह ब्योरा आवश्यक था। इस
प्रकार जयपुर नरेश से कीमती ताजमहल परिसर शाहजहाँ ने जबरदस्ती
छीनकर ऊपर से यह ढोंग किया है कि बिचारा जयपुर नरेश जयसिंह

इतना सुन्दर और विशाल ताजमहल परिसर निःशुल्क देने को राजी होने
पर भी शाहजहाँ ने उसकी कीमत रिक्त भूमि के रूप में चुकाई। इस प्रकार
के झूठे वक्तव्यों का भाण्डाफोड़ कर वक्तव्य देने वाले व्यक्ति को ही फांदने
का कर्तब इतिहासकार में होना आवश्यक है।

इतिहास संशोधन का और एक नियम आंग्ल विद्वानों ने यह बतलाया
है कि असमाधानी व्यक्ति की भांति संशोधक ने प्रत्येक ऐतिहासिक घटना
की बाबत "और और" कहते-कहते ओत-प्रोत प्रमाण या सबूत मांगते
रहना चाहिए।

इतिहास संशोधन तथा अन्य क्षेत्रों में भी तर्कशास्त्र का बड़ा महत्व
होता है। जो बात तर्कशुद्ध या तर्कसिद्ध नहीं हो वह कभी नहीं माननी
चाहिए। जैसे ताजमहल में सात मंजिलें तथा सैकड़ों कक्ष, बाग, फव्वारे,
मीनार, तहखाना, नक्कारखाना, गोशाला, सात मंजिला कुआँ—इतना
सारा आडम्बर क्यों है? मृत व्यक्ति के लिए इस सबकी क्या आवश्यकता
है। इतिहासकारों ने इन बातों का कभी विचार ही नहीं किया।

संशोधन का और एक नियम यह है कि जिस समय या युग की घटना
हो उस युग में अपने आप को ढाल लेने की कला संशोधक में होनी चाहिए।
जैसे मुमताज की मृत्यु की कल्पना करें। छह मास तक बुहाणपुर में उसे
दफनाया गया था तो वहीं ताजमहल क्यों नहीं बनवाया गया? वहाँ से
उसका शव उखाड़कर ६०० मील पैदल चलकर आगरा में लाने का
मूल उद्देश्य ही यही था कि ताजमहल नाम के हिन्दू राजमन्दिर में मुमताज
को जबरदस्ती दफनाकर हिन्दुओं के लिए वह इमारत निकम्मी कर देना
और इतनी सम्पत्ति हड़पकर जयपुर के हिन्दू नरेश को दुर्बल बनाना।

ट्यूटनखँमेन को दफनाने के लिए मिस्र में पिरॉमिड बनाए जाने की
जो बात कही जाती है वह भी विचार करने पर निराधार सिद्ध होती है।
कल्पना कीजिए जैसे आज आपके समक्ष ट्यूटनखँमेन की मृत्यु हुई। सारे
सरदार-दरबारी-जागीरदार आदि इकट्ठे हुए। तो कहाँ इकट्ठे हुए?
ट्यूटनखँमेन किसी महल में ही तो मरा होगा। वह महल कहाँ है? यदि
जीवित ट्यूटनखँमेन का कोई महल नहीं था तो मृत ट्यूटनखँमेन के लिए
वशाल पिरॉमिड किसने बनवाया? और क्यों बनवाया?

कि संशोधक को किसी प्रकार के
संशोधन का एक और नियम यह है कि दुनिया भर
बन्धन या दबाव में नहीं आना चाहिए। मेरा अनुभव यह है कि दुनिया भर
के इतिहासज्ञ एक नहीं अपितु अनेक बन्धनों से जकड़े हुए हैं, जैसे ईसाई
विद्वान् ईसामसीह, पोप का पद या ईसाई धर्म को जिससे कोई लांछन लगे
ऐसे संशोधन से मुँह मोड़ लेंगे। मुसलमान लोग मुहम्मद या इस्लाम के
दोष प्रकट हों ऐसे संशोधन को छुएँगे तक नहीं। ताजमहल आदि ऐति-
हासिक इमारतें मुसलमानों की नहीं हैं इस मेरे सिद्धान्त पर लगभग सारे
ही मुसलमान या तो मौन धारण किए हुए हैं या निराधार विरोध करते रहे
हैं। किन्तु उस प्रश्न की निष्पक्ष जाँच होनी चाहिए ऐसा कोई मुसलमान
विद्वान् नहीं कहता।

एक व्यावसायिक बन्धन भी होता है। जब सारे अध्यापक पढ़ाते रहे
हैं कि ताजमहल शाहजहाँ ने बनवाया या कुतुबमीनार कुतुबुद्दीन ने बनवाई
तो उस गुटबन्धन से अलग होकर यह कहने का साहस कोई नहीं करेगा कि
वे हिन्दू इमारतें हैं। उसे अपने सभी अन्य साथियों की इतनी आन्तरिक
दहशत-सी रहती है। भारत के इतिहासकारों को कांग्रेस के राजनयिक
सिद्धान्तों का भी एक डर-सा मन में बैठ गया है। गांधी-नेहरू कहते आ रहे
थे कि हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई हैं। तो ताजमहल आदि मुसलमानों के
बनवाए हुए नहीं हैं इस सत्य कथन से मुसलमानों को दुःख होगा। अतः इस
तरह कोई संशोधन किया ही नहीं जाना चाहिए या उसके निष्कर्ष दबा देने
चाहिएँ। यूरोप के गोरे ईसाई इतिहासकार भी इमारतों के तथा नगरों के
इस्लाम निर्माण के झूठे सिद्धान्त से इसलिए लिपटे रहना चाहते हैं कि
सारी पाठ्य-पुस्तकों में तथा ज्ञानकोश आदि सन्दर्भ ग्रन्थों में एक सौ वर्षों
से वह इतना दृढ़मूल हो गया है कि उसे उखाड़ फेंकने का या उसे अमान्य
करने का साहस ही किसी में नहीं। वह सिद्धान्त निराधार है यह जानने
पर भी सारे विद्वान अपने आपको विवश पाते हैं। कई विद्वान तो उस
सिद्धान्त को टटोलने से भी इसलिए डरते हैं कि सही लगने पर वह भूत
जैसे उनके मस्तिष्क पर कहीं सवार न हो जाए; अतः उस सिद्धान्त का
परिचय करा लेना भी वे महान संकट समझते हैं।

एक अच्छे संशोधक के लिए हर प्रकार का, हर क्षेत्र का जितना अधिक
ज्ञान हो उतना अच्छा। उतना ही वह संशोधन कार्य में अधिक प्रवीण सिद्ध
होगा।

सत्य की खोज करनी हो तो उसके लिए संशोधक को अपने आप में
पूरी मानसिक स्वतन्त्रता प्रतीत होनी चाहिए। बोझ या बन्धन से जकड़ा
मन सत्यान्वेषण कभी नहीं कर पाएगा। वे बोझ या बन्धन कितने विविध
प्रकार के हो सकते हैं, इसका विवरण हम ऊपर प्रस्तुत कर चुके हैं।

अटपटी या आधी-अधूरी बातों पर भोलेपन से या लापरवाही के
कारण विश्वास करने वाला व्यक्ति कभी सच्चा संशोधक नहीं बन सकता।
सच्चा संशोधक वही होता है जिसके मन में सदा-सर्वदा ऐतिहासिक तथ्यों
के साधक-बाधक विचारों की चक्की चलती रहती हो।

ऊपर चर्चित महत्त्वपूर्ण गुणों के अभाव के कारण वर्तमान जागतिक
इतिहास उपन्यासवत् कपोलकल्पित कथाओं का भण्डार-सा बना हुआ है।

ऊपर कहे तत्त्वों का उल्लंघन सारे विश्व के इतिहासज्ञ करते आ रहे
हैं। इसी कारण सारे विश्व का इतिहास खण्डित एवं विकृत हो गया है।
अतः इस ग्रन्थ में निर्देशित रूपरेखा के अनुसार विश्व का इतिहास कृतयुग
से आरम्भ कर पुनः लिखा जाना चाहिए।

राष्ट्रीय ध्वज

कसौटी के पत्थर पर जैसे कंचन का कस परखा जाता है वैसे ही सही इतिहास के ज्ञान से सारे राष्ट्रीय प्रश्न सुलझाए जा सकते हैं। ऐसा ही एक प्रश्न है राष्ट्रीय ध्वज का।

सन १६४७ में जब खण्डित भारत अंग्रेजों से स्वतंत्र हुआ तब कांग्रेस दल का तिरंगा झण्डा चन्द तब्दीलियों के साथ भारत पर थोपा गया।

वस्तुतः उस समय जो संविधान-सभा गठित हुई थी उसने पारम्परिक केसरिया ध्वज को ही राष्ट्रीय ध्वज के रूप में स्वीकार करने का निर्णय लिया था। फिर भी महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू के गुट ने जनता की श्रद्धा तथा विश्वास का अनुचित लाभ उठाकर यकायक चुपके से तिरंगे ध्वज का प्रस्ताव धांधली से प्रस्तुत कराकर वह पारित भी करवा लिया।

किन्तु क्या वह ध्वज योग्य है? क्या उस ध्वज से जनता को तथा नेताओं को योग्य प्रेरणा मिल सकती है? ऐसे प्रश्नों का विश्लेषण और विचार इतिहास द्वारा किया जा सकता है।

तिरंगा ध्वज मूलतः भारत के बाहर, यूरोप खण्ड के जर्मनी देश में मैडम कामा नाम की पारसी स्त्री ने स्वतन्त्रता संघर्ष के सत्याग्रही आन्दोलन की भाग-दौड़ तथा खींचातानी में जैसा-तैसा ढाला। इसी कारण इसमें अनेक दोष अन्तर्भूत हो गए।

एक बड़ा दोष यह है कि अपने आपको धर्मनिरपेक्ष संघटना कहने वाली कांग्रेस ने तिरंगा झण्डा जातीय विचारों से बनाया है। ऊपर का एक-तिहाई केसरी रंग हिन्दुओं का है। निचला एक-तिहाई हरा रंग मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करता है। उनके बीच जो सफेद रंग की पट्टी है वह अन्य अल्पसंख्यक वर्गों की प्रतीक है।

इस प्रकार आरंभ में खुल्लमखुल्ला जातीय आधार पर संवारे गए इस ध्वज का यह जातीय विवरण आगे चलकर स्वयं कांग्रेसी नेताओं को बार-बार अखरने लगा। एक तरफ तो वे निजी भाषणों में चिल्ला-चिल्लाकर यह कहते रहे कि भारत में जात-पांत आदि किसी भी भेदभावरहित एक संघ समाज का निर्माण करना हमारा लक्ष्य है। किन्तु उसी समय उन्होंने तीन रंगों वाला राष्ट्रीय ध्वज इस उद्देश्य से सम्मत कर दिया था कि उसमें हिन्दू-मुसलमान तथा अन्य अल्पसंख्यकों के समाधान के लिए अपने-अपने प्रतिनिधि रंग हों। इस प्रकार समता का आवाहन करने वाले कांग्रेस दल को जातीय-वादी तिरंगे का समर्थन करना जब असंगत प्रतीत होने लगा तब गांधी नेहरू प्रणीत कांग्रेस सरकार ने तत्क्षण अपना रुख बदलकर यह कहना आरम्भ कर दिया कि केसरी रंग त्याग का लक्षण है, हरा शौर्य का और सफेद समता का। तबसे यही झूठ जनता पर थोपा जा रहा है। इसमें शासकों की कायरता दीखती है। यदि विविध जातियों के समाधान हेतु राष्ट्रीय ध्वज में खिचड़ी रंग सम्मत किए गए हों तो वह प्रकट रूप से मान लेना ही सत्यनिष्ठा तथा वीरता के अनुकूल होगा। उस सत्य को छिपाकर उन खिचड़ी रंगों का समर्थन विविध गुणों के नाम से करने में कांग्रेस शासन की असत्यवादिता प्रकट होती है।

किसी विशिष्ट रंग को किसी एक गुण का प्रतीक मानना ही आत्म-वंचना तथा लोकवंचना है। उदाहरणार्थ यूरोप में काला रंग मृत्यु अथवा शोक का प्रतीक है, किन्तु मुसलमानों में सभी खानदानी स्त्रियां सर्वत्र काला बुर्का पहनती हैं। भारत में श्मशान में जाते समय शुभ्र वस्त्र पहनते हैं। अतः अमुक एक वर्ण का सारे मानव समाज के लिए कोई विशिष्ट सर्वमान्य अर्थ नहीं है। प्रत्येक रंग के यदि कोई सर्वमान्य गुण होते तो उनका एक जागतिक सन्दर्भकोश बनता, जिसमें एक तरफ विविध रंग दिए जाते और दूसरी तरफ इनके सर्वमान्य गुण दिए जाते। ऐसा कोश इसी कारण उपलब्ध नहीं है क्योंकि विविध रंगों को विशिष्ट गुणों का प्रतीक सर्वत्र कभी माना नहीं जाता। और तो और रंग कितने हैं इस पर भी एक मत नहीं है।

सम्मिश्रित रंग तथा विविध छटाओं के अनगिनत रंग बनाए जा सकते हैं। वे किन पृथक् गुणों के प्रतीक हैं यह कहना अशक्य होगा। अतः बुद्धिमानी इसी में होगी कि तिरंगे ध्वज को जातीयत्व उदारता से स्वीकार कर लिया जाए।

अब उसके अन्य दोष देखें। उसमें ८५ प्रतिशत हिन्दू, १२ प्रतिशत मुसलमान और तीन प्रतिशत सिख, बौद्ध, पारसी आदि अन्य अल्पसंख्यकों को समान प्रतिनिधित्व दिया गया है। क्या ८५=१२=३ ऐसा राष्ट्रीय ध्वज का विभाजन गणितीय अन्याय नहीं है?

योगायोग से उस अन्याय में ही कांग्रेसी शासन का दूसरा एक अन्याय अपने आप प्रकट होता है। राष्ट्रीय ध्वज का (हरा तथा सफेद मिलाकर) दो-तिहाई हिस्सा १५ प्रतिशत अन्यजनों को दिया गया है और केवल एक तिहाई (केसरी) हिन्दुओं का प्रतीक है मानि राष्ट्रीय ध्वज में ८५ प्रतिशत हिन्दुओं को १५ प्रतिशत अन्य जनों से आधा प्रतिनिधित्व दिया गया है। यानि हिन्दुस्थान में ८५ प्रतिशत हिन्दू १ से २ के अनुपात में १५ प्रतिशत अन्यजनों से गौण माने गए हैं। तो ठेठ उसी अनुपात में कांग्रेसी शासन में हिन्दुओं को नगण्य तथा गौण माना जाता है।

क्योंकि कांग्रेस के तथा (कांग्रेस से स्पर्द्धा करने वाले) अन्य राजनैतिक दलों के चुनाव पत्रकों में बहुसंख्यकों के हित तथा इनके रक्षण की बातों की बजाय अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा की एक प्रकार की होड़-सी लगी रहती है। भारत के सारे राजनैतिक दलों ने हिन्दुओं को अन्य अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करने वाले और सेवा करने वाले नौकर का दर्जा दे रखा है। यह अन्याय राष्ट्रीय ध्वज के तीन वर्णों के असन्तुलन के कारण हो रहा है।

ऊपर दिए विवरण से एक महत्वपूर्ण नियम हमें यह दिखाई देता है कि इतिहास का अपना एक गणित होता है। कांग्रेसी नेताओं ने जब तिरंगा राष्ट्रीय ध्वज बनाया तो अनवधानी से उसमें तीन वर्णों के समान भाग कर डाले। किन्तु उस समानता में ८५ प्रतिशत हिन्दुओं का महत्व एक-तिहाई तथा १५% अन्य जनों का महत्व दो-तिहाई यह जो अनुपात योगायोग से बन गया उसकी परछाईं एक भूत की भाँति कांग्रेसी शासन की प्रत्येक कृति में दिखाई देती है। कांग्रेसी शासन जो भी कदम उठाता है वह यदि अल्प-

संख्यकों के हित में हो तो कांग्रेसी शासन उसे शीघ्रता से आगे रखता है और यदि हिन्दुओं के हित में हो तो कांग्रेसी शासन उस कदम को झट पीछे खींच लेता है। इससे वर्तमान शासन कितना हिन्दू-द्रोही है यह देखा जा सकता है। स्वतंत्र भारत के शासन से हिन्दू-द्रोह तभी हटेगा जब राष्ट्रीय ध्वज पूरा केसरिया होगा या हिन्दू जनसंख्या के अनुसार ८५ प्रतिशत केसरी होगा।

वास्तव में भारत (तथा समस्त मानव जाति) का मूल व्यक्तित्व वैदिक होने के कारण भारत तथा समस्त मानव जाति का ध्वज केसरी ही होना चाहिए। तथापि आधुनिक जनसंख्या के अनुपात के अनुसार ही भारत का ध्वज बनाना हो तब भी उसे ८५ प्रतिशत केसरिया, १२ प्रतिशत हरा और शेष बचे तीन प्रतिशत स्थान में अन्य अल्पसंख्यक जातियों की रंग-धारियाँ भले ही लगा दी जाएँ।

कहने का उद्देश्य यह है कि राष्ट्रीय ध्वज में तीन रंगों के तीन समान अण्ट-शण्ट भाग करने की बजाय किसी विशिष्ट गणितीय या ऐतिहासिक आधार पर राष्ट्रीय ध्वज का वर्णांकन होना आवश्यक है। इससे राष्ट्रीय ध्वज का ठीक समर्थन भी हो पाएगा और शासन की नीति भी हिन्दू-विरोधी नहीं रहेगी।

राष्ट्रीय ध्वज एक पारसी स्त्री द्वारा आंकने के कारण उसमें और एक दोष अन्तर्भूत हो गया। इस विश्लेषण से पाठक यह जान सकेंगे कि अनजाने में उठाए कदमों से भी किस प्रकार ऐतिहासिक गणित की बारीकियाँ अपने आप गुथी होती हैं। पारसी होने के नाते मैडम कामा अपने को हिन्दू तथा मुसलमानों से भिन्न समझती थीं। अतः उन्होंने तिरंगे में हिन्दुओं के लिए केसरी, मुसलमानों के लिए हरा तथा पारसी आदि अन्य जमातों के लिए सफेद रंग भी बीच में लगा दिया। यदि कोई कांग्रेसी हिन्दू या मुसलमान ही कांग्रेसी ध्वज बनाता तो वह उसे आधा केसरी तथा आधा हरा बनाता। मैडम कामा ने रंगों का समान बँटवारा करते समय एक हिन्दू, एक मुसलमान तथा एक पारसी, ऐसा मूल्यांकन किया, जो सरासर अन्याय-पूर्ण था। यह कांग्रेसी नीति से भी स्पष्ट हो गया है। ध्वज के वर्णों का वही अनुपात कांग्रेस के मस्तिष्क पर सवार होने के कारण कांग्रेस शासन एक

पारसी + एक मुसलमान = २ भारतीय नागरिक विरुद्ध एक हिन्दू नागरिक इस हिसाब से हिन्दुओं को एक नगण्य नौकर की भूमिका प्रदान किए हुए है। स्वतन्त्र भारत के शासन से यह अन्याय हटाना हो तो राष्ट्रीय ध्वज को पूरा केसरिया या कम-से-कम ८५ प्रतिशत भाग केसरी बनाना होगा।

कांग्रेस-प्रणीत तिरंगे राष्ट्रीय ध्वज में एक और दोष यह अन्तर्भूत है कि जिस सफेद रंग ने ध्वज का एक-तिहाई भाग ले रखा है उस सफेद रंग को एक भी अल्पसंख्यक जाति स्वीकार नहीं करती। सन् १९७७ में जब जनता पक्ष की सरकार बनी तब उसमें हिन्दुत्ववादी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की हिन्दू विचार-प्रणाली के प्रतिनिधियों का पलड़ा भारी था। अतः उन्होंने जनता पक्ष का ध्वज दो-तिहाई केसरी तथा एक-तिहाई हरा रखा।

उस तब्दीली से ऐतिहासिक गणित के नियमों की अनिवार्यता पुनः प्रकट हो उठी। जिस पक्ष में हिन्दुत्ववादियों का बहुमत था उस पक्ष का ध्वज अपने आप दो-तिहाई हिन्दू रंग का बन गया।

उस ध्वज से जब एक-तिहाई सफेद रंग हटाकर उसका स्थान केसरी वर्ण ने ले लिया तब एक भी अल्पसंख्य जमात ने चूँ तक नहीं की क्योंकि सफेद रंग किसी भी जमात का न होते हुए उसे निष्कारण ही राष्ट्रीय ध्वज में एक-तिहाई स्थान दिया गया है।

उस जनता दल के ध्वज में भी इस रंग का एक-तिहाई अनुपात कायम रहने से एक अन्य बात स्पष्ट हो गई कि हिन्दुत्ववादी भी, मुसलमानों के लाड़ उर्फ तुष्टि की कांग्रेसी नीति को पदच्युत नहीं कर सके। मुसलमानों की संख्या १२ प्रतिशत होते हुए भी उन्हें ३३⅓ प्रतिशत स्थान ध्वज में प्रदान करना अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति अन्याय है।

वस्तुतः केसरी ध्वज मुसलमानों का भी प्रतिनिधित्व करता है। क्योंकि सारे मुसलमान हिन्दुओं के ही वंशज हैं। और संन्यासी से लेकर सम्राट् तक केसरी रंग का प्रयोग किए जाने से वह समानता, त्याग, वीरता, संरक्षण आदि का प्रतीक है। अतः मुसलमानों को अलग रंग की आवश्यकता ही नहीं। यदि हरा रंग रखा भी जाए तो मुसलमानों की संख्या के अनुपात में ध्वज में १२ प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए।

जनता पक्ष ने जो निजी ध्वज में एक-तिहाई हरा रंग रखा इससे

हिन्दुत्ववादी भी भारत में कड़ा न्यायाधिष्ठित शासन लागू करने की क्षमता नहीं रखते यह बात स्पष्ट हो गई। राष्ट्रीय ध्वज एक प्रकार का राष्ट्रीय दर्पण है। उससे शासकीय पक्ष की नीति स्पष्ट हो जाती है। अतः यदि भारत का शासन सुधारना है तो उसका राष्ट्रीय ध्वज सुधारना होगा। ८५ प्रतिशत हिन्दुओं को राष्ट्रीय ध्वज में एक-तिहाई स्थान दिया जाने वाले अन्याय से गंवार मतदाता की भी समझ में आएगा। अतः राष्ट्रीय ध्वज को न्यायसंगत बनाने के एक ही नारे पर एक नया राष्ट्रीय दल संघटित किया जा सकता है। ध्वज न्यायी बनाए जाने पर शासन अपने-आप शूरवीर तथा न्यायी बनेगा। क्या कोई द्रष्टा नेता इस ऐतिहासिक न्याय के सहारे भारत को पुनः सशक्त वैदिक विश्वराष्ट्र में विकसित करेगा ?

कांग्रेसप्रणीत तिरंगे ध्वज में दूसरा एक दोष यह है कि उसमें हरे तथा केसरी वर्णों के मध्य में सफेद रंग होने से ऐसा ध्वनित होता है कि हिन्दू-मुस्लिम जमातों को झगड़ेबाजी से दूर रखने के लिए सर्वदा एक मध्यस्थ का होना आवश्यक है।

जनता दल के शासन में भी राष्ट्रीय ध्वज ज्यों-का-त्यों तिरंगा ही रहा यद्यपि स्वयं जनता दल का निजी ध्वज दो-तिहाई केसरी बन गया था। इसका कारण यह था कि प्रधानमंत्री कांग्रेसी ही था और कांग्रेस से फूटकर निकले लोगों के नेतृत्व में ही जनता सरकार बनी थी।

वह सरकार भी झुठलाए इतिहास का ही पुरस्कार चालू रखने के लिए शपथबद्ध थी। मैंने जब १९७८ में उस शासन के नभोवाणी एवं प्रचारमंत्री से पूछा कि "क्या आप दूरदर्शन तथा आकाशवाणी द्वारा ताजमहल आदि इमारतें मुसलमानों द्वारा बनाई हुई नहीं हैं इस मेरे शोध से जनता को अवगत कराएँगे ? तो उन्होंने साफ मना कर दिया। क्योंकि वह व्यक्ति यद्यपि किशोर अवस्था से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का सदस्य था तथापि उसकी विचारधारा मूलतः कांग्रेस से भिन्न नहीं थी। कांग्रेसी प्रधानमंत्री के शासन का मंत्री होने के नाते भी इस्लामी तुष्टि वाला झूठा इतिहास रुकवाकर सत्य इतिहास स्थानापन्न करने का उस व्यक्ति में साहस नहीं था। इस दृष्टि से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा उसके सदस्यों को दिया

गया प्रशिक्षण नाकाम सिद्ध हुआ है। उन्होंने जहाँ भी शासन किया, वह शासन कांग्रेसी विचारधारा से ऊपर नहीं उठ सका।

ऊपर हमने जो विवरण दिया उसमें तीन बातों के प्रति हम पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। एक तो यह कि लोगों के हाथों से जो क्रिया होती है या मन से जो विचारधारा बहती है उसके पीछे एक अदृश्य ऐतिहासिक गणित का हिसाब होता है। उस गणित के अनुसार ही घटनाओं को विशिष्ट मोड़ मिलता है। यद्यपि देखने वाले को या करने वाले को यह लगता है कि अचानक, बगैर सोचे-समझे जो मन में आया मैंने कर डाला। मैडम कामा आदि ने ऐसा ही तिरंगा ध्वज बनाया। किन्तु उस तिरंगे का गठन और तिरंगे ध्वज के तत्वावधान में हो रहा कांग्रेसी शासन ऐतिहासिक गणित के नियमों से किस प्रकार बंधा हुआ है उसका विश्लेषण हमने प्रस्तुत किया।

इसी प्रकार हमने दूसरी बात यह दर्शायी है कि ध्वज जैसे राष्ट्रीय प्रश्नों का ऐतिहासिक दृष्टि से निरीक्षण, अध्ययन तथा विश्लेषण कैसे किया जा सकता है?

तीसरा तत्व हमने यह स्पष्ट किया है कि ध्वज का और शासन का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। खिचड़ी ध्वज का पुरस्कार करने वाला पक्ष खिचड़ी शासन ही कर पाएगा।

सामान्य लोगों में और वर्तमान राजनयिक दलों के नेताओं में भी यह भावना होती है कि ध्वज में क्या रखा है? एक दर्जी बैठा दो, उसके सामने दो-चार रंग के कपड़े के थान रख दो और उसे कहो कि "इनमें से इच्छानुसार टुकड़े काटो और वे उल्टे-सीधे, आगे-पीछे, ऊपर-नीचे जैसे हो सी दो। बस वही हमारा ध्वज होगा।" वर्तमान कांग्रेसी और राष्ट्रीय ध्वज इसी प्रकार बनाए गए हैं।

इसके विपरीत वैदिक केसरी ध्वज में कितने गुण हैं देखें। राव से रंक तक तथा योगी से भोगी तक का वही एक समान ध्वज है। उसमें त्याग की भावना है, वैसे वैभव की भी है। त्यागमय वैभव तथा वैभवमय त्याग दोनों का यह प्रतीक है। प्राणिमात्र का लाल रुधिर, यज्ञ की अग्निज्वाला तथा अरुण सूर्य का वही रंग होता है। यात्रि हो या गृहस्थ, केसरी रंग दोनों का

प्रतिनिधित्व करता है। कृतयुग से आज तक की प्रदीर्घ क्षात्र परम्परा उस ध्वज से निगडित है।

वैदिक केसरिया ध्वज अपनाने से न केवल हिन्दुस्थान में एकता होगी अपितु सारे विश्व में पुनः वैदिक शासन तथा संस्कृत भाषा का प्रसार कर समस्त मानव जाति में एकता, सुख, शान्ति तथा त्याग और सेवा का भाव निर्माण करने का ध्येय अपने सामने रहेगा।

जैसा ध्वज होता है वैसा ही शासन होता है। सन् १००० से पूर्व जब अफगानिस्थान पर केसरिया ध्वज फहराता था तब वहाँ पूरा वैदिक शासन था। अब क्योंकि वहाँ पूरा हरा ध्वज फहराता है, वहाँ पूरा इस्लामी शासन है। भारत के ध्वज में केवल एक-तिहाई केसरी रंग रहने से भारत का शासन एक-तिहाई ही हिन्दू रह गया है। एक-तिहाई हरे रंग के कारण भारत का एक तिहाई शासन इस्लामी है। शेष एक-तिहाई रंग सफेद होने से एक-तिहाई शासन रंगहीन, निस्तेज, फीका, भ्रष्टाचारी बना पड़ा है।

एक अनवधानी आक्षेप

संशोधन पद्धति की बारीकियों से अपरिचित व्यक्ति कई बार ऐसा आक्षेप उठाते हैं कि संशोधक कभी तो इतिहास का उदाहरण देकर किसी घटना को विश्वसनीय मानते हैं और कभी कहते हैं कि इतिहास के लेखक पक्षपाती होने से उनका कथन विश्वासयोग्य नहीं हो सकता।

यह आक्षेप सही नहीं है। किसी भी व्यक्ति का सारा कथन समय तथा प्रसंग के अनुसार सत्य, अर्द्धसत्य या असत्य हो सकता है। अतएव संशोधक को पूरा अधिकार है कि वह कौन-सा कथन कहाँ तक सत्य या असत्य माने। उदाहरणार्थ जब अकबर का दरबारी लेखक अबुलफजल लिखता है कि अकबर एक शक्तिमान सम्राट् था तो हम उस बात को सही मानते हैं क्योंकि अकबर की सेना ने कई बार, अनेक राजा-नवाब-सुल्तान आदि को परास्त किया था। किन्तु जब अबुलफजल लिखता है कि अकबर बड़ा सुन्दर था तो हम उस कथन को एक दरबारी चाटुकार का चापलूसी भरा असत्य कथन इसलिए मानते हैं क्योंकि मांसिरट आदि तत्कालीन ईसाइयों ने अकबर के रूप-रंग का जो आँखों देखा वर्णन लिख छोड़ा है वह सुन्दरता का द्योतक

नहीं है। तब एक संशोधक की भूमिका से यह हम कहेंगे कि अबुलफजल एक लालची तथा खुशामदी हस्तक होने से अकबर को वह कदापि कुरूप नहीं कहेगा।

इस सम्बन्ध में एक उदाहरण देखें। कहते हैं कि पंजाब के राजा रणजीतसिंह का चेहरा बड़ा उग्र था। उनके चेहरे पर माता के दाग थे और एक आँख से वह अन्धे भी थे। तथापि जब उन्होंने एक चित्रकार से निजी चित्र बनवाना चाहा तो उस चित्रकार ने रणजीत सिंह को सुन्दर, सुदृढ़ तथा सशक्त दिग्दर्शित करने वाला चित्र खींचा। उसमें रणजीत सिंह की एक आँख काणी या अन्धी नहीं बतलाई थी। रणजीत सिंह ने उस चित्र से असहमति बताते हुए कहा कि "मैं तो ऐसा नहीं दीखता, इस चित्र को ठीक करो।"

चित्रकार भी व्यवहारी व्यक्ति था। राजा को अन्धा या काणा दिखाना ठीक नहीं होगा ऐसा उसने सोचा। फिर भी हू-बहू चित्र खींचना भी आवश्यक था। अत: रणजीत सिंह की जो आँख अन्धी थी उसे अन्धी बतलाने की बजाय चित्रकार ने बड़ी धूर्तता से ऐसा चित्र खींचा कि जैसे एक पेड़ के नीचे बैठा शिकारी रणजीतसिंह एक (अन्धी) आँख बन्द रखे हुए दूसरी आँख से किसी पशु पर बन्दूक का निशाना साध रहा है।

वैसा चित्र बनाने में एक आँख अन्धी बताने की समस्या दूर हो गई और हू-बहू चित्र खींचने का उद्देश्य भी सफल रहा। इस प्रकार राजा भी सन्तुष्ट हुआ और चित्रकार भी। किन्तु एक ऐतिहासिक दस्तावेज समझकर ऐसे चित्र की यदि जाँच की जाए तो उससे राजा के एक आँख से अन्धा होने की बात प्रेक्षकों के ध्यान में नहीं आएगी। किन्तु अन्यत्र दिए वर्णनों से यदि कोई संशोधक रणजीतसिंह के एक आँख से अन्धा होने की बात जान जाए तो उस चित्र से वह ताड़ सकेगा कि शिकार के लिए निशाना लेते समय जो आँख बन्द बताई गई है वही अन्धी होनी चाहिए। अन्य भोले-भाले प्रेक्षक तो वह निष्कर्ष नहीं निकाल पाएँगे। वे तो यह सोचेंगे कि शायद सचमुच ही शिकार करते समय निशाना लेते हुए राजा ने एक आँख बन्द कर ली थी।

ऐसी बारीकियों पर विचार करते हुए इतिहास संशोधन में प्रत्येक

छोटी-मोटी बात से, चिह्न से या घटना से कई निष्कर्ष निकल सकते हैं। किसी घटना या दस्तावेज से कितने निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं और उनमें से सही निष्कर्ष कौन-सा है यह जो सिद्ध कर सकेगा वही अच्छा सच्चा इतिहासज्ञ कहलाएगा।

न्यायालय में जब कोई साक्षीदार (गवाह) गवाही देता है तब वह कई बातें कह देता है। वे सारी सत्य या सारी झूठ कभी नहीं कही जातीं। उनमें से कुछ बातें मान्य की जाती हैं तो कुछ अमान्य समझी जाती हैं। इसी प्रकार इतिहास में भी, इतिहास की या दस्तावेजों की, सारी बातों में विश्वास करना या अविश्वास करना ऐसा कोई बन्धन किसी पर नहीं होता। संशोधन करते-करते जो तफसील सही प्रतीत हो उसे मान्य किया जा सकता है और जो ठीक न लगे उसे ठुकरा दिया जा सकता है।

गुमराह करने वाले ईसाई तथा इस्लामी दस्तावेज और तवारीखें

इतिहास का अध्ययन तथा संशोधन करने वालों ने एक वात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि कोई भी शासन निजी अनुकूलतानुसार ही इतिहास का ढांचा पुरस्कृत करता है, चाहे वह झूठा ही क्यों न हो।

वर्तमान भारत में ही देखिए। १५ अगस्त, १६४७ से यहाँ कांग्रेस पक्ष का शासन है। सन् १६६१ में मैंने अपना शोध सिद्धान्त प्रकाशित किया जिसमें यह कहा गया था कि भारत में जितने भी ऐतिहासिक नगर हैं, जो इस्लामी नाम धारण किए हैं या जितनी भी ऐतिहासिक इमारतें हैं जिन्हें मस्जिद, मकबरे आदि कहते हैं, वह सारी इस्लामपूर्व हिन्दू सम्पत्ति है जिस पर इस्लाम ने केवल कब्जा किया, उसका निर्माण नहीं किया।

वास्तव में मेरा सिद्धान्त योगायोग से हिन्दुओं को आनन्द तथा गौरव प्राप्त करा देने वाला है और कांग्रेस पक्ष अधिकांश हिन्दुओं का ही बना हुआ है। तथापि कांग्रेस को वह शोध इतना कड़वा लगा कि उस घटना को आज २८ वर्ष बीत चुकने पर भी उस सिद्धान्त के सम्बन्ध में कांग्रेस ने कड़ा मौन धारण कर रखा है, उससे निजी मुँह फेर रखा है और चक्षु तथा कान बन्द कर ऐसा ढोंग कर रखा है जैसे ऐसे किसी शोध की उसने कोई वार्ता भी न सुनी हो। क्योंकि राजनैतिक दलों को स्वार्थ प्रिय होता है। यदि उस मेरे ऐतिहासिक सिद्धान्त में कांग्रेस पक्ष ने तनिक भी रुचि या जागरूकता दिखाई तो उसे यह भय है कि कांग्रेस को हिन्दू-पक्ष कहकर लगभग सारे ही मुसलमान छोड़ जाएँगे। कांग्रेस पक्ष की ऐसी विकृत और नाजुक मनोवृत्ति

बन गई है कि ८५ प्रतिशत हिन्दू जनसंख्या के देश में हिन्दू पक्ष कहलाना उसके लिए गाली देने के बराबर अपमानजनक होगा। इससे बचने के लिए ऐतिहासिक सत्य को भी ठुकराना कांग्रेस पक्ष के लिए कोई बड़ी बात नहीं। उसे सत्य से स्वार्थ अधिक प्रिय है।

ऊपर कहा ऐतिहासिक शोध यदि कांग्रेस पक्ष ने अपनाया या उसकी दखल लेकर उसकी सत्यासत्यता आजमाने की कार्यवाही की तो क्या लगभग सारे ही मुसलमान कांग्रेस के विरोधी बन जाएँगे ?

हमारा अनुमान भी यही है कि वर्तमान समय में जबकि मुसलमानों से हर प्रकार के राजनीतिक लाड़ या तुष्टि करने की प्रथा गत छह सौ वर्षों से चली आ रही है, अधिकांश मुसलमानों को हमारा शोध एक कड़ा घूसा-सा लगेगा। चन्द मुसलमान ऐसे भी होंगे जो स्वार्थ को भूलकर ऐतिहासिक सत्य की कद्र करेंगे। किन्तु उनकी संख्या नगण्य होनी चाहिए। यदि अधिकांश मुसलमान ऐतिहासिक सत्य का स्वागत करते दिखाई देते तो कांग्रेस दल कभी का हमारे शोध का हल्ला-गुल्ला मचा देता। क्योंकि कांग्रेस को तो किसी प्रकार से अधिकांश मतदाताओं से मत प्राप्त कर सत्ता प्राप्त करने की अभिलाषा रहती है चाहे उसके लिए झुठलाए इतिहास का ही पुरस्कार क्यों न करना पड़े।

झुठलाए इतिहास को ही पकड़े रहने में मुसलमानों से भी अधिक दोष कांग्रेस तथा अन्य राजनैतिक दलों के समर्थक हिन्दुओं का है। क्योंकि मेरा शोध हिन्दू गौरव को उजागर करता है, तथापि अपने पूर्वजों के उस गौरव को वर्तमान पीढ़ी के करोड़ों हिन्दू इसलिए दबाए रखना चाहते हैं कि इससे कांग्रेस आदि दलों का सारा राजनीतिक खेल बिगड़ जाएगा।

अतः वर्तमान रथी-महारथी सभी सत्य इतिहास को या ऐतिहासिक सत्यों को दबाने पर ही तुले हुए हैं। कॉलेज तथा विश्वविद्यालयों से लगे इतिहास के अध्यापक तीन-चार कारणों से वर्तमान झूठे इतिहास से ही चिपटे रहना चाहते हैं। क्योंकि विद्यालयों में पढ़े पाठ भूलकर नए सत्य इतिहास का अध्ययन करने का कष्ट कौन उठाए ! प्रतिदिन जिनसे पाला पड़ता है ऐसे सत्यविरोधक ईसाई, इस्लामी देशी-विदेशी इतिहासकारों से वृथा विवाद कौन खड़ा करे ? कांग्रेसी शासन में कांग्रेस को ही अप्रिय लगने वाले

सत्य इतिहास का पुरस्कार करने से नौकरी अथवा नौकरी में मिलने वाले अनेक लाभ कौन खोए ? स्वयं लिखी पुस्तकें तथा लेखों को निराधार सिद्ध करने वाले नए शोधों को कौन स्वीकार करे ? इस प्रकार के विविध कारणों से स्वयं इतिहास के अध्यापक ही झूठे इतिहास का पुरस्कार करना ही निजी कर्तव्य समझते हैं । उधर पर्यटन विभाग, पुरातत्व या इतिहास क्षेत्र के विविध अधिकारी कांग्रेस शासन के भय से सत्य इतिहास का पुरस्कार करने से डरते हैं । सामान्यजन कांग्रेस के समर्थक होने से तथा मुसलमानों को नाराज क्यों किया जाए इस विचार से चुप हैं । कुछ अन्य सामान्य लोग सोचते हैं कि इतिहास झुठलाया भी गया हो तो अब उसे ठीक करने में क्या लाभ ? बीती बातों को क्यों उखाड़ा जाए ?

ऐसे लोग यह नहीं सोचते कि बीती बातें ज्यों-की-त्यों लिखना या कहना ही तो इतिहास का कार्य है । यदि इतिहास ही सत्य कथन में आनाकानी करे तो इतिहास, इतिहास न रहकर उपन्यास बन जाएगा ।

इस प्रकार पाठक देख सकते हैं कि करोड़ों व्यक्ति निजी स्वार्थ, लालच, लज्जा, भय, अज्ञान, आलस्य, लापरवाही आदि अनेक कारणों से झूठे इतिहास को ही दोहराने में इतिकर्त्तव्यता मानते हैं। वे नाममात्र का इतिहास चाहते हैं चाहे उसके अन्दर का ब्योरा झूठा ही क्यों न हो। सत्य इतिहास को मन से चाहने वाले व्यक्ति अल्पसंख्य ही होते हैं । उनमें से भी ऐतिहासिक सत्य को प्रकट करने का उद्योग, साहस, आग्रह या संघर्ष करने वाले व्यक्ति तो गिने-चुने ही मिलेंगे । क्योंकि सामान्य व्यक्ति कामचलाऊ बातें चाहता है । जब झूठे इतिहास से ही सारा कारोबार ठीक चल रहा हो तो सत्य इतिहास ढूंढने का प्रयास या संघर्ष करने की आवश्यकता ही क्या है ?

सामान्यजनों की इस प्रकार की आनाकानी के अतिरिक्त जानबूझकर झूठा इतिहास लिखना या झुठलाए इतिहास का ही प्रचार करना ईसाई, इस्लामी आदि आक्रामकों का एक प्रमुख उपाय रहा है ।

जिन आतंकवादी लोगों का जीवन छल-कपट, अनाचार, अत्याचार, लूटपाट तथा हत्या आदि करने में बीता ऐसे व्यक्तियों को ईसाई परम्परा में सन्त (Saint) कहा गया है और इस्लामी परम्परा में सूफी फकीर माना

गया है । क्या यह इतिहास की विडम्बना नहीं है ?

ईसाइयों ने तो और भी कमाल किया है। ईसामसीह नाम का कोई व्यक्ति कभी था ही नहीं, फिर भी उसकी एक कपोलकल्पित जीवनकथा बन दी गई है, उसके जन्मस्थान, मृत्युस्थान आदि के कृत्रिम स्थल बताए जाते हैं और ईसा के नाम से करोड़ों लोगों को ईसाई बनाकर एक विशाल पन्थ साम्राज्य खड़ा कर दिया गया है ।

इस्लामी दस्तावेज, तवारीखें तथा शिलालेख

प्राचीन विश्वव्यापी वैदिक समाज महाभारतीय युद्ध के भीषण संहार के कारण जब टूट-फूट गया तब उस सामाजिक दुर्दशा में अनेक छोटे-मोटे पन्थ फूट निकले । उसी प्रक्रिया में आगे चलकर प्रथम ईसाई पन्थ स्थापन हुआ और उसके ३००-४०० वर्ष पश्चात् अरबस्थान में इस्लामी पन्थ का स्थापन हुआ ।

इन दोनों के लिए 'धर्म' केवल एक नारा या बहाना था। दोनों ने धर्म के नाम पर सैनिक अत्याचारों के बल पर विशाल साम्राज्य स्थापित किए। उन अत्याचारों का तथा साम्राज्यप्रसार का समर्थन उन्होंने मनमाना, स्वयंसमर्थक, पक्षपाती इतिहास लिखकर करना आरम्भ किया । अतः ईसाई तथा इस्लामी शिलालेख, तवारीखें, ग्रन्थ, लेख, इतिहास आदि की जांच करते समय बड़ी सावधानी बरतना आवश्यक होता है ।

यहां इस बात का ध्यान रहे कि कोई सामग्री झूठी सिद्ध हो तब भी वह सत्य ढूंढने में सहायक हो सकती है। जैसे बैंक में गबन करने वाला व्यक्ति बैंक के बहीखातों में उल्टी-सीधी झूठी रकमें लिखेगा। फिर भी उसकी हेरा-फेरी का पता लगाने में उन नकली आंकड़ों का भी बड़ा सहाय होगा। एक खूनी आदमी दूसरे व्यक्ति के खूनी होने का वहम डालने हेतु जो नकली चिट्ठियां लिखेगा वे भी उसके अपराध की जांच में उपयुक्त होंगी। अतः ईसाई तथा इस्लामी बनावटी ऐतिहासिक सामग्री भी बड़ी मूल्यवान सिद्ध होती है।

इतिहास संशोधन में लिखित सामग्री के साथ-साथ अलिखित बातों से भी मौलिक निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। उदाहरणार्थ ताजमहल की

दीवारों पर कुरान के १४ अध्यायों की आयतें खुदी है तथा बाहरी द्वार पर उन कुरान के लेखों को अंकित करने वाले का नाम अमानतखान शिराझी लिखा है।

अब सोचने की बात यह है कि जिस इमारत के ऊपर इतनी विपुल फारसी सामग्री लिखी हुई है वह इमारत यदि सचमुच शाहजहाँ द्वारा बनवाई गई होती तो क्या उस पर वैसा लिखा न जाता ? ताजमहल का निर्माण शाहजहाँ ने करवाया इस प्रकार का उल्लेख ताजमहल पर नहीं है, दरबारी दस्तावेजों में भी नहीं है और तत्कालीन तवारीखों में भी नहीं है। अतः उस उल्लेख के अभाव से ही ताजमहल का निर्माण शाहजहाँ द्वारा नहीं हुआ यह निष्कर्ष सरलतया निकाला जाना चाहिए था। किन्तु गत एक सौ वर्षों में किसी भी अन्य इतिहासकार ने वह सीधा-सादा-सरल निष्कर्ष नहीं निकाला। इसी से यह बात स्पष्ट होती है कि लगभग सारे ही इतिहासज्ञ सही संशोधन पद्धति से पूर्णतया अनभिज्ञ हैं।

प्रत्यक्ष वर्णलिपि मे अंकित सामग्री के अतिरिक्त इमारत की बनावट, पत्थरों का रंग, नक्काशी, विस्तार, अंकित चिह्न, आकार, स्थान, इमारत की सुविधाएँ आदि कई बातें शिलालेखों जैसी ही ऐतिहासिक निष्कर्ष निकालने में सहाय्यभूत होती हैं। इसके उदाहरण हम इस ग्रन्थ में इससे पूर्व दे चुके हैं।

फतेहपुर सीकरी, कुतुबमीनार, ताजमहल आदि पर केवल कुरान की आयतें या फिरोजशाह तुगलक आदि के नाम खुदे हैं, इसी से वे सुल्तान बादशाह उन इमारतों के निर्माता नहीं थे ऐसा निष्कर्ष निकलता है। तथापि आज तक के इतिहासज्ञों ने एकदम उल्टा निष्कर्ष निकाला, इसी से उनकी अयोग्यता सिद्ध होती है।

वैसे देखा जाए तो उन इमारतों को देखने जाने वाले लोग भी कोयला या ईंट लेकर उन ऐतिहासिक इमारतों पर निजी नाम चढ़ा देते है। किन्तु क्या ऐसे नामांकन से हम उन्हें उन इमारतों का निर्माता मानेंगे ? इसी प्रकार किसी इमारत पर अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, सफदरजंग, अल्लाउद्दीन आदि के केवल नाम लिखे हों तो उससे काम नहीं चलता। इतना ही नहीं केवल नामांकन से वह व्यक्ति उस भवन का निर्माता नहीं

है, यही सिद्ध होता है।

कई इमारतों में तो उसमें कौन दफनाया गया है ? उसका नाम तक अंकित नहीं है। तब भी वह इमारत फलाने की दरगाह, कब्र या मजार कही जाती है। कई इमारतों पर आधुनिक मुसलमानों ने, जहाँनारा ने या शाहजहाँ ने फलानी इमारत बनवाई, ऐसे झूठे कपोलकल्पित शिलालेख गढ़ दिए हैं।

ऐसे ही झूठे इस्लामी शिलालेखों का एक और नमूना मध्यप्रदेश के माण्डवगढ़ में पाया जाता है। "यह इमारत देख आना और उसी के अनुसार ताजमहल बनवाना ऐसा आदेश बादशाह शाहजहाँ ने मुझे दिया।" ऐसा एक शिलालेख किसी गपोड़े मुसलमान ने माण्डवगढ़ की एक इमारत पर अंकित किया है। ताजमहल शाहजहाँपूर्व इमारत है यह अब करोड़ों लोग जानते हैं। अतः वह शिलालेख सरासर झूठा है। इतना ही नहीं, उसमें और भी कई अन्य झूठ गुथे हुए हैं। उदाहरणार्थ इस इमारत को होशंगशाह की कब्र माना जाता है जबकि वह नीलकण्ठेश्वर का मन्दिर था। तो न ही माण्डवगढ़ वाली वह इमारत होशंगशाह की कब्र है और न ही आगरा की कोई इमारत मुमताज या एतमाद्उद्दौला की कब्र है।

इस्लामी तवारीखों में ऐसी कई बातें हैं जो आधुनिक अध्यापकों ने कांग्रेसी शासन के भय से और स्वयं मान-सम्मान पाने हेतु सरकार तथा जनता से छिपा रखी हैं। जैसे लगभग सारे ही सुल्तान, बादशाह तथा मुसलमान दरबारी, आदि शराब पिया करते, गाँजा-चरस आदि का नशा करते, हजारों स्त्रियों का जनानखाना रखते, गद्दी पर आते ही सारे हिन्दू मन्दिर गिरा देने की आज्ञा देते, कत्ल करते, हजारों हिन्दुओं को छल-बल से मुसलमान बनाते, कपट या विश्वासघात से विरोधियों को परास्त करते, हिन्दुओं का उल्लेख 'हरामजादे' आदि गालियों से किया करते, हिन्दू दूर से ही पहचाना जाए इसलिए निजी कपड़ों पर किसी रंग का धब्बा लगा लेने की सख्ती हिन्दुओं पर की जाती ताकि प्रत्येक मुसलमान उन्हें लज्जित और अपमानित कर सके। कई सुल्तानों ने हिन्दुओं को घोड़े पर सवार होने से मना किया था। ऐसी कई बातें इस्लामी तवारीखों में उल्लिखित हैं। किन्तु आधुनिक कांग्रेसी शासक ऐसे उल्लेखों को विद्यालयीन पाठ्य-पुस्तकों

में प्रकट नहीं होने देना चाहते।

कई सुल्तान, बादशाहों के द्वार पर बेकार खुशामदी इस्लामी लेखक बैठे रहते थे। उनसे बादशाह या वजीर आदि के आदेशानुसार ब्योरा लिखवा दिया जाता। इससे एक साथ कई प्रतियाँ तैयार हो जातीं। उस काल में मुद्रण की सुविधा न होने से कई लिपिकों को एक साथ बैठाकर कहे गए ब्योरे की कई प्रतियाँ बनवाई जाती थीं।

वह प्रतियाँ वजीर, सेनानी आदि प्रमुख सरदार दरबारियों को इसलिए बांट दी जातीं कि वे बादशाह से सम्मत उस ब्योरे के अतिरिक्त किसी से कुछ बात न करें।

ऐसी अनेक लिपिकों द्वारा शाही तवारीख की एक साथ कई प्रतियाँ बनाने में एक बड़ा धोखा भी होता था। प्रत्येक लिपिक के कई दरबारियों से अच्छे-बुरे सम्बन्ध होते थे। बादशाह द्वारा लिखवाए गए ब्योरे में उन सरदार दरबारियों के सम्बन्ध में जो अनुकूल या प्रतिकूल कथन होता था उसे कुछ शब्दों की हेरा-फेरी से प्रत्येक लिपिक मनमाना मोड़ दे सकता था। क्योंकि सारे लिपिकों द्वारा लिखी प्रतियाँ ठेठ जैसी लिखवाई गईं, वैसी ही लिखी गई या नहीं, इसकी जाँच दरबार की भागा-दौड़ी तथा उथल-पुथल में होना सम्भव नहीं था। यदि योगायोग से जाँच हुई और हेरा-फेरी पकड़ी भी गई तो सुनने में या लिखने में गलती हो जाने का बहाना बनाकर लिपिक क्षमा माँग लेता था।

अतः किसी इस्लामी दरबारी तवारीख के एक ही संस्करण में कई पाठ-भेद हो सकते हैं। उनमें कौन-सा कथन झूठा या कौन-सा सही है इसका अनुमान अनेक उपलब्ध पाठ-भेदों की तुलना से और तत्कालीन दरबारी परिस्थितियों के आंकलन से लगाया जा सकता है।

कई बार सुल्तान बादशाह की प्रसन्नता या नाराजगी के अनुसार वजीर, सेनानी, दरबारी आदि ओहदे पर नए व्यक्ति नियुक्त होते। उन्हें देने के लिए शाही तवारीख की प्रतियाँ उपलब्ध न होने से पुनः लिपिकों को बैठाकर उनसे शाही आज्ञा के अनुसार एक अन्य दरबारनामा लिखवा लिया जाता। इसका नाम तो जहाँगीरनामा, शाहजहाँनामा आदि वही पुराना होता, किन्तु चार-पाँच वर्षों में सुल्तान या बादशाह की मनोवृत्ति में जो

परिवर्तन हुआ हो उसके अनुसार नया ब्योरा लिखवाया जाता। ऐसा करते समय पिछले संस्करण में जिनकी प्रशंसा होती उनकी अब निन्दा होती या उसमें जिनकी निन्दा होती उनकी अब प्रशंसा की जाती। इस प्रकार एक ही नाम के इस्लामी तवारीख के कई संस्करण तथा कई पाठ-भेद हो सकते हैं। तथापि उसमें भी किसी समय सत्य परिस्थिति क्या थी इसका पता अवश्य लगाया जा सकता है, यदि इतिहासज्ञ निजी वर्तमान भोली-भाली अध्ययन पद्धति छोड़कर हमारी बताई जागरूक पद्धति से तथा सर्वंकष दृष्टि से इतिहास का निरीक्षण, अध्ययन तथा संशोधन की कला सीखें।

इस्लामी सुल्तान-बादशाहों के समय अधिकतर लोग निरक्षर या अनपढ़ होते थे। जो चन्द पढ़-लिख सकते थे वे सुल्तान, नवाब या बादशाह की कृपादृष्टि के लिए लालायित होकर दरबार के द्वार पर सारा दिन उपस्थित रहते थे। आते-जाते दरबारी, नवाब, सुल्तान तथा बादशाह आदि को प्रसन्न करने हेतु वे उनकी खुशामद में कपोलकल्पित ब्योरा लिख लाते। सुल्तान या बादशाह को वह पसन्द आने पर वह लिखित सामग्री दरबार में जमा कर लेखक को कुछ मोहरें दे दी जातीं। ऐसे ही लालची गिरोह में से किसी एक या दो को सुल्तान या बादशाह यथावकाश दरबारी तवारीख लेखन के लिए चुन लेता। अबुलफजल को अकबर ने इसी प्रकार चुना था। ऐसे चुने हुए खुशामदी लेखक जब दरबारी इतिहास लिखते तब उन तवारीखों में सत्य कम और चापलूसी अधिक होना स्वाभाविक था।

ऐसी तवारीखों में सुल्तान या बादशाहों के दादा-पड़दादाओं ने इतनी मस्जिदें, इतने मकबरे, इतने नगर, महल, बाग आदि बनवाने का कपोल-कल्पित उल्लेख किया जाता ताकि उस सुल्तान के खानदान के बड़प्पन की लोग तारीफ करें। दो-तीन पीढ़ियों पूर्व की बात दरबारी तवारीखों में लिख देना इस कारण आसान था कि न तो कोई उसका प्रमाण माँग सकता था न कोई उसे झूठा सिद्ध कर सकता था। शम्स्-ई-शिराज़ अफीफ ने दो पीढ़ी पूर्व के फिरोजशाह तुगलक की ऐसी ही अनेक कपोलकल्पित करतूतें किस प्रकार लिख रखी हैं उसका हम उल्लेख इसी ग्रन्थ में कर चुके हैं।

कई बार तत्कालीन इस्लामी तवारीख लिखने वालों ने जो दावे नहीं किए या जो श्रेय मुसलमान सुल्तान-बादशाहों को कभी बख्शा नहीं, वह श्रेय

कांग्रेस के आधुनिक खुशामदी इतिहास के अध्यापकों ने तथा अधिकारियों ने दे रखा है। उदाहरणार्थ अकबर ने फतेहपुर सीकरी नगर का निर्माण किया ऐसा उल्लेख तत्कालीन तवारीखों में कहीं नहीं है। इसी प्रकार शाहजहाँ द्वारा पुराना दिल्ली नगर निर्माण करने का या जामा मस्जिद तथा ताजमहल बनवाने का उल्लेख स्वयं शाहजहाँ की दरबारी तथा रोज बादशाहनामे में नहीं है। फिर भी अमेरिका के हारवर्ड जैसे विश्वविद्यालय और एक आस्ट्रेलियाई विश्वविद्यालय ने (अलीगढ़ के कुछ मुसलमान अध्यापकों के प्रोत्साहन से) अकबर को फतेहपुर सीकरी का निर्माता माना है। हारवर्ड विश्वविद्यालय ने इस विषय पर एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन सन् १९८२ में आयोजित किया था। क्योंकि अरबों ने हारवर्ड विश्वविद्यालय को करोड़ों रुपयों का अनुदान देकर इस्लामी स्थापत्यकला का ढिंढोरा पीटने को कहा। सुल्तान, बादशाह तो मर गए तथापि उनके झूठे खुशामदखोरों की अमेरिका से आस्ट्रेलिया तक के ईसाई विद्वानों में भी कोई कमी नहीं। पैसे के लालच में इन ईसाई इतिहासज्ञों को ऐतिहासिक सत्य को कुचल डालने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं होती। अलीगढ़ी अध्यापकों के प्रोत्साहन से जब एक ऑस्ट्रेलियाई विश्वविद्यालय ने फतेहपुर सीकरी का निर्माता अकबर को मानकर एक पुस्तक प्रकाशित करवाई तब अलीगढ़ प्रोफेसरों ने उन ऑस्ट्रेलियन अध्यापकों से यह बात छिपाए रखी कि उनसे ८-१० वर्ष पूर्व ही Fatehpur Sikri is a Hindu City (फतेहपुर सीकरी एक हिन्दू नगर) शीर्षक की अपनी पुस्तक में मैंने अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध किया था कि फतेहपुर सीकरी नगर अकबर तथा बाबर से भी कई पीढ़ी पूर्व सीकरवाल राजपूतों की राजधानी रही है। तात्पर्य यह है कि इतिहास झुठलाने का यह अन्तर्राष्ट्रीय षड्यन्त्र ईसाई तथा इस्लामी विद्वानों के आपसी सहयोग से अब भी चलाया जा रहा है। इस षड्यन्त्र में कांग्रेसी शासन की कृपा सम्पादन के लिए लालायित हिन्दू अध्यापक भी शामिल हैं, क्योंकि उन्हें सत्य या हिन्दू गौरव से अधिक व्यक्तिगत स्वार्थ की चिन्ता अधिक रहती है।

इस्लामी तवारीखों में आरम्भ से अन्त तक कितने झूठे दावे किए होते हैं उसका उदाहरण इलियट एवं डाउसन के आठ खण्डों ग्रन्थ में दिए जहाँगीर-

नामे के विश्लेषण में देखा जा सकता है।

जहाँगीरनामे के आरम्भ में लिखा है कि "मैं सलीम जहाँगीर अपनी कलम से, अपने हाथ से यह तवारीख लिख रहा हूँ।" उस पर इलियट साहब की टिप्पणी है कि "जहाँगीर शराब, गाँजा आदि के अपार सेवन के कारण खुले दरबार में भी सोया-सोया-सा रहता था, उसके मुँह से फेन भी निकला करता था। ऐसा व्यक्ति कभी तवारीख लिख ही नहीं सकता।" इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि इस्लामी तवारीखें यद्यपि प्रथम पुरुष की भूमिका में सुल्तान, बादशाह, बेगमों आदि के नाम से प्रकाशित की गई हैं तथापि वास्तव में वे किसी दरबारी खुशामदी लेखक ने ही लिखी हैं।

जहाँगीरनामे में दूसरा दावा यह किया गया है कि "मेरे राज्य में किसी को आधी रात भी न्याय मिल सके इसके लिए मैंने अपने महल में एक घण्टा लटका रखा था जिसकी सोने की डोर आगरा के किले के बाहर यमुना के तीर पर लटका छोड़ी थी ताकि कोई भी प्रजाजन डोर हिलाकर जहाँगीर को घण्टानाद द्वारा अन्याय का परिमार्जन करने के लिए पुकार सके।"

उस पर इलियट साहब की टिप्पणी कहती है कि "यह दावा सरासर झूठ है क्योंकि इतिहास में केवल दो ही सम्राटों ने ऐसा न्याय घण्टा लगा रखा था। एक था चीन का सम्राट वू तु (Wu Tu) और दूसरा था भारत का अनंगपाल।"

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इस्लामी तवारीखों के लेखक क्षत्रिय गौरव की बातें झूठ-मूठ ही लिखी बादशाहों की जीवनकथा में मढ़ देते थे।

सर थॉमस रो नाम के एक अंग्रेज ने जहाँगीर को भेंट कर सरकारी आंग्ल व्यापारी कम्पनी के लिए भारत में कुछ सुविधाएँ माँगी थीं। उसने निजी संस्मरणों में मुगल दरबार के एक ढोंग का उल्लेख किया है। "जहाँगीर के जन्मदिन पर बादशाह की सुवर्णतुला की तैयारी की गई। सारे दरबारी तथा अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों को बुलवाया गया। जहाँगीर एक पलड़े में बैठाया गया। दूसरे पलड़े में कपड़े में बँधी भारी वस्तुएँ रखी गईं। जनता से कहा गया कि उस दूसरे पलड़े में सोना, चाँदी, जवाहरात आदि कीमती वस्तुएँ हैं। किन्तु वे कीमती वस्तुएँ किसी को दिख ही नहीं रही थीं। अतः हो सकता है कि केवल पत्थरों से ही जहाँगीर को तोला गया हो।

जब दूसरे पलड़े में कोई उपयुक्त वस्तु थी ही नहीं तो बादशाह के भार के बराबर की वे वस्तुएं गरीबों को बांटने का प्रश्न ही नहीं उठता।"

इस दूसरे उदाहरण से भी यह सिद्ध होता है कि इस्लामी दरबारी, खुशामदकार राजपूतों के गौरव की बातों से मुसलमान सुल्तान-नवाब-बादशाहों की क्रूर दुराचारी जीवनकथाएं सजाते थे।

जहांगीरनामे में एक उल्लेख यह भी है कि "मैं जहांगीर, न्याय व कानूनी कारवाही बिना किसी की भी दौलत हथियाता नहीं।"

इस पर सर एच० एम० इलियट ने टिप्पणी लिखी है कि "एक राजपूत राजा मुसलमान बनकर महाबतखां कहलाता था। वह जब जहांगीर की सेनाओं का नेतृत्व करते हुए काबुल में लड़ रहा था तब 'आगरा में शहजादा परवेज के निवास के लिए योग्य स्थान चाहिए', इस बहाने महाबतखां की अनुपस्थिति में उसके परिवार से महल खाली करवाकर शहजादा परवेज की उस महल में रहने की व्यवस्था की गई।"

सारा इस्लामी शासन इस प्रकार ढोंग और अत्याचारों की घटनाओं से भरा पड़ा है। तथापि आधुनिक कांग्रेसी शासन में विद्यालयों में पढ़ाने के लिए जो पाठ्य-पुस्तक मंजूर की जाती हैं उनमें जानबूझकर ६०० वर्षों के इस्लामी शासन के दुराचार, विश्वासघात आदि का जरा-सा भी उल्लेख नहीं होने दिया जाता। और तो और उन पाठों में इस्लामी बादशाहों, बेगमों आदि के हाथों में गुलाब के नाजुक फूल पकड़े चित्र बताए जाते हैं ताकि मुसलमानों का शासन कोमल, सुन्दर तथा सुगन्धियुक्त था, ऐसा भ्रम विद्यार्थियों के मन में निर्माण हो। आगे चलकर ऐसे ही विद्यार्थी सरकारी अधिकारी बनकर इस्लामी शासन का असली अत्याचारी इतिहास दबाए रखने का कर्तव्य निभाते रहते हैं।

मालफुजात-इ-तिमूरी नाम की तवारीख भी स्वयं तैमूरलंग के लिखे निजी संस्मरण माने जाते हैं। उसकी विविध प्रतियों में भी कई पाठ-भेद हैं। उसकी एक प्रति में अन्तिम हास्यास्पद उल्लेख ऐसा है कि "मैं तैमूरलंग अन्नार गांव में आ पहुंचा ही था इतने में मेरा देहान्त हो गया।"

भला कोई व्यक्ति आत्मचरित् में निजी देहान्त की घटना लिख सकेगा क्या? तथापि तैमूरलंग की आत्मकथा की एक प्रति में वैसा उल्लेख है।

इससे भी सिद्ध होता है कि जो संस्मरण सुल्तान, नवाब, बादशाह, आक्रामक आदि ने स्वयं लिखे प्रतीत होते हैं वे वस्तुतः उसके खुशामदकारों द्वारा लिखे हुए हैं।

इन्हीं प्रमाणों से हम संशोधकों को सावधान कराना चाहते हैं कि अब्दुररहीम खानखाना, हिन्दी तथा संस्कृत जानता था और दाराशिकोह ने उपनिषद् तथा महाभारत ग्रन्थों के फारसी अनुवाद किए हैं आदि जो बातें इतिहास में इस्लाम के चाटुकारों ने मढ़ रखी हैं उनकी बारीकी से जांच होनी आवश्यक है। मुसलमानों के पक्ष में ऊटपटांग बातें भी कही जाएं तो उन पर आक्षेप उठाने का कांग्रेसी शासन में कोई साहस नहीं करता। सारे 'हां' में 'हां' मिला देते हैं।

उपनिषद्, महाभारत आदि ग्रन्थों का फारसी अनुवाद करना कोई हंसी-मजाक है क्या? खूंखार मुसलमानों के भोग-विलासी दरबारी वातावरण में दारा (जो मध्य आयु में ही औरंगजेब द्वारा कैद करके मार डाला गया) को संस्कृत शिक्षा किस व्यक्ति ने कितने वर्ष दी? उपनिषद् तथा महाभारत आदि बड़े-बड़े ग्रन्थों का अध्ययन दारा ने कब और किसके सहाय्य से किया? उनका वह फारसी में अनुवाद कर सके इतनी गहराई का संस्कृत तथा फारसी का ज्ञान दारा ने कैसे और कब पाया? उतना ज्ञान पाने पर भी उपनिषद् तथा महाभारत आदि का अनुवाद कर सके इतना परिश्रम दारा ने कैसे किया जबकि वह दारू, अफीम आदि खाकर जनानखाने में पड़ा रहता था?

न्यायालय में जिस प्रकार विरोधी पक्ष का वकील वादी के साक्षीदार (गवाह) की उल्टी जांच (Cross examination) करता है वैसे ही प्रत्येक ऐतिहासिक तथ्य की कड़ी सर्वांगीण जांच करने की कला संशोधकों ने सीखना आवश्यक है। गत एक सौ वर्षों में इस अत्यावश्यक शोधपद्धति का अभाव ही रहा है। किसी गोरे ईसाई ने या मुसलमान ने जो भी कह डाला उसे स्वयंसिद्ध समझकर दूसरों ने मान लिया। उसका विरोध करने की या उसमें दोष बतलाने की किसी की हिम्मत ही नहीं हुई। यही आज तक इतिहास के पठन-पाठन, लेखन तथा संशोधन की प्रथा रही है। इस प्रथा की जितनी कड़ी भर्त्सना की जाए उतनी कम है क्योंकि उसमें आत्म-पक्ष

की निन्दा, शत्रुपक्ष की राष्ट्रद्रोही प्रशंसा, स्वार्थ लालसा से जानबूझकर असत्य कथन, अज्ञान या बेदरकार अनवधानता आदि अनेक दोषों की दुर्गन्ध आती है।

जिस प्रकार चीता, सिंह आदि डरावने पशुओं को मारकर उनमें भूसा भरकर दीवानखाने की निर्जीव सजावट के लिए उनका प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार भारतीय तथा जागतिक इतिहास को भी सत्यहीन, खोखला बनाकर कपोलकल्पित मतलबी बातों का भूसा भरकर केवल एक नकली विद्या बना छोड़ा है।

इलियट और डासन नाम के दो अंग्रेज विद्वानों ने मोहम्मद-बिन-कासिम (सन् ७१२) से लेकर बहादुरशाह जफर (सन् १८५८) तक की सैंकड़ों इस्लामी तवारीखों के लम्बे-लम्बे उद्धरणों का आंग्ल अनुवाद कर उन पर टिप्पणियां लिखी हैं। वह संकलन आठ खण्डों में प्रकाशित हुआ है।

उन तवारीखों के अध्ययन से इन दो विद्वानों ने जो निष्कर्ष निकाला है वह उन्होंने उस अष्टभागों के ग्रन्थ की प्रस्तावना में प्रकट किया है। उनका निष्कर्ष यह है कि Muslim History is an impudent and interested fraud यानि "मुसलमानों का लिखा इतिहास एक बड़ी धीर और स्वार्थी ठगी (चाटुकारिता) है।"

हमारा भी निष्कर्ष ठेठ वही तो है। तथापि हम उन अंग्रेजों की एक बड़ी भूल के प्रति पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं। उन गोरे साहबों ने उस आठ भागों वाले संकलित ग्रंथ को India's History as written by its own Historians ऐसा नाम दिया है जो उनके निष्कर्ष से पूर्णतया विपरीत है। "भारतीयों ने लिखा भारत का इतिहास" यह उस ग्रन्थ को उन साहबों का दिया नाम सर्वथा अनुचित है। अलबरूनी, तैमूरलंग, बाबर, गुलबदन बेगम, अबुलफजल, बदायूंनी, जहांगीर, मुल्ला, अब्दुल हमीद लाहौरी आदि जिन सैंकड़ों लेखकों के उद्धरण इलियट और डासन द्वारा संकलित किए गए हैं वे भारतीय थोड़े ही थे, वे तो हिन्दुओं के इतने कट्टर विरोधी, शत्रु थे कि वे अपनी लिखी तवारीखों में हिन्दुओं का उल्लेख "हिन्दू" नाम से करने की बजाय "कुत्ते, कम्बख्त, हरामजादे, चोर, डाकू, गुलाम, काफिर, रंडी, नाचने वाली" आदि तिरस्कार भरे शब्दों से करते

रहे हैं। अतः इलियट और डासन द्वारा संकलित किए आठ भागों के ग्रन्थ का नाम होना चाहिए था—India's History as written by its own Dire Enemies यानि "भारत के कट्टर शत्रुओं द्वारा लिखा भारत का इतिहास"। इसी कारण तो वह झूठ और घृणा से भरा पड़ा है। यदि वह सचमुच ही भारतीयों द्वारा लिखा होता तो वह हिन्दुओं का इतना तिरस्कार नहीं करता और न ही इस्लामी अत्याचारों का समर्थन करता।

मुसलमानों को मराठों ने परास्त कर सिंधु नदी के पार धकेल दिया। फिर भी उन्होंने अफगानिस्थान से अरबस्थान तक इस्लामी शत्रु का पीछा कर उसे समाप्त करने का कार्य अधूरा छोड़कर बड़ी भारी गलती की।

यदि सऊदी अरब से हिन्दुत्व का खात्मा करते-करते इस्लामी अरब हिन्दुस्थान में दाखिल हो सकते हैं तो हिन्दू क्षत्रिय वीर भारत से मुसलमानों का सफाया करते-करते सऊदी अरबस्थान तक क्यों नहीं पहुँच सकते। रोग आधा-अधूरा छोड़ देने से वह प्राण को खा जाता है। यह मुसलमानों ने पाकिस्तान तथा कश्मीर का कुछ भाग निगलकर सिद्ध कर ही दिया है।

मराठे जब पानीपत में अहमदशाह अब्दाली की सेना से १४ जनवरी, १७६१ को लड़े तब यदि जाट तथा राजपूत रियासतें उनका साथ देतीं तो हिन्दू फौजें पानीपत से करबला तक पहुँच सकती थीं। एकता में शक्ति होती है यह सबक हिन्दुओं ने भूलना नहीं चाहिए।

भारत से इस्लामी सत्ता का अन्त होने पर यदि हिन्दू सत्ता कायम हो जाती तो भारत एक प्रगत एवं प्रबल देश बन जाता। किन्तु मुसलमानों के पंजे से छूटा दुर्बल, विह्वल, दरिद्र, नंगा, रोगजर्जर भारत अगले दो सौ वर्ष फिर गोरे ईसाइयों द्वारा घसीटा, रगड़ा और लूटा गया।

इस कारण सन् १९४७ में स्वतंत्र बना भारत राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से केवल एक अस्थि-पंजर वाला भूत-सा लड़खड़ा रहा था। ऐसी नाजुक अवस्था में कांग्रेस दल के अन्धे, अज्ञानी, शत्रुप्रशंसक, भ्रष्टाचारी शासन से भारत की और अधिक दुर्दशा हो गई। आधे से अधिक लोग निरक्षर तथा भूखे रह गए।

मुसलमानों द्वारा झुठलाए इतिहास को प्रथम ब्रिटिश पुरातत्व प्रमुख मेजर जनरल अलेक्जेंडर कनिंगहम के द्वारा की गई हेराफेरी ने और

हिन्दू-विरोधी बना दिया।

मुसलमानों तथा ब्रिटिश लेखकों द्वारा खण्डित एवं विकृत इतिहास को ही इतना [illegible] बनने वाले कांग्रेसी शासन ने इतिहास को निकम्मा या [illegible] विषय कहकर उसे Social Studies (यानि सामाजिक शिक्षा) की शिक्षा से [illegible] दिया। दूध के रंग को जल का संग देकर नकली सत्व-हीन [illegible] दूध बेचने वाले लुच्चे ग्वाले की भाँति कांग्रेस ने इतिहास में [illegible] की मिलावट कराकर इतिहास को एक नगण्य, रुचिहीन, स्वतंत्र अस्तित्वहीन, निरर्थक, निकम्मा विषय बना डाला। क्योंकि आठवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक के इतिहास में (चाहे कितना ही टालने का यत्न करें) इस्लामी आक्रामकों से हिन्दुओं के संघर्ष की बात आती थी जो कांग्रेस के नेताओं को बुरी लगती थी क्योंकि वे मुसलमान मतदाताओं को यह बतलाना चाहते थे कि हिन्दू-मुसलमान एक हैं। किन्तु इतिहास से बार-बार यह प्रतीत होता था कि मुसलमान सर्वदा हिन्दुओं से तिरस्कार तथा दुष्टता का ही व्यवहार करते रहे हैं।

वस्तुतः कांग्रेस ने 'सत्यमेव जयते' के नारे के अनुसार यह कहना था कि "इतिहास तो जैसा घटा वैसा ही सिखाया जाना चाहिए। किन्तु हाल में जो मुसलमान भारत में हैं वे विदेशी आक्रामक तुर्क, अरब, ईरानी, पठान आदि न होते हुए हिन्दू पूर्वजों के पौत्र-प्रपौत्र आदि होने से उन्होंने अपने-आपको भारतीय ही मानना चाहिए और पुनः हिन्दू हो जाना चाहिए।" ऐसी सीधी-सादी, सत्य नीति अपनाने की बजाय कांग्रेस ने इतिहास से खिलवाड़ कर मुसलमानों के तथा अंग्रेजों के शासन में इतिहास में जो थोड़ी सत्यता भी थी, उसे भी नष्ट कर दिया।

मुसलमानों के दुराचारों से लोगों का ध्यान हटाने के हेतु कांग्रेसी तथा समाजवादी नेताओं ने यह कहना आरम्भ किया कि इतिहास में राजा-सरदार-दरबारी आदि का उल्लेख करने की बजाय सामान्य जनजीवन का विवरण होना चाहिए।

ऊपर उद्धृत तर्क लोगों को गुमराह करने का एक निन्दनीय प्रयास है। लोहार, बढ़ई, सुनार, चमार, शिक्षक आदि सामान्य लोग एक सर्वपरिचित सामान्य जीवन बिताते हैं। दैनन्दिन काम पर जाने-आने आदि के कारण उनके

सामान्य जीवन में उल्लेखनीय या संस्मरणीय ऐसी कोई बात नहीं होती। जब ढाका के जुलाहे बड़ी मुलायम तथा पतली मलमल तैयार करते थे तब उनकी उस कुशलता का उल्लेख इतिहास में अवश्य आया। इस प्रकार जन-सामान्य जब कोई असामान्य करतब दिखाते हैं तो उसका उल्लेख इतिहास में अपने आप बगैर कहे आता है। क्योंकि इतिहास एक प्रकार का दीर्घकालीन समाचार-पत्र होता है। उसमें सारी असामान्य घटनाएँ अपने आप अंकित हो जाती हैं। सामान्य जनता भी यदि कोई असामान्य बात करें तो इतिहास उनकी अवश्य दखल लेता है। वैसे आमतौर पर इतिहास का ध्यान सत्ता केन्द्रों पर लगा रहता है। इसी कारण इतिहास में सामान्यतः तथा मुख्यतः सत्ता केन्द्रों की उथल-पुथल का ही उल्लेख होता रहता है। जब तक राजा सर्वाधिकारी थे तब तक इतिहास में अधिकतर उनकी कार्यवाही लिखी जाती थी। जब बादशाह दुर्बल होकर किसी दरबारी गुट के हाथ अधिकार आते तो इतिहास में उनके क्रियाकलाप दर्ज होते। जब राजा के हाथों से सत्ता निकल कर मंत्रिमंडल के या पार्लियामेंट (जनसभा) के हाथ में आती है तो इतिहास में अपने आप उनकी कार्यवाही को प्रमुखता दी जाती है। क्योंकि सत्ताकेन्द्र की सशक्तता तथा दुर्बलता अथवा पराक्रम या पराभव की छाप सारे देश पर और समस्त नागरिकों पर पड़ती है।

ईसाइयों की धौंसबाजी

मुसलमानों की तरह ईसाइयों ने भी इतिहास में असीम काट-छाँट तथा हेरा-फेरी की है। उदाहरणार्थ रोम के वैटिकन में जो पापा उर्फ पोप ईसाई कॅथोलिक धर्मगुरु माने जाते हैं, वे लगभग सन् ३१८ तक वैदिक शंकराचार्य थे। इसी प्रकार ग्रेट ब्रिटेन के Canterbury (यानि शंकरपुरी) के प्रोटेस्टंट पन्थी ईसाई धर्मगुरु छठवीं शताब्दी तक वैदिक शंकराचार्य थे। उन्हें आज-कल Archbishop कहा जाता है। इस प्रकार यूरोप के अन्य अनेक देशों में भी जो ईसाई धर्मपीठ या प्रसिद्ध, भव्य, प्राचीन गिरिजाघर माने जाते हैं, वे सारे वैदिक केन्द्र थे।

ईसवी सन् पूर्व के उनके इतिहास की खोज करने की बात पर सामान्य यूरोपीय विद्वान चुप रहते हैं। स्वयं ईसाई होने के नाते जहाँ ईसाइयत्

निराधार होने की पोल खुलने की सम्भावना हो वहाँ वे कभी संशोधन नहीं करते। अत: यूरोपीय लोगों की बाबत जो सामान्य धारणा है कि उनमें बड़ी ज्ञान-लालसा होती है, वे सत्य के बड़े प्रेमी हैं और जब कभी कोई आशंका हो वे तुरन्त अन्वेषण आरम्भ कर देते हैं वगैरा, सही नहीं है। मेरा अपना अनुभव है कि ताजमहल का निर्माण शाहजहाँ से सदियों पूर्व हुआ था। इस मेरे शोध की पुष्टि करना तो दूर रहा यूरोप और अमेरिका के समाचार-पत्र तथा रेडियो, टी० वी० आदि प्रसार माध्यम उस वार्ता को भी प्रकाशित नहीं करना चाहते। यहाँ तक कि सम्पादकीय पत्र-व्यवहार में भी वे हमारे पत्र नहीं छापते जिनसे हम London Times, Washington Post, Newyork Times, Life, Time, Christian Science Monitor आदि विदेशी समाचार-पत्र, पत्रिकाओं के पाठकों को अवगत कराना चाहते हैं कि ताजमहल आदि भारतीय ऐतिहासिक इमारतों की बाबत प्रेक्षकों को उनके इस्लाम निर्माण की जो बातें कही जाती हैं वे निराधार हैं।

इसी प्रकार पोप तथा आर्चबिशप के धर्मपीठ मूलत: वैदिक धर्मपीठ थे, यूरोप के सारे गिरिजाघर वैदिक मन्दिर थे। ईसापूर्वकाल में यूरोप में वेद, उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत तथा संस्कृत भाषा वाली पूरी वैदिक संस्कृति थी आदि हमारी शोधों पर यूरोप के सारे विद्वान तथा शोध संघटन चुप हैं। क्योंकि ईसाइयत से भी पूर्व उनकी कोई और सभ्यता थी इस बात को वे पूर्णतया दबा देना चाहते हैं। अमेरिका के हारवर्ड विश्वविद्यालय में फ्रेंच संस्कृति विभाग को जब मैंने लिखा कि ईसापूर्व फ्रांस में वैदिक सभ्यता थी इसकी बाबत क्या वे कुछ जानते हैं? तो उन्होंने उत्तर दिया कि वे ईसापूर्व फ्रांस का अध्ययन या अन्वेषण करते ही नहीं।

वास्तव में बात यह है कि जिस प्रकार कोई भी मुसलमान अपने हिन्दू पूर्वजों का इतिहास जानने की बात कभी नहीं करता उसी प्रकार ईसाई लोग भी ईसापूर्व यूरोप का विचार नहीं करते। ईसामसीह नाम का कोई व्यक्ति था ही नहीं इस तथ्य का भी अन्वेषण वे टालते रहते हैं।

सन्त थामस (St. Thomas) के भारत आगमन की धौंस

ईसामसीह की कपोलकल्पित जीवनी में ईसा के अन्तिम भोजन की एक घटना कही जाती है। कहते हैं कि शाम को १२-१३ अनुयायियों के साथ जब वे भोजन कर रहे थे तब रोमन पुलिस ने छापा मारा। उस समय उन अनुयायियों में से एक ने ईसा के प्रति अँगुलिनिर्देश किया। इससे अधिकारीगण ईसामसीह को बन्दी बना सके। तत्पश्चात् ईसा पर अभियोग चला और उसे क्रूस पर कील ठोक कर मारने का दण्ड सुनाया गया।

ईसामसीह नाम का कोई व्यक्ति कभी था ही नहीं, इस विषय पर यूरोप में तीन-चार सौ ग्रन्थ या लेख लिखे गए हैं। उनकी जरा भी दखल न लेते हुए ईसाई लोग निजी पन्थ का प्रसार बढ़ाए चले जा रहे हैं।

ईसामसीह की वे जो जीवनी कहते हैं वह कपोलकल्पित होने से उसमें कई त्रुटियाँ हैं। उदाहरणार्थं ऊपर उद्धृत सायं भोजन की कथा में कहा गया है कि १३-१४ व्यक्तियों में से ईसा कौन है? यह एक अनुयायी के बताने पर पुलिस ने ईसा को बन्दी बनाया। यह बात इसलिए अटपटी लगती है कि एक महात्मा होने के नाते ईसामसीह जब इतना प्रसिद्ध था तो केवल १३-१४ व्यक्तियों में भी पुलिस ईसा को क्यों पहचान नहीं सकी? उनमें से ईसा कौन है? यह एक अनुयायी को पुलिस को बताने की आवश्यकता ही क्यों थी?

कहते हैं कि उन अनुयायियों में सन्त थामस (St. Thomas) नाम का एक व्यक्ति था जो ईसामसीह के सूली चढ़ाए जाने के पश्चात् अफगानिस्थान होते हुए भारत आ पहुँचा और मद्रास में उसका वध हुआ।

यह कथा पूर्णतया निराधार होते हुए भी ईसाई पन्थी लोग बड़े आग्रह से उसका प्रचार करते रहते हैं। जब ईसामसीह स्वयं काल्पनिक व्यक्ति हैं तो १३-१४ अनुयायियों के साथ उसने सायं भोज किया, उनमें से St. Thomas नाम का अनुयायी बाद में भारत में आकर धर्मप्रचार करने लगा आदि सारी घटनाएँ कपोलकल्पित हैं। न कोई St. Thomas नाम का अनुयायी था और न ही कभी वह भारत आया।

उसी कथा का एक पाठभेद यह है कि St. Thomas अफगानिस्थान में ही मारा गया। उस कथा की निराधारता उस पाठभेद से भी स्पष्ट होती है।

यह भी सोचने की बात है कि यदि स्वयं ईसामसीह और St. Peter, St. Paul, St. Thomas आदि सारे ही शान्तिदूत थे और शान्तिधर्म का प्रसार कर रहे थे तो उन्हें तत्कालीन जनता ने छल से क्यों मारा ? इससे अनुमान यह निकलता है कि वे सारे दहशतवादी होने से तत्कालीन जनता ने उन्हें देहदण्ड दिया।

बाईबल का जो भाग Luke ने लिखा उसका शीर्षक है Acts of the Apostles। वह सन् ६० की घटना है। उस समय St. Thomas की आयु ६० वर्ष से भी अधिक होती। इतनी वृद्ध अवस्था में St. Thomas द्वारा जेरूसलेम से मद्रास की यात्रा करना उन दिनों सम्भव नहीं था।

दूसरा मुद्दा यह है कि ईसाइयत का प्रचार देश-विदेश में करने के लिए प्रचारक भेजने की प्रथा तो चौथी शताब्दी में आरम्भ हुई जब सम्राट् कंसदैत्यन् (Constantine) ने उस पन्थ का सदस्यत्व सन् ३१२ ईसवी के लगभग स्वीकारा। अत: प्रथम शताब्दी में St. Thomas के भारत में आने की बात ईसाई पादरियों की चलाई एक गप मात्र है।

सत्य तो यह है कि चौथी शताब्दी में Nestorian Christians के एक बड़े जत्थे को Syria देश के अन्य लोगों ने मार-मार कर सीमा पार कर दिया। वे लोग भटकते-भटकते भारत में आ पहुँचे। यहाँ केरल के राजा ने दयार्द्रता से उन्हें बसने की सारी सुविधाएँ प्रदान कीं। हो सकता है कि उनमें कोई St. Thomas नाम का व्यक्ति हो। किन्तु यह व्यक्ति ईसा का समकालीन शिष्य नहीं था।

इससे पाठकों को जान लेना चाहिए कि ईसाई तथा इस्लामी इतिहास आरम्भ से अन्त तक झूठ का भण्डार है। जब तक सशक्त प्रमाण न हों उनकी किसी बात पर विश्वास नहीं करना चाहिए। उन्होंने असुविधाकारी पुरातत्वीय अवशेषों को भी छिपा कर रखा या नष्ट किया या उनका गलत अर्थ लगाया। ईसापूर्व विश्वव्यापी वैदिक संस्कृति के ग्रन्थ, शिलालेख, सिक्के आदि अन्य प्रमाण भी उन्होंने नष्ट किए। अतएव इस्लामी तथा ईसाई इतिहासकारों, लेखकों या विद्वानों के कथन की पूरी पुष्टि बिना उन्हें मान लेने का वर्तमान रवैया छोड़ देना आवश्यक है।

भारतीय इतिहासकारों के अक्षम्य अपराध

विश्व का वर्तमान इतिहास कितने विशाल प्रमाण में निराधार एवं कपोलकल्पित है, यह हमने इस ग्रन्थ के गत तीन खण्डों में पाठकों को विदित कराया।

गत सौ वर्षों की आंग्ल शिक्षा-प्रणाली में इतना दोषपूर्ण, खण्डित, विकृत, अप्रमाणित, कपोलकल्पित, निराधार इतिहास बिना रोक-टोक के पढ़ाया जाना कितनी निन्दनीय बात है।

उन सौ वर्षों में कई लेखक, ग्रन्थकार, पुरातत्वविद्, इतिहासज्ञ, स्थापत्यकार आदि की उनके पद, अधिकार या लेखन के लिए बड़ी प्रशंसा हुई तथापि उनमें से किसी को भी प्रचलित इतिहास के ढेर-के-ढेर दोषों में से किसी एक का भी पता नहीं लगा, यह कितनी दु:ख और आश्चर्य की बात है।

उनकी विद्वत्ता को निकम्मे करने वाले ऐसे कौन से दोष उनमें थे जिनके कारण उन्हें इतिहास की अनगिनत त्रुटियों का पता ही नहीं चला ? क्या उनकी पढ़ाई, निरीक्षण क्षमता, चिन्तन, तर्कपद्धति या संशोधन सम्बन्धी दृष्टिकोण में कोई न्यून था ? यह हम जाँचना चाहते हैं। क्योंकि कम-से-कम अब से आगे ऐसी सार्वजनिक अक्षमता हमारे विद्वानों में रहनी नहीं चाहिए। अत: इस अध्याय में हमारी शिक्षा, प्रशिक्षण-प्रथा तथा चिन्तन-प्रणाली के दोष हम बताना चाहते हैं जिसके कारण लगातार एक सौ वर्ष की आंग्ल शिक्षा-प्रणाली में प्रमादों और त्रुटियों से भरपूर इतिहास कई पीढ़ियों को रटाया जाने पर भी किसी विद्वान ने चूँ तक नहीं की। जनता

भविष्य में सावधान रहे। हमारे विद्वान भी अधिक जागरूक रहें। कोई ऐतिहासिक बात साधार है या निराधार—यह तुरन्त ताड़ लेने की उनकी क्षमता बढ़े। इस दृष्टि से आज तक की अनेक पीढियों के विद्वानों के प्रमुख दोष हम इस अध्याय में प्रस्तुत करना चाहते हैं ताकि आगामी पीढ़ियों के लोग वैसे प्रमादों से बचे रहें—

(१) ईसाई तथा इस्लामी स्रोतों से चली आई बातें ज्यों-की-त्यों मान लेने की प्रथा लोगों को त्याग देनी चाहिए। वे दोनों न केवल भारत के शत्रु रहे हैं अपितु वैदिक संस्कृति तथा वैदिक सभ्यता का सारा इतिहास नष्ट करने पर तुले हुए हैं।

(२) Comparative Philology तथा Comparative Mythology नाम के दो विषयों का जब भारत से नवपरिचित आंग्ल विद्वानों द्वारा ढोल पीटा गया तब तत्कालीन भारतीय विद्वानों को ऐसा लगा जैसे अंग्रेजों ने आकाश से कुछ अक्ल के तारे तोड़कर पृथ्वी के विद्याक्षेत्र में उनकी बहुमूल्य भेंट चढ़ाई हो।

Comparative Philology तथा Comparative Mythology में इतना ढिंढोरा पीटने योग्य कोई बात थी ही नहीं। उनमें एक सादा तत्व यह था कि यूरोप के विभिन्न देश तथा भारत आदि पूर्ववर्ती देश, इनकी भाषाओं में तथा पौराणिक कथाओं में बड़ी साम्यता होने से, उनका स्रोत एक ही होना चाहिए। इस तथ्य के आधारस्वरूप दोनों शाखाओं के दस-बीस उदाहरण उद्धृत करने से काम बन जाता है। इसके लिए बार-बार अधिकाधिक गहरा ब्योरा प्रस्तुत कराकर बात बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं।

वास्तव में आवश्यकता इस बात की थी कि दोनों का वह समान स्रोत कौन-सा है और समान स्रोत का कारण तथा इतिहास क्या है, इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढना। वे उत्तर तो यूरोपीय विद्वान आज तक नहीं दे पाए हैं या उन्होंने उस समान स्रोत को Indo-European नाम देकर बेगार टाल दी। वह Indo-European नाम सही नहीं है और न ही उससे किसी के कुछ पल्ले पड़ता है।

इससे और महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि वह समान स्रोत क्यों, कब से

और कहाँ से निर्माण हुआ ? यूरोपीय या अमेरिकी विद्वान् उस महत्त्वपूर्ण प्रश्न का आज तक कोई उत्तर दे नहीं पाए हैं।

इस ग्रन्थ में हमने न केवल उन दो प्रश्नों के अपितु विश्व इतिहास सम्बन्धी लगभग सारे ही महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर दे छोड़े हैं।

विश्व की सभी पौराणिक कथाओं में समानता इसलिए पाई जाती है कि विश्व के आरम्भ से ईसवी सन् के आरम्भ तक विश्व में सर्वत्र वैदिक सभ्यता, वैदिक समाज पद्धति तथा वेद, उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत आदि वैदिक साहित्य ही था।

इसी प्रकार विविध भाषाओं में समानता इसलिए पाई जाती है कि सभी भाषाएँ संस्कृत से ही निकली हैं। महाभारतीय युद्ध के पश्चात् संस्कृत गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली टूट जाने से जो विघटन हुआ उससे संस्कृत के प्रादेशिक अपभ्रंश बनते-बनते विविध भाषाएँ बनीं।

उन समस्याओं के ऐसे स्पष्ट उत्तर दिए बिना Comparative Mythology एवं Comparative Philology नाम के दो विषयों की चर्चा अंग्रेजों के शासन में जो भारत में चलती रही, वह सिर के बिना धड़ की पहचान करने जैसी थी।

(१) भारत तथा यूरोप की भाषा कभी Indo-European रही होगी अतः उनकी विविध भाषाओं में समानता पाई जाती है, इस उत्तर को हम बड़ा बलिश मानते हैं। भारत तथा पाकिस्तान की भाषाओं में बड़ी समानता क्यों है ? इस प्रश्न का उत्तर क्या यह हो सकता है कि अतीत में उनकी भाषा का नाम भारतीय-पाकिस्तानी रहा हो ? इतने अनाड़ी उत्तरों पर भी भारत के विद्वान, अंग्रेजों की विद्वत्ता पर मोहित क्यों होते रहे ?

(२) ऐतिहासिक इमारतें तथा नगर अधिकांश मुसलमानों के हैं यह दावा बगैर प्रमाणों के मान्य करने में भारतीय विद्वानों ने बड़ी भूल की। ऐसी मान्यता प्रदान करने का उन्हें कोई अधिकार नहीं था।

(३) ऐतिहासिक इमारतें तथा नगर की बनावट इस्लामी शैली की है यह बगैर जाँच या कसौटी के मान्य कर लेने में विद्वानों ने बहुत बड़ा अपराध किया है। ताजमहल आदि जो इमारतें इस्लामी शैली की मानी गई हैं वे वास्तव में कर्मठ हिन्दू वैदिक शैली की हैं। इस प्रकार हिन्दू शैली

का अक्षम्य अपराध है।
को इस्लामी शैली कहना विश्व भर के विद्वानों का ज्ञान शून्य है।
इससे पता चलता है कि स्थापत्य शैली सम्बन्धी विद्वानों का नींव, ईंट, पत्थर, लकड़ी
(४) ऐतिहासिक इमारतें तथा नगरों की
आदि की तनिक भी पुरातत्वीय ऐतिहासिक जाँच किए बिना ही अंग्रेजों के
या मुसलमानों के कहने पर उन्हें इस्लामी बनावट का मान लेने में भी
भारतीय विद्वानों ने बड़ी भारी गलती की है।

(५) इमारतों के अन्दर कब्रें तथा बाहर कुरान की आयतें देखकर ही
उन स्थल को इस्लामी मान लेने में भारतीय विद्वान बड़े निकम्मे साबित
हुए हैं। इमारतों पर अरबी, फारसी में लेख या किसी सुल्तान या बादशाह
का मात्र नाम अंकित होने से यदि वे मुसलमानों की मानी जाएँ तो कोई
भी गुण्डा रातोंरात किसी शहर के सारे भवनों पर निजी नाम रँगाकर उन
घरों को स्वसम्पत्ति घोषित कर सकेगा। कम-से-कम इतनी सावधानी तो
बरतनी चाहिए थी कि इमारतों पर क्या लिखा है ? क्या वे इमारतें निर्माण
करने का कुछ दावा उन लेखों में अन्तर्भूत है ? जब लिखने वाला स्वयं उन
इमारतों के स्वामित्व का दावा नहीं करता तो केवल अण्ट-शण्ट उर्दू या
फारसी अक्षर इमारतों पर देखते ही इमारतों को मुसलमानों द्वारा निर्मित
कह देना कितनी भारी भूल है !

(६) ब्रिटिश अधिकारी अलेक्जेंडर कनिंगहम् आंग्ल शासन में भारत में प्रथम पुरातत्व प्रमुख नियुक्त हुआ। सितम्बर १५, १८४२ को कर्नल साइक्स को लिखे अपने पत्र में उसने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण से ब्रिटिश सरकार को राजनयिक लाभ और ब्रिटिश जनता को धार्मिक लाभ कराने का उसका मूल उद्देश्य था। वह पत्र सन् १८४३ में Royal Asiatic Society के Journal में छपा होने पर भी गत १५० वर्षों में एक भी भारतीय इतिहासज्ञ ने कनिंगहम् के उस षड्यन्त्र का भण्डाफोड़ नहीं किया। इससे बड़ा शैक्षणिक अपराध और क्या हो सकता है ? बड़े ओहदे, नाम और धन पाने वाले व्यावसायिक इतिहासज्ञों से क्या हम इतनी भी अपेक्षा नहीं रख सकते कि वे Royal Asiatic Society, Archaeological Survey of India की वार्षिक रिपोर्ट जैसी महत्त्वपूर्ण सामग्री का नियमित पठन कर जनता को उसमें

छपे ऊपर कहे जैसे महत्त्वपूर्ण अंशों से सावधान कराते रहें ? जब वे यह साधारण-से-साधारण कर्त्तव्य नहीं निभा सकते तो क्या वे इतिहासज्ञ कहलाने के पात्र हैं ? ऊपर कही ऐतिहासिक सामग्री सामान्यजनों के पढ़ने में कभी आती नहीं किन्तु वैसी सामग्री पढ़ते रहना व्यावसायिक इतिहासकारों का दैनन्दिन कार्य होता है। वैसा साहित्य अपने-आप उनकी मेज पर आ जाता है। लेकिन बेकार ही पड़ा रहता है। तथापि यदि वे उस सामग्री से अपरिचित रहें या परिचित होकर भी उसका महत्त्व न समझें, या उसका ढिंढोरा पीटने के निजी कर्त्तव्य से वे यदि झेंप जाएँ, डरें या झिझकें तो वे इतिहासकार कहलाने के पात्र नहीं है। अतः यह समझना आवश्यक है कि यदुनाथ सरकार, रमेशचन्द्र मजूमदार, ईश्वरीप्रसाद आदि जो भी व्यक्ति आंग्लशासन में बड़े इतिहासकार माने गए, वे किन्हीं शोधों के लिए प्रसिद्ध नहीं हैं। कालगति के प्रवाह में उस समय के शासन के अनुकूल ग्रन्थ लिखकर मान-सम्मान, धन और अधिकार प्राप्त करते रहने के कारण उनके नामों का बोलबाला होता रहा। किसी व्यक्ति की इतिहास प्रवीणता को मापने का मानदण्ड उस समय शासन द्वारा मान्यता, यही था। उसमें एक बड़ा धोखा था। चाहे पराया ब्रिटिश शासन हो या तत्पश्चात् सत्तारूढ़ स्वतन्त्र भारत का कांग्रेसी शासन हो, उसमें इतिहास की सत्यासत्यता की कद्र नहीं थी। उस समय तीन प्रकार के इतिहास लेखकों का बोलबाला होता था। एक वे जो आई० सी० एस० या पाश्चात्य विचारधारा के अनुकूल सर यदुनाथ सरकार जैसे व्यक्ति हों। दूसरे, जो गांधीवादी विचारधारा के अनुकूल ताराचन्द जैसे इस्लामी तुष्टि के लेख या ग्रन्थ लिख सकें। और तीसरे वे जो डॉ० कोशाम्बी जैसी समाजवादी विचारधारा के अनुसार किसी भी युग के इतिहास को ढाल सकें।

ऐसे व्यक्तियों को इतिहासज्ञ नहीं समझना चाहिए, क्योंकि इनकी निष्ठा ऐतिहासिक सत्य से बँधी नहीं थी। वे किसी एक विशिष्ट गुट की तुष्टि हेतु इतिहास को केवल एक साधन बनाए हुए थे। उस तुष्टि द्वारा उन व्यक्तियों ने तत्कालीन मान्यता का भरपूर लाभ पाया। सुल्तान, बादशाहों के शासन में तवारीखें लिखने वाले खुशामदी मुसलमान लेखकों की जो भूमिका थी, वही आंग्ल शासन से, गांधीवादी आन्दोलन से या

समाजवादी वामपन्थी प्रणाली से पैसा, प्रशंसा तथा मान-सम्मान कमाने
वाले उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी के आंग्लशिक्षित विद्वानों की थी।
तवारीखों के लेखक जैसे अपने आपको इस्लामी दरबार के गुलाम मानते
थे वैसे ही आधुनिक इतिहासज्ञ अपने-आपको आंग्ल शासन के या गांधी
प्रणाली के या रशिया की समाजवादी प्रणाली के गुलाम मानते हैं। इतिहास
में उन्होंने कोई नई शोध नहीं की। ज्यो ब्योरा या सामग्री उपलब्ध थी उसी
को उलट-पुलटकर कोई अंग्रेजों के ढंग से लिख देता, कोई गांधी विचारधारा
के अनुकूल लिख देता या कोई रशिया के समाजवादी ढंग से प्रस्तुत करता।

यही इतिहास की शोक कथा है। वीरान प्रदेशों में पाए गए मटकों के
टुकड़ों या पत्थर के औजार तथा गुफाओं की दीवारों पर खुरची जंगली
चित्रकारी का आजकल बड़ा ढिंढोरा पीटा जाता है। एक मजदूर भी कहीं
खुदाई करके प्राचीन मटकों के टुकड़े पा सकता है। इसी प्रकार एक गँवार
ग्वाला या गडरिया जंगली गुफाओं की दीवारों पर करी चित्रकारी की
जानकारी शहरी लोगों को दे सकता है। तथापि ऐसी क्षुद्र वस्तुएँ योगायोग
से हाथ आने पर बहुत बड़ी तथा महत्त्वपूर्ण पुरातत्वीय प्राप्ति का ढोल
पीटकर उस निरर्थक खोज पर सरकार के लाखों रुपए नष्ट किए जाते हैं।
भारत में अंग्रेजों का राज्य कायम होने पर उन गोरे साहबों ने इस प्रकार
की वृथा खोज का शोर मचाने की जो प्रथा चलाई वह अभी तक जारी है।
इसे तुरन्त बन्द कर देना चाहिए।

विश्व इतिहास में आमूलाग्र परिवर्तन लाने वाले कई महत्त्वपूर्ण
विषयों का ढेर-का-ढेर हमने इस ग्रन्थ में विद्वानों के विचारार्थ तथा
संशोधनार्थ प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ इटली के रोम नगर के धर्मगुरु
पोप के वॅटिकन् में तथा इंग्लैण्ड के कॅण्टरबरी (शंकरपुरी) धर्मपीठ में तथा
जेरुसलेम के Dome on the Rock तथा अलअक्सा में पुरातत्वीय
संशोधन की आवश्यकता है। उनके प्रति मुंह फेरकर विविध देशों में पाए
गए मटकों के टुकड़ों पर या पत्थर के औजारों पर या जंगली चित्रकारी
पर भाष्य करने में विश्व के कितने ही विद्वान् निजी समय का, विद्वत्ता का
तथा द्रव्य का वृथा नाश कर रहे हैं। मार्मिक महत्त्वपूर्ण विषयों से विश्व के
विचारी लोगों का ध्यान हटाकर उसे निरर्थक बातों में बांधे रखने का

पाश्चात्य विद्वानों का तथा उनके एतद्देशीय अनुयायियों का यह षड्यन्त्र हो
सकता है।

हमने सन् १९८४ में प्रकाशित World Vedic Heritage नाम के
अपने ग्रन्थ में आधुनिक युग में प्रथम बार विश्व की जनता के सामने अपना
शोध प्रस्तुत किया कि आरम्भ से सारे विश्व में वैदिक सभ्यता तथा संस्कृत
भाषा ही रही है।

दिन-प्रतिदिन अन्य विद्वान भी अपने लेखों द्वारा हमारे सिद्धान्त की
पुष्टि कर रहे हैं। जैसे बंगलौर से प्रकाशित होने वाले बी०वी० रमन् द्वारा
सम्पादित, 'The Astrological Magazine' के नवम्बर १९८७ के अंक
में S. Y. Narayanamoorthy द्वारा लिखित Vedic Studies in the
West—Historical Evidence लेख देखें। इसमें बताया गया है कि
"१८ पुराणों के लेखक वेदव्यास, अरस्तु के समय तक सारे विश्व में ज्ञात
थे। अरस्तु ने व्यास का उल्लेख Bias ऐसा किया है। (व्यास का ब्यास
अपभ्रंश भारत में भी होता है। Aristotle नाम स्वयं अरिष्ट-टाल ऐसा
संस्कृत ही है)। आधुनिक युग में फ्रांसीसी विद्वान वाल्तेयर तथा अन्य
फ्रांसीसी लेखकों ने भी व्यास का उल्लेख व्यास नाम से ही किया है।

(क) "बौद्ध प्रसार से पूर्व विश्व में सर्वत्र वैदिक शास्त्र, पुराण,
रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थ प्रचलित थे।

(ख) "वेदों की कुल ११३१ शाखाएँ थीं जिनमें से भारत तथा नेपाल
में केवल १० प्राप्य हैं। अन्य ११२१ शाखाएँ विश्व के अन्य प्रदेशों में
बिखर कर लुप्त हो गईं। विश्व के साहित्य में कहीं-कहीं उनका धुँधला-सा
उल्लेख होता रहता है।

(ग) "वेद तथा १८ पुराण ही समस्त विश्व साहित्य के मूल आधार
रहे हैं।

(घ) "पाश्चात्य देशों में वेदोपनिषदादि मूल संस्कृत साहित्य नष्ट
होकर केवल उसका अनुवाद या कुछ टूटे-फूटे हिस्से या अस्पष्ट से उल्लेख
ही बच पाए हैं।"

"आधुनिक विद्वानों को पायथॅगोरस, सॉक्रेटिस्, प्लेटो तथा अरिष्टाटल
—इन चार प्राचीन प्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम परिचित हैं। वे चार प्राचीन

विश्व के गण्यमान्य व्यक्ति इसलिए माने जाते हैं क्योंकि उनकी सारी विद्वत्ता वेदोपनिषदादि ग्रन्थों के अध्ययन पर आधारित थी। उस प्राचीन-काल में भारतीय पण्डित ईरान, एशिया माइनर आदि दूर-दूर के देशों में भी पहुँचते थे। Eusobius नाम के एक ग्रीक लेखक का कहना है कि सुकरात (सुक्रतुस्) (Socrates) के समय में ग्रीस देश के ऐथेन्स नगर में भी ब्राह्मण होते थे।

"पाश्चात्य विचारधारा का जनक प्लेटो माना जाता है। वह भारत भी आया था। पायथागोरस से उसे भारतीय विद्याओं का परिचय हुआ। फ्रांसीसी विद्वान वाल्टेयर लिखते हैं कि ग्रीक लोग ज्ञानार्जन के लिए गंगा के किनारे (वाराणसी) जाया करते थे।

"हार्पकिस ने लिखा है कि प्लेटो की ग्रन्थ विचारधारा सांख्यदर्शन से भरी पड़ी है जो उसने पायथागोरस द्वारा सीखी।

"उर्विक का निष्कर्ष है कि रिपब्लिक पुस्तक में प्लेटो ने जो कुछ प्रतिपादन किया है वह सारी हिन्दू विचार-प्रणाली है।

स्क्रोडेर का विश्वास है कि "पायथागोरस की तत्वप्रणाली भारतीय स्रोत की है। पाश्चात्य विद्वानों में सर विलियम जोन्स ने प्रथम बार पायथागोरस के विचारों में और सांख्य विचारधारा में समानता देखी"।

"डा० बरल्हीनर (Dr. Berlzhiener) लिखते हैं कि वैदिक आर्य लोग प्रकृति को तथा जीवसृष्टि को 'ऋत' कहते थे। 'धम' उर्फ 'धर्म' भी उसी अर्थ का द्योतक है। ग्रीक लोग विश्व की सृजनशक्ति को 'धम' ही कहते हैं। रोमन लोग उसी को 'Rotum', 'Ratio', 'Naturalis Ratio', आदि प्रकारों से 'ऋत' ही कहते हैं।

ग्रीक तथा रोमन लोगों में श्राद्ध, पितृयज्ञ आदि की भाँति पूर्वजों के सम्मानपूर्वक पूजन-स्मरण की प्रथा थी। वृद्धतम व्यक्ति को वे भी हिन्दुओं की तरह कुटुम्ब प्रमुख मानते थे। यज्ञ-प्रथा भी ग्रीक तथा रोमन लोगों में होती थी।

"जैकोलियट (Jacolliot) नाम के फ्रेंच लेखक ने लिखा है कि ग्रीक लोगों में देवताओं का निवासस्थान ओलम्पस पर्वत, कैलाश-पर्वत की ही नकल थी।

"आंग्लद्वीपों के 'ड्रुइड' द्रविड़ बौद्ध थे। बौद्धमत प्रसार से पूर्व वे हिन्दू थे। कुछ वर्ष पूर्व लन्दन शहर के मध्य में एक प्राचीन मित्र (सूर्य) मन्दिर उत्खनन में प्राप्त हुआ।

"प्रिंसेप (Princep) ने लिखा है कि ईसाई होने पर भी ग्रीक लोगों ने वही प्राचीन बौद्ध-वैदिक पूजा प्रार्थना प्रणाली कायम रखी।

"Plotinus Claiment, Gregory, Augustine आदि ईसाई पादरियों के प्रवचन ब्राह्मणों के जैसे ही थे। यद्यपि उन्हें यहूदी, Gnostic, Manichaean और Platonic कथाओं का रूप दिया गया था, ऐसा Dean Inge ने लिखा है।

"अमेरिका खण्डों में जब यूरोप के लोगों ने बसना आरम्भ किया तब वहाँ के आदिवासी लोगों के आचार-विचार हिन्दू प्रणाली के थे ऐसा हम्बोल्ट ने लिखा है।

सर विलियम जोन्स ने दर्शाया कि मैक्सिको देश के बड़े-से-बड़े मन्दिर में शिवजी प्रतिष्ठित हैं। दक्षिण अमेरिका के अनेक वास्तुसंग्रहालयों (museums) में शिव तथा गणेश की कई प्रतिमाएँ प्रदर्शित हैं। पेरू देश के काव्य पर रामायण तथा महाभारत की छाप दिखाई देती है। उनकी प्रार्थनाएँ वैदिक ऋचाओं जैसी हैं। इन्का लोगों में भी वैसी ही जातियाँ (व्यावसायिक वर्ग-प्रणाली) होती थी, जैसी हिन्दुओं में।

जिनाब नाम के सिरियाई लेखक ने निर्देश किया है कि ईसापूर्व दूसरी तथा तीसरी शताब्दी में अमेरिका में कृष्णमन्दिर होते थे। वन सरोवर के आसपास कृष्ण की विशाल मूर्तियों वाले मन्दिर होते थे। ईसवी सन की चौथी शताब्दी में अमेरिका में भगवतधर्म के पांच सहस्र अनुयायी होते थे।

"आयरलैण्ड देश के प्राचीन Brehan Laws मनुस्मृति जैसे थे, ऐसा सर हेनरी मेन का निष्कर्ष है। वैदिक-प्रथा का अश्वमेध यज्ञ आयरलैण्ड में १२वीं शताब्दी तक प्रचलित था।

इटली को अत्रि ऋषि के गुरुकुल के कारण अत्रिस्थलि कहा जाया करता था। इटली उसी का अपभ्रंश है। प्राचीन समय में उस प्रदेश को एट्रुरिया यानि अत्रिरीय कहते थे।

अरब लोग भी हिन्दू थे इसका एक स्थूल प्रमाण यह है कि नमाज में मुसलमान जो प्रारम्भिक आयत कहते हैं वह "अग्ने नय सुपथ राये" आदि यजुर्वेदीय ऋचा का अनुवाद मात्र है। वेद को 'करण' कहते हैं, कुरान उसी का अपभ्रंश है।

"इस्लामी दन्तकथा में कहा गया है कि चार बक्सों में जो ज्ञान धरा हुआ था उसमें से कुछ गिने-चुने वाक्य अल्लाह ने मोहम्मद को पढ़वाए। यहाँ चार बक्सों से अभिप्राय चारों वेदों से है।

"रशिया में वैदिक सभ्यता ही थी। बाकू नगर में एक प्राचीन सूर्य-मन्दिर है जिसकी दीवारों पर देवनागरी में गायत्री मन्त्र लिखा है। रशिया के पूर्ववर्ती शिबिरीय (Siberia) प्रदेश में चिकित्सा की आयुर्वेद पद्धति प्रचलित थी। अष्टांग आयुर्वेद की संहिता वहाँ प्राचीनकाल से सुरक्षित है। उसमें विविध वनस्पतियों के चित्र भी दिए हैं। रूस देश का लिथुआनिया नाम का जो भाग है उसमें अभी तक कुछ वैदिक प्रथाएँ प्रचलित हैं। युगोस्लाव, चेकोस्लाव आदि स्लाव लोग प्राचीन समय में इन्द्र, यम, वरुण, हरिदाव आदि वैदिक देवताओं का पूजन करते थे।

"यहूदियों का धर्मग्रन्थ Pentatouch कहलाता है जो स्पष्टतया पंचदेव(या पंचतत्व)का अपभ्रंश है। Zoshua तथा Sammal की कथा महाभारत से मेल खाती है। इससे Zudea के Semites (यानि यहूदी लोग) पर भारत के आर्यों का बड़ा प्रभाव था, ऐसा दीखता है।

रेव० जोसफ एडकिंस के अनुसार तीसरी से छठवीं शताब्दी में हिन्दुओं ने ३६ संस्कृत मूल अक्षरों से भाषा का उच्चार, व्याकरण आदि चीनी लोगों को सिखाया।

"कोरिया प्राचीन समय में संस्कृत विद्या का केन्द्र होता था। उसमें हिन्दू देवताओं के मन्दिर होते थे। उनमें शिव मन्दिर भी अन्तर्भूत था।

"जापान की 'शिन्तो' प्रथा के प्राचीन विद्वान King Taro Naga Saura ने लिखा है कि जापान का प्राचीनतम धर्म Brahmankoy यानि ब्राह्मणी था। जापान के हजारों मन्दिरों में वैदिक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं।

"Salleby ने लिखा है कि फिलिपीन के Luzon तथा Mindanao

पहाड़ी क्षेत्र के निवासी वैदिक त्रिमूर्ति के पूजक थे।

सबसे रोचक बात यह है कि जब फिलिपीन ने निजी संविधान बनाया तब उसने अपने राष्ट्रसभागृह में (वैवस्वत) मनु की प्रतिमा स्थापित कर उसके नीचे लिखा "मानव जाति के सर्वश्रेष्ठ नीतिशास्त्रकर्ता (महाराज मनु)"।

इण्डोनेशिया आदि जो प्रशान्त महासागर में अनेक द्वीप हैं उनमें भी ब्राह्मणी (वैदिक) धर्म ही था ऐसा लेखक क्रेगिलमार्डी का निष्कर्ष है।

"आस्ट्रेलिया के आदिवासियों की सभ्यता भी वैदिक ही थी। उनमें एक प्राचीन अज्ञात प्राणी Bunylp का नाम लिया जाता है। वह वनवृषभ शब्द का अपभ्रंश है। Bonzer का अर्थ होता है कोई लाभदायक, रोचक, भाग्य-कारी घटना। वह पुण्यार उर्फ पुण्य शब्द है। शत्रु पर मार करके वापस आने वाले अस्त्र को Boomerang कहा जाता है जो 'व्योमरंग' यह संस्कृत शब्द है।"

इसी प्रकार एस०वाई० नारायणमूर्ति द्वारा लिखे The Astrological Magazine (नवम्बर, १९८७) मासिक वाले लेख में जो ब्योरा दिया है वह हमारे इस ग्रन्थ के सिद्धान्त की पूरी पुष्टि करता है कि विश्व के आरम्भ से ईसाई तथा इस्लामी पन्थों के प्रसार तक सर्वत्र वैदिक सभ्यता ही थी।

(७) किसी भी ऐतिहासिक इमारत या नगर के निर्माण का दावा या प्रमाण तत्कालीन दरबारी कागजात में या तवारीखों में न होते हुए भी इतिहासज्ञों ने अपार नगर तथा इमारतें मुसलमानों की कह डालीं यह इतिहासज्ञों का कितना भारी दोष है। यदि वे कहते हों कि कुतुबमीनार कुतुबुद्दीन ने या इल्तुतमिश ने या अलाउद्दीन ने या फिरोजशाह ने एकाकी बनवाई या उन चारों ने हिस्से-हिस्से से बनवाई तो वे उन सुल्तानों के समय के दरबारी दस्तावेजों में या तवारीखों में उस निर्माण का खर्चा आदि ब्योरा तो क्या कुतुबमीनार का नाम तक नहीं बता पाएँगे। यह मूलगामी दोष है। बगैर किसी प्रमाण के वे कही-सुनी बातों को ही अपने ग्रन्थों में या विद्यालयीन पाठों में दोहराते रहे। इस महान् दोष के लिए आज तक के सारे ही इतिहास शिक्षक, लेखक तथा संशोधक कड़ी भर्त्सना के पात्र हैं।

(८) दस्तावेजी प्रमाण न हों तो न सही किन्तु इमारतों का रंगरूप,

आकार-प्रकार आदि देखकर उनसे भी कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते थे, उनके प्रति भी इतिहासकार कहलाने वालों ने तनिक भी ध्यान नहीं दिया। अभी भी नहीं दे रहे हैं इसके लिए वे निन्दा के पात्र हैं।

और तो और इतिहासकारों ने इन इमारतों की हिन्दू शैली को ही 'इस्लामी शैली' या 'हिन्दू-इस्लामी मिश्र शैली' कह डाला जबकि इमारतों के अन्दर की कब्रों और दीवारों पर लिखे कुरान के अवतरणों के अतिरिक्त ऐतिहासिक इमारतों में इस्लाम का कोई योगदान नहीं है।

(९) ऐतिहासिक इमारतें मुसलमानों की नहीं अपितु हिन्दू राजा-रईसों आदि की हैं यह कहने से भारतीय विद्वान् तथा पत्रकार आदि उतने ही डर रहे हैं या झिझक रहे हैं जैसे सुलतान, बादशाहों के जीवनकाल में लोग सच कहने से डरते थे।

(१०) उस डर और झिझक के पीछे उनका स्वार्थ छिपा हुआ है कि उन्हें जातीयवादी कहकर उनकी पदोन्नति रोकी जाएगी, उनकी लिखी पुस्तकें विद्यालयों में पढ़ाने के लिए मान्य नहीं की जाएँगी, उन्हें विविध समितियों की या परिषदों की अध्यक्षता नहीं दी जाएगी आदि। परम्परागत झूठा इतिहास चलाते रहने से ही यदि धन, मान-सम्मान, सुख-शान्ति प्राप्त होनी हो तो सत्य इतिहास के आग्रह में क्या धरा है ऐसा विचार करते हुए आजकल के विद्वान् हमारे संशोधन द्वारा प्रकट किए गए तथ्यों के सम्बन्ध में मौन धारण कर लेते हैं। ऐतिहासिक इमारतें तथा नगर इस्लामी नहीं हैं यह कहकर मुसलमानों को भी क्यों नाराज किया जाए इस विचार से भी अधिकारीगण तथा इतिहासज्ञ चुप रह जाते हैं। इस प्रकार वर्तमान राजनयिक असुविधा ही सत्य इतिहास के प्रकटीकरण में एक बाधा बनकर खड़ी हो जाती है।

(११) इतिहासज्ञों ने इस्लामी तवारीखों पर केवल ऊपरी या सरसरी दृष्टिक्षेप किया है, ध्यान देकर बारीकी से अध्ययन नहीं किया। अधिकतर कही-सुनी बातों से ही वे निष्कर्ष निकालते रहे। इसका अनुभव मुझे इस प्रकार आया। राधाकृष्ण परमू एक वयोवृद्ध फारसी तज्ञ थे। फारसी दस्तावेजों के आंग्ल भाषा में अनुवाद के काम पर लगे वे सरकारी अधिकारी थे। उन्होंने शाहजहाँ का दरबारी इतिहास 'बादशाहनामा' दो-तीन बार

पढ़ा था। अतः उन्हें दृढ़ विश्वास था कि शाहजहाँ ने ही ताजमहल का निर्माण किया। ऐसी अवस्था में जब उन्हें मेरे शोध निष्कर्ष का पता लगा कि मैं शाहजहाँ को ताजमहल का निर्माता नहीं मानता तो मुझे गलत सिद्ध करने के लिए उन्होंने बादशाहनामा खोला। और जैसे ही वे भाग १ का पृष्ठ ४०३ पढ़ने लगे उन्हें विश्वास हो गया कि मुमताज को जिसमें दफनाया गया है वह इमारत शाहजहाँ ने जयपुर नरेश जयसिंह से हड़प ली ऐसा स्पष्ट निवेदन बादशाहनामे में ही किया गया है। तब राधाकृष्ण परमू जी ने मुझे लिखा कि "ओक साहब मैं बादशाहनामा दो-तीन बार पढ़ चुका हूँ, अतः मुझे विश्वास था कि ताजमहल शाहजहाँ ने ही बनवाया। किन्तु आज आपसे पाला पड़ने पर जब ध्यान देकर पृष्ठ ४०३ पढ़ा तब पता लगा कि ताजमहल निर्माण का दावा शाहजहाँ ने कहीं नहीं किया है। पता नहीं यह पंक्तियाँ मेरी दृष्टि से कैसे ओझल हुईं। आपका निष्कर्ष पूर्णतया सही है कि ताजमहल शाहजहाँ द्वारा बनवाया हुआ नहीं है।" इस कबूली से पता चलता है कि आज तक के विद्वानों ने इस्लामी अफवाहों के सहारे से ही इतिहास लिखे हैं, तवारीखों में लिखी तफ़सील की छानबीन नहीं की।

ऐसा ही एक और अनुभव देखें। आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव आगरा विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग प्रमुख थे। उन्होंने एक इतिहास परिषद में कहा कि जयपुर नरेश से जो भूमि ताजमहल बनवाने के लिए शाहजहाँ ने खरीदी वह खरीद-पत्र उन्होंने देखा है। किन्तु जब उन्हें पूछा गया कि उसमें खरीद की कीमत क्या लिखी है? तो वे बोले कि उसमें कीमत का कोई उल्लेख ही नहीं है। बगैर कीमत के व्यवहार को खरीद कैसे कहा जाएगा? और यदि वह दस्तावेज है तो उसे आज तक छिपाया क्यों जा रहा है? दूसरी एक महत्त्वपूर्ण आशंका किसी भी व्यवहारी मनुष्य के मन में यह आनी चाहिए कि जो आगरा नगर पाँच पीढ़ियों से मुगलों की राजधानी रही हो उसमें शाहजहाँ को जयपुर नरेश से रिक्त भूमि खरीदने की क्या आवश्यकता पड़ी? मुगल बादशाह को खुली भूमि की आगरा में ऐसी क्या कमी पड़ गई?

इस प्रकार के व्यवहारी विचारों द्वारा ऐतिहासिक तथ्यों की छानबीन करने की पद्धति आंग्ल शासन में इतिहासज्ञों को न सिखाई जाने से ही

इतिहास की वर्तमान पुस्तकें झूठ, विकृत और तथ्यहीन बातों से भरी पड़ी हैं।

(१२) वर्तमान इतिहास शिक्षा तथा संशोधन क्षेत्र का एक बड़ा दोष यह है कि कोई नया शोध किया जाने पर विद्वानों ने उसे मान्य या अमान्य करने के लिए एक जाँच समिति नियुक्त करनी चाहिए, जो वे नहीं करते। अखिल भारतीय तथा प्रान्तिक इतिहास परिषदों को उनकी इस जिम्मेदारी का कोई पता ही नहीं है। वैद्यक के क्षेत्र में यदि कोई नई चिकित्सा पद्धति या नया कोई उपचार प्रस्तुत किया जाता है या फिजिक्स (भौतिक शास्त्र) में कोई नया शोध होता है तो सामूहिक या व्यक्तिगत रीति से विद्वान् उस शोध की परीक्षा कर उस सम्बन्ध में निजी निर्णय प्रकट कर देते हैं। इतिहास के क्षेत्र में नए शोधों की कोई परवाह ही नहीं करते। उदाहरणार्थ सन् १९६३ के अखिल भारतीय इतिहास के पुणे नगर में हुए अधिवेशन में पढ़े अपने प्रबन्ध में मैंने यह घोषित किया था कि ताजमहल, कुतुबमीनार आदि एक भी ऐतिहासिक इमारत या नगर मुसलमानों का बनवाया नहीं है। वर्तमान इतिहास शिक्षा की जड़ें उखाड़ने वाला यह मेरा सिद्धान्त था। लेकिन किसी एक भी अधिकारी इतिहासकार ने चूँ तक नहीं की। सभी अपने-अपने स्वार्थ के कारण चुप बैठे रहे। अलीगढ़, उस्मानिया आदि विश्वविद्यालयों से आए ५०-६० मुसलमान इतिहासज्ञ इसलिए चुप कर गए कि ऐतिहासिक इमारतों तथा नगरों के निर्माण का मुसलमानों को दिया गया श्रेय छीना जाएगा। अन्य जो भारतीय हिन्दू या ईसाई प्राध्यापक थे उन्होंने भी मेरे शोध की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उन्हें डर था कि मेरा शोध मान्य होने पर उनकी लिखी पुस्तकें या कालिजों में पढ़ाए पाठ निराधार सिद्ध होंगे। इस प्रकार निजी स्वार्थ को हानि पहुंचाने वाला कोई भी शैक्षणिक शोध चाहे कितना ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो, पूर्ण मौन द्वारा उसकी उपेक्षा कर उसे कुचल डालने की इतिहास क्षेत्र की प्रथा बड़ी निन्दनीय है। जो दुर्जन किसी का वध करे, डाका डाले, धन लूटे और निजी अपराध को छुपाए रखने के लिए सबूतों को भी नष्ट करता रहे, उसमें और बड़ा मान-सम्मान पाकर इतिहासज्ञ कहलाने वाले व्यक्तियों में क्या अन्तर है? पढ़े-लिखे इतिहासज्ञ तो उन अनपढ़, गँवार, बेकार गुनहगारों की अपेक्षा अधिक

दण्डनीय माने जाने चाहिएँ।

(१२) कई घटनाएँ जानबूझकर झूठी ही प्रस्तुत करने का भारतीय इतिहासज्ञों का रवैया रहा है। प्रथम मुगल बादशाह बाबर ने फतेहपुर सीकरी के युद्ध में राणा संग्रामसिंह को परास्त किया यह कहने के बजाय कनवाहा के युद्ध में बाबर की विजय हुई ऐसा कहा जाता है। बाबरनामे में तो बाबर ने स्पष्ट लिखा है कि कनवाहा में दोनों सेनाओं की कुछ टुकड़ियों की जो झड़पें हुईं उनमें बाबर की टुकड़ियों की बड़ी हानि हुई और उससे बाबर की छावनी में इतनी घबराहट फैल गई कि कई सेनानियों ने वहाँ से वापस अफगानिस्थान भाग निकलने की सलाह दी। तथापि बाबर ने कुछ दिन पश्चात् फतेहपुर सीकरी नगर की सीमा के पास राणा सांगा की सेना को परास्त कर फतेहपुर सीकरी नगर पर कब्जा कर लिया। इस घटना को भारतीय इतिहासज्ञ इसलिए दबा रहे हैं कि फतेहपुर सीकरी नगर के निर्माण का श्रेय वे निराधार ही बाबर के पोते अकबर को दे बैठे हैं।

(१३) इमारतों के नामों के प्रति भी इतिहासज्ञों की बड़ी लापरवाही रही है। Red Fort उर्फ लाल किला या लालकोट यह नाम देखें। वह नाम भी हिन्दू है और रंग भी हिन्दू है। फिर भी दिल्ली का लालकिला तथा आगरे का लालकिला बगैर किसी सबूत के केवल इस्लामी धौंसबाजी में विश्वास रखकर इतिहासकार मुसलमानों के बनवाए कहते आ रहे हैं। ताजमहल नाम देखें। वह तेजोमहालय ऐसा संस्कृत नाम है। और तो और शाहजहाँकालीन किसी दरबारी दस्तावेज में या तवारीख में ताजमहल का नाम तक नहीं है। फिर भी शाहजहाँ द्वारा ताजमहल बनवाए जाने का मनगढ़न्त वर्णन इतिहासज्ञ कहलाने वाले, लोगों पर थोपते रहे हैं। लगभग सारी ऐतिहासिक इमारतों की बाबत इतिहासकारों की ऐसी ही लापरवाही, बेहोशी और कायरता रही है।

ऐतिहासिक नगरों की बाबत भी वही हाल है। फतेहपुर सीकरी में पुर और सीकरी तो स्पष्टतया हिन्दू शब्द हैं। 'फते' शब्द से अनुमान यह निकलता है कि उस नगरी का मूल नाम विजयपुर सीकरी रहा हो। बाबर ने उसे जीतने के पश्चात् विजय के स्थान पर 'फतेह' विशेषण लगाकर फतेहपुर सीकरी नाम रूढ़ किया होगा। अत: राजस्थान के इतिहास में

बयाना जिले में विजयपुर सीकरी (या फतेहपुर सीकरी) यह नाम सन् १५२७ के पूर्व कहीं उल्लिखित है या नहीं इसका इतिहासज्ञों ने पता लगाना चाहिए। इस प्रकार शोध करने से कई नए-नए विषय इस नई दृष्टि से प्राप्त हो सकते हैं। सन् १५२७ में बाबर ने फतेहपुर सीकरी राजपूतों से जीत ली। अकबर सन् १५५६ में बादशाह बना और दो-तीन वर्ष पश्चात् ही वह फतेहपुर सीकरी में रहने लगा। उसकी सेनाएँ फतेहपुर सीकरी से निकलकर युद्धोपरान्त वहीं वापस आती रहतीं। सन् १५६९ में शहजादा सलीम (जहाँगीर) का जन्म भी उसी नगरी में बड़े जोर-शोर से मनाए जाने का तत्कालीन दरबारी चित्र भी उपलब्ध है। तथापि इतिहास-ग्रन्थों में निर्लज्जतापूर्वक यह दावा किया जाता है कि सन् १५५६ से १५७३ तक किसी समय अकबर द्वारा फतेहपुर सीकरी की नींव खोदने का काम आरम्भ कराया गया। सन् १५८३ तक पूरी नगरी बनकर तैयार भी हो गई और सन् १५८५ में जल की कमी के कारण अकबर ने उस नगरी को त्याग भी दिया।

यह सब अनुमान ही अनुमान लगाए गए हैं। यदि अकबर ने एक विशाल नगरी बनवाई तो उसके नक्शे, मजदूरी का हिसाब, ईंट-पत्थर आदि सामग्री के खरीद-पत्र आदि कहाँ हैं? विपुल जल के बिना तो नगरी बनवाई ही नहीं जा सकती। तो यदि सन् १५८३ तक वहाँ विपुल जल था तो वह यकायक सन् १५८५ में समाप्त कैसे हो गया? एक नगरी सन् १५६९ या १५७३ से १५८३ तक बनवाना और उसे १५८५ में छोड़ देना। यह समझ में आने वाली बात नहीं है। नगरी कोई बच्चों का खिलौना है कि जब चाहो नया बनवाना और जी चाहे तब त्याग देना? इस तथ्य से वाचक कल्पना कर सकते हैं कि वर्तमान ऐतिहासिक तथ्य कितने ऊटपटांग और निराधार हैं।

एक और उदाहरण देखें। सन् १९७४ के आसपास एक मित्र ने मुझे एक प्रकाशन बतलाया। पश्चिम बंगाल के प्रचार मंत्रालय का वह प्रकाशन था। उसके मध्य भाग में दोनों पृष्ठों पर फैली हुई मुर्शीदाबाद की एक ऐतिहासिक इमारत बतलाई गई थी। उसके अग्रभाग में एक लम्बी, सुकड़ी बारादरी थी। द्वारों की कतार के बीच दीवार पर कई गणेश मूर्तियाँ बनीथीं।

किन्तु हर एक मूर्ति के नाक-कान काटकर वह भंग कर दी गई थी। सरकारी प्रचार मंत्रालय द्वारा नीचे लिखा था कि अमुक सुल्तान ने मुर्शीदाबाद की यह विशाल जामा मस्जिद बनवाई। वह इतना दूरदर्शी तथा सर्वधर्मों के प्रति समभाव रखने वाला था कि स्वयं मुसलमान होने से उसने मुर्शीदाबाद में जामा मस्जिद बनवाई। किन्तु उसके समय जनता अधिकतर हिन्दू थी अत: उसकी खातिर उसने मस्जिद की दर्शनी दीवार पर गणेश जी की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित करा दीं। तथापि मुसलमानों को मूर्ति पूजा से तिरस्कार होने के कारण उसने उन मूर्तियों को भंग भी कर छोड़ा।' ऐसे सरकारी कथन को क्या कहा जाए! प्रदीर्घ कांग्रेसी प्रचार द्वारा जनता की बुद्धि किस तरह भ्रष्ट करा दी गई है और लोग किस प्रकार इतिहास को तोड़-मरोड़ कर उसका विडम्बन कर रहे हैं इसका यह एक अनोखा उदाहरण है। यह तो कोई समस्या ही नहीं है। उसे वृथा-जटिल बनाकर उसके टेढ़े-मेढ़े विवरण दिए जा रहे हैं। सही बात तो यह है कि मुर्शीदाबाद की जामा मस्जिद कही जाने वाली इमारत मूलत: एक विशाल हिन्दू मन्दिर होने से उसके दर्शनी भाग में दीवार पर गणेश जी की मूर्त्तियाँ प्रतिस्थापित हैं। जब वह हिन्दू नगर मुसलमानों के हाथ लगा तो उन्होंने उस नगर का 'मुर्शीदाबाद' नाम द्वारा इस्लामीकरण कर दिया और उसके केन्द्रीय मन्दिर को जामा मस्जिद कहकर उस मन्दिर की मूर्तियों को तोड़-फोड़कर मन्दिर की इमारत में नमाज पढ़ना आरम्भ कर दिया।

इस्लाम का यह रवैया आज तक के इतिहासज्ञ समझ नहीं पाए हैं। आरम्भ से इस्लाम ने सऊदी अरब से लेकर प्रत्येक जीते हुए प्रदेश में स्थानीय धर्मस्थानों को कब्जे में लेकर उन्हीं को मस्जिदें और कब्रें कह छोड़ा।

(१४) **'मदरसा' शब्द का रहस्य**—ऐतिहासिक इमारतों में बार-बार 'मदरसा' शब्द सुनाई देता है। किसी भी इमारत में जाओ तो पुरातत्वीय अधिकारी बड़े-बड़े दालानों को फिरोजशाह तुगलक का मदरसा, मुहम्मद गवान का मदरसा आदि कहते रहते हैं। इस्लामी सुल्तान तथा उनके अधिकांश मुसलमान प्रजाजन निरक्षर और अनपढ़ होते हुए भी स्थान-स्थान पर मदरसे कैसे बन गए? और यदि इतने मदरसे थे तो अधिकांश

लोग अनपढ़ क्यों थे ?ऐसे प्रश्नों पर इतिहासकारों ने कभी विचार ही नहीं
किया। वास्तव में जिन-जिन ऐतिहासिक इमारतों को मदरसा कहा जाता
है वे वास्तव में फिरोजशाह तुगलक, मुहम्मद गवान आदि इस्लामी आक्रा-
मकों द्वारा कब्जा किए वेद विद्यालय थे। अतः उन्हें इस्लामी परिभाषा में
मदरसा कहा गया।

मद्रास शहर का नाम कैसे पड़ा ?

अभी जहां मद्रास शहर है वहां अतिप्राचीनकाल से चोल राजवंश का आधिपत्य था। उसी से उस पूर्व सागर तट का चोलमण्डल नाम पड़ा। आंग्ल शासन में कॉरोमांडेल यह उसका अपभ्रंश रूढ़ हुआ। प्राचीनकाल से वहां एक प्रसिद्ध वेद विद्यालय होता था। उसी से आसपास के वनश्री को वेदारण्य कहा जाता था। अरब पर्यटक जब से पूर्ववर्ती देशों में चक्कर लगाने लगे तबसे वे भारत के पूर्वी तट पर उस वेद विद्यालय के समीप लंगर डालकर रुका करते थे। वे उस स्थान के वेद विद्यालय के कारण उस नगर या बन्दरगाह का उल्लेख 'मदरसा' नाम से करने लगे। क्योंकि उस वेद विद्यालय को भेंट देने या वहां पढ़ने-पढाने कई लोग आते; व्यापारी भी माल बेचने आते या वहां के कुटीर उद्योगों का माल खरीद लेते। इस व्यवहार में वे उस स्थान का उल्लेख इस्लामी परिभाषा में वेद विद्यालय की बजाय मदरसा नाम से करने लगे। उसी का वर्तमान अपभ्रंश मद्रास हुआ है।

इसी सन्दर्भ में हम एक और ऐतिहासिक तथ्य से पाठकों को अवगत कराना चाहेंगे। भारत के सागर तट पर स्थान-स्थान पर किले बने हुए थे। इस्लामी आक्रमणों के कारण वे सब टूटी-फूटी अवस्था में थे। सोलहवीं शताब्दि में जब यूरोप से गोरे व्यापारी अधिकाधिक संख्या में भारत आने लगे तब उन्होंने उन्हीं भग्न किलों के स्थान निजी व्यापारी अड्डों के लिए चुनकर स्थानीय राजाओं से निजी नाम से पट्टा बनवा लिया। इस प्रकार अंग्रेज, फ्रेंच, डच, पोर्चुगीज आदि के जो व्यापारी गढ़ भारत में बने हैं वे वास्तव में प्राचीन भारतीय गढ़ हैं। लगता है कि यह बात भी इतिहासज्ञों के ध्यान में नहीं आई। बसई, दमण, दिव, गोवा, एलिफण्टा, माहीम,

जंजीरा, फोर्ट सेण्ट जॉर्ज (मद्रास), फोर्ट विलियम बेंटिक (कलकत्ता), आदि जहां कहीं भी गौरकाय यूरोपियन लोगों के अड्डे बने, उनका बारीकी से अध्ययन एवं निरीक्षण करने पर वे प्राचीन भारतीय गढ़ साबित होंगे। इसमें यह तथ्य अन्तर्भूत है कि पराया आक्रामक या अतिथि वहीं निजी अड्डा लगाता है जहां पहले कुछ सुविधाएं बनी हों।

ऐतिहासिक इमारतों तथा नगरों की बाबत निराधार कल्पनाएं

कनिंगहम आदि अंग्रेज अधिकारियों ने भारतीय इतिहास से बड़ा अन्याय किया है। क्योंकि उन्होंने भारत स्थित ऐतिहासिक इमारतों को हिन्दू कहना जानबूझकर टालते हुए उन्हें जैन, बौद्ध, इस्लामी या अर्द्ध-इस्लामी कहना आरम्भ किया। इसी प्रकार भारत स्थित ऐतिहासिक इमारतें या नगर मुगल, इराकी, ईरानी, अरब, उझ्बेक, अफगान आदि पराए लोगों ने बनवाए किन्तु हिन्दुओं ने नहीं बनवाए ऐसा बड़ा दुष्ट और शत्रुतापूर्ण भ्रम फैलाया।

विवाह का भ्रम

राजपूत राजाओं ने निजी कन्याएं मुसलमान सुल्तान, बादशाहों से ब्याही थीं ऐसा हल्ला-गुल्ला इतिहासकारों ने वर्तमान इतिहास में मचा रखा है, जो सर्वथा झूठ है। इतिहासकारों ने ऐसा विचार करना चाहिए कि वर्तमान समय में जब कर्मठता खोखली हो चुकी है तब भी अपने आप कोई हिन्दू निजी कन्या का विवाह किसी मुसलमान के साथ होना पसन्द नहीं करता। तब यह कहना कि राजपूत राजाओं ने सुल्तान बादशाहों को अपनी कन्याएं दीं कितनी मूर्खता है। मुसलमान शत्रुओं के हाथ पड़ने की बजाय राजपूत स्त्रियां कट मरना या चिता में कूद पड़ना पसन्द करती थीं। एक हजार वर्ष के प्रदीर्घ संघर्ष में लगभग प्रत्येक युद्ध में जहां इस्लामी आक्रामकों का पलड़ा भारी दिखाई देता वहां हिन्दू स्त्रियां आत्महत्या किया करतीं। ऐसी अवस्था में यह कहना कि राजपूत राजाओं ने सुल्तान, बादशाहों को जामाता बनाया इतिहास की भारी विडम्बना है। इस्लामी जनानखानों में दुर्भाग्यवश हिन्दू स्त्रियां अवश्य जकड़ी रहीं किन्तु वे डाकू

डालकर, धावा बोलकर, आतंक मचाकर, घसीटकर इस्लामी जनानखानों
के पर्दे के भीतर रोती चीखती बंधी बन्दी रखी जाती थीं। उस अपहरण
को विवाह का पवित्र नाम देना सत्य का तथा इतिहास का अपमान है।
माण्डवगढ़ के बाजबहादुर ने इसी तरह रूपमती और भानुमती नाम
की दो राजपूत स्त्रियाँ निजी जनानखाने में जकड़ रखीं थीं। मुसलमान
भले ही उनके कल्पित प्रेम के गीत गाएँ किन्तु हिन्दू विद्वानों द्वारा भी उस
अभद्र, अमंगल बन्दिवास को प्रेम का रंग चढ़ाना कहाँ की बुद्धिमानी है?
जिन दो हिन्दू युवतियों को मुहम्मदी जनानखाने का जीवन नर्क जैसा प्रतीत
हुआ होगा उस पर प्रेम के तराने गाना विद्याक्षेत्र का महापाप है। इसी
कारण अकबर ने राजपूतों से विवाह-सम्बन्ध कर हिन्दू-मुस्लिम एकता
प्रस्थापित की, यह कथन ऐतिहासिक वंचना है। राजपूत रियासतों पर
आक्रमण कर अकबर की फौजों ने राजपूत स्त्रियों को बन्दी बनाकर घसीटा।
और उनमें से एक-दो अकबर के जनानखाने में तथा अन्य दरबारियों व
सैनिकों के जनानखाने में पहुँचा दी गई। इसका पूरा विवरण "कौन कहता
है अकबर महान् था?" नाम के हमारे ग्रन्थ में प्रस्तुत है।

दस्तावेजों के प्रति आँखें मूंद लेने की इतिहासकारों की आदत

इतिहास विषय लेकर आंग्ल विद्यालयों से एम० ए०, पी-एच० डी० आदि उपाधि पाने वाले अधिकतर व्यक्ति अध्यापकों द्वारा लिखवाए गए उद्धरणों द्वारा ही परीक्षा उत्तीर्ण करने का काम चला लेते हैं। जो हिन्दू अध्यापक फारसी जानते थे वे गिने-चुने घिसे-पिटे दस्तावेजों का ही उल्लेख करने में समाधान मान लेते थे। जो मुसलमान अनेक तवारीखों से परिचित रहे होंगे उन्होंने उन तवारीखों में से मतलब की बातें फारसी भाषा न जानने वालों से इसलिए छिपा रखीं कि इस्लाम को निराधार दिया गया श्रेय कहीं कम न हो जाए। इसके कुछ उदाहरण हम यहाँ दे रहे हैं।

शाहजहाँ के दरबारी इतिहास बादशाहनामे में लाल किला, जामा मस्जिद तथा पुरानी दिल्ली नगर शाहजहाँ द्वारा बनवाए जाने का कोई उल्लेख नहीं है। फारसी जानने वाले मुसलमान इतिहासज्ञों से यह बात छिपी नहीं थी, फिर भी एक भी मुसलमान इतिहासज्ञ ने कभी इस बात

की शिकायत नहीं की कि शाहजहाँ को निराधार ही पुरानी दिल्ली का तथा लालकिला और जामा मस्जिद का निर्माता माना जा रहा है।

ताजमहल का नाम तक शाहजहाँ या औरंगजेब के समय के किसी दरबारी दस्तावेज या तवारीख में न होते हुए भी सारे विश्व के इतिहासज्ञों ने शाहजहाँ द्वारा ताजमहल निर्माण का हल्ला मचा रखा है। उनके व्यावसायिक अज्ञान और अयोग्यता का यह कितना गम्भीर अपराध है। इस अपराध के कारण इतिहास की उनकी सारी शैक्षणिक पदवियाँ छीन लेना सौम्य दण्ड होगा। और तो और शाहजहाँ के बादशाहनामे में यह स्पष्ट किया गया है कि मुमताज को जिस महल में दफनाया गया है वह जयपुर नरेश से लिया गया।

तीसरा उदाहरण है शहजादा औरंगजेब ने बादशाह शाहजहाँ के नाम लिखे पत्र का। वह पत्र तो यादगारनामा, आदाब-ए-आलमगीरी तथा मुरक्का ए-अकबराबादी नाम की तीन तवारीखों में अन्तर्भूत है। अतः यह हो ही नहीं सकता कि महाविद्यालयों में या विश्वविद्यालयों में इतिहास पढ़ाने वाले किसी भी हिन्दू या मुसलमान प्राध्यापक के पढ़ने में वह पत्र न आया हो। अवश्य आया होगा। किन्तु या तो पत्र पढ़कर भी उनके पल्ले कुछ न पड़ा हो इतने वे शंख रहे हों या पढ़कर उसमें जो महत्त्वपूर्ण तथ्य कहा गया है उसको उन्होंने गुप्त रखा—इतने वे स्वार्थी, डरपोक या लुच्चे रहे हों।

हमारे इस मूल्यांकन को कुछ वाचक बड़ा कठोर, अवास्तविक या अयोग्य मानेंगे। किन्तु हम पाठकों को यह जतला देना चाहते हैं कि आज तक के विद्वानों ने केवल भारत के ही नहीं अपितु सारे विश्व के इतिहास का आदि से अन्त तक किस प्रकार सत्यानाश किया है यह हम इस ग्रन्थ के पन्ने-पन्ने पर बतलाते रहे हैं। ऐसी अवस्था में हमने उन्हें जो दूषण लगाए हैं वे उनके अपराध की तुलना में नगण्य हैं। वे भी इसी कारण कि पाठकों को पता लगे कि उन इतिहासज्ञों ने सारे विश्व के छात्रों को तथा अन्य लोगों को इतिहास के बारे में कितना धोखा दिया है।

केवल औरंगजेब के एक पत्र की यह बात प्राप्त नहीं है अपितु लगभग सारे ही इस्लामी या ईसाई दस्तावेजों को या तो आधा-अधूरा समझा गया है या छिपा रखा है या विकृत किया गया है। इसका ब्यौरा हमने इस ग्रन्थ

में समय-समय पर दे रखा है।
में समय-समय पर दे रखा है। उल्लेख किया है उसमें औरंगजेब
औरंगजेब के जिस पत्र का हमने ऊपर उल्लेख किया है उसमें औरंगजेब ने स्पष्ट लिखा है कि मुमताज को जिस इमारत में दफनाया गया है वह बड़ी प्राचीन है। उसे शीघ्र मरम्मत की आवश्यकता है। गुम्बज में भी दरार पड़ गई है। उस परिसर में कई इमारतें है जो सारी ही सात मंजिली हैं।

इतना भरपूर और स्पष्ट ब्योरा होते हुए भी शाहजहाँ द्वारा नए, कोरे ताजमहल के निर्माण का ढोल इतिहास में पीटा जा रहा है। सारे इतिहास में पग-पग पर जब ऐसी बातें जनता से छिपाई गई है तो क्या इस अपार जनवंचना के लिए इतिहासज्ञ कहलाने वाले विद्वान कड़ी-से-कड़ी भर्त्सना के पात्र नहीं हैं।

इतिहासज्ञों ने ऐतिहासिक दस्तावेजों का मुख्य मर्म पाठकों से किस प्रकार छिपा रखा है इसका एक और उदाहरण देखें। शाहजहाँ के समय टेवरनियर नाम का एक फ्रांसीसी सर्राफ भारत आया था। ताजमहल के बाग के बाहर एक विशाल चौक है जिसके चारों ओर केसरिया पत्थर की बारादरियाँ बनी हैं। इसमें बड़ा बाजार लगता था। उस बाजार को ही टेवरनियर 'ताज-इ-महल' समझता रहा। वहाँ सारे विदेशी व्यापारी अवश्य आते थे। वहीं से बाग में प्रवेश कर आगे मुख्य संगमरमरी इमारत देखने सारे लोग उस समय भी जाया करते। वह तेजोमहालय नाम का प्रसिद्ध प्राचीन शिवमन्दिर धर्मक्षेत्र था। ऐसे प्रसिद्ध मन्दिरों के बाहर बड़े-बड़े बाजार लगाने की हिन्दू परम्परा रही है। अतः तेजोमहालय के बाहर भी बाजार के लिए बारादरियों के चौक बने हैं। स्थानीय भाषा न जानने वाले एक पराए व्यापारी के नाते टेवरनियर को ऐसा भ्रम हुआ कि इस बाजार का नाम ही ताज-इ-महल है। अतः उसने निजी संस्मरणों में आरम्भ में ही यह लिखा है कि "छह चौक वाले ताज-इ-महल नाम के समीप शाहजहाँ ने मुमताज को इसलिए दफनाया कि बाजार में आने वाले विदेशी यात्री मुमताज के दफनस्थल की भी तारीफ करें।" इससे स्पष्ट है कि ताज-इ-महल (तेजोमहालय) नाम की इमारत उस समय बनी हुई थी। उसके बाहर जो बाजार लगता था उसे भी लोग ताजमहली बाजार ही

कहते थे। इससे टेवरनियर जैसे विदेशी व्यापारी को यह भ्रम होना स्वाभाविक था कि बाजार का ही नाम तेजोमहालय है। अतः उसने लिखा है कि उसके समीप मुमताज की कब्र है। कॉलेज में इतिहास पढ़ाने वाले गत सौ वर्षों के अनेक पीढ़ियों के इतिहासज्ञों ने या तो अज्ञानवश टेवरनियर के उस कथन को ठीक तरह से समझा नहीं या समझकर भी वे चुप रहे।

टेवरनियर के उस घोटाले का स्पष्टीकरण पीटर मण्डी के कथन में पाया जाता है। पीटर मण्डी नाम का एक अंग्रेज प्रवासी मुमताज की मृत्यु के एक डेढ़ वर्ष पश्चात् इंग्लैण्ड वापस चला गया। तथापि उसके प्रवासवर्णन की पुस्तक में यह उल्लेख है कि आगरा परिसर में जो प्रेक्षणीय इमारतें हैं उनमें मुमताज की कब्र भी सम्मिलित है। यदि ताजमहल इमारत बनने में १५-२० वर्ष लगते तो मुमताज की मृत्यु के पश्चात् केवल एक डेढ़-वर्ष में ही उसे प्रेक्षणीय इमारत कैसे कहा जाता। अतः पीटर मण्डी के कथन से भी यह स्पष्ट है कि शाहजहाँ ने एक प्राचीन इमारत में ही मुमताज को दफनाया।

इस प्रकार के और भी सौ-सवा सौ प्रमाण होते हुए भी यदि एक सौ वर्ष तक इतिहास के सभी विद्वान ताजमहल को शाहजहाँ द्वारा निर्मित बताते रहे तो इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि वर्तमान इतिहास-शिक्षा तथा संशोधन-पद्धति कितनी निकम्मी और खोखली है।

मरणपूर्व अपना ही मकबरा बनवाने की धौंस

अनेक विशाल इमारतों को किसी-न-किसी मृत मुसलमान सरदार, दरबारी, सुल्तान, बादशाह, फकीर आदि का आलीशान मकबरा कहा जाता है जबकि वे कब्जा किए हिन्दू महल या मन्दिर हैं। मृत व्यक्ति का ऐसा कोई वारिस नहीं होता जो मृतक के शव के लिए एक शाही महल बनवाए जब वह स्वयं अपने लिए या अपने बाल-बच्चों के लिए महल नहीं बनवा पाया हो। अतः इस्लामी इतिहास में बार-बार यह धौंस दोहराई जाती है कि मृतक ने मृत्यु से पूर्व निजी खजाने से लाखों रुपये खर्च कर निजी शव के 'निवास' हेतु अनेक मंजिलों का और सैंकड़ों कक्षों का मकबरा बनवाकर तैयार रखा था।

समझ में नहीं आता कि लोगों ने आज तक ऐसी अफवाहों पर कैसे विश्वास रखा। जिस व्यक्ति का जीवित रहते हुए कोई निजी महल नहीं था उसे मरणोपरान्त निजी शव के निवासस्थान की चिन्ता करने का कारण क्या? और शव का आश्रय स्थान बनवाने के लिए उसने इतने बड़ी रकम कहाँ से जुटाई जबकि जीते जी उसने अपने लिए कोई मकान नहीं बनवाया?

ऐसा एक प्रश्न उठाकर लगभग पाँच सौ व्यक्तियों की सहमति से मराठवाड़ा विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के विरुद्ध चांसलर लतीफ को एक प्रार्थना-पत्र सन् १९८२ के लगभग भेजा गया था। उसमें यह शिकायत की गई थी कि मराठवाड़ा विद्यापीठ ने बगैर सोचे-समझे शेख रमझान नाम के अध्यापक को उसके प्रबन्ध पर पी-एच० डी० की उपाधि दी थी जिसमें अनेक निराधार दावे किए गए हैं जैसे मलिक अम्बर नाम के हब्शी ने औरंगाबाद बसाया और औरंगजेब की एक पत्नि दिलरस बानू, जो युवा अवस्था में ही मरी थी, ने मृत्यु से पूर्व उस नगर में पल्ले से लाखों रुपए खर्च कर एक आलीशान मकबरा बनवाकर तैयार रख छोड़ा था। शिकायत यह थी कि मराठवाड़ा विश्वविलालय के इतिहास विभाग द्वारा इस प्रकार के निराधार दावे करने वाले प्रबन्ध पर लेखक को पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान करने की सिफारिश कैसे की गई, इसकी जाँच हो।

पुरातत्व विभाग ने उस तथाकथित बीवी का मकबरा इमारत पर लगाए सूचना फलक पर लिखा है कि दिलरस बानू का बेटे शहजादा मुहम्मद आजम ने वह इमारत पर अपनी माता दिलरस बानू की कब्र के रूप में बनवाई। पुरातत्व विभाग का यह कथन न तो किसी ऐतिहासिक प्रमाण पर आधारित है और न ही किसी तर्क पर। यदि माता के लिए पुत्र कब्र बनवाता तो उसे माता की कब्र कहते न कि बीवी की? दूसरा तथ्य यह है कि दिलरस बानू की मृत्यु के समय मुहम्मद आजम केवल छह वर्ष का था। एक अल्पवयस्क बालक कब्र बनवाने की आज्ञा कैसे देता और उसके लिए धन कहाँ से जुटाता?

अन्य इतिहासकारों का अनुमान है कि औरंगजेब ने ही दिलरस बानू की मृत्यु पर वह कब्र बनवाई होगी। वह अनुमान भी ठीक नहीं बैठता क्योंकि औरंगजेब उन दिनों औरंगाबाद से लगभग दो हजार मील दूर उत्तर

में था।

दिलरस बानू देवगिरि के पहाड़ी किले पर मरी थी। वहाँ से औरंगाबाद नगर पाँच मील दूर है। अतः दिलरस बानू की कब्र देवगिरी के किले में ही हो सकती है। इस कारण औरंगाबाद की जिस प्राचीन इमारत में उसकी कब्र बताई जाती है वह एक निराधार इस्लामी अफवाह मात्र है।

शेख रमझान का प्रबन्ध लिखा जाने से पूर्व इतिहासज्ञों में ये दो मत ही प्रचलित थे। कोई कहता था कि औरंगजेब ने वह कब्र बनवाई तो दूसरे कहते कि मुहम्मद आजम ने बनवाई। अतः चांसलर को भेजी गई अर्जी में यह शिकायत की गई थी कि शेख रमझान ने उस घोटाले का लाभ उठाकर तीसरा एक निराधार पर्याय यह सुझाया कि दिलरस बानू ने स्वयं जीवित रहते हुए ही अपने लिए कब्र तैयार करवा ली।

उस पर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग ने यह विचार किया कि जब बिना किसी ऐतिहासिक आधार के उस इमारत के निर्माण का श्रेय दो भिन्न मुसलमान व्यक्तियों को दिया जाता है तब यदि तीसरा एक मुसलमान किसी चौथे मुसलमान को उस इमारत के निर्माण का श्रेय देता है तो अपने बाप का क्या बिगड़ता है, आखिर है तो इमारत किसी मुसलमान की ही, तो दे दो उसे पी-एच० डी०। ऐसा अन्धा कारोबार विश्वविद्यालयों में चलता है। किसी प्रबन्ध में कोई ठोस नए ऐतिहासिक प्रमाण दिए गए हैं या नहीं यह कोई नहीं देखता। कांग्रेसी शासन में किसी भी ऐतिहासिक इमारत को इस्लाम द्वारा निर्मित कहने पर सबूत प्रस्तुत किए बिना ही पी-एच० डी० प्राप्त हो जाती है किन्तु अनेक ठोस प्रमाणों द्वारा किसी इमारत के इस्लामियत के भ्रम को चुनौती देने पर कोई सुनवाई नहीं होती।

मराठवाड़ा विश्वविद्यालय के कुलपति को की गई शिकायत को चांसलर ने विश्वविद्यालय के उप-कुलपति के पास भेजा। उप-कुलपति उस समय रुग्णालय में थे। अतः रजिस्ट्रार पर उस मामले को निपटाने की जिम्मेदारी पड़ी। रजिस्ट्रार ने शेख रमझान से ही स्पष्टीकरण माँगा। शेख रमझान ने लीपा-पोती करने वाला उत्तर भेजा और मामला वहीं रुक गया। इस प्रकार विश्व के विद्यालयों में इतिहास का विडम्बन होता है। सदियों

से विकृत तथा खण्डित हुआ पड़ा और झुठलाया इतिहास सुधारने की कोई हिम्मत नहीं करता।

ऐतिहासिक इमारतों की शैली

ऐतिहासिक इमारतों की शैली पूर्णतया हिन्दू होते हुए भी इतिहासकार उस शैली को पूर्णतया इस्लामी कहते आ रहे हैं। कुछ अन्य इतिहासकार अन्दर बनी कब्रों और बाहर दीवारों पर खुदा हुआ कुरान देखकर उस शैली को मिली-जुली हिन्दू-मुस्लिम शैली समझते हैं। वे यह नहीं जानते कि किसी तैयार इमारत के अन्दर कब्र बना देने पर और बाहर कुरान लिख देने पर उस इमारत की शैली नहीं बदलती। इमारत की शैली तो पूर्णतया हिन्दू ही है।

तथाकथित कब्रों और मस्जिदों की शैली हिन्दू देखकर उलझन में पड़े इतिहासकार दो भिन्न अनुमान प्रस्तुत करते हैं। एक अनुमान के अनुसार कारीगर हिन्दू थे इसलिए इमारत हिन्दू शैली की हो गई। उस अनुमान में दो गलतियाँ हैं। एक यह कि इस्लामी अफवाहों में कारीगरों का श्रेय सर्वदा मुसलमानों को ही दिया गया है। कारीगर यदि मुसलमान थे तो शैली हिन्दू कैसी बन गई? उस शंका को दबाने के लिए दूसरा अनुमान यह प्रस्तुत किया जाता है कि इस्लामी आक्रामकों ने हिन्दू महल और मन्दिर गिराकर उसी मलवे से ही मस्जिदें या कब्रें बनवाईं। यह झूठ भी टिक नहीं सकता। क्योंकि इमारत की हिन्दू कारीगरी के तिरस्कार के कारण यदि इमारतें गिरवाई गईं तो उसी कारीगरी के मल्बे से मस्जिदें और कब्रें क्यों बनवाई जाएँगी? इस्लामी सुल्तान, बादशाहों की अपार दौलत की तारीफ करने वाले इतिहासकार यह भी नहीं सोचते कि हिन्दू इमारतों के मल्बे से इस्लामी इमारतें बनवाने का दावा करने पर मुसलमान सुल्तान, बादशाह, फकीर आदि सारे दरिद्र सिद्ध होते हैं।

इस्लामी इतिहास के झूठे चित्र

इस्लामी प्रथा में किसी भी जीव के चित्र या प्रतिमाएँ बनाना बुत-परस्ती मानकर निषिद्ध कहा गया है। अतः इस्लामी प्रथा में चित्रकला या

मूर्तिकला कभी पनपी नहीं। इसके साथ ही इस्लामी स्त्रियाँ पर्दे में बन्द रहती थीं अतः उनका चेहरा पति या बच्चों के अतिरिक्त दूसरों को दिखाई नहीं देता था। अतः उनके चित्र कभी बनते नहीं थे। तथापि चाँदबीबी, नूरजहाँ, मुमताज आदि के चित्र पाठ्य-पुस्तकों में दिए जाते हैं। अतः स्पष्टतया वे चित्र कपोलकल्पित हैं। इस प्रकार इस्लामी इतिहास का केवल ब्योरा ही नहीं अपितु चित्र भी कल्पित होते हैं।

कब्रें झूठी हैं

हुमायूँ की कब्र, सफदरजंग की कब्र आदि कहलाने वाली इमारतों में उस विशिष्ट व्यक्ति का शव दफनाया हुआ नहीं है। यह भी इस्लामी इतिहास की एक बड़ी वंचना है। उन कब्रों पर जब उस व्यक्ति का नाम ही नहीं लिखा है तो वह उस व्यक्ति की कब्र हो ही नहीं सकती। किसी की कब्र के लिए यदि एक विशाल भवन बनवाया जाता था तो उस व्यक्ति का नाम उस कब्र पर अवश्य अंकित किया जाना चाहिए था। किन्तु वस्तुतः कब्रों पर कोई नाम अंकित न होने के कारण वे सारी कब्रें नकली साबित होती हैं। हिन्दू इमारतों पर कब्जा करने हेतु इस्लामी आक्रामकों ने प्रत्येक अपहृत हिन्दू इमारत के प्रत्येक कक्ष में एक-एक झूठी कब्र बना दी ताकि इमारत की रखवाली के लिए चौकीदार भी न रखना पड़े। हिन्दू सहिष्णुता को मुसलमान भली प्रकार जानते थे कि हिन्दू बिचारा किसी मुसलमान मृतक के स्थान को हथियाने का यत्न कभी नहीं करेगा।

सफदरजंग का मकबरा दिल्ली में बताया जाना इतिहास की एक बड़ी विडम्बना है। क्योंकि सफदरजंग तो अवध का नवाब था और वह अवध में ही मरा। इसलिए नई दिल्ली स्थित एक विशाल इमारत जिसे सफदरजंग का मकबरा कहा जाता है वह वास्तव में एक हिन्दू राजमहल है। उसके तहखाने में लाल मिट्टी के दो ढेर लगे रहते हैं जबकि इस्लामी कब्र ऐसी कभी नहीं होतीं, विशेषकर जब उसके लिए एक विशाल भवन बनवाया गया हो। दूसरी शंका यह है कि ऊपरली मंजिल में तो सफदरजंग के नाम से एक ही कब्र है जबकि तहखाने में दो ढेर हैं।

दिल्ली में हुमायूँ की कब्र कहा जाने वाला भवन भी एक हिन्दू राज-

हुई ही नहीं। फरिश्ता के अनुसार
महल है। हुमायूँ की मृत्यु दिल्ली में अनुसार हुमायूँ
हुमायूँ आगरा में दफनाया गया और अबुल फजल के
सरहिन्द में दफनाया हुआ है।

इतिहासज्ञों ने नाम भी झुठलाए

ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम भी झूठे दे
आज तक के इतिहासज्ञों ने कहा गया है कि किसी
रखे हैं। जैसे मुमताज को मुमताजमहल इसलिए
मुमताज-उल्-
प्रकार ताजमहल नाम की पुष्टि हो। वास्तव में उसका नाम
इसी नाम का उल्लेख है।
ज़मानी था। शाहजहाँ के बादशाहनामे में

बाग-बगीचों के झूठे दावे

हरियाणा राज्य में स्थित
कश्मीर के निशात, शालीमार बाग तथा
इतिहासकारों ने निराधार ही मुसलमान
पिंजौर के ऐतिहासिक उद्यानों पर
वहाँ प्राप्त मूर्त्तियों तथा इमारतों के अवशेषों
बादशाहों के नाम गढ़ दिए हैं। वैसे भी भारत को बाग-
से वे बड़े प्राचीन हिन्दू उद्यान सिद्ध होते हैं।
मुसलमानों ने हिन्दुस्थान पर आक्रमण
बगीचों से हरा-भरा करने के उद्देश्य से
बनवाते नहीं।
नहीं किया था। आक्रामक बाग-बगीचे नष्ट करते हैं,

इस्लामी तवारीखों में भरी गालियाँ छिपा रखीं

इस्लामी तवारीखों में हिन्दुओं को हिन्दू न कहते हुए बुतपरस्त, काफिर, हरामजादे, कम्बख्त, कुत्ते, बदमाश, डाकू, चोर, कमीने आदि गाली भरे शब्दों से हिन्दू लोगों का उल्लेख किया गया है। यह बात इतिहासकारों ने जनता से तथा सरकार से भी छिपा रखी है। आम जनता इस्लामी तवारीखें पढ़ नहीं पाती। अतः इतिहासकारों का कर्त्तव्य बनता है कि वे जनता तथा सरकार को बताएँ कि इस्लामी तवारीखों में हिन्दुओं के लिए कैसी-कैसी गालियाँ प्रयुक्त की गई हैं।

इस्लामी जनता तो उन तवारीखों से भली प्रकार परिचित रहती है। उर्दू समाचार-पत्रों द्वारा भी उन्हें अरबी तथा फारसी तवारीखों की सामग्री का परिचय होता रहता है। उस सामग्री द्वारा मुसलमानों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ऐसी शिक्षा मिलती रहती है कि जब भी हिन्दुओं का

उल्लेख करना हो तब घृणापूर्ण तिरस्कारयुक्त शब्दों से ही उनका उल्लेख करना हर मुसलमान का धार्मिक कर्त्तव्य है।

मुसलमानों में ऐसे घिसे-पिटे वाक्प्रचारों की परम्परा कायम रखना आवश्यक समझा जाता है। जैसे मुसलमान लोग बोलने में या लेखों में जहाँ भी मुहम्मद (पैगम्बर) का उल्लेख करेंगे वहाँ वे तुरन्त कहेंगे Peace be on him यानि "उसे शान्ति प्राप्त हो।" वस्तुतः एक सामान्य मुसलमान द्वारा रसूल को शान्ति बख्शने की अल्ला को प्रार्थना या इच्छा प्रकट करने में रसूल की शोभा या महत्ता कहाँ बढ़ती है। उस इच्छा से तो यह भाव प्रकट होता है कि रसूल की आत्मा इतनी बेचैन या अशान्त रहती है कि उसे करोड़ों सामान्य मुसलमानों की सिफारिश मिलने पर ही शायद अल्ला द्वारा शान्ति प्राप्त होगी।

किन्तु मुसलमानों में इतने गहरे विचार की प्रथा है ही कहाँ? वे तो अपने को खुदा का गुलाम, रसूल का गुलाम और सुल्तान बादशाहों से लेकर फकीर तक का गुलाम या बंदा बन्दा कहलाने में ही कृतकृत्यता मानते हैं। इसी कारण शायद मानव को भी गुलाम बनाकर बेचने-खरीदने का व्यापार मुसलमानों में प्रतिष्ठा का व्यवहार माना जाता रहा है।

नमाज की कवायती प्रथा

वरिष्ठों से आया हुक्म ज्यों-का-त्यों बिना सोचे-समझे पालन करने की प्रथा मुसलमानों की नमाज में भी दिखाई देती है। एक कवायती फौज की भाँति सैंकड़ों या हजारों मुसलमान कतारों में खड़े होकर सेना के जवानों की नकल करते हुए लकीर के फकीर जैसे आँखें मूँदकर एक साथ झुकते, उठते, बैठते और खड़े होते रहते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति का मन कई विचारों से भरा होता है। ऐसी अवस्था में नमाज अदा करने वाले मुसलमान का ध्यान अगले या दाएँ-बाएँ वाले साथी के क्रिया-कलापों पर लगा रहता है न कि अल्लाह के ऊपर। अतएव इस्लामी मस्जिदों को आध्यात्मिक प्रार्थना-स्थल कहने की बजाय सैनिक कवायद स्थल की भूमिका का निर्वाह करने वाला कहना अनुचित न होगा। ईश्वर का ध्यान नपे-तुले, शारीरिक उठ-बैठ द्वारा थोड़े ही लगाया जा

सकता है। मुसलमानों के उस गतानुगतिक कवायती आज्ञापालन की प्रथा के कारण ही हिन्दुओं का उल्लेख सर्वदा तिरस्कारपूर्ण गाली भरे शब्दों से ही करने की मुसलमानों को बचपन से आदत डाली जाती है। हिन्दुस्थान में हिन्दू बहुसंख्य होने के कारण मुसलमानों को उस अन्दरूनी घृणाभाव को बड़े कष्ट से दबाए रखना पड़ता है। किन्तु कश्मीर, पाकिस्तान या बांग्लादेश आदि में, जहाँ मुसलमान बहुसंख्या में हैं वहाँ हिन्दुओं से तिरस्कारपूर्ण व्यवहार करने की इस्लामी प्रथा क्रिकेट जैसे खेलों के मैदान पर भी बार-बार प्रकट होती रहती है।

इस मुसलमानी रवैये से सामान्य हिन्दू को बड़ी उलझन होती है। वह समझ नहीं पाता कि कुछ पीढ़ी पूर्व छल-बल से मुसलमान बनाया गया यह हिन्दू का बच्चा उससे इतना तिरस्कारपूर्ण व्यवहार क्यों कर रहा है? उस उलझन का उत्तर इस्लामी तवारीखों में किस प्रकार पाया जाता है यह हम ऊपर बता ही चुके हैं। इसीसे सही इतिहास, सही ढंग से सीखने का महत्व पाठक को विदित हो गया होगा। यदि इतिहास की शिक्षा में त्रुटि रही तो उससे व्यक्ति ऊपर कही जैसी कई उलझनों में फँसा रहता है।

पाँच हजार कक्ष कहाँ हैं?

इतिहास की ठीक तरह से छानबीन करने की आदत प्रत्येक नागरिक में डालना बड़ा आवश्यक होता है। इसका हम यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। अबुलफजल द्वारा लिखित आइन-ए-अकबरी ग्रन्थ में उल्लेख है कि अकबर के जनानखाने में जो पाँच सहस्र स्त्रियाँ थीं उनके लिए अकबर ने एक-एक स्वतन्त्र कक्ष बनवा दिया था। ऐसे कितने ही मौलिक संशोधन सूत्र इस्लामी तवारीखों में बिखरे पड़े है। किन्तु न तो किसी पुरातत्वीय विद्वान ने या इतिहासज्ञ ने उनसे कोई लाभ उठाया। कभी आगरा तो कभी फतेहपुर सीकरी अकबर की राजधानी रही। तो क्या विद्वानों का कर्त्तव्य नहीं था कि आगरा या फतेहपुरी सीकरी में अकबर के जनानखाने के पाँच हजार स्वतन्त्र निवास कक्ष कहाँ हैं इसका पता लगाएँ? किन्तु किसी भी विद्वान के मन में उस प्रकार का शोध करने का विचार कभी नहीं आया। वर्तमान इतिहास शिक्षा का यह एक बड़ा दोष है। उसमें ऐतिहासिक शोध

की दृष्टि निर्माण नहीं की जाती। घिसे-पिटे प्रश्नों के रटे-रटाए उत्तर लिखते रहना ही इतिहास की शिक्षा कहलाती है।

उस प्रथा के विपरीत मैंने जब आगरा और फतेहपुर सीकरी में अकबर के जनानखाने के पाँच सहस्र कक्षों का परिसर ढूँढने का प्रयास किया तो मुझे वे पाँच सहस्र कक्ष या उनके खण्डहर भी कहीं दिखाई नहीं दिए। इससे पता चलता है कि अबुल-फजल विश्वासयोग्य लेखक नहीं हैं। आइन-ए-अकबरी ग्रन्थ में लिखी ऐसी कई बातें जब बार-बार झूठ सिद्ध होने लगीं तब पाश्चात्य लेखकों ने अबुल-फजल का मूल्यांकन करते हुए उसे निर्लज्ज खुशामदी (shameless flatterer) अथवा बेशरम चाटुकार कहा। लगभग सारे ही इस्लामी तवारीख लेखक इसी प्रकार के व्यक्ति थे। वे और हो भी क्या सकते थे! सुल्तान, बादशाह, दरबारी या फकीर जिस किसी से रोटी-रोजी कमानी हो उसको सन्तुष्ट रखने से ही उन दिनों कमाई हो सकती थी। उन्हें नाराज करने से सूली लगने का भी डर था। जब वर्तमान गांधी-नेहरू तत्वप्रणाली के युग में कांग्रेसी शासन की नौकरी करने वाले इतिहासज्ञों को ताजमहल आदि इमारतें मुसलमानों की बनाई नहीं हैं यह कहने की हिम्मत नहीं होती तो सुल्तान-बादशाहों के क्रूर, तानाशाही इस्लामी शासन में तवारीखों के लेखक खुशामदी सामग्री से निजी ग्रन्थ भर देते हों इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं।

मुगल बादशाहों की सुन्नत नहीं होती थी

यद्यपि मुसलमानों में प्रत्येक लड़के की सुन्नत कराने की रस्म अनिवार्य मानी जाती है तथापि पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि हुमायूँ के पश्चात् किसी मुगल शहजादे की सुन्नत नहीं हुई थी।

इस सम्बन्ध में भी अबुलफजल आदि कई दरबारी लेखकों ने शहजादों की सुन्नत किए जाने के जो वर्णन लिखे हैं वे झूठ प्रतीत होते हैं। हो सकता है कि प्रत्यक्ष सुन्नत न करवाकर केवल औपचारिक रूप से सुन्नत किए जाने की घोषणा कर दरबार में उपस्थितों को मिठाई बाँट दी गई हो।

हिन्दुओं में भी जैसे-जैसे कर्मठता कम होती गई वैसे-वैसे व्रतबन्ध के समय पूरा मुण्डन कराने से शिशु के इन्कार करने के कारण बाल काटने की

विधि नाममात्र करा दी जाने लगी। व्रतबन्ध समय का होम-हवन संस्कार भी उत्तरोत्तर सिकुड़ता चला गया। यहाँ तक कि आजकल कई हिन्दू परिवारों में व्रतबन्ध संस्कार कराना ही बन्द हो गया है क्योंकि आधुनिक जीवन-प्रणाली में व्रतबन्ध का कोई महत्त्व या सम्बन्ध ही प्रतीत नहीं होता।

मुगल सल्तनत में हुमायूँ के पश्चात् किसी शहजादे की सुन्नत नहीं होती थी यह बात बड़ी गुप्त रखी गई थी। क्योंकि कर्मठ इस्लामी समाज में यह बात यदि खुल जाती तो मुसलमान जनता तीव्र विरोध करती। अतः केवल बाहरी औपचारिक दिखावे के लिए शहजादों की सुन्नत करवाने का नाटक किया जाता किन्तु प्रत्यक्ष में कोई सुन्नत नहीं होती।

गुप्त रखी गई इस बात का पता तब चला जब अन्तिम मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर की बेगम जीनतमहल ने अपने पुत्र को अंग्रेजों द्वारा राज्य का वारिस मान्य करवाने के लिए जो अर्जी दी, उसमें इस बात का रहस्य खोला।

केई (Keay) नाम के एक अंग्रेज ने सन् १८५७ के संघर्ष के सम्बन्ध में अनेक दस्तावेज पढ़कर Spot on the Mutiny नाम की पुस्तक लिखी है। उन दस्तावेजों में अंग्रेजों के नाम बेगम जीनतमहल द्वारा प्रस्तुत की गई एक अर्जी भी थी। उसमें लिखा था कि यद्यपि फखरुद्दीन बहादुरशाह का बड़ा पुत्र था, लेकिन उसे मुगलों का वारिस समझा जाना योग्य नहीं होगा क्योंकि अकबर के समय से किसी भी मुगल शहजादे की सुन्नत नहीं होती थी। यह भेद जानकर जीनतमहल ने अपने पुत्र की सुन्नत नहीं करवाई ताकि वह मुगल गद्दी का हकदार रह सके।

केई (Keay) को बड़ी उलझन हुई। सुन्नत कराने या न कराने से मुगलों के वारिस या लावारिस बनने का घोटाला उसे समझ में नहीं आया। अतः अलीगढ़ विश्वविद्यालय के संस्थापक सर सय्यद अहमद से उसने विवरण पूछा।

सर सय्यद अहमद ने जीनतमहल के कथन की पुष्टि करते हुए कहा कि अकबर का जन्म सिन्ध के मरुस्थल में हुआ। उस समय हुमायूँ को हिन्दुस्थान से शेरशाह सूरी ने खदेड़ दिया था। गृहहीन, द्रव्यहीन, भागदौड़ में बाल अकबर के सुन्नत आदि आवश्यक इस्लामी संस्कार किए नहीं जा

सके। जब हुमायूँ वापस आकर भारत में बादशाह बना तब छह मास में ही उसकी मृत्यु भी हो गई। फिर भी पानीपत का युद्ध जीतकर तेरह वर्षीय अकबर बादशाह बना। अब वह इतना बड़ा हो चुका था कि उसे सुन्नत करा लेने की आवश्यकता भी नहीं लगी और हिम्मत भी नहीं पड़ी। उल्टे अकबर के मन में यह विचार दृढ़ हो गया कि सुन्नत न होना ही एक तरह का शगुन था जिसके कारण उसे १३ वर्ष की अल्पायु में बादशाह बनने का अहोभाग्य प्राप्त हुआ।

वैसे भी अकबर कर्मठ इस्लामी मनोवृत्ति का नहीं था। कई बातों में उसके विचार स्वतन्त्र थे। मुल्ला-मौलवी की चपड़-चपड़ वह चलने नहीं दिया करता था। और सुन्नत टालने से ही व्यक्ति भाग्यशाली बनता है ऐसा उसका विश्वास हो गया था। अतः उसने सलीम (जहाँगीर) आदि अपने पुत्रों की सुन्नत नहीं करवाई।

तत्पश्चात् यह प्रथा ही बन गई। जहाँगीर भी मुल्ला-मौलवियों की बातों में नहीं आता था। उसने भी शाहजहाँ की सुन्नत नहीं कराई और शाहजहाँ ने औरंगजेब की सुन्नत नहीं कराई। दैवगति का यह कैसा चमत्कार है कि जो औरंगजेब कट्टर-कड़वा-कर्मठ मुसलमान था उसकी अपनी सुन्नत नहीं हुई थी।

इस प्रकार मुगल घराने में सुन्नत कराना एक प्रकार से गद्दी का हक खो बैठना था। यह जानकर जीनतमहल ने बड़ी दूरदृष्टि से निजी पुत्र की सुन्नत नहीं करवाई। इससे सौतेले बेटों से उसके अपने पुत्र का गद्दी प्राप्त कराने का हक अधिक पक्का हो गया ऐसा जीनतमहल मानती थी। और उसकी बात दैववशात् खरी उतर आई। क्योंकि कई पीढ़ियों के पश्चात् मुगल बादशाही घराने में शहजादा फखरुद्दीन की सुन्नत क्या कराई गई वह कभी बादशाह बन ही नहीं सका, क्योंकि मुगलों के तख्त और ताज दोनों नामशेष हो गए।

यद्यपि इतिहासकारों को निजी ज्ञान का बड़ा गर्व होता है, किन्तु हमारे इस ग्रन्थ में ताजमहल के निर्माण की, मुगल शहजादों की सुन्नत न होने की, पोप तथा आर्चबिशप के मूलतः वैदिक शंकराचार्य होने की, ऐसी कई बातें कही गई हैं जिनका आज तक के इतिहासकारों को कोई ज्ञान नहीं

यह तथ्य ज्ञात कराए जाने पर उनका पुरस्कार करने की भी
था, न है। यह तथ्य ज्ञात कराए जाने पर उनका पुरस्कार यथा एक भी विश्वविद्यालयीन इतिहासज्ञ या सरकारी
हिम्मत उनमें नहीं है। यथा एक भी विश्वविद्यालयीन इतिहासज्ञ या सरकारी
पुरातत्व या पर्यटन अधिकारी ताजमहल, तेजोमहालय नाम का हिन्दू राज-
मन्दिर था, यह तथ्य प्रकट रूप से कहने या लिखने को तैयार नहीं है।
क्या ऐसे व्यक्ति इतिहासकार कहलाने के पात्र हैं।

एक आश्चर्य की बात यह है कि एक तरफ जहाँ भारत के मुसलमान
शाहजहाँ को ही ताजमहल का निर्माता मानने का दुराग्रह नहीं छोड़ते वहाँ
अली ओझ्वर्न ((Ali Ozveren) नाम के एक तुर्की वास्तुकार, जो ब्रिटेन
के Royal Institute of British Architects का सदस्य है, ने मेरे एक
मित्र से कहा कि तुर्कस्थान के विद्यालयों में तो यही पढ़ाया जाता है कि
ताजमहल मूलतः एक हिन्दू मन्दिर था जिसे शाहजहाँ ने कब्रस्थान बना
छोड़ा।

इसी प्रकार मिस्र में बने पिरामिड फॅरोहा राजाओं की कब्रें मानी
जाती हैं। किन्तु एक अमेरिकी विद्वान् ने Greet Western Railway के
लिए मार्ग तैयार करने में जितने वर्ष एवं जितनी मजदूरी लगी उससे
पिरॉमिड बनवाने पर लगी मजदूरी का अनुमान लगाकर यह निष्कर्ष
निकाला कि पिरॉमिड किसी मृत राजा के लिए बनी कब्र हो ही नहीं
सकता।

इसी प्रकार अनेक विचारी विद्वानों ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हमारे
निष्कर्षों का मण्डन किया है। हमें विश्वास है कि भविष्य में जो भी विद्वान्
इस ग्रन्थ को पढ़ेंगे उन्हें हमारे द्वारा विदित कराए गए तथ्य उचित लगेंगे।
क्योंकि यह ज्ञान किसी विद्यालय में पढ़ाया ज्ञान नहीं, अपितु समाधिस्थ
तल्लीनता में ईश्वरीय स्रोत से पाया ज्ञान है। वह इतना अपार-असीम था
कि उसमें सृष्टि उत्पत्ति के दिन से लेकर आज तक के इतिहास की पूरी
रूपरेखा प्रकट हो गई। वह ज्ञान-भण्डार इतना विशाल है कि उसे जनता के
सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए हजारों पुस्तकें लिखनी होंगी और एक जागतिक
वैदिक सांस्कृतिक विश्वविद्यालय स्थापन करना होगा। एक कहावत है कि
अनन्त हाथों से जब भगवान देना प्रारम्भ कर देता है तो बिचारा अकेला
व्यक्ति अपने दो सीमित हाथों से कितना धन (ज्ञान) बटोरेगा। मेरी

अवस्था वैसी ही हुई। मैंने मैट्रिक के वर्ग के पश्चात् महाविद्यालयों में कभी
इतिहास नहीं पढ़ा और न ही मेरे व्यवसाय में इतिहास का कभी कोई
सम्बन्ध रहा। फिर भी ऐतिहासिक स्थल देखते-देखते मेरी जो एकाग्र
अवस्था हो जाती उसमें मुझे प्रत्यक्ष परमात्मा द्वारा ही जागतिक इतिहास
की पूरी रूपरेखा विदित कराई गई। मेरे जीवनकाल में ही यदि अनेक
पदवीधर सहायक और १०-२० करोड़ रुपये पूंजी का शोध संस्थान,
इतिहास ग्रन्थालय, मुद्रणालय आदि साधनसुविधा-उपलब्ध हुई तो वे हजारों
ग्रन्थ लिखने का प्रशिक्षण मैं अनेक विद्वानों को दे पाऊँगा। यदि वह साधन
सामग्री मेरे जीवनकाल में उपलब्ध नहीं कराई गई तो मेरे व्यक्तिगत
सीमित साधनों द्वारा जो चन्द एक बुनियादी ग्रन्थ मैं प्रकाशित कर सका हूँ
उन्हीं से प्रेरणा लेकर आगामी पीढ़ी के किसी अन्य मनीषि व्यक्ति को विश्व
की जनता को उनकी मूल वैदिक एकता का ज्ञान विस्तृत रूप से कराने के
लिए सैंकड़ों या हजारों ग्रन्थ लिखने का यह कार्य पूरा करना होगा।

उस कार्य का एक सूत्र मैं यहाँ दे रहा हूँ। महाभारतीय युद्ध के अपार
संहार से जब वैदिक विश्वसाम्राज्य टूट गया तब उसका एक विशाल खण्ड
कलिंग साम्राज्य कहलाने लगा। एशिया खण्ड और प्रशान्त महासागर के
हजारों द्वीपों पर उसका साम्राज्य था। होते-होते उस साम्राज्य के भी
टुकड़े होकर उससे चोल, शक आदि भिन्न राजवंश बने। इस प्रकार उस
प्राचीन अज्ञात इतिहास की कड़ी अर्वाचीन ज्ञात इतिहास से जुड़ती है।

अशोक द्वारा कलिंग साम्राज्य पर बड़ी विजय पाने की एक अस्पष्ट-
सी बात इतिहास में आती है। उड़ीसा के भुवनेश्वर नगर से दस मील दूर
धवली नाम के स्थान पर वह भीषण कलिंग युद्ध हुआ। उसके स्मारक के
रूप में जापानियों द्वारा वहाँ एक बौद्धमन्दिर भी बनवाया गया है।

किन्तु वह युद्ध किसके साथ हुआ ? कलिंग का राजा उस समय कौन
था ? उसके साम्राज्य का विस्तार कितना था ? सेना कितनी थी ? सेनापति
कौन था ? दोनों पक्षों के कुल कितने सैनिक मारे गए ? युद्ध कितने समय
चला ? कलिंग की हार क्यों हुई ? आदि कुछ भी ब्योरा इतिहास में नहीं
है। उसका पता लगाना आवश्यक है। जागतिक इतिहास में एक बहुत बड़ा
परिवर्तन लाने वाले उस युद्ध का केवल नामनिर्देश बचना इतिहास की बड़ी

त्रुटि है ।

कलिंग साम्राज्य में ब्रह्मदेश, श्याम, काम्बोज, लव, वीएतनाम, कोरिया, फिलीपीन, मलाया, सिंहपुर, जावा, बाली, सुमात्रा, बोर्नियो आदि विशाल प्रदेश सम्मिलित था, ऐसा अनुमान है। उस साम्राज्य की राजधानी थी उड़ीसा का कटक-कोणार्क-भुवनेश्वर परिसर। क्योंकि काम्बोज (कम्बूचिया) के वाद्य, नृत्यशैली, स्थापत्यशैली आदि उड़ीसा जैसे ही हैं, ऊपर उल्लिखित अन्य प्रदेशों में भी उसी प्रकार की सर्वांगीण समानता दीखती है। उधर मेक्सिको तथा अमेरिका खण्डों के अन्य देशों में जो माया, एक्का, अँझटेक आदि सभ्यताएँ थीं वे भी वैदिक स्रोत की ही थीं इसका कुछ ब्योरा भिक्षु चमनलाल द्वारा लिखित 'Hindu America' पुस्तक में प्रस्तुत है। उस प्राचीन विशाल वैदिक सांस्कृतिक एकात्मता का ज्ञान आधुनिक मानव को कराना महत्त्वपूर्ण एवं पुण्य कार्य है।

आंग्ल तथा इस्लामी पुरातत्वीय षड्यन्त्र

भारत में जो सरकारी पुरातत्व विभाग है वह आंग्ल शासन में प्रस्थापित हुआ। आम लोगों की धारणा यह है कि आंग्ल लोग बड़े सभ्य तथा विद्या और कला की परख तथा सम्मान करने वाले होने के कारण उन्होंने भारत स्थित कतिपय सुन्दर, विशाल ऐतिहासिक इमारतों का अध्ययन, संरक्षण तथा देखभाल करने हेतु पुरातत्व विभाग प्रस्थापित किया। यह बड़ी भारी भूल है। अंग्रेजों द्वारा निर्मित पुरातत्व विभाग एक बड़ा सरकारी षड्यन्त्र है। दुर्भाग्य की बात यह है कि गत १०० वर्षों में इतिहासकारों की और पुरातत्वीय विद्वानों की जो अनेक पीढ़ियाँ तैयार हुई वे अनजाने में दुनिया भर में उसी धोखाधड़ी वाले इतिहास का ज्ञान (यानि अज्ञान) का प्रसार करती चली जा रही हैं। उन्हें पता ही नहीं कि वे एक देशद्रोही ऐतिहासिक षड्यन्त्र के वितरक बने हुए हैं।

उस पुरातत्व विभाग का आंग्ल प्रणेता तथा प्रथम सर्वाधिकारी अलेक्जेण्डर कनिंघम नाम का व्यक्ति था। आंग्लभाषा में 'कनिंग' (Cunning) शब्द का अर्थ होता है 'लुच्चा' और सचमुच ही अलेक्जेण्डर कनिंघम योगायोग से अपने नाम के अनुरूप ही लुच्चा निकला।

उसका जन्म १८१४ में इंग्लैण्ड में हुआ। आंग्ल सेना के इंजीनियरिंग विभाग में भरती होकर वह भारत आया। सन् १८४२ में भारत में परमोच्च ब्रिटिश अधिकारी गवर्नर जनरल लॉर्ड ऑकलैण्ड (Lord Auckland) थे। लेफ्टिनेण्ट अलेक्जेण्डर कनिंघम उनका ADC यानि सचिव तथा कनिष्ठ साथी उर्फ सहायक नियुक्त हुआ।

उस समय अंग्रेजों का शासन भारत में नया-नया स्थापित हुआ था। अतः सारे अंग्रेज अधिकारियों में एक होड़-सी लगी थी कि भारत का यह मौलिक साम्राज्य प्रदीर्घ समय तक ब्रिटेन के अधीन रहे, इसके लिए कौन-कौन से उपाय किए जाएँ? प्रत्येक अंग्रेज अपनी-अपनी अकल लड़ाकर वरिष्ठ अधिकारियों को विविध उपाय सुझाता।

अलेक्जेण्डर कनिंघम के मन में भी एक कल्पना झलकी। ब्रिटिश साम्राज्य को पुरातत्वीय षड्यन्त्र द्वारा सँवारने की वह कल्पना थी। मुरब्बे या अचार को दीर्घकाल तक टिकाने के लिए जैसे कोई पदार्थ उनमें डाले जाते हैं या किसी कच्चे ढाँचे को जैसे स्तम्भों के आधार से गिरने से बचाया जाता है उसी प्रकार हिन्दुस्थान पर ब्रिटिश सत्ता चिरकाल तक टिकी रहे इस उद्देश्य से पुरातत्व का राजनयिक उपयोग करने की अजीब युक्ति कनिंघम के मन में साकार हुई।

उस पुरातत्वीय हेरा-फेरी का वह षड्यंत्र अलेक्जेंडर कनिंघम यदि अपने मन में ही दबाए रखता तो शायद हमें उसकी उस हेरा-फेरी का पता नहीं लगता। किन्तु कहते हैं कि प्रकृति का एक नियम है। अपराधी मनुष्य अवश्य ऐसे कोई चिह्न छोड़ जाता है जिससे उसके अपराध का भांडा फूट जाता है।

योगायोग से अपने एक पत्र में कनिंघम ने उस योजना का उल्लेख किया है। १५ सितम्बर, १८४२ का वह पत्र कनिंघम ने कर्नल साइक्स को लिखा है। उस समय कनिंघम भारत में था और साइक्स (Sykes) लन्दन में। साइक्स ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का डायरेक्टर था।

पत्र बहुत लम्बा है। इसमें भारत के प्राचीन खण्डहरों का उल्लेख करते हुए कनिंघम ने साइक्स महोदय को सुझाया कि "Archaeological exploration in India "would be an undertaking of vast importance to the (British) Indian Government politically and to the British public religiously (and that the) establishment of the Christian religion in India must ultimately succeed."

यानि "भारत में यदि पुरातत्वीय अध्ययन किया जाए तो उससे भारत

की (ब्रिटिश) सरकार को बहुत अधिक राजनयिक लाभ होगा, ब्रिटेन की जनता को धार्मिक लाभ होगा और भारत में क्रुस्ती धर्म प्रस्थापित करने का ध्येय अवश्य यशस्वी होगा।"

ऊपर उद्धृत वाक्य से पाठक देख सकते हैं कि भारत का पुरातत्व खाता यहाँ की ऐतिहासिक इमारतों का अध्ययन करने के उद्देश्य से नहीं अपितु भारत को इंग्लैण्ड का गुलाम रखने के लिए तथा भारत के लोगों को क्रुस्ति बनाने का समाधान ब्रिटिश जनता को दिलवाने के लिए किया गया। अतः उसकी कार्यवाही भी उसी प्रथा की रही है। अगस्त १९४७ से भारत पर ब्रिटिश सत्ता के हट जाने पर भी ८० वर्ष की चोरी-छिपे कार्य करने की पुरातत्व विभाग की प्रथा ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। यह हम इसी अध्याय में आगे चलकर बताएँगे।

ऊपर उल्लिखित पत्र किसी भी बड़े ग्रन्थालय में रॉयल एशियाटिक सोसायटी के मासिक के खण्ड ७, पृष्ठ २४६, सन् १८४३ में देखा जा सकता है। (Journal of the Royal Asiatic Society, vol. 7, page 246, 1843, A.D.)

कनिंघम् ने २८ वर्ष की अवस्था में पुरातत्वीय ढोंगबाजी से दीर्घकालीन राजनयिक तथा धार्मिक लाभ द्वारा भारत को प्रदीर्घ काल तक ब्रिटिश शासन में जकड़ रखने की जो योजना सुझाई थी उसके परिणामस्वरूप उसकी आयु ४८ वर्ष होते ही उसको सेना के इंजीनियरिंग विभाग की नौकरी समाप्त कर उसे सन् १८६१ में भारत का सर्वप्रथम पुरातत्वीय सर्वेक्षक (Archaeological Surveyor) नियुक्त किया गया। तत्पश्चात् १८६२ से १८६५ तक उसे निदेशक (Director) का पद दिया गया। १८७१ से १८८५ तक वह महानिदेशक यानि Director General कहलाया।

इस प्रकार इतिहास तथा पुरातत्व का कोई ज्ञान न रखने वाले एक घमचोर पराए, आंग्ल सैनिक द्वारा भारत के सरकारी पुरातत्व विभाग की नींव आंग्ल साम्राज्य की पुष्टि हेतु डाली जाने के कारण भारतीय पुरातत्व विभाग की कार्यप्रणाली गुप्त हेरा-फेरी की रही है। उस हेरा-फेरी के अन्तर्गत अधिकांश ऐतिहासिक बाड़े, किले, पुल, महल, नगर आदि

इस्लामी सुल्तान, बादशाह, फकीर आदि ने ही बनवाए ऐसा बड़े दुराग्रह से कहा जाता है। और उस असत्य कथन की कहीं पोल न खुले इसलिए मूर्त्ति, संस्कृत शिलालेख आदि जो भी प्रमाण ऐतिहासिक खण्डहरों से प्राप्त होते रहते हैं उन्हें या तो नष्ट कर दिया जाता है, छिपाया जाता है या मूलस्थान से दूर कहीं ले जाकर पटक दिया जाता है ताकि वे कहाँ से प्राप्त हुए इसका पता न लगे। इसी प्रकार वार्षिक सूची में ऐसे प्रमाणों का उल्लेख (जो नियमानुसार किया जाना चाहिए) टाल दिया जाता है। पुरातत्व विभाग का दिखलावे के लिए तो प्रथा या नियम बना हुआ है कि प्रतिवर्ष जो पुरातत्वीय सामग्री प्राप्त होती है उसका पूरा ब्योरा (वस्तु प्राप्त, उसका महत्व, उसका काल, प्राप्ति का स्थान आदि) उस वर्ष के सूचना खण्ड में अंकित किया जाए। किन्तु वैसा होता नहीं रहा है। कुतुब-मीनार या फतेहपुर सीकरी या सुल्तान घारी (यह सारे नाम भी झूठे और नकली इसलिए दिए गए हैं कि इनसे श्रोता को ऐसा आभास हो कि मूलतः वे इमारतें मुसलमानों की ही हैं) आदि स्थलों से देवमूर्त्ति या संस्कृत शिलालेख जो प्राप्त होते रहे हैं उन्हें गुल और गुम करके उनकी प्राप्ति के सम्बन्ध में पूरी गुप्तता बरती जाती है। जब कुतुबमीनार से देवमूर्त्तियाँ पाई जाने लगीं तब पुरातत्व विभाग ने कुतुबमीनार के इर्दगिर्द ऊँची कनात खड़ी कर चोरी-छिपे उत्खनन किया ताकि वह हिन्दू-स्थल होने की बात किसी को ज्ञात न हो।

कहा जाता है कि ताजमहल में भी सन् १९५२ के लगभग एस० आर० राव नाम के पुरातत्वीय अधिकारी को ताजमहल की दीवार में पड़ी दरार में अष्टवसु की मूर्तियाँ दिखाई दी थीं किन्तु वरिष्ठ अधिकारियों की आज्ञा से दरार बन्द कर उसी अवस्था में दुबारा चिनवा दी गई। इसी प्रकार टी० एन० पद्मनाभन् नाम के एक दूसरे पुरातत्वीय अधिकारी को ताज-महल में विष्णु की मूर्ति मिली थी। उसे भी वह बात गुप्त रखने को कहा गया अतः वह भी मौन धारण किए हुए हैं।

गत १२५ वर्षों में भारतीय पुरातत्व विभाग की इस प्रकार की हेराफेरी की विशालता का पाठक अनुमान लगा सकते हैं। यह कितनी निन्दनीय और गम्भीर बात है कि ८५ प्रतिशत जनता हिन्दू होते हुए भी भारत में

हिन्दुओं के पक्ष में जो प्रमाण मिलते हैं उन्हें दबाकर अधिकतर ऐतिहासिक इमारतें मुसलमानों की ही बनाई जाने की प्रथा जो अंग्रेजी अमलदारों ने चालू की वह अभी भी ज्यों-की-त्यों चलाई जा रही है। इससे छुटकारा पाने के लिए अलेक्जेंडर कनिंघम के समय से चलाए जा रहे इस षड्यन्त्र का ढोल पीटकर प्रकट रूप से भांडा फोड़ किया जाना चाहिए। ताकि इस षड्यन्त्र के आरम्भ से आजतक के कूड़े-करकट की सरकार तथा जनता द्वारा इकट्ठी होली जलाकर पुरातत्वीय सत्यान्वेषण की एक नई प्रणाली पुनः आरम्भ की जाय।

यूरोप, अफ्रीका आदि खण्डों में भी ऐसा ही हुआ है। वहाँ ईसाई और इस्लामी मत-प्रणाली को जो पुरातत्वीय अवशेष प्रतिकूल प्रतीत हुए उन्हें या तो छिपाया गया, नष्ट किया गया या उनका गलत अर्थ या सन्दर्भ लगाकर लोगों को उन अवशेषों के सम्बन्ध में भ्रम में डाला गया।

सत्यान्वेषण के स्थान हर ब्रिटिश साम्राज्य लालसा की पुष्टि करने के उद्देश्य से ही भारत का पुरातत्वीय कारोबार चलाए जाने के कारण पुरातत्वीय गतिविधियों में विद्वानों को अनेक दोष दिखाई देना अनिवार्य था और ठीक वैसा ही हुआ। जेम्स फर्गुसन नाम के ग्रन्थकार ने भारतीय पुरातत्व (Indian Archaeology) नाम की अपनी पुस्तक में पृष्ठ ३२-३३ तथा ७६-७८ पर लिखा है कि "चौदह वर्ष तक कनिंघम पुरातत्वीय कार्य करता रहा तथापि उस अवधि में उसका योगदान लगभग शून्य ही रहा। उसके प्रयासों से न तो पुरातत्वीय खण्डहरों के बारे में और न ही ऐतिहासिक स्थलों के बारे में किसी को कोई जानकारी प्राप्त होती है।" भला हो भी कैसे जब उसका उद्देश्य ही वह नहीं था। लोकसभा के प्रस्ताव द्वारा या परमोच्च न्यायालय के द्वारा भारतीय पुरातत्व की उस असत्य, दुष्ट, हिन्दू घातक एवं इस्लामपोषक कार्यवाही को समाप्त करना एक आवश्यक राष्ट्रकार्य है।

कनिंघम ने पुरातत्व प्रमुख नियुक्त होते ही अपने दो अंग्रेज सहायक चुने। उनके नाम थे जे० डी० बेलगा और कार्लाइल। उन्होंने भारत के विविध भागों में दौरा कर प्रमुख ऐतिहासिक स्थानों की सूची बनाई। यह कार्य १८६१ से १८६५ तक चला। तत्पश्चात् नया प्रस्थापित किया हुआ

से १८७० तक बन्द रखा गया।
पुरातत्व विभाग सहायक सन् १८६५ से १८७० तक बन्द रखा गया।
तत्पश्चात् वह दफ्तर दुबारा चालू करा दिया गया।
लगातार पाँच वर्ष पुरातत्व विभाग क्यों बन्द रखा गया? जैसे कोई जादूगर बच्चों को आँखें बन्द करने के लिए कहकर उस अवधि में कुछ हेरा-फेरी कर देता है, उसी प्रकार १८६५ से १८७० तक कनिघम ने पुरातत्व विभाग बन्द रखकर दो कार्य किए। एक तो यह कि ताजमहल आदि अधिकांश ऐतिहासिक इमारतें, किले, बाड़े, महल, पुल, तालाब आदि पर सूचनाफलक लगवाकर उन्हें किसी सुल्तान, बादशाह, इस्लामी दरबार या फ़कीर द्वारा निर्मित कह डाला। उसी समय पुरातत्व विभाग के दफ्तर में भी उन ऐतिहासिक स्थलों का झूठा इस्लामी ब्योरा तैयार किया गया।

अत: १८७० से आज तक सारे विश्व में आंग्ल प्रभुसत्ता द्वारा चलाए गए सारे ही विद्यालयों में जिन-जिन विद्वानों ने इतिहास, पुरातत्व, संस्कृति, कला, स्थापत्य शिक्षा आदि विषयों में उच्च-शिक्षा पाकर विश्व भर के विश्वविद्यालय, कला विभाग, वास्तुसंग्रहालय यानि museums आदि में नौकरी पाई उन्होंने कनिघम की झूठी टिप्पणियों का उल्लेख करते हुए विश्व के कतिपय ऐतिहासिक नगरों तथा इमारतों के निर्माता मुसलमान आक्रामक ही थे, ऐसा प्रतिपादन किया। लगातार १२५ वर्ष सारे विश्व में वह झूठ सारे शिक्षा माध्यमों से दोहराया जाने के कारण सभी लोग इसी को सत्य समझ बैठे हैं।

जब तीन अंग्रेज किसी योजना को कार्यान्वित करने लगते हैं तो मतभेद सम्भव होता है। और वैसा ही हुआ। जे०डी० बेलगार ने पुरातत्वीय दस्तावेजों में कुतुबमीनार को हिन्दू वास्तुकला लिख मारा। किन्तु वरिष्ठ अधिकारी होने के नाते कनिघम ने बेलगार के निष्कर्ष को ठुकराकर कुतुबमीनार को सरकारी दस्तावेजों में इस्लामी मीनार ही लिखा। तबसे सारे विद्वान कनिघम का हवाला देकर कुतुबमीनार को इस्लामी मीनार ही समझे बैठे हैं।

सन् १९८५ के लगभग मैं एक दिन कुछ इतिहासप्रेमी व्यक्तियों को कुतुबमीनार परिसर के विविध खण्डहर किस प्रकार एक विशाल विष्णु-मन्दिर तथा वेधशाला के भाग हैं, यह समझा रहा था। उस समय हम वहाँ के एक विशाल द्वार के पास खड़े थे। उसे 'अलाई' द्वार कहकर कनिघम ने निराधार ही उसे अलाउद्दीन द्वारा निर्मित लिख मारा है। वास्तव में वहाँ २७ नक्षत्र मन्दिरों का जो अण्डाकृति आलय बना था उसमें प्रवेश करने का महाद्वार होने से उसका आलय द्वार यह परम्परागत नाम पड़ा। उसका लाभ उठाकर कनिघम ने किसी तरह नामोच्चार की खींचातानी करते हुए 'आलय' को 'अलाई' कहकर अलाउद्दीन को उसका निर्माता कह डाला।

भारतीय ऐतिहासिक इमारतों में ताजमहल सबसे अधिक सुन्दर और प्रसिद्ध होते हुए भी उसकी पुरातत्वीय जांच करने का निजी कर्त्तव्य करने में कनिघम ने जानबूझकर आनाकानी की। उसके सहायक कार्लाइल ने लिखा है (पृष्ठ ६७, भाग २, भार० पु० सर्वे० रिपोर्ट सन् १८७१-७२) "जनरल कनिघम ने मुझे कहा कि ताजमहल की पूरी रूपरेखा, उसके विविध भाग तथा उस इमारत के नाप आदि का सारा ब्योरा मेरे पास है।"

किन्तु वह ब्योरा अब पुरातत्व खाते के पास नहीं है। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि ब्रिटिश शासन के वरिष्ठ पुरातत्वीय अंमलदार के नाते कनिघम के हाथ ताजमहल उर्फ तेजोमहालय के जो दस्तावेज लगे थे वे उसने इसलिए जानबूझकर नष्ट कर दिए ताकि उनसे ताजमहल के हिन्दू निर्माण की बात कहीं खुल न जाए। हो सकता है कि पुरातत्व-प्रमुख के नाते कनिघम ने जयपुर दरबार से तेजोमहालय सम्बन्धी कागज मँगवाकर उन्हें नष्ट कर दिया हो। इस तरह से जब कनिघम के हाथ भारत के पुरातत्व विभाग की बागडोर आई, उसने निजी अधिकार का दुरुपयोग करके अधिकांश ऐतिहासिक नगर, इमारतें, तालाब, पुल, किले, बाड़े, महल, मीनार आदि मुसलमानों के बनाए घोषित कर दिए।

इसी प्रकार कनिघम ने विभिन्न सुल्तान-बादशाहों द्वारा एक के पश्चात् एक दिल्ली के सात नगरों के निर्माण की अफवाह उड़ा दी जो सभी अध्यापक-प्राध्यापक, सरकारी अधिकारी, पत्रकार आदि भी आँखें मूँदकर दोहराते रहे हैं।

गढ़वाल के राजाओं के दस्तावेजों में कनिघम को एक कागज मिला जिस पर लिखा था कि "राजा अनंगपाल ने दिल्ली का कोट कराया और

लालकोट काइया।" इससे यह बात स्पष्ट थी कि लालकोट यानि लालकिले का निर्माण तथा दिल्ली का एक कोट अनंगपाल ने करवाया। उस दस्तावेज के आशय को नाकाम करने के उद्देश्य से कनिंघम ने ऐसी धौंस चला दी कि अनंगपाल का बनाया वह लालकोट कहीं कुतुबमीनार के पास होगा। क्योंकि पुरानी दिल्ली में जो लालकिला है उसे तो निराधार ही शाहजहाँ द्वारा निर्मित समझा जाता है। उस सार्वजनिक भ्रम को कायम रखने के उद्देश्य से जो लालकिला उर्फ लालकोट हिन्दू राजा अनंगपाल द्वारा बनाए जाने का प्रत्यक्ष दरबारी दस्तावेज पाया गया है वह लालकोट शायद कुतुबमीनार के पास रहा होगा ऐसा कहकर कनिंघम ने इतिहास को एक गलत मोड़ दे दिया।

सन् १८६६ की पुरातत्व विभाग के Northwest Provincial Circle of Archaeological Survey of India वायव्य विभाग की जो रिपोर्ट है उसमें कार्लाइल ने दुबारा उल्लेख किया है कि "ताजमहल की अभी तक पुरातत्वीय जाँच नहीं हुई है।" पुरातत्व विभाग की स्थापना हुए ३८ वर्ष बीत जाने के पश्चात् भी ताजमहल का पुरातत्वीय सर्वेक्षण नहीं किया गया था, इससे इस बात की पुष्टि होती है कि पुरातत्वीय कार्यवाही केवल एक पर्दा था जिसकी आड़ में ब्रिटिश साम्राज्य को भारत में चिरंजीव रखने के षड्यन्त्र रचे जाते थे।

इसी षड्यन्त्र के अन्तर्गत कश्मीर के निशात, शालीमार उद्यान, शाही चश्मा (जो हिन्दू राजाओं का राजनिर्झर कहलाता था) नीलनाग, अनन्तनाग, वेरिनाग, कोकरनाग, श्रीनगर, शंकराचार्य पहाड़ी, दल-सरोवर, हरियाणा प्रान्त का पिंजोर उद्यान, दिल्ली, आगरा, उज्जैन, माण्डवगढ़, अजमेर, अहमदाबाद, अलीगढ़, बीजापुर, ब्राह्मणपुर, मिरज, गुलबर्गा, बीदर, हैदराबाद आदि सारे ही स्थान कनिंघम ने इस्लाम द्वारा बनाए कह रखे हैं। इस प्रकार मुसलमानों का कोई योगदान न होते हुए भी इतिहास की हेराफेरी द्वारा भारत के सारे ही हिन्दू निर्मित नगर-इमारतों का श्रेय कनिंघम ने मुसलमानों का खाता खोल कर उनके नाम जमा कर रखा है।

इसकी पुष्टि करने के लिए ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में इतिहास-

कारों को कुछ अण्टसण्ट तर्क प्रस्तुत करने पड़े। जैसे कि ये मस्जिद या मकबरा कही जानी वाली इमारत की बनावट जब हिन्दू दिखाई दी तो उसके समर्थन में इतिहासज्ञ यह कहते रहे कि मुसलमानों ने या तो हिन्दू इमारतें गिराकर उसी मलबे से मस्जिदें तथा कब्रें बनवाईं या कारीगर हिन्दू थे, अतः उन्होंने अपनी (हिन्दू) तरह की इमारतें बनवा दीं। ऐसे अण्ट-सण्ट तर्क प्रस्तुत कर आजतक के इतिहासकार किसी तरह अपने टेढ़े-मेढ़े सिद्धान्तों की उल्टी-सीधी लीपापोती करते रहे।

कई ऐतिहासिक इमारतों के विविध कक्षों में जहाँ कब्रें नहीं थीं वहाँ कनिंघम ने सरकारी खर्च से (अधिकांश हिन्दू जनता से लिये कर की निधि से) राशि मंजूर करवाकर नकली कब्र बनवाकर वे किसी सुल्तान, बादशाह या फकीर के नाम घोषित करवा दिए। यह भेद इस प्रकार खुला कि कब्रों की ईंटें २ × ४।। इंच आकार की हैं जबकि प्राचीनकाल में ईंटें पतली और बड़ी लम्बी-चौड़ी होती थीं। कई स्थानों पर तो मृतक की कब्र है ही नहीं। जैसे हुमायूँ का मकबरा नाम का जो महल है और सफदरजंग का मकबरा नाम का जो महल दिल्ली में हैं उनके तहखाने में कोई कब्र नहीं है। केवल ऊपर की मंजिल में एक नकली कब्र सी बनी है किन्तु उसके ऊपर भी मृतक का नाम नहीं है। ऐसा कभी हो सकता है कि मृतक के मकबरे के रूप से एक शाही महल बनवाया गया हो किन्तु उसमें जमीन पर न कोई कब्र हो और न ही ऊपर की नकली कब्र पर मृतक का कोई नाम भी अंकित न हो? सफदरजंग का मकबरा कहलाने वाले महल में तहखाने में केवल लाल मिट्टी के दो ढेर लगा रखे हैं ताकि प्रेक्षकों को यह झूठा आभास हो कि पति-पत्नि दफनाए जाने के वे चिह्न हैं। सैंकड़ों वर्ष प्रेक्षकों ने उन ढेरों से धोखा खाया है। किसी ने यह नहीं सोचा कि सफदरजंग उत्तरप्रदेश के एक गाँव में मरा था और उसकी कब्र वहाँ बनी भी है। स्वर्गीय आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव द्वारा लिखित The First Two Nawabs of Oudh नाम के ग्रन्थ में इसका ब्योरा दिया है। ऐसी अवस्था में दिल्ली में उसकी दूरी कब्र कैसे हो सकती है? वैसे भी वह अवध का नवाब होने से उसकी कब्र अवध में ही होनी चाहिए। उसके जनानखाने में कई स्त्रियाँ होती थीं। उनमें से किस स्त्री के नाम से दिल्ली वाली उस इमारत में

लाल मिट्टी का ढेर रखा गया है ? वह मिट्टी का ढेर १३० वर्ष तक वैसा का
वैसा कैसे रहेगा ? इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि पुरातत्व विभाग प्रेक्षकों
की आँखों में धूल झोंकने के लिए सरकारी खर्च से वे दो मिट्टी के ढेर उस
महल के तहखाने में सँवारता रहता है।

सफदरजंग का मकबरा कहे जाने वाले उस महल की बाबत और एक
विचित्र बात यह है कि तथाकथित अब्दुररहीम खानखाना की कब्र से
संगमरमर चुराकर सफदरजंग का मकबरा बनवाया गया यह किंवदंति
प्रसिद्ध है। खानखाना वाली इमारत भी हिन्दू इमारत है। वह कोई मकबरा
आदि नहीं है। फिर भी सफदरजंग वाली इमारत की तुलना में खानखाना
वाली इमारत छोटी है। तो प्रश्न यह उठता है कि एक छोटी इमारत के
पत्थर चुराकर बड़ी इमारत कैसे बनवाई जा सकती है और वास्तव में
सफदरजंग वाली इमारत कोई एक महल नहीं है। उसके परकोटे में आठ
दिशाओं में आठ और मकान हैं, जिससे वह एक पूरा संस्थान सिद्ध होता
है। राजा या मन्त्री बीच के महल में रहता था और उसके आठ दरबारी
या सहायक, सेनापति आदि अन्य आठ महलों में रहा करते थे। आठ
दिशाओं में आठ निवासस्थान होना भी वैदिक परम्परा ही है।

ऊपर उल्लिखित किंवदन्ति में भी एक हिन्दू रहस्य छिपा है। सफदरजंग
वाली मध्य में स्थित हवेली में तहखाने में तो दो व्यक्ति यानि नवाब
सफदरजंग और उसकी एक बेगम दफनाए जाने के बहाने लाल मिट्टी के
दो ढेर लगे हैं जबकि ऊपर की मंजिल में केवल एक नकली कब्र है और
वह संगमरमर की है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि केवल वह इकलौती
नकली कब्र बनवाने के लिए संगमरमर खानखाना के नामवाली इमारत
से चुराया गया। इस इमारत में संगमरमर की केवल वह नकली कब्र ही
कब्र है। और तो कहीं संगमरमर है नहीं। अब पाठक यह सोचें कि यदि
नौ इमारतों वाला वह विशाल संस्थान अवध के नवाब सफदरजंग के शव
के लिए कब्र के रूप में बनाया गया होता तो केवल नकली कब्र के लिए
संगमरमर किसी अन्य प्राचीन इमारत से चोरी करने की आवश्यकता क्यों
पड़ती ? इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कनिंघम ने खानखाना वाली
इमारत से संगमरमर चुराकर उसकी एक नकली कब्र ऊपर की मंजिल में

बनवा दी, और तहखाने में मिट्टी के ढेर लगाकर उस इमारत को
सफदरजंग का मकबरा घोषित कर दिया। खानखाना का मकबरा कही
जाने वाली इमारत भी एक प्राचीन हिन्दू राजमहल परिसर की इमारत
है। जिसे हुमायूं का मकबरा कहा जा रहा है वह भी एक हिन्दू राजमहल
है। उसी के समीप चौसठ खम्बा, निजामुद्दीन की दरगाह आदि कही जाने
वाली इमारतें हैं और अन्य कई खण्डहर हैं। उन्हीं के बीच मुसलमानों की
बेशुमार कब्रें भी हैं। वे यह बतलाती हैं कि जब उस हिन्दू राजमहल
परिसर पर महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी, खिल्जी, तुगलक आदि के
हमले होते रहे तब वह हिन्दू राजमहल परिसर भंग होता चला गया और
उस लड़ाई में मारे गए मुसलमान हमलावरों का वह कब्रस्थान बन गया।
फकीर निजामुद्दीन ने उन्हीं खण्डहरों में अपना डेरा लगाया। उसकी
मृत्यु पर उसका शव वहीं दफनाया गया। इसी कारण जीवित निजामुद्दीन
का कोई महल नहीं था। वह जिस परिसर में रहता था और जहाँ वह
दफनाया गया है, वह उस राजमहल परिसर का हिन्दू मन्दिर था। अतः
केवल कब्र निजामुद्दीन की हो सकती है किन्तु वहाँ बनी हुई लालपत्थर की
विशाल इमारतें हिन्दू दिल्ली के अवशेष हैं। हुमायूं का मकबरा कही जाने
वाली इमारत भी हिन्दू राजमहल था। उसे बाबर ने जीता था। अतः
हुमायूं उसमें रहता था। हुमायूं के नाम से वहाँ जो कब्र बनाई गई है वह
झूठी है। एक इस्लामी तवारीख के अनुसार हुमायूं को आगरा में दफनाया
गया है तो दूसरे के अनुसार हुमायूं की कब्र सरहिन्द में है। इस प्रकार
हुमायूं की मृत्यु का एक बड़ा रहस्य बना हुआ है। वास्तव में वह कहाँ मरा,
कब्र कहीं है भी या नहीं ? यह कोई नहीं जानता। हुमायूं भारत में १५ वर्ष
के पश्चात् लौटा था तो उसके छह मास में उसकी मृत्यु हुई। अकबर अभी
पूरा १३ वर्ष का भी नहीं था। सारा प्रदेश मुगलों के शत्रुओं के कब्जे में
था। वह इमारत एक हिन्दू महल थी इसीलिए तो सन् १८५७ में जब
अन्तिम मुगल नामधारी बादशाह बहादुरशाह जफर को अंग्रेजों के दबाव
से दिल्ली के लालकिले से निकलना पड़ा तो उसने हुमायूं का मकबरा
कहलाने वाली इमारत में निजी डेरा लगा लिया।

इस्लामी धौंसबाजी ने उस विशाल और विस्तृत हिन्दू महल के एक

हिस्से को हुमायूं के नाई की कब्र कह रखा है तो दूसरे किसी कक्ष को हुमायूं के कुत्ते की कब्र कह डाला है। पता नहीं आज तक के सैंकड़ों इतिहासज्ञ और करोड़ों प्रेक्षक इस तरह की अण्ट-सण्ट इस्लामी अफवाहों पर कैसे मुण्डी हिलाते रहे और मुगलों की शान तथा शौकत का अपार गुणगान करते रहे। क्या इस्लामी सल्तनतों में शाही व्यक्तियों के नौकर-चाकरों के और पालतू जानवरों के शवों के लिए बड़े-बड़े महल बनते थे जबकि उनके जीवनकाल में उनका अपना कोई भवन नहीं होता था।

हुमायूं का मकबरा कहलाने वाली इमारत के ऊपरी हिस्से में अनेक स्थानों पर निम्न आकृति वाले चिह्न जड़े हुए हैं जो हिन्दुओं का एक पवित्र
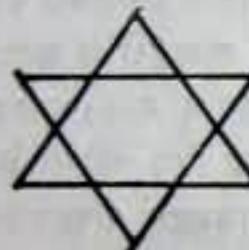
तान्त्रिक चिह्न है और जिससे इस्लामी परम्परा का कड़ा शत्रुत्व है।

हुमायूं का मकबरा कहलाने वाली इमारत में अनेक कक्ष हैं जिनमें मुसलमानों ने या कनिंघम ने एक-एक, दो-दो, नकली कब्रें बना छोड़ी हैं।

इसी प्रकार फिरोजशाह तुगलक की कब्र, लोदी सुल्तानों की कब्रें, आदिलशाही और कुतुबशाही सुल्तानों की कब्रें एक बड़ा ढोंग हैं। यदि कहीं उन कब्रों के नीचे सचमुच किसी मुसलमान का शव दफनाया गया है तब भी जिन इमारतों में वे कब्रें हैं वे अपहृत हिन्दू महल तथा मन्दिर हैं।

इस ढोंग को संवारने के लिए फारसी या उर्दू या अरबी में झूठे दस्तावेज भी बनवाए गए हैं जिससे देखने वाले को यह आभास निर्माण हो कि ताजमहल में बनी कब्रों की देखभाल करने का अधिकार बादशाह ने किसी मुजावर को बख्शा, या किसी मस्जिद (?) में फलाने को इमाम नियुक्त किया, या औरंगजेब आदि ने कई हिन्दू मन्दिर और मठों को शाही खजाने से वार्षिक अनुदान मंजूर किए। ऐसी झूठी और मक्कार करतूतों का हवाला देकर आजतक के इतिहासज्ञ इस्लामी शासन के गुणगान के गीत गुनगुनाते रहे।

ताजमहल के हिन्दू संस्कृत शिलालेख से कनिंघम की खिलवाड़

ऐसी एक शक्यता प्रतीत होती है कि सन् ११५५ ई० में जब तेजोमहालय शिवमन्दिर राजा परमर्दिदेव ने बनवाया तो उसके मन्त्री ने राजा के शासनकाल की प्रमुख घटनाओं का एक शिलालेख काले पाषाण पर खुदवाकर उसे ताजमहल के उद्यान में एक मण्डप बनवाकर वहाँ लगवा दिया था। शाहजहाँ ने जब तेजोमहालय पर कब्जा किया तब उसने वह शिलालेख उखाड़कर फिकवा दिया। आंग्ल शासन में जब वह शिलालेख कनिंघम के हाथ लगा तब उसने जानबूझकर उस शिलालेख को पुरातत्वीय फाइलों में 'बटेश्वर शिलालेख' कहकर दर्ज किया ताकि इतिहासकार तथा पुरातत्वविद उस शिलालेख का सम्बन्ध तेजोमहालय से न लगाकर ७० मील दूर स्थित बटेश्वर नाम के अन्य शिवक्षेत्र से जोड़ें।

वह शिलालेख वास्तव में तेजोमहालय के आसपास ही कहीं पाया गया था। यह अनुमान इसलिए निकलता है कि वह शिलालेख जिस काले पाषाण पर अंकित है ठेठ वैसे ही काले पाषाण के मण्डप के अवशेष ताजमहल के उद्यान में थे। इस सम्बन्ध में कनिंघम के सहायक कार्लाइल ने लिखा है (देखें पृष्ठ १२४-१२५, सन् १८७१-७२ के पुरातत्वीय आलेखों का खण्ड) "The great square black basaltic pillar which with the base and capital of another pillar once stood in the garden of the Taj Mahal." यानि 'ताजमहल के बाग में बड़े काले पत्थर के दो चौकोर स्तम्भ उनके तल तथा शिखर के सम्मेत कभी लगवाए गए थे'।

जिस शिलालेख को कनिंघम ने बटेश्वर शिलालेख कहा है वह भी काले पाषाण का ही है। वह आजकल लखनऊ नगर के सरकारी वास्तु-संग्रहालय में रखा हुआ है। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि ताजमहल के उद्यान में खड़े किए गए काले पत्थर के दो या चार स्तम्भ उसी शिलालेख के आधारस्तम्भ थे। मथुरा-आगरा परिसर पर परमर्दिदेव का शासन था। एक अति विशाल और सुन्दर स्फटिक शुभ्र इन्दुमौलेश्वर शिव का मन्दिर बनाए जाने का उस शिलालेख में उल्लेख है। उस प्रदेश में (या सारे भारत में भी) इस प्रकार की और कोई इमारत है ही नहीं। वह इमारत शिव-

मन्दिर की ही है इसमें कोई सन्देह नहीं, क्योंकि उसमें त्रिशूल तथा नाग-युगल, 'ॐ' आकार के फूल तथा अन्य हिन्दू चिह्न खुदे हुए हैं।

आंग्ल ज्ञानकोश का टेढ़ा रवैया

सन् १९१० के इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (भाग १, पृष्ठ ३६९-४४४) में श्री आर० पी० स्पाइर्स का लिखा स्थापत्यकला का विवरण प्रस्तुत है। उसमें असीरिया, बेबीलोनिया आदि की विविध स्थापत्यकला का विवेचन करते समय इस्लामी स्थापत्यकला का भी उल्लेख है, किन्तु हिन्दू स्थापत्य कला का कहीं भी नाम नहीं है।

भारत के किसी भी नगर में तथाकथित दरगाहें, मस्जिदें, किले, बाड़े, महल आदि देखने जाओ तो दाएँ-बाएँ गरीब मुसलमानों की झुग्गी-झोंपड़ियाँ दिखाई देती हैं। इसका कारण यह है कि उस ऐतिहासिक स्थल पर जब मुसलमानों का हमला हुआ तो वहाँ रहने वाले हिन्दू तेली, माली, पुजारी, बाँसुरी या बाजा बजाने वाले लोग भी जबरदस्ती मुसलमान बनाए गए। उस समय से वे लोग उसी स्थान पर रह रहे हैं।

कब्रस्थान कैसे बने ?

प्रत्येक नगर की सीमा पर इस्लामी कब्रस्थान है। वह इस कारण कि इस्लामी आक्रामकों ने जब उस नगर पर हमला करना चाहा तब नागरिकों ने या उनके हिन्दू-सैनिकों ने नगर के बाहर ही उनसे संघर्ष किया। वहाँ मारे गए मुसलमान उसी मैदान में दफनाए गए। विश्व में जितने भी कब्रस्थान हैं वे इस्लामी आक्रामकों से हुई लड़ाई के स्थान हैं। वहाँ जो मन्दिर आदि थे उन्हीं को जीतकर उनके अन्दर कब्रें बना दी गईं। तथापि लोग यह समझकर चलते हैं कि अन्य मृतकों की कब्रें सादी हैं और जो कोई विशेष मुसलमान दरबारी, सेनानी, फकीर या बादशाह हो उसके शव पर एक बड़ी सुन्दर इमारत बनाई गई। लेकिन ऐसा नहीं है। मन्दिर या महलों के परिसर में हमले होते थे तो उनके खण्डहर बनते। तब उन इमारतों में या उनके आसपास की भूमि में मारे गए मुसलमान दफना दिए जाते थे। कटे हुए मुसलमानों के शव पहचाने भी नहीं जाते थे अतः लगभग किसी भी कब्र पर, किसी भी मुसलमान का नाम उत्कीर्ण नहीं होता था।

घरभेदी मुसलमान

ट्रॉय नगर का घेरा डाले हुए दीर्घ समय होने पर भी जब उसे जीतने की कोई आशा दिखाई न दी तब ग्रीक लोगों ने लकड़ी से बने एक विशाल घोड़े को ट्रॉय के तट के बाहर रख छोड़ा। उसमें पहिए लगे हुए थे। घोड़े के पेट में कुछ शूरवीर सैनिक छिपे बैठे थे। शत्रुसेना जब निकल गई तो ट्रॉय के सेनापति को बड़ा अचम्भा हुआ।

शत्रु के टूटे-फूटे सामान की जाँच करते समय ट्रॉय के लोगों ने उस घोड़े को देखा। वे बड़े अचम्भे में पड़ गये। उस घोड़े की प्रतिमा का प्रयोजन वे समझे नहीं। वे उस घोड़े को खींचकर नगर के अन्दर ले गए। दारू पी-पीकर लकड़ी के उस घोड़े के चारों ओर ट्रॉय के लोगों ने विजयोत्सव मनाया। थके-माँदे नशा चढ़े हुए वे लोग थककर रात-भर सोते रहे। तब उस लकड़ी की अश्वप्रतिमा खोलकर उसके अन्दर से ग्रीक योद्धा निकल पड़े। उन्होंने नशे में चूर अनगिनत लोगों की हत्या कर ट्रॉय नगर को जीता। तब से घरभेदी व्यक्ति को आंग्ल वाक्यप्रचार में ट्रॉय का घोड़ा (Trojan Horse) यानि गृहभेदी व्यक्ति कहा जाने लगा। मुसलमानों की भी वही भूमिका रही है। वे जहाँ भी जाते हैं, मुहम्मद बिन कासिम से लेकर अनेक इस्लामी आक्रामकों ने जिस-जिस देश में स्थानीय लोगों को मुसलमान बनाया वे अधिकतर अन्य देशवासियों से शत्रुता का व्यवहार करते हुए उन्हें भी किसी तरह मुसलमान बनाने तथा उनके मन्दिरों को मस्जिदें बनाने का यत्न करते रहते हैं।

फ्रेंच, पोर्चुगीज तथा आंग्ल आदि लोगों ने जिन भारतीयों को ईसाई बनाया उनमें भी कई लोग भारत-विरोधी कार्यवाही करते रहते हैं।

इनके अतिरिक्त पुरातत्व विभाग के मुसलमान आदि पराए मनोवृत्ति के कर्मचारी भी कनिंघम की घरभेदी परम्परा का पुरस्कार करते हुए ऐतिहासिक खण्डहरों में कई स्थानों को निराधार ही 'मस्जिद्' घोषित कर देते हैं। सन् १९७२-७३ में जब मैं गुणानगर (मध्यप्रदेश) से कुछ मील दूरी पर नरनौल किले में गया। वहाँ कुछ अन्तिम पौढ़ियाँ चढ़कर जब हम किले में दाखिल होते हैं तो दाहिनी ओर केवल एक खुले स्थान पर Mosque (यानि मस्जिद) ऐसे अंग्रेजी अक्षर में लिखी हुई शिला लगा दी गई है।

स्पष्ट है कि पुरातत्व विभाग के किसी मुसलमान कर्मचारी ने वह शरारत की है। एक बार किसी के किसी स्थान को मस्जिद कह देने पर दूसरे किसी को उसे मिटाना कठिन हो जाता है। किन्तु इस उदाहरण से देखा जा सकता है कि पुरातत्व विभाग में मुसलमान कर्मचारी तथा कनिंघम, बेगलर तथा कार्लाइल जैसे अंग्रेज कर्मचारियों ने कितनी धोखाधड़ी की है। उनके झुठलाए इतिहास को ही विश्व भर में प्रमाण माना जा रहा है।

महाभारत में जिस प्रकार दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि आदि की चांडाल चौकड़ी कुप्रसिद्ध है उसी प्रकार भारतीय पुरातत्व विभाग का आरम्भ ही कनिंघम, कार्लाइल और बेगलर के तिकड़मी षड्यन्त्र से हुआ। डाकुओं के गिरोह में भी जैसे कभी-कभी आपसी मतभेद होते रहते हैं वैसे ही इन तीनों में भी कभी-कभी मतभेद प्रकट होते रहे। जैसे बेगलर का स्पष्ट निष्कर्ष था कि तथाकथित कुतुबमीनार हिन्दू स्तम्भ है फिर भी वरिष्ठ अधिकारी होने के नाते कनिंघम ने बेगलर के अनुमान को ठुकराकर उस स्तम्भ को इस्लाम द्वारा निर्मित ही लिख मारा। इस प्रकार अंग्रेज स्वयं पराए आक्रामक होते हुए उन्होंने भारत स्थित ऐतिहासिक इमारतें अफगान, अरब, ईरानी आदि अन्य पराए आक्रामकों की कह डालीं। मुसलमानों के शून्य खाते पर हिन्दुओं के बनाए हजारों भवन चढ़ाकर अंग्रेजों ने ऐसा ढोंग रचा कि भारत में इस्लामी मस्जिदें तथा कब्रों की भरमार है जबकि हिन्दुओं का हिन्दुस्थान में एक भी प्राचीन या मध्ययुगीन प्रेक्षणीय या उल्लेखनीय भवन या नगर नहीं है।

वही झूठा कपोलकल्पित आंग्लनिर्मित पुरातत्वीय विवरण दोहराकर शिक्षा प्राप्त किए विद्वान् विश्व के विद्यालयों में अध्यापक और सरकारी अधिकारी बने हुए हैं। अतः वह झुठलाया इतिहास ही सारे विश्व में प्रचलित है। इससे बड़ा षड्यन्त्र, हेरा-फेरी तथा घोटाला और क्या हो सकता है?

कवि, साहित्यकार, नाटककार, प्रबन्धकार, पत्रकार आदि वही झूठ दोहराते रहना निजी कर्तव्य समझे बैठे हैं। जेम्स फर्ग्युसन, पर्सी ब्राउन, सर बेनिस्टर फ्लेचर, बम्बर गैसकोइन आदि पाश्चात्य विद्वानों ने भी निजी ग्रन्थों में उसी झूठ को दोहराया है। इस प्रकार सारा विद्वज्जगत इस सम्बन्ध में अपराधी होने से उस गलती को खुल्लमखुल्ला स्वीकार करने की

उदारता, सच्चाई और हिम्मत किसी में दिखाई नहीं देती। इसी कारण न्यूयॉर्क टाइम्स, लन्दन टाइम्स, वाशिंगटन पोस्ट, क्रिश्चियन साइंस मॉनीटर, टाइम, लाइफ और न्यूजवीक जैसे प्रसिद्ध पाश्चात्य समाचार-पत्र सत्य और न्याय को संवारने की सम्पादकीय वल्गना समय-समय पर करते रहने पर भी ताजमहल शाहजहाँ से सैकड़ों वर्ष पूर्व की इमारत है, इस मेरे निष्कर्ष को सम्पादकीय पत्र-व्यवहार में भी प्रकाशित नहीं होने देते। मैंने या मेरे मित्रों ने उनसे पत्र-व्यवहार कर उन्हें समझाने का भरपूर यत्न किया कि "पाठकों को अपने मत प्रकट करने का अवसर देने के लिए ही सम्पादकीय पत्र-व्यवहार का विशेष विभाग रखा गया है। तथापि उसमें भी आप निजी पाठकों को ताजमहल शाहजहाँ पूर्व इमारत है इस शोध से वंचित रखना चाहते हैं यह सरासर अन्याय है।" ऐसा लिखने पर भी पाश्चात्य विद्वानों, ग्रन्थकारों, पत्रकारों, आकाशवाणी और दूरदर्शन पर भाष्य देने वालों ने, ताजमहल शाहजहाँ पूर्व बनी इमारत है—इस शोध को दबाए रखने का या कुचल डालने का ही पूरा प्रयत्न किया। सत्य को कुचलना और झूठ का पुरस्कार करना यह राक्षसी वृत्ति ही तो है।

जिस जेम्स् फर्ग्युसन नाम के अंग्रेज ग्रन्थकार ने जनरल अलेक्जेंडर कनिंघम को एक निकम्मा पुरातत्व अधिकारी ठहराया वह स्वयं निजी ग्रन्थ में (पृष्ठ ६८, खण्ड २, History of Indian and Eastern Architecture) में एक असंगत निष्कर्ष ऐसा लिखता है कि मुसलमानों ने अनेक मन्दिर हड़पकर उन्हीं को मस्जिदें तथा मकबरे कह देने के कारण उन इमारतों की कला को इस्लामी वास्तुकला ही समझना चाहिए। अब बताइये ऐसे ऊटपटांग पक्षपाती निष्कर्ष या तर्कपद्धति को क्या कहा जाए?

इस सन्दर्भ में जेम्स फर्ग्युसन ने यह भी लिखा है कि "अजमेर का ढाई दिन का झोंपड़ा तथा दिल्ली में कुतुबमीनार के खण्डहर मन्दिर शैली के होते हुए भी उन्हें इस्लामी वास्तुकला के नमूने मानना योग्य होगा क्योंकि वे मुसलमानों के कब्जे में रहे हैं।" ऐसे असंगत विचार प्रकट करने वाले जेम्स् फर्ग्युसन के ग्रन्थ को विद्यालयों से बहिष्कृत कर देना चाहिए।

अंग्रेजों का एक और षड्यन्त्र

भारत के बहुसंख्य हिन्दुओं का मनोबल क्षीण करने हेतु अंग्रेजों ने जो अनेक कुटिल चालें चलीं उनमें एक यह भी थी कि भारत में जितनी भी प्राचीन ऐतिहासिक इमारतें दिखाई दीं उन्हें बौद्ध, जैन या इस्लामी कह डाला। हिन्दुओं को यह कहकर निष्प्रभ करना कि भारत में तुम्हारा अपना कुछ नहीं है, सब दूसरों का है—यह अंग्रेजों का रवैया रहा है। ऐसे दुष्ट शत्रु द्वारा लिखा इतिहास भारत में पढ़ाया जा रहा है यह भारत का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। भारत के नेता कब जागेंगे? इस षड्यन्त्र का परिणाम यह हुआ है कि हिन्दू इमारतों की विशिष्टताओं को ही बढ़ा-चढ़ाकर इस्लामी वास्तुकला की विशेषताएँ समझा जा रहा है।

इसके कुछ उदाहरण देखें—

(१) सन् १९७६ के लगभग दिल्ली की तथाकथित कुतुबमीनार में अनेक देवमूर्त्तियाँ निकलीं—कुछ नींव से तो कुछ दीवारों से। उस समय उस विभाग के मन्त्री कांग्रेस के सदस्य भी थे और मुसलमान भी थे। इन दोनों भूमिकाओं से उन्हें कुतुबमीनार में हिन्दू प्रमाण मिलना रुचिकर नहीं था। अतः उस स्थान के इर्दगिर्द एक ऊँची कनात खड़ी कर दी गई। उसके अन्दर रात के अँधेरे में तथा दिन में चोरी-छिपे उत्खनन कर जो-जो हिन्दू मूर्त्तियाँ प्राप्त हुईं वे चुपके-से वहाँ से दूर कहीं ले जाकर गुम करवा दी गईं ताकि किसी को कभी पता ही न लगे कि वे मूर्त्तियाँ कभी कुतुब के परिसर में लगी हुई थीं। इस प्रकार हिन्दुओं की सरकार ही हिन्दू-विरोधी कार्यवाही करना अपना परम कर्त्तव्य समझती है। इससे बड़ा द्रोह, शत्रुत्व और दुर्भाग्य क्या हो सकता है? फतेहपुर सीकरी, दिल्ली में सुल्तानघारी, हुमायूं का मकबरा, निजामुद्दीन की दरगाह आदि सारी ऐतिहासिक इमारतें इस्लामपूर्व हिन्दू क्षत्रिय राजाओं के मन्दिर और महल होने के कारण उनमें समय-समय पर देवी-देवताओं की मूर्त्तियाँ और संस्कृत शिलालेख मिलते रहे हैं। तथापि अंग्रेजों के समय से इन प्रमाणों को गुप्त रखते हुए उन भवनों को इस्लाम निर्मित कहते रहने की प्रथा जो कनिंघम ने चलाई वह भारत स्वतन्त्र होने पर भी पुरातत्व विभाग बराबर चलाए जा रहा है। जहाँ भी देवमूर्त्तियाँ या हिन्दू शिलालेख आदि

पाए जाते हैं वे उस स्थान से गुम कराकर कहीं दूर ले जाकर पटक दिए जाते हैं या छिपा दिए जाते हैं ताकि किसी अभ्यासक को उन भवनों के हिन्दू निर्माण का पता ही न चले। इस प्रकार स्वतन्त्र होने पर भी ८५ प्रतिशत हिन्दू जनता के हिन्दुस्थान का सरकारी पुरातत्व विभाग अरब-ईरानी आदि इस्लामी और आंग्ल शत्रुओं की ही अन्तर्भेदी नीति चला रहा है। भारत वास्तव में स्वतन्त्र तब कहलाएगा जब वह सन् १८६१ से चलाई जा रही पुरातत्व विभाग की खल-नीति की सम्पूर्ण प्रकट जाँच करवाकर उस विभाग के अधिकारियों को कड़ा-से-कड़ा दण्ड देगा।

(२) दिल्ली का लालकिला राजा अनंगपाल (सन् १०६० ईसवी) के समय से लालकोट नाम से प्रतिष्ठित है। फिर भी उसे सन् १६३९-४८ में शाहजहाँ ने बनवाया ऐसा ढोंग किया जा रहा है। उस लालकिले में रंगमहल, मोती मन्दिर, श्रावण-भाद्रपद महल, शीशमहल आदि सारे हिन्दू नाम हैं तथापि वहाँ के छोटे रंगमहल को मुमताजमहल भी कहा जाता है। इस्लामी कब्जे में जाने के पश्चात् कुछ इमारतों को खास महल, मुमताज-महल आदि नकली इस्लामी नाम दिए गए हैं। वे नाम तर्कसंगत न होने से उनसे सरकारी पुरातत्व विभाग की निकृष्टता प्रकट होती है। मुमताज-महल यदि स्त्री का नाम था तो लालकिले के अन्दर स्थित एक इमारत को मुमताजमहल नाम देना सर्वथा अयोग्य है। और यदि इमारत को भी मुमताजमहल नाम दिया जा सकता है तो आगरे के ताजमहल को ही मुमताजमहल क्यों नहीं कहा जाता जबकि स्वयं मुमताजमहल को वहाँ दफनाए जाने का दावा किया जाता है। ऐसी-ऐसी असंगतियों से इतिहास झुठलाए जाने का पता चलता है।

(३) उसी लालकिले के अन्दर जो मोती मस्जिद है वह मोती मन्दिर था। उसकी दाहिनी बाजू तिरछी काटी हुई देखी जा सकती है। वहाँ परिक्रमा मार्ग था। वह ऊबड़-खाबड़ बन्द किया हुआ दाहिनी ओर के अँधेरे अन्दरूनी कोने में जाकर देखा जा सकता है। मध्य में जहाँ मूर्त्ति थी, वहाँ ऊपर दीवार पर त्रिशूल चिह्न अंकित है। वर्तमान पुरातत्वीय धौंसबाजी में "यह कहा जाता है कि वह मोती मस्जिद औरंगजेब ने बनवाई। यह बड़ी बेतुकी-सी बात लगती है क्योंकि शाहजहाँ ने यदि

लालकिला बनवाया होता तो कट्टर मुसलमान होते हुए भी क्या उसने लालकिले में कोई मस्जिद नहीं बनवाई होती ?

वास्तव में शाहजहाँ ने लालकिला बनवाया ही नहीं। वह तो इससे ६०० वर्ष पूर्व बना लालकोट है। अतः औरंगजेब तक के मुसलमानों की उसमें किसी इमारत को मस्जिद कहने की हिम्मत नहीं हुई। या यह भी हो सकता है कि कुतुबुद्दीन ऐबक के समय से ही लालकिले के अन्दर के मोती मन्दिर को मोती मस्जिद नाम दे दिया गया हो। क्योंकि औरंगजेब अन्तिम शक्तिशाली अत्याचारी मुगल बादशाह था उसी के नाम हिन्दू धर्मस्थल भ्रष्ट करने के सारे पाप अनवधानी से मढ़ दिए गए हों।

(४) इस्लामी परम्परा में इमारतों के नामों में सोना-चाँदी, हीरे-मोती आदि के नाम कभी जोड़े नहीं जाते। सुवर्ण महल, रौप्यमहल, माणिक महल, मोतीमहल आदि नाम देने की हिन्दू प्रथा है। अतः जहाँ भी ऐसे नाम पाए जाएँगे वे इमारतें हड़प की हुई हिन्दू सम्पत्ति पहचानी जानी चाहिएँ। जैसे दिल्ली के चाँदनी चौक में गुरुद्वारा शीशगंज के निकट जो सुनहरी मस्जिद है वह सुवर्णमन्दिर था (जैसे अमृतसर में है)। उस चाँदनी चौक वाले मन्दिर पर चढ़कर नादिरशाह ने कत्ल मचाई। तबसे वह मन्दिर मस्जिद कहलाने लगा और वहाँ के पुजारी इमाम कहलाने लगे।

(५) दिल्ली के महरौली (मिहिरावली) कस्बे के पार दाहिने हाथ को महिपालपुर का रास्ता है। उस रास्ते पर ७-८ कि० मी० जाने पर बाईं ओर कुछ प्राचीन खण्डहर दीखते हैं। उन्हें कनिंघम ने जानबूझकर सुल्तानगढ़ी नाम देकर यह अफवाह उड़ा रखी है कि इल्तुतमश के युवा-पुत्र नासिरुद्दीन को दफनाकर उसकी कब्र के रूप में वहाँ एक विशाल भवन बनाया गया। इस्लामी शासनकाल में मृतकों के लिए बड़े-बड़े महल सदृश कब्रें बनाने की प्रथा वहीं से आरम्भ हुई और वहीं बढ़ते-बढ़ाते ताजमहल जैसी विशाल और सुन्दर कब्रें बनने लगीं ऐसी धौंस कनिंघम ने फैला रखी है।

वह कनिंघम के कुटिल मस्तिष्क में तैयार हुई ठगी है। वास्तव में वह राजगढ़ी थी जो सुल्तानों का कब्जा हो जाने पर सुल्तानगढ़ी कहलाने

लगी। उसी को अंग्रेजी में gharry लिखकर उसका टेढ़ा-मेढ़ा यूरोपीय उच्चार 'घॅरी' किया जाने लगा। तत्पश्चात् घॅरी का ऊटपटाँग विवरण 'तहखाने वाली कब्र' ऐसा दिया जाने लगा। इस प्रकार पुरातत्वीय धौंस-बाजी का न कोई आगा है न पीछा, जो मन में आया वह कह डाला। धौंस पर धौंस चढ़ाकर जो प्रारूप बना वही सारे इतिहासज्ञ अन्वेषण से आजतक चलाए जा रहे हैं।

वास्तव में वह एक भवन नहीं है। वहाँ अनेक भवन हैं। मुख्य केन्द्रीय भवन (जिसे कब्र कहा जाता है) शिवमन्दिर है। मुख्य लिंग तहखाने के गर्भस्थान में था। उसके ऊपर अष्टकोना छत बना हुआ है। स्तम्भों के रूपों से वे हिन्दू प्रासाद के ही सिद्ध होते हैं। और वहाँ किसी मृतक को दफनाए जाने का नामोनिशान या कब्र है ही नहीं। फिर भी सभी विद्वान कनिंघम की धौंसबाजी की लपेट में आकर उस राजगढ़ी को बिना देखे समझे नासिरुद्दीन की कब्र कहे जा रहे हैं। वहाँ संस्कृत शिलालेख तथा लाल पत्थरों पर उत्कीर्ण कामधेनु तथा वराह के राजचिह्न पाए गए थे। सरकारी पुरातत्वीय धोखेबाज परम्परा के अनुसार वे शिलालेख तथा पशु-चित्र वहाँ से उठाकर दूर किसी स्थान पर ले जाकर छुपा दिए गए हैं।

गाय और वराह दोनों ऐसे प्राणी हैं जिनके प्रति इस्लाम को बड़ी शत्रुता और घृणा है। उनकी रूपरेखा वाले विशाल लालपत्थर के स्तम्भ यदि वहीं धरे रहते तो कनिंघम की पोल खुल जाती। प्रेक्षक पूछते कि यदि सचमुच यह भवन नासिरुद्दीन की कब्र पर बना हो तो उस पर इस्लाम के दो तिरस्कृत पशुओं के चित्र क्यों खुदे हैं और वहाँ संस्कृत शिलालेख क्यों पाया गया ? इस प्रकार की जाँच-पड़ताल से बचने के लिए सारे ऐतिहासिक भवनों में नित्य प्राप्त होने वाले हिन्दू प्रमाण डाकुओं की तरह छुपा-छुपाकर दूर कहीं ले जाकर पटकने का या नष्ट करने का पाप भारत का पुरातत्व विभाग बराबर करता आ रहा है। पुरातत्व प्रमुख जगतपति जोशी और वर्तमान उपराष्ट्रपति शंकरदयाल शर्मा को मैंने सन् १९८७ तथा १९८८ मार्च में पत्र लिखकर इस पुरातत्वीय हेरा-फेरी की परम्परा की शिकायत की, लेकिन दोनों चुप रहे। सत्यमेव जयते का नारा केवल औपचारिक रूप से ललाट पर धारण करने वाला भारतीय शासन

सचाई से कितना डरता है, अन्दर से कितना दुर्बल तथा सड़ा-गला है
इसका यह उदाहरण है। गत, मृत शत्रुओं की देशद्रोही और सत्यघात की
करतूतों को सरकारी दफ्तरों से उखाड़ फेंकने की कागजी कार्यवाही करने
की भी जिनमें हिम्मत नहीं है, वे रण में खड्ग तथा बन्दूक से शत्रु का
प्रतिकार क्या करेंगे। ऐसी दुर्बल, निःशक्त और दयनीय अवस्था कांग्रेस
पक्ष के शासकों ने भारत की बना रखी है।

(६) दिल्ली में हुमायूं की कब्र कही जाने वाली इमारत सैंकड़ों
कक्षों वाला और अनेक मंजिलों वाला विशाल प्रासाद है। इस्लामी तथा
आंग्ल शासकों ने उसके सैंकड़ों कक्षों में एक-एक नकली कब्र गढ़ दी है।
उस इमारत का परिसर तीन विशाल परकोटों से घिरा हुआ है। उस
इमारत के तहखाने में संगमरमर पर खुदे विष्णु के पदचिह्न पाए गए ऐसी
'The World of Ancient India' शीर्षक के १६वीं शताब्दी के एक
फ्रेंच ग्रन्थ में सचित्र उल्लेख है। उस इमारत के दर्शनी भाग में दीवारों के
ऊपर के भाग में पत्थर के कमलपुष्प ऐसी आकृतियों के मध्य में अंकित हैं।
देवीपूजन का यह एक 'यन्त्र' है। इसे शक्तिचक्र भी कहा जाता है। हिन्दू
स्त्रियाँ इसे घर के प्रवेशद्वार के आगे रंगोली में बड़े भक्तिभाव से चित्रित
करती हैं। यहूदियों के ध्वज पर भी वह चिह्न अंकित रहता है। मुसलमान
लोग हिन्दुओं को तथा यहूदियों को अपना कट्टर शत्रु मानते हैं। ऐसी
अवस्था में उन शत्रुओं के पवित्र धार्मिक चिह्न हुमायूं की कब्र कहलाने
वाली विशाल इमारत पर क्यों जड़े हैं? यदि वह मकबरा मृत हुमायूं के
लिए बनवाया गया तो हुमायूं का महल कहाँ है? यदि जीवित हुमायूं का
कोई महल नहीं है तो मृत हुमायूं के शव के लिए ऐसा विशाल महल कौन
बनवाएगा? जिसने भी बनवाया हो उसका अपना महल कहाँ है? और यदि
हुमायूं बादशाह के लिए खासकर वह मकबरा बनाया गया तो उसमें
सैंकड़ों ऐरे-गैरों की कब्रें क्यों हैं? और हुमायूं या अन्य किसी एक भी
कब्र पर मृतक का कोई नाम नहीं लिखा है। किसी मृतक के लिए यदि कोई
महान मकबरा बनाया जाता है तो उस पर मृतक का नाम लिखने से वे
क्यों शरमाते? और हुमायूं के नाई की कब्र, कुत्ते की कब्र आदि उसी
परिसर में क्यों है? इतने सारे मृतकों के मकान कहाँ हैं? यदि मकान नहीं

हैं तो उनके शव के लिए इतनी विशाल कब्रें बनवाने का कारण ही क्या
था? उसका खर्चा किसने किया? मृतकों के प्रेतों के निवास के लिए
इतनी अनापशनाप सम्पत्ति खर्च कर सकने वाला धनी स्वयं किस महल में
रहता था? ऐसे विविध उल्टे-सीधे प्रश्न पूछकर कड़ी जाँच करने की आदत
यदि पाठक अपने-आप डालते रहे तो ऐतिहासिक भवनों को इस्लामकृत
समझने की गत सवा सौ वर्षों की घातक प्रथा का अन्त होगा। कॉलेज में
पढ़े इतिहास के पदवीधर विद्वान ही अध्यापक या सरकारी अधिकारी
बनकर उस पुरातत्वीय धौंसबाजी को बराबर इसलिए सँवार रहे हैं क्योंकि
उसी असत्य को दोहराने से वे अपनी रोजी-रोटी कमा सकते हैं।

(७) दिल्ली में जिस विशाल भवन को सफदरजंग की कब्र कहा जाता
है वह तो एक पूरा संस्थान का संस्थान बना हुआ है। उद्यान के मध्य में
अनेक मंजिलों का एक विशाल महल है। उसके तहखाने में बीसों कक्षों की
कई कतारें हैं। बीचोंबीच लाल मिट्टी के दो छोटे ढेर प्रेक्षकों की आँखों में धूल
झोंकने के लिए ही जैसे लगाए गए हैं। वे देखकर सामान्य प्रेक्षक अनवधानी
से यह समझ बैठता है कि अवध का नवाब सफदरजंग और उसकी पत्नी
को दफनाकर उनके शव के ऊपर वह विशाल भवन खड़ा किया गया
होगा।

प्रेक्षक यह नहीं सोचते की अवध का नवाब सफदरजंग भला दिल्ली में
क्यों मरने आएगा और उसके जनानखाने में तो सैंकड़ों स्त्रियाँ थीं। तो
यहाँ जिसके नाम से लाल मिट्टी का ढेर लगाया गया है वह स्त्री कौन थी?
उसका नाम क्यों नहीं लिखा गया? और तहखाने में मृतकों के यद्यपि दो ढेर
हैं, तथापि उपर की मंजिल में एक ही संगमरमरी कब्र क्यों है? वह नकली
कब्र भी तथाकथित अब्दुलरहीम खानखाना की कब्र से संगमरमर चुराकर
बनवाई गई है। जिसे अब्दुररहीम खानखाना की कब्र कहा जाता है वह
वहाँ के विशाल हिन्दू खण्डहरों का भाग है। उसमें न तो कोई कब्र है और
न ही अब्दुररहीम खानखाना का नाम कहीं लिखा है। उसके उपर के
हिस्से में भी कमल तथा शक्तिचक्र के वैसे ही हिन्दू तान्त्रिक चिह्न जड़े
हुए हैं जैसे तथाकथित हुमायूं के मकबरे में जड़े हैं। अतः हुमायूं का
मकबरा कहे जाने वाले विशाल लक्ष्मी मन्दिर के जो अनेक खण्डहर वहाँ

उसी में से एक को इस्लामी धौंसबाजी से अब्दुररहीम
आसपास खड़े हैं उसी परिसर में चौंसठ खम्बा
खानखाना का मकबरा कहा जा रहा है। उसी परिसर में चौंसठ खम्बा
और अरब की सराय, निजामुद्दीन की दरगाह आदि नाम के भवन सारे
इस्लामपूर्व हिन्दू राजाओं के बनवाए हुए हैं। इस्लामी आक्रामकों ने इन
हिन्दू खण्डहरों में मृत व्यक्तियों को दफनाया या झूठी, नकली कब्रें ही उनमें
गड़ दीं। अतः वे सारी इमारतें हिन्दू ध्वंसावशेष हैं।

(८) महरौली में एक तालाब को कनिंघम ने शम्सी तालाब का नाम
देकर वह तालाब तथा उसके किनारे का महल शमसुद्दीन इल्तुतमश ने
बनवाया, ऐसी धौंस उड़ा दी है। इल्तुतमश के दरबारी कागजातों में या
तत्कालीन तवारीखों में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है। मुसलमानों ने केवल
तोड़फोड़ मचाई, उन्होंने बनाया कुछ नहीं।

(९) उसी तालाब से फूल वालों की सैर शहनाई के स्वरों में प्रतिवर्ष
दशहरा के लगभग मनाई जाती है। बहादुरशाह जफर की पत्नी जीनत
महल ने वह सैर शुरू करवाई और उससे हिन्दू-मुस्लिम एकता साधी ऐसा
झूठा प्रचार मोहनदास गांधी और जवाहरलाल नेहरू के समय से इस्लामी
मत पाकर चुनाव जीतने के लोभ से कांग्रेस वाले करते आ रहे हैं। वह
सरासर धौंसबाजी तथा धोखाधड़ी है। उस सैर के पुष्प योगमाया मन्दिर
में और तथाकथित बख्तियार काकी की मजार पर इसलिए चढ़ाए जाते
हैं क्योंकि दोनों प्राचीन हिन्दू मन्दिर हैं। सुल्तानों की इस्लामी सेनाओं ने
नष्ट-भ्रष्ट किए हिन्दू खण्डहरों में ही मोहिनुद्दीन चिश्ती, सलीम चिश्ती,
निजामुद्दीन, बख्तियार काकी, बाबा फरीद शकरगंज जैसे मुसलमान फकीर
अपना डेरा लगाते थे। उन स्थानों को इस्लामी सिद्ध करने के लिए वे वहाँ
नकली (या असली) कब्रें गड़ देते थे। यह बात ध्यान में रखकर यदि
बख्तियार काकी जैसे फकीरों के अड्डों का निरीक्षण किया जाए तो वहाँ
ध्वस्त हिन्दू खम्भों आदि का मलबा दिखाई देगा। फूलवालों का मेला दिल्ली
में पांडवों के समय से ही प्रचलित है। कर्नल टॉड द्वारा लिखित Annals and
Antiquities of Rajasthan में इसका उल्लेख है। ऐसे ही एक मेले के
समय जब दुर्योधन नग्न होकर माता गांधारी के पवित्र दृष्टिपात से निजी
शरीर वज्रसमान अभेद्य बनाने के हेतु गांधारी के महल को जा रहा था तो

भगवान कृष्ण ने वनमाली का रूप लेकर दुर्योधन को फूलों का कण्ठा
पहनाया। उस पर गांधारी की दृष्टि न पड़ने से दुर्योधन के शरीर का वह
भाग दुर्बल रह गया। उसी दुर्बल भाग पर प्रहार करके भीम ने दुर्योधन का
अन्त किया।

(१०) मुझे आज तक ऐसे दो-तीन व्यक्ति मिले हैं जिन्होंने निजी युवा
अवस्था में सन् १९३२-३४ के आस-पास ताजमहल के तहखाने में ऊबड़-
खाबड़ चिनवाई में पड़े सुराखों से झांका तो उन्हें अन्दर बड़े ऊँचे नक्काशी
वाले लाल पत्थर के स्तम्भों पर खुदी देवमूर्त्तियाँ दिखाई दीं। किन्तु उस
समय न तो आज जितना ताजमहल का बोलबाला था न कोई विशेष
पहरा। उन दिनों ताजमहल को शाहजहाँ द्वारा निर्मित कब्र ही समझा
जाता था। अतः वे युवक जिन्होंने तहखाने में मूर्त्ति वाले स्तम्भ देखे, थोड़े
से उलझन में अवश्य पड़े किन्तु कुछ समय पश्चात् उस उलझन को वे भूल
भी गए। उस घटना के लगभग तीस वर्ष पश्चात् जब मेरा शोध प्रकाशित
हुआ कि ताजमहल एक इस्लामी कब्रस्थान न होकर तेजोमहालय नाम का
हिन्दू प्रासाद है तब उन व्यक्तियों को युवा अवस्था में देखे मूर्त्ति वाले उन
स्तम्भों का स्मरण तो हुआ ही किन्तु उससे और महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि
उनके मन में जो उलझन निर्माण हुई थी कि ताजमहल कब्र होते हुए उसमें
हिन्दू मूर्त्तियाँ क्यों? उसका भी उन्हें योग्य विवरण उपलब्ध हो गया कि
शाहजहाँ ने जयपुर महाराज का तेजोमहालय शिवमन्दिर हथियाकर उसी
में मुमताज के नाम की कब्र गढ़ दी। शाहजहाँ स्वयं ताजमहल का निर्माता
नहीं है।

(११) पुरातत्व विभाग के बड़ौदा वाले कार्यालय में एकनाथ रामचन्द्र
साठे नाम के एक अधिकारी थे। उनके मित्र एस० आर० राव भी पुरातत्व
विभाग के अधिकारी थे जो कभी ताजमहल पर तैनात थे। ताजमहल पर
राव जी की देखरेख में जो घटना घटी वह श्री राव ने साठे जी को सुनाई
थी। साठे जी को जब पता चला कि मेरे शोध के अनुसार ताजमहल
शाहजहाँ के पूर्व की हिन्दू इमारत है तो उन्होंने राव जी के मुख से जो घटना
सुनी थी वह मुझे पत्र में लिखी।

वह घटना १९५२ के आसपास की है। उस समय श्री एस०आर० राव

ताजमहल पर पुरातत्व अधिकारी लगे थे। उस समय ताजमहल की एक दीवार में एक लम्बी-चौड़ी दरार पड़ी दिखाई दी।

उस दीवार की मरम्मत करने हेतु जब मिस्त्री को बुलाया गया तो मिस्त्री ने कहा कि दरार के आसपास की कई ईंटें निकालकर पूरी दीवार को दुबारा ठीक तरह सँवारना होगा। तदनुसार ईंटें निकालने का कार्य जैसे ही आरम्भ हुआ दीवार में से अष्टवसु की मूर्तियाँ निकलती गईं।

उस घटना से घबराकर राव साहब ने मरम्मत का कार्य रुकवा दिया और दिल्ली के पुरातत्व प्रमुख से दूरभाष द्वारा वार्ताविमर्श किया। मामला बड़ा गम्भीर था। ताजमहल हिन्दू मन्दिर होने की बात फैल जाती, तो हिन्दू उसका कब्जा माँगते, शाहजहाँ-मुमताज की कब्रें तुड़वा दी जातीं, इससे मुसलमान क्रुद्ध होकर कांग्रेस पक्ष को निजी मतों से सँवारना बन्द कर देते, ताजमहल को शाहजहाँ निर्मित कहने वाले पुरातत्व अधिकारी, पर्यटन विभाग के अधिकारी तथा विश्वभर के इतिहास विषय के अध्यापक, पत्रकार और कला समीक्षक इत्यादि विद्वान सारे ही झूठे, अज्ञानी इत्यादि साबित होकर लज्जित हो उठते। झूठे ऐतिहासिक सिद्धान्तों के चीर इस प्रकार उनके शरीर से खींचे जाने पर कौन-सा कृष्ण-कन्हैया उनकी लाज बचाता। सारे विद्वानों, सरकारी पुरातत्वीय अधिकारियों, तथा कांग्रेसी नेताओं के समक्ष एक बड़ी समस्या खड़ी हो गई। अतः दिल्ली के पुरातत्व प्रमुख ने शिक्षामन्त्री मौलाना अबुलकलाम आजाद से मार्गदर्शन माँगा। आजाद ने प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू से चर्चा की। वे ठहरे राजनयिक नेता। उन्हें सत्य की आँच नहीं थी। सत्य के लिए मर-मिटने की हिम्मत उनमें कहाँ थी? असुविधाजनक सत्य को दबा देना ही आजकल राजनीति मानी जाती है। हिन्दू देश में हिन्दुओं के पक्ष में निकलने वाली बातों को दबाकर इस्लामतुष्टि करते रहने की ही कांग्रेसी नीति रही है। तदनुसार जवाहरलाल नेहरू तथा अबुलकलाम आजाद द्वारा एस० आर० राव को आदेश दिया गया कि मूर्त्तियाँ ज्यों-की-त्यों दीवार में बन्द करके अपना मुँह भी बन्द रखना ताकि ताजमहल में मूर्त्तियाँ दबी होने की बात कहीं फैल न जाए। सरकारी अधिकारी के नाते एस० आर० राव ने उस आदेश का पालन कर पुरातत्वीय सत्य को दबा दिया। सन् १९७६ में

बंगलोर में मैंने जब श्री एस० आर० राव से उस घटना की पुष्टि चाही तो उन्होंने बात टाल दी।

ताजमहल आदि ऐतिहासिक इमारतों का असली रूप मालूम होते हुए भी उसे छुपाने की पुरातत्व विभाग की नीति सवा सौ वर्षों से बराबर चली आ रही है। इसका दूसरा उदाहरण देखें। सन् १९८६ के अगस्त मास में मद्रास नगर में मेरे कुछ व्याख्यान हुए। मेरे श्रोताओं में लिमये नाम के व्यक्ति थे। उनकी घड़ियों की दुकान है। ग्राहकों से बातें करते समय पता चला कि एक ग्राहक टी० एन० पद्मनाभन पुरातत्व विभाग में अधिकारी हैं। उनसे जब लिमये जी ने कहा कि "आजकल इतिहासज्ञ ओक जी के व्याख्यान हो रहे हैं। उनका दावा है कि ताजमहल मूलतः तेजोमहालय नाम का हिन्दू मन्दिर था।" यह सुनकर टी० एन० पद्मनाभन ने तुरन्त कहा, "ओक जी ठीक ही तो कहते हैं क्योंकि मैं जब ताजमहल पर तैनात था तब मुझे वहाँ विष्णु की एक मूर्ति मिली थी।" किन्तु उन्हीं टी०एन०पद्मनाभन महाशय को जब उनके कमलपुरम् (हम्पी, कर्नाटक) के पते पर मैंने पत्र द्वारा पूछा कि "भाई ताजमहल में विष्णु मूर्ति कहाँ, कैसे, कब, किस अवस्था में मिली?" तो टी० एन० पद्मनाभन चुप हो गए। उन्होंने पत्र का उत्तर ही नहीं दिया।

इस प्रकार ऐतिहासिक इमारतों के हिन्दू निर्माण का शोध लगने पर भी उस सम्बन्ध में पूर्णतया मौन रहने का एक षड्यन्त्र-सा सारे विश्व के विद्वानों में बना हुआ प्रतीत होता है। मुसलमानों को मिला हुआ ऐतिहासिक इमारतों का श्रेय निराधार सिद्ध हो गया है। इस बात का नामोच्चार भी करना उनके लिए किसी भूत या ब्रह्मराक्षस की भाँति डरावना लग रहा है। सम्पूर्ण विद्वज्जगत के लिए यह कितनी लज्जास्पद परिस्थिति है। निजी बालकों को सत्य बोलने का नित्य उपदेश करने वाले सारे प्रतिष्ठित जन स्वयं मेरे द्वारा शोधे गए ऐतिहासिक सत्यों को कुचल डालने के ही भरसक यत्न करते रहते हैं।

(१२) सन् १९८२ में मेरे दो मित्र फतेहपुर सीकरी गए थे। उस ऐतिहासिक नगर में लोग एक कोने के कुछ महल ही देखते हैं। उन महलों में पहुँचने से पूर्व जो उस नगरी का विस्तार है वह प्रेक्षक नहीं देखते। वहाँ

नगर के प्रति जाने वाला राजमार्ग और उस पर अन्तर-अन्तरपर बने लाल प्रस्तर के भव्य नक्काशीदार नगरद्वार बड़े लुभावने हैं। उधर एक प्राचीन भव्य राज वेधशाला भी है। बस मोटर-गाड़ियां फतेहपुर सीकरी के कोट में प्रवेश करने से पूर्व एक टोल नाके पर रुकती हैं। फतेहपुर सीकरी का सम्यक् तथा समग्र दर्शन चाहने वाले प्रेक्षकों ने वहीं बस-गाड़ी में से उतरकर कोट के द्वार में पैदल प्रवेश कर दाहिने को मुड़ जाना चाहिए। वहीं से पहाड़ी के ऊपर-ऊपर से आगे जाते-जाते सीकरवाल राजपूतों के उस प्राचीन नगर का रम्य विस्तार देखा जा सकता है। तथापि अधिकतर प्रेक्षक बस-गाड़ी से उस ऐतिहासिक नगर के आरम्भ का विशाल विस्तार अनदेखा पीछे छोड़-कर ठेठ आगे पहुंचकर कुल चार-पांच महल देखकर समाधान मान लेते हैं। उन महलों के पार एक विशाल हाथीद्वार है। वहां तक भी सामान्य प्रेक्षक नहीं पहुंच पाते। सरकारी लाइसेंस वाले स्थलदर्शक (गाइड) चार-पांच महलों का घिसा-पिटा परिसर प्रेक्षकों को बताकर अपने पैसे वसूल कर लेते हैं। इससे कम समय में अधिक कमाई होती है। आधी-अधूरी नगरी बताना और वह भी अकबर की बनाई हुई कहना ऐसे दो अपराध सरकारी लाइसेंस वाले गाइड करते रहते हैं। लोगों को उस नगरी का पूरा दर्शन कराना या सत्य विवरण देना यह दुर्भाग्यवश सामान्य गाइड का उद्देश्य नहीं होता। प्रेक्षकों को कुछ निराधार, तथ्यहीन बातें सुनाकर प्रभावित करना और उन्हें उस विशाल नगरी के कुछ थोड़े भाग दिखलाकर अपनी मजदूरी वसूल करना यही सरकारी गाइड लोगों का उद्देश्य होता है।

मेरे ग्रन्थ पढ़कर या मुझसे चर्चा कर जाने वाले प्रेक्षक ऐतिहासिक स्थलों का दर्शन अधिक बारीकी से ध्यान लगाकर करते हैं। तदनुसार सन् १९८२ में फतेहपुर सीकरी पुन: एक बार देखने जब मेरे दो मित्र गए तो उन्हें पता लगा कि वहां के पुरातत्वीय कर्मचारियों को किसी नगरद्वार के पास उत्खनन करते हुए उस द्वार के दोनों ओर लगी शिवपुत्र षडानन तथा गजानन की मूर्त्तियां प्राप्त हुईं। उन मूर्त्तियों को जोड़ने वाला एक नक्काशीदार सुन्दर तोरण भी पाया गया था। किन्तु स्थानीय पुरातत्व अधिकारी उन प्राप्त मूर्त्तियों के सम्बन्ध में कड़ा मौन रखे हुए थे। उनके वरिष्ठों का उन्हें आदेश था कि वे मूर्त्तियाँ मिलने की बात किसी को न बताएं। इस प्रकार भारतीय पुरातत्व विभाग की सारी गतिविधि कनिंघम के समय से चोरों जैसी अतिगुप्तता की ओर प्राप्त प्रमाण छिपाने की है। ताकि भारतस्थित ऐतिहासिक भवन सारे मुसलमानों के बनाए हैं इस धौंस को ठेस न पहुंचे।

मानवीय जीवन का एक अनुभव यह है कि कोई व्यक्ति यदि मूलत: एक झूठ बोले तो उस पर उठाई जाने वाली आशंकाओं को दबाने के लिए अन्य अनेक झूठ बोलते-बोलते असत्य का ढेर बढ़ता ही चला जाता है। इस अनन्त आपत्ति से छुटकारा पाने का एक सीधा-सादा मार्ग यह है कि वह सच-सच बात एक बार बतला दे जिससे झूठ के ढेर-के-ढेर से सत्य धंसकर नष्ट हो जाएंगे। क्या भारतीय पुरातत्त्वविद तथा इतिहासज्ञ इस झूठ के पहाड़ को कभी अपनी छाती से निकाल फेंकेंगे या उसी के नीचे दबे रहकर निजी दम घुटाते रहेंगे ?

इस सम्बन्ध में मैंने ६ फरवरी, १९८३ को पुरातत्त्व विभाग प्रमुख श्रीमती मित्रा को पत्र लिखा। मार्च १९८७ में पुरातत्त्व प्रमुख जगतपति जोशी को पत्र लिखा। १९८८ में भारत के उपराष्ट्रपति शंकरदयाल शर्मा जी को पत्र लिखा। तथापि उनमें से किसी ने मेरे पत्र का उत्तर तक नहीं दिया। इससे पता चलता है कि लोग सामान्य बोलचाल में सत्य का चाहे कितना ही ढिंढोरा पीटते हों प्रत्यक्ष जीवन में वे अनेक झूठों के सहारे से ही जीवन व्यतीत करते हैं। ऐतिहासिक इमारतें या नगर मुसलमानों के बनवाए नहीं हैं यह कहने पर किसी के ऊपर बड़ी-बड़ी आपत्तियों के पहाड़ टूट पड़ेंगे ऐसी अवस्था भी नहीं है। फिर भी उस सत्य से सभी मुंह मोड़ रहे हैं। इसी कारण विश्व में सत्यनिष्ठ व्यक्ति सदियों में एकाध ही पैदा होता है, तभी हरिश्चन्द्र या धर्मराज जैसी उसकी सत्यनिष्ठा आदर्श समझी जाती है।

ईसाई तथा इस्लामी इतिहास की नकली नींव

मुसलमानों का लगभग सारा ही इतिहास कपोलकल्पित है। अरबस्थान, ईरान, अफगानिस्थान आदि इस्लामी देशों ने मुसलमान बनाए जाने के पूर्व का इतिहास सारा नष्ट कर दिया। मुसलमान बनाए जाने के बाद का

इतिहास उन्होंने इस ढंग से लिखा है कि उसमें इस्लाम की कोई त्रुटि दिखाई न दे।

ईसाई लोगों ने भी वही किया। यूरोप के देशों ने ईसाई बनने के पश्चात् पुराना सारा निजी इतिहास नष्ट किया। ईसाई बनने के बाद का इतिहास इस प्रकार लिखा कि उसमें ईसाई धर्म को किसी प्रकार नीचा न देखना पड़े।

इसी कारण लगभग सारे ही मुसलमान निजी घराने का कौन-सा पूर्वज हिन्दू था इसकी खोज करने से शरमाते हैं और डरते हैं। उन्हें यदि पूछा जाए कि तुम्हारा कौन-सा पूर्वज हिन्दू था तो वे ऐसा ढोंग करते हैं कि जैसे उनके कोई पूर्वज हिन्दू थे ही नहीं।

ईसाइयों की बाबत भी मुझे वही अनुभव आया। अमेरिका के प्रसिद्ध हार्वर्ड विश्वविद्यालय के फ्रांसीसी सभ्यता विभाग को जब मैंने पत्र द्वारा पूछा कि ईसाई बनने से पूर्व फ्रेंच लोगों की वैदिक सभ्यता थी या नहीं? तो उन्होंने मुझे उत्तर दिया कि वे ईसाई फ्रांस का ही अध्ययन करते हैं।

इन उदाहरणों से यह बात स्पष्ट होती है कि इस्लाम तथा ईसाइयत दोनों इतिहास के शत्रु हैं। सृष्टि उत्पत्ति के समय से आज तक का इतिहास वे निष्पक्षता से जानना या लिखना नहीं चाहते। ईसाई लोग ईसा से इतिहास आरम्भ करेंगे और मुसलमान मुहम्मद से। उस सीमित इतिहास को भी वे निजी शान को आँच न पहुँचे इस उद्देश्य से मनमाने ढंग से तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करते हैं।

यह दोनों एक दूसरे का इतिहास झुठलाने के प्रयासों को संवारते भी रहते हैं। जैसे आगा खां के करोड़ों रुपये अनुदान देने पर हार्वर्ड विश्वविद्यालय ने Programme in Islamic Architecture नाम का एक विशेष विभाग बना रखा है। उन्हें मैंने लिखा कि इस्लामी वास्तुकला कभी थी ही नहीं, मुसलमान जमात तो कब्जा किए हुए महल और मन्दिरों को निजी मस्जिद और मकबरे कहती आ रही है, तो वे चुप रह गए। उन्होंने उत्तर ही नहीं दिया। इससे पता लगता है कि स्वार्थ में बाधक होने वाला सत्य सदा ठुकराया जाता है।

इतिहास के सबक

शोधक-ऐतिहासिक दृष्टि उसे कहना चाहिए जो वर्तमान विवरण में दोष या त्रुटि अनुभव करे। जैसे शाहजहाँ ने मृत मुमताज के शव के लिए यदि ताजमहल बनवाया होता तो जीवित मुमताज के विहार के लिए भी तो वह प्रासाद बनवाता! वह कहाँ है? ऐसी एकमात्र शंका आने पर पूरी ताजमहली शाहजहानी कथा भग्न होकर रह जाती है।

इस प्रकार योग्य शंका आने पर या सही प्रश्न उठाए जाने पर दूसरा कदम होता है सत्य का पता लगाने का। तीसरा गुण आवश्यक होता है उस सत्य को विश्व के विद्वज्जनों के सम्मुख बिना भय ललकारकर रखने का। सत्य जानने पर भी अधिकांश व्यक्तियों में उसे प्रकट करने की या उसे अपनाने की शक्ति नहीं होती। जैसे वर्तमान समय में ताजमहल शाहजहाँ का बनवाया नहीं है यह मेरा शोध प्रकट हुए पच्चीस वर्ष बीतने पर भी एक भी गण्यमान्य विद्वान् उस सत्य का पुरस्कार या नामोच्चार भी करने से हिचकिचाता है। सारे विद्वान् भयभीत होकर मौन धारण किए हुए हैं।

पुरी का जगन्नाथ मन्दिर

कई भारतीय हिन्दू लोगों में भी इतना अन्धविश्वास होता है कि वे अण्ट-सण्ट बातों पर विश्वास रखकर ऐतिहासिक संशोधन से मुँह मोड़ लेते हैं। जैसे मैंने कई बार लोगों को कहते हुए सुना है कि कुतुबमीनार पृथ्वीराज ने इसलिए बनवाई कि उसकी पुत्री उसपर चढ़कर दूर बहने वाली यमुना का दर्शन ले। ऐसे क्षुद्र कारण के लिए कोई वह विशाल स्तम्भ

नहीं बनवाएगा और इस प्रकार का कोई प्रमाण भी नहीं है इतिहास में।

इसी प्रकार पुरी के जगन्नाथ मन्दिर के निर्माण की कथा भी मुझे मन-गढ़न्त लगती है। कहते हैं वह मन्दिर १२वीं शताब्दी में बना और तभी से उसमें नीम की लकड़ी की बनी कृष्ण, बलराम तथा सुभद्रा की मूर्त्तियाँ पूजी जाती हैं।

कहते हैं कि पुरी के राजा ने एक स्वप्न देखा। उसमें दिए गए आदेशानुसार वह किसी वन में गया। वहाँ उसे बनजाति के राजा की कन्या दिखाई दी। वहाँ का बनराज बड़े भक्तिभाव से एक अतिगुप्त स्थान में प्रतिष्ठापित कृष्ण मूर्त्ति का एकान्त में पूजन करता रहता। राजकन्या का स्नेह प्राप्त होने से राजकन्या ने उस गुप्त पूजास्थल का भेद पुरी के राजा को बताया। पुरी का राजा उस मूर्त्ति को उठाकर चल दिया। पर वह मूर्ति मार्ग में ही लुप्त-गुप्त हो गई। साथ ही एक आकाशवाणी हुई। उससे राजा को आदेश मिला कि वह नीम की लकड़ी की मूर्त्ति बनाकर उसे पुरी में पत्थर का मन्दिर बनाकर उसमें प्रतिष्ठापित करे।

पुरी के भावुक तथा कर्मठ लोग इसी कथा को बड़ी श्रद्धा से दोहराते रहते हैं। पुरी की वार्षिक रथयात्रा के समय सभी समाचार-पत्रों में वही कथा दोहराई जाती है। एक इतिहास संशोधक के नाते मुझे ऊपर कही कथा निर्मूल प्रतीत होती है।

क्योंकि अनादिकाल से भारत के चार धामों में जगन्नाथपुरी के तीर्थ-स्थान की गणना होती है। विश्वभर में ईसवी सन् से पूर्व वैदिक धर्म होता था। तब भारत के चार धामों की यात्रा करने विश्व के कोने-कोने से यात्री आया करते थे। अत: १२वीं शताब्दि से कहीं पुराना पुरी का जगन्नाथ का मन्दिर है। वर्तमान मन्दिर के चबूतरे से सटा हुआ प्राचीन मन्दिर के चबूतरे का कुछ भाग अभी वहाँ देखा जा सकता है। इससे सिद्ध होता है कि यद्यपि वर्तमान मन्दिर बारहवीं शताब्दी में बना हो, परन्तु उससे पूर्व भी वहाँ एक अति विशाल तथा सुन्दर मन्दिर था।

और जब मन्दिर पत्थर का हो तब मूर्ति नीम की लकड़ी की हो, यह जँचता नहीं। कृष्ण, बलराम तथा सुभद्रा की जो लकड़ी की मूर्त्तियाँ बनाई जाती हैं वे भद्दी-सी होती हैं, जैसे बच्चे चित्र बनाते हैं। भारत में तो देव-

मूर्त्तियाँ सुन्दर तथा प्रमाणबद्ध बनाने की प्रथा रही है। मन्दिर का शिल्प विशाल और सुन्दर पत्थर से बना और उसके अन्दर की मूर्ति लकड़ी की और भद्दे आकार की, यह असंगत-सा लगता है। पुरी से कुछ ही मील दूर कोणार्क का मन्दिर है। उसका मुख्य भाग तो इस्लामी आक्रामकों ने छिन्न-भिन्न कर रखा है, फिर भी उसके अन्दर कहीं-कहीं सूर्य की पत्थर से बनी विशाल मूर्त्तियाँ खड़ी हैं। मन्दिर के कोने-कोने में ऊपर से नीचे तक अन्य कई मूर्त्तियाँ बनी हैं। ऐसी प्रणाली से जगन्नाथपुरी की विद्यमान नीम की लकड़ी से बनी मूर्त्तियाँ कुरूप तथा असंगत प्रतीत होती हैं। उसके साथ ही बनराज की कन्या के सहाय्य से बनराज के आराध्य दैवत भगवान कृष्ण की मूर्त्ति पुरी के राजा द्वारा हड़प लेना, मूर्ति का लुप्त-गुप्त हो जाना, यह सारी तफसील बड़ी अविश्वसनीय लगती है। पुरी का राजा भला इतना दरिद्री या चोर हो सकता है कि जो बनराज की श्रद्धा की भगवद्मूर्त्ति चुराता ? मूर्त्ति हड़प लेने के पश्चात् उसका लुप्त होना और तत्काल एक आकाशवाणी का होना, तर्कसंगत नहीं है।

मन्दिर के गर्भगृह में जिस वेदी पर हाल में लकड़ी की बनी देवमूर्त्तियाँ रखी जाती हैं उस वेदी का भी सूक्ष्म निरीक्षण करना आवश्यक है। हो सकता है कि उस पर प्राचीनकाल से विशाल देवमूर्तियाँ प्रतिष्ठापित रही हों और किसी इस्लामी आक्रामक ने मन्दिर पर धावा बोलकर वेदी पर खड़ी पत्थर की विशालकाय देवमूर्त्तियाँ नष्ट कर दी हों। उस आक्रमण के पश्चात् कुछ ही दिनों में रथोत्सव की तिथी पड़ी। इस अल्पावधि में पर्याय के रूप में झटपट किसी नीम की लकड़ी काटकर उससे देवमूर्त्तियाँ बनाकर वहीं वेदी पर रख दी गई होंगी। उन्हीं मूर्त्तियों की रथयात्रा निकाली जाने से वही प्रथा चल पड़ी। जिन दिनों कोणार्क का मन्दिर मुसलमानों ने छिन्न-भिन्न किया उसी के आगे-पीछे उन्होंने पुरी के मन्दिर पर धावा बोलकर अन्दर की मूर्त्तियाँ नष्ट की होंगी। इतिहासकारों ने उस भीषण आक्रमण का पता लगाना चाहिए। जबसे भारत पर इस्लामी आक्रमण आरम्भ हुए तबसे सारे प्रमुख देवस्थान नष्ट करते रहने का उनका लक्ष्य रहा है। प्रत्येक आक्रामक तथा सुल्तान, बादशाह जो मन्दिर दिखे उसे तुड़वाने का आदेश दिया करता। मन्दिर तोड़ने से गुरुकुल बन्द होकर निरक्षरता फैली।

मन्दिरों में पथिकों के रहने तथा भोजन की व्यवस्था होती थी। वह भी टूट जाने से लोगों में दरिद्रता फैली। भारत से धन लूटकर मुसलमान हमलावर अपने देशों में ले जाते रहे। इस कारण जनता भूखी मरने लगी। इस प्रकार भारत को प्रगति के शिखर से निर्धनता तथा निरक्षरता की खाई में धकेल देने की भीषण दुरवस्था को प्रचलित इतिहास में इस्लाम का भारतीय सभ्यता में बड़ा योगदान कहा जा रहा है।

पुरी के जगन्नाथ

पुरी के भगवान को जगन्नाथ कहा जाता है। वह उस प्राचीन अतीत की उपाधि है जब विश्व में सर्वत्र वैदिक सभ्यता ही होने से पुरी की देवमूर्ति को देश-विदेश के समस्त जन जगन्नाथ कहा करते थे। इन्हीं जगन्नाथ की मूर्तियाँ इंग्लैण्ड में, इटली के रोम नगर में, सऊदी अरब के काबा में, दिल्ली में कुतुबमीनार उर्फ विष्णुस्तम्भ के तल में, स्पेन के सागर तटवर्ती कैडिज (Cadiz) नगर में तथा यरुशलेहम नगर में प्रतिष्ठित थीं।

इस्लाम का ध्वजचिह्न जगन्नाथ का है

इस्लाम का ध्वज हरे रंग का होकर उसपर टेढ़ा चाँद और सितारा होता है। हरे रंग से पूर्व इस्लाम के ध्वज का रंग केसरिया ही होता था। किन्तु मुहम्मद पैगम्बर ने जब काबा के मन्दिर पर धावा बोलना आरम्भ किया तब मन्दिर के रक्षकों तथा आक्रामकों, दोनों के ध्वज केसरिया ही होने से, हार-जीत का घोटाला होने लगा। अतः तबसे मुहम्मद ने अपने ध्वज का रंग हरा किया। पुरी के मन्दिर के शिखर पर भक्तगणों की तरफ से कई ध्वज लहराते रहते हैं। वे वहीं के बाजार से खरीदे जाते हैं। उनका रंग केसरिया होता है और उन पर टेढ़ी चन्द्रकोर के ऊपर छोटा सूर्य गोल दर्शाया होता है। दूर से वह आकृति इस्लाम के चाँद सितारे जैसी ही दिखाई देती है। इससे अनुमान यह निकलता है कि काबा का मन्दिर भी जगन्नाथ का मन्दिर ही था। उस पर भी "यावच्चन्द्र दिवाकरो" मुहावरे के अनुसार सूर्य-चन्द्र के चिह्न होते थे। पुरी के जगन्नाथ मन्दिर के शिखर पर इस चिह्न से अंकित कई ध्वज एक साथ लहराते हुए देखे जा सकते हैं। इस सूर्यगोल को कंगूरेदार सितारे में परावर्तित कर इस्लामी ध्वज पर

बनाया जाता है। तथापि दोनों ध्वज चिह्न दूर से एक जैसे ही दीखते हैं। इससे प्रतीत होता है कि काबा भी सन् ६२२ तक जगन्नाथ का मन्दिर रहा होगा और उस पर पुरी के ध्वज के समान सूर्य-चन्द्र वाला केसरिया ध्वज लहराता था।

आंग्ल शब्दकोष में जगन्नाथ का अपभ्रंश

आंग्लभाषा में जगन्नाथ का जगरनॉट अपभ्रंश रूढ़ है। ऑक्सफोर्ड शब्दकोष बनाने वाले आंग्ल विद्वान् नहीं जानते कि आंग्लभाषा भी संस्कृत का ही एक प्राकृत रूप है। अतः वे आंग्ल शब्दों की ऊटपटांग व्युत्पत्ति बतलाते रहते हैं। तदनुसार वे समझे बैठे हैं कि भारत में जगन्नाथ के विशाल रथ की यात्रा देखने के पश्चात् आंग्लभाषा में लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व जगरनॉट शब्द रूढ़ हुआ होगा। हम इससे सहमत नहीं हैं। हमारा यह निष्कर्ष है कि ईसाई धर्म से पूर्व विश्व के कई देशों में जगन्नाथ के विशाल रथ का जुलूस निकला करता था। लन्दन में भी ईसाई धर्म प्रसार के पूर्व जगन्नाथ की रथयात्रा उसी प्रकार निकलती थी जैसे आधुनिक युग में हरेकृष्णपन्थी Iskcon अनुयायी गोरे पाश्चात्य जन निजी देशों में रथ-यात्रा निकालते हैं। इसी कारण अतिप्राचीन समय से आंग्लभाषा में जगन्नाथ का अपभ्रंश जगरनॉट रूढ़ है।

इंग्लैण्ड में 'पुरी'

ईसाईधर्म पूर्व इंग्लैण्ड में नगरों को 'पुरी' कहने की प्रथा थी। जैसे Ainsbury, Shreusbury, Waterbury आदि नाम कृष्णपुरी, सुदामा-पुरी, जलपुरी जैसे नाम हैं। अन्त्यपद 'बुरी' संस्कृत 'पुरी' का अपभ्रंश है क्योंकि Potato को बटाटा कहा जाता है। इसी प्रकार 'पुस्तक' शब्द से 'स्त' निकल जाने से जो 'पुक' अक्षर रह जाते हैं उसी का आंग्ल अपभ्रंश 'बुक' हुआ है। इन उदाहरणों से पता चलता है कि 'प' का 'ब' तथा 'ब' का 'प' उच्चार होता है। अतः प्राचीन इंग्लैण्ड में जगरनॉट पुरी उर्फ जगन्नाथपुरी कहीं रही होगी।

फ्रांस के ध्वज चिह्नों में कमल

फ्रांस के ध्वज पर प्राचीनकाल में कमल (Lily) दिग्दर्शित होते थे।
वैदिक सनातन धर्म में कमल एक महत्त्वपूर्ण चिह्न है। पुरी की रथयात्रा
में सुभद्रा के रथ पर कमलचिह्नांकित ध्वज होता है। ईसाई बनाए जाने से
पूर्व फ्रांस के लोग वैदिक धर्मी होते थे। उनमें प्रमुखतया देवीपूजन प्रथा
प्रचलित थी। चण्डी, भवानी, अम्बा, परमेश्वरी ही फ्रांस की राष्ट्रदेवी
थी। उन्हीं को वे Notre Dame यादि 'हमारी देवी' कहते थे। फ्रांस के
कई नगरों में 'नोत्र दाम' के मन्दिर हैं जो अब गिरिजाघर कहे जाते हैं।
सुभद्रा के रथ पर कमलध्वज होता है उसी तरह का कमलध्वज फ्रांस के
राजा-रानी रखते थे। फ्रांस की प्राचीन वैदिक परम्परा का कमल एक
महत्त्वपूर्ण प्रमाण है। हार्वर्ड जैसे विश्वविद्यालय ईसाईधर्म पूर्व फ्रांस की
वैदिक सभ्यता के अध्ययन को इसलिए टाल देते हैं कि मुसलमानों जैसे ही
पाश्चिमात्य ईसाई लोगों में भी धार्मिक कट्टरता है। वे ऐसा आभास निर्माण
करना चाहते हैं कि ईसाइयत के अतिरिक्त अन्य सभ्यता का शोध या ज्ञान
निरर्थक है।

अरबी धृष्टता

सातवीं शताब्दी से १८वीं शताब्दी तक आतंक तथा अत्याचार द्वारा
विश्व के विभिन्न देशों के ऊपर इस्लाम थोपा जाता रहा। इस अवधि में
विश्व के लोगों को जबरन यह रटाया गया कि अरब लोग स्वयं बड़े विद्वान्
थे और उन्होंने सारे विश्व को विविध विद्याशाखाओं का ज्ञान दिया। यह
सरासर झूठ है। इस्लाम की स्थापना से अरब लोगों की इस्लामपूर्व सभ्यता
को ग्रास ग्रहण लगा। अरब लोग क्रूर, अत्याचारी और लुटेरे बन गए।
इतना ही नहीं अरब आक्रामक ईरान, अफगानिस्थान आदि जिन-जिन देशों
को मुसलमान बनाते चले गए, उन सभी ने ही अपने प्राचीन इतिहास तथा
विद्या केन्द्र जला दिए। वे भी लूटपाट तथा अत्याचार, व्यभिचार करने वाले
बन गए। अतः अरब और ईरानी सभ्यता का इतिहास में ढोल पीटा जाना
इतिहास की भारी हेरा-फेरी है। अरबस्थान और ईरान के लोग मुसलमान
होने से पूर्व बड़े विद्वान् और सभ्य अवश्य थे। इस्लाम ने उस सभ्यता का

तथा समस्त प्राचीन ग्रन्थों का सफाया किया। अतः इस्लामपूर्व विद्वत्ता तथा
सभ्यता को इस्लाम निर्मित घोषित करना इतिहास से खिलवाड़ करना है।

यूरोपीय लोगों के दावे

यूरोप के गोरे लोगों ने भी इतिहास में ऐसा आभास निर्माण कर रखा
है कि ईसाई धर्म अपनाने पर ही यूरोप की जनता प्रगत हुई। यह सरासर
झूठ है। ईसाई धर्म यूरोप पर थोपे जाने के पश्चात् एक सहस्र वर्ष तक
यूरोप के लोग पिछड़े हुए ही थे। कला तथा विद्याओं का यूरोप में पुनरुत्थान
चौदहवीं या पन्द्रहवीं शताब्दि का माना जाता है। और यूरोप का यांत्रिक
युग तो सन् १८३५ में तब आरम्भ हुआ जब फ्रांसीसी तथा अंग्रेज, डच
आदि लोगों ने भारत पर आक्रमण कर भारतीय सम्पत्ति तथा शास्त्रीय
ज्ञान की लूट की। ईसाई धर्म ने तो इन्क्वीजीशन (Inquisition) नामक
छल, अत्याचार और कपट का यूरोप भर में आतंक मचाया। उसका भीषण
वर्णन Charles T. Gorham के 'Religion as a Bar to Progress'
(यानि प्रगति में धर्म की रुकावट) ग्रन्थ में पृष्ठ ६ पर वर्णित है। वह ग्रन्थ
लण्दन में छपा है।

History of Civilization in England (पृष्ठ ३०० से ३०६, खण्ड
१) में ग्रन्थकार Henry Thomas Buckle लिखते हैं कि 'Christian
priests have obscured the annals of every European people
they converted' यानि "जिन-जिन लोगों को पादरी लोग ईसाई बनाते
चले गए उनका इतिहास वे गपड़-शपड़ करते चले गए।" मुसलमानों ने भी
ठीक वही किया। वे तो इतिहास नष्ट ही करते चले गए।

यूरोप के गोरे, ईसाई लोगों की शक्ति तथा साम्राज्य जैसे-जैसे बढ़ते
गए, वैसे उन्होंने गैलीलियो, कोपरनिकस, न्यूटन आदि के शोधों के ऐसे ढोल
पीटने आरम्भ किए कि जैसे वे सिद्धान्त प्रथम बार प्रकट हुए हों। किन्तु
कणाद, आर्यभट्ट, भास्कराचार्य आदि अनेक वैदिक शास्त्रज्ञों ने वे सारे तथ्य
निजी ग्रन्थों में सदियों पूर्व अंकित कर रखे थे।

मुसलमानों में भी—रशिया निवासी उलुघ बेग तथा दिल्ली का दुर्बल
बादशाह मुहम्मदशाह रंगीला बड़े गणितज्ञ थे, शास्त्री थे आदि हल्ला-गुल्ला

मचा रखा है। वे भूल गए हैं कि इस्लाम की स्थापना सातवीं शताब्दी में हुई। तब तक विश्व के वैदिक धर्मी लोग सारे शास्त्रों में प्रवीण थे। जैसे-जैसे इस्लाम धर्म का प्रसार होता गया वैसे-वैसे उन-उन प्रदेशों से सारे ज्ञानदीप बुझते चले गए। अतः उलुघ बेग के समय रशिया में खगोलज्योतिष की जो वेधशाला थी वह प्राचीन वैदिक परम्परा के ज्ञान का एक बचा-खुचा अवशेष था जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी नष्ट हो रहा था। उलुघ बेग को यदि खगोल ज्योतिष का कोई ज्ञान रहा हो तो वह उसको इस्लामी परम्परा के कारण नहीं अपितु उसके हिन्दू पूर्वजों के कारण था।

इसी प्रकार दिल्ली में एक प्राचीन वेधशाला है। उसे सामान्य अनपढ़ जनता 'जन्तर-मन्तर' कहती है। मुहम्मदशाह रंगीला जब दिल्ली का नामधारी बादशाह था तब जयपुर नरेश जयसिंह ने उस वेधशाला का निर्माण किया ऐसी किवदन्ती है। किन्तु जयसिंह ने उस वेधशाला का केवल जीर्णोद्धार किया। क्योंकि कतिपय इस्लामी हमलों में वह वेधशाला छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। अतः उस वेधशाला के निर्माण का श्रेय जयसिंह को या मुहम्मदशाह रंगीला को देना असंगत है। रंगीला बादशाह कभी ज्योतिषीय वेधशाला के निर्माण का करतब दिखा पाएगा? विशेषकर जब इस्लाम का खगोल ज्योतिष से कुछ सम्बन्ध ही नहीं है।

इस प्रकार जब तक मुसलमान लोगों का साम्राज्य था तब तक हारून अल् रशीद, उलुघ बेग आदि व्यक्ति बड़े विद्वान् और गुणवान कहे जाते रहे। जब यूरोपियन लोगों का विश्व के अनेक भागों पर प्रभुत्व बना तब उन्होंने कोपरनिकस, गैलीलियो, न्यूटन आदि को गण्यमान्य व्यक्ति कहना आरम्भ किया। 'जिसकी लाठी, उसकी भैंस' की भांति 'जिसका अधिकार, उसका प्रचार।' इस दृष्टि से इतिहास शालेय छात्र की तख्ती जैसा होता है। जिस प्रकार उस पर लिखे अक्षर मिटाकर हर बार नया पाठ या नई संख्याएँ लिखी जाती हैं, उसी प्रकार इतिहास में प्राचीन सभ्यता का नाम तथा ब्यौरा मिटता रहता है और उसके स्थान पर नया नाम और नई सभ्यता का वर्णन लिखा जाता है। एक व्यक्ति जैसे निजी पूर्वजों के नाम भूलता जाता है उसी प्रकार समाज को भी प्राचीन सभ्यताओं का विस्मरण होता रहता है।

रोम तथा ग्रीस की संस्कृति

यूरोपीय विद्वान् ग्रीस तथा रोम को निजी सभ्यता का स्रोत मानते हैं। किन्तु वे यह नहीं जानते कि ग्रीस तथा रोम की भाषा तथा सभ्यता स्वयं वैदिक, संस्कृत उद्गम की हैं। किसी प्रकार यूरोपीय विद्वान् पूर्ववर्ती देशों से या पूर्वी सभ्यता से निजी नाता जोड़ना या कबूल करना नहीं चाहते। इसी कारण वे ग्रीस तथा रोम को निजी परम्परा के मूल स्रोत मानते हैं। उन्हें यदि पूछा जाए कि "ग्रीस तथा रोम में प्राचीनकाल में होम-हवन, देव पूजन इत्यादि होता था। उस समय ग्रीस तथा रोम के लोग ईसाई नहीं थे। तथापि आजकल आप ईसाई बने हुए हैं, यह कहाँ की ग्रीक सभ्यता हुई?" इस प्रश्न का वह ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे पाएँगे। भारत पर जब अंग्रेजों का अधिकार १९वीं शताब्दी में प्रस्थापित हुआ तब उन्होंने यह अफवाह उड़ा दी कि भारत की सभ्यता, संस्कृत भाषा और अन्य विषयों का ज्ञान भारत ने ग्रीक लोगों से प्राप्त किया।

जब दो सभ्यताओं की समानताओं के कारण पूर्वज कौन तथा अनुज कौन ऐसा भ्रम होता है तो उन दोनों में से कौन अधिक प्राचीन है यह पड़ताल करना ठीक होता है। जैसे एक ९० वर्ष की वृद्धा तथा ९ वर्ष की बालिका में समानता दिखने पर वृद्ध स्त्री पूर्वज तथा छोटी बाला अनुज कहलाएगी, उसी प्रकार सनातन वैदिक सभ्यता तो लाखों वर्ष प्राचीन सिद्ध होती है। उसकी तुलना में ग्रीक सभ्यता दो या तीन सहस्र वर्षों से अधिक प्राचीन नहीं है।

नाना फड़नवीस की कथा

इस सम्बन्ध में नाना फड़नवीस की एक कथा बड़ी उद्बोधक सिद्ध होती है। नाना फड़नवीस पेशवा दरबार में हिसाब-किताब का काम देखते थे। बढ़ते-बढ़ते वे पेशवाओं के प्रमुख मन्त्री बन गए। तत्कालीन समाज में नाना फड़नवीस अग्रगण्य बुद्धिमान माने जाते थे। उनकी बुद्धिमत्ता परखने के लिए तरह-तरह के व्यक्ति पेचीदी समस्याएँ प्रस्तुत कर नाना फड़नवीस से उनका हल चाहते थे। कहते हैं कि तत्कालीन निजाम ने दो घोड़ियाँ भेजीं जो पूर्णतया समान दीखती थीं। उनके रंग-रूप तथा वजन में कोई

अन्तर नहीं था। उनमें से एक मां थी और दूसरी उसकी सन्तान थी। नाना फड़नवीस से यह प्रश्न किया गया था कि उन दो घोड़ियों में मां कौन तथा बच्ची कौन है? यह क्या वे बता सकेंगे? नाना फड़नवीस की बुद्धि इतनी तीव्र थी कि वे किसी भी समस्या को तुरन्त हल कर सकते थे।

उन्होंने एक सेवक को कहा कि उन दोनों घोड़ियों को वह स्थानीय नदी की तेज धारा में छोड़ दे। तेज धारा में पहुंचते ही एक घोड़ी आगे-आगे चलती गई और दूसरी उसके पीछे-पीछे जाती रही। अगवाही करने वाली घोड़ी पर लिखा गया माता और उसके पीछे चलने वाली बच्ची बताई गई। इस प्रकार नाना फड़नवीस पशुओं का मानसशास्त्र भी जानते थे। संकट में पशु का शावक मां के पीछे-पीछे रहता है। इसी प्रकार ग्रीक सभ्यता यदि सनातन वैदिक प्रणाली से मेल खाती हो तो उनमें जो प्राचीन होगी वह स्रोत होगी। इस तत्त्व को ध्यान में न लेकर यूरोपीय विद्वानों ने निजी बड़प्पन के ताव में आकर भारत ने सारे शास्त्र, विद्या, कला आदि का ज्ञान ग्रीक लोगों से सीखा, ऐसा कहना-पढ़ाना आरम्भ किया।

गणित ज्योतिष तथा फलज्योतिष के प्रमाण

गणित ज्योतिष तथा फलज्योतिष की ग्रीक तथा संस्कृत परिभाषा में बड़ी समानता है। अतः प्रश्न उठता है कि इन विषयों में मूल ज्ञान किसका है? इस प्रश्न का हल ढूंढते समय जब वेदों में ज्योतिष का उल्लेख मिलता है और वेद सबसे प्राचीन साहित्य माना गया है तो उससे अपने आप निष्कर्ष यह निकलता है कि सनातन वैदिक संस्कृत से ही ग्रीक लोगों ने ज्योतिष विषय का ज्ञान पाया। इतना ही नहीं अपितु ग्रीस देश में वैदिक सनातन सभ्यता ही होती थी।

कर्म सिद्धान्त

फलज्योतिष का एक आधार है 'कर्म सिद्धान्त'। पूर्वजन्मों के संचित कर्मों के अनुसार मानव वर्तमान जीवन में फल पाता है। अतः मानव का भविष्य फलज्योतिष के नियमानुसार जाना जा सकता है। वह कर्म सिद्धान्त स्वयं वेदान्तमूलक है। इस दृष्टि से भी ग्रीक ज्योतिष का स्रोत वैदिक सभ्यता ही जान पड़ता है। ग्रीक लोग ज्योतिष को Horology कहते हैं।

अतः कई भारतीय विद्वान भी 'होरा' (Hora) शब्द ग्रीक भाषा का मानते हैं। आंग्लभाषा में एक कलाक उर्फ एक घण्टे को hour कहते हैं। वह वस्तुतः (hora) 'होरा' शब्द का ही अपभ्रंश है। होरा शब्द संस्कृत है और बराबर 'एक कलाक' का ही वह निदर्शक है। ज्योतिषी को भारत में होराभूषण ऐसी उपाधि लगाई जाती है। तो क्या ग्रीक लोगों में भी फल-ज्योतिष के जानकार को होराभूषण कहते हैं? यदि नहीं तो इससे स्पष्ट होता है कि ग्रीक ज्योतिषीय परिभाषा भारतमूलक है।

ज्योतिषी परिभाषा सारी संस्कृतोद्भव है

यूरोपीय लोगों की सारी ज्योतिषीय परिभाषा संस्कृत स्रोत की ही है। Astrology शब्द लें। उसमें 'अस्' यह अरबी उच्चार 'अस् सलाम वालेकुम्' की तरह फालतू लगा है अतः उसका विचार न करें। शेष भाग Trology संस्कृत 'तार-लग' शब्द का अपभ्रंश है। उसका अर्थ है "तारों से जुड़ा (लगा) हुआ ज्ञान उर्फ विद्या।" भारतीय शब्द 'ज्योतिष' का वही अर्थ है।

सूर्य को अंग्रेज Sun लिखते हैं। उसमें अन्तिम 'n' अक्षर को भूल जाएं। शेष su अक्षर 'सू' का द्योतक है। इससे देखा जा सकता है कि rya 'र्य' के बजाय अन्त में 'n' गलती से पड़ गया।

चन्द्रमा को आंग्लभाषा में Moon लिखते हैं। वस्तुतः वही शब्द Mun भी लिखा जा सकता है। वैसा लिखने पर उसका आंग्लभाषा में 'मुन' भी उच्चार होगा और 'मन्' भी होगा। तो वास्तव में फलज्योतिष शास्त्र में चन्द्रमा जातक के मन का ही द्योतक है, तत्पश्चात् मंगल। उसे आंग्लभाषा में मार्स (Mars) लिखा जाता है। वह वास्तव में संस्कृत 'मार-ईश' शब्द है। क्योंकि वह देवों का सेनापति माना गया है। वैसे भी फल-ज्योतिष में मंगल को अग्निग्रह मानकर विस्फोट, आग, दुर्घटना आदि का कारक ग्रह माना गया है।

बुध को Mercury को कहा जाता है। इस शब्द में दो बार r अक्षर आया है। दुबारा पड़े r को मिटाकर वह नाम Mercuy पढ़ें तो वह 'महर्षि' शब्द का अपभ्रंश प्रतीत होगा। बुध को फलज्योतिष, ज्ञान तथा बुद्धिमत्ता

का कलंक ग्रह माना गया है। उसे Woden भी कहते हैं। उसी से Woden's day उर्फ Wednesday (यानि बुधवार) कहते हैं। Woden यह 'बुधन्' उर्फ 'बुध:' शब्द का ही विकृत उच्चार है।

बृहस्पति उर्फ गुरु ग्रह को Jupiter कहते हैं। वह देवस् पितर् का अपभ्रंश झुवस पितर बनकर झुपितर उर्फ ज्युपिटर कहलाने लगा।

शुक्र को यूरोपीय लोग वीनस् (Venus) कहते हैं जो सीधा ही 'वेनस्' संस्कृत शब्द है।

शनि को आंग्लभाषा में Saturn लिखा जाता है। उसमें r अक्षर फालतू पड़ा है। उसे निकालकर पढ़ें तो Satun शब्द बनता है। यूरोपीय परिभाषा में Satan ऐसा भी लिखा जाता है। उसका अर्थ है शैतान यानि दुष्ट या हल्के विचारों का नीच व्यक्ति। फलज्योतिष में शनि की ठीक वही भूमिका मानी गई है। Satun उर्फ Satan यह संस्कृत 'सत्-न' यानि जो सत् नहीं है अर्थात् कुकर्मी या विश्वासघातकी शब्द है।

राहु और केतु को Nodes of the Moon यानि चन्द्रमा का नाद (निनाद) कहते हैं। क्योंकि चन्द्रमा का पृथ्वी के आसमंत का भ्रमण मार्ग, पृथ्वी के सूर्य परिक्रमा के मार्ग को जिन दो बिन्दुओं पर हर १½ वर्ष के बाद छेदता है उन काल्पनिक बिन्दुओं की राहु तथा केतु संज्ञाएँ हैं।

इन संस्कृतोद्भव संज्ञाओं से ग्रीस देश की सारी विद्याएँ वेद मूलक ही प्रतीत होती हैं।

अश्लीलता की व्याख्या

वही विद्वान इतिहासकार माना जाना चाहिए जो मानवी-सामाजिक परम्परा का सही उद्गम कह सके और सामाजिक समस्याओं का हल बता सके। ऐसी एक समस्या है अश्लीलता की। आजकल के नाटक, सिनेमा, दूरदर्शन, चित्र आदि में पुरुष स्त्रियों के साथ दुष्टता, धृष्टता तथा निर्लज्जता का व्यवहार करते दिखाए जाते हैं। इससे स्त्रियों का जीवन अधिकाधिक संकटमय होता जाएगा। उनकी कोई सुरक्षा नहीं रहेगी। दिन प्रतिदिन उन्हें घर से बाहर निकालना तो क्या घर के घर में उनका शील या सुरक्षा बनी रहना कठिन हो जाएगा। क्योंकि दिनरात बच्चों से बूढ़ों

तक सारी जनता को यत्र-तत्र-सर्वत्र नाटक, सिनेमा तथा दूरदर्शन द्वारा स्वैर कामुक व्यवहार के और स्त्रियों पर जोर-जबरदस्ती करने के दृश्य तथा विविध नये-नये प्रकार बतलाए जा रहे हैं। आधुनिक आचार-विचार स्वतन्त्रता के नाम पर उस अनुचित व्यवहार को समर्थन किया जा रहा है: इससे आगामी पीढ़ियों का जीवन अधिकाधिक संकटमय होगा।

इस भावी विपदा के प्रति जनता का ध्यान खींचते हुए बढ़ती अश्लीलता के प्रदर्शन पर रोक लगाने का उपाय जो दूरदर्शी लोग सुझाते हैं उन्हें वकील, न्यायाधीश व अन्य विद्वान यह कहकर टाल देते हैं कि अश्लील की व्याख्या करना बड़ा कठिन है। किन्तु यह केवल एक बहाना है। गत पीढ़ियों में सार्वजनिक व्यवहार में अश्लीलता का प्रमाण नगण्य था। वेश्या-गमन, दारूपान, मांसाहार या धूम्रपान करने वाले चन्द व्यक्ति ये व्यवहार डर-डरकर, छिप-छिपकर करते थे। समाज में वह व्यवहार खुल्लमखुल्ला करने की या उसका जोरदार समर्थन करने की हिम्मत नहीं होती थी। किन्तु आजकल तो ऐसा व्यवहार न करने वाले को गँवार या पिछड़ा हुआ कहकर उसकी हँसी उड़ाई जाती है।

उस भीषण भवितव्य को रोकने का एक ही उपाय है—सार्वजनिक जीवन में अश्लीलता और व्यसनाधीनता के प्रति कठोरता बरतना और उनपर प्रतिबन्ध लगाना। गत पीढ़ियों में वैसे सामाजिक बन्धन होते थे।

अश्लीलता की व्याख्या बड़ी सरल है। जो व्यवहार खुले में, औरों के सामने करना वर्ज्य माना जाता है उसे खुले में औरों की उपस्थिति में करना अश्लीलता है। जैसे किसी कार्यालय में सारे चुस्त बैठकर कार्यमग्न हों और एक व्यक्ति सोया या लेटा हो तो वह अश्लील है, किन्तु यदि वह व्यक्ति रात-भर जागा हो और उसे सोने के लिए अन्य स्थान नहीं हो तो उस कार्यालय के कार्यमग्न व्यक्ति लेटे हुए व्यक्ति को अश्लीलता का दोष नहीं देंगे। इसी प्रकार एक अनजान बालक यदि आम लोगों के सम्मुख मल या मूत्र का त्याग करे तो वह बात अश्लील नहीं मानी जाएगी। किन्तु एक समझदार, जिम्मेदार प्रौढ़ व्यक्ति यदि सार्वजनिक स्थान पर अन्य लोगों के सम्मुख वही व्यवहार करे तो वह अश्लील होगा। आधुनिक नाटक, सिनेमा आदि में जिस प्रकार स्त्रियों की छेड़-छाड़ ही कथा का मुख्य विषय होता है ऐसे

नाटक-सिनेमा अवश्य अश्लील कहकर बन्द करा दिए जाने चाहिएं। क्योंकि कोई भी प्रेक्षक उस तरह का व्यवहार निजी माँ, बहन, पत्नि या कन्या के साथ होता हुआ देखकर सहन कर नहीं पाएगा। इस प्रकार श्लील-अश्लील का हंस-क्षीर न्याय करना कोई कठिन समस्या नहीं है। फिर भी आजकल के विद्वज्जन तथा वकील, न्यायाधीश आदि ऐसा बहाना बनाते हैं जैसे श्लील-अश्लील का भेद करना बड़ा कठिन है। वास्तव में वह भेद करना अति सरल है किन्तु वे करना नहीं चाहते क्योंकि नाटक-सिनेमा से रोजी कमाने वाले जो अनेक लोग हैं उनका तीव्र विरोध होगा? लोगों की कामुक भावनाओं को उत्तेजित कर पैसा कमाने वालों का और उससे आनन्द उठाने वालों का कड़ा विरोध होगा। इस कठिनाई से निपटने के लिए वर्तमान विद्वज्जन ऐसा ढोंग करते हैं कि श्लील-अश्लील का भेद करना कठिन है।

अश्लीलता की एक और पहचान

अश्लीलता पहचानने का एक और लक्षण है। व्यक्तिगत इन्द्रियतुष्टि के व्यवहार का सार्वजनिक प्रदर्शन अश्लील होता है। जैसे किसी स्थान पर जब अनेक जन बैठे हों तो उनके सम्मुख केवल एकाधने लेटना या खाना-पीना अश्लील माना जाएगा। क्योंकि व्यक्तिगत इन्द्रियतुष्टि का व्यवहार एकान्त में ही करना अच्छा होता है। इसी प्रकार दूसरों के सम्मुख एक व्यक्ति ने भोजन करना असभ्य माना जाता है। पंक्ति में यदि सारे ही एक साथ भोजन करते हों तो वह अश्लील नहीं होगा।

इसी कारण संभोग या स्त्री-पुरुष प्रणय एकान्त में ही होना चाहिए, क्योंकि उसमें केवल दो व्यक्तियों की परस्पर इन्द्रियतुष्टि होती है। अतः यह व्यवहार औरों के सामने नहीं करना चाहिए। प्राचीन नाटकों में स्त्री-पुरुष प्रणय आज की तरह मंच पर कभी नहीं दर्शाया जाता था।

व्यक्तिगत इन्द्रियतुष्टि से जहाँ दुर्गन्ध भी आती हो वह व्यवहार औरों के सम्मुख करना अधिक तिरस्कृत माना जाता है, जैसे मलमूत्र विसर्जन। अतः वैसे व्यवहारों के लिए दूर, बन्द कक्ष बने होते हैं।

यूरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि पाश्चात्य समाजों में सार्वजनिक

स्थानों पर स्त्री-पुरुषों का कामुक चुम्बन वैध माना गया है। उसमें व्यक्तिगत इन्द्रियतुष्टि का मुख्य दोष होने के कारण सार्वजनिक स्थानों पर प्रौढ़ स्त्री-पुरुषों का चुम्बन या कामुक व्यवहार अवैध माना जाना चाहिए। इन प्रकार का अंकुश लगाने से ही बढ़ते व्यभिचार पर रोक लगाई जा सकेगी।

वैदिक दशावतार कथा तथा डार्विन का जीवोत्क्रान्तिवाद

जैसे-जैसे नए-नए पाश्चात्य शोध प्रकट होते जाते हैं वे सारे वैदिक शास्त्रज्ञों ने प्राचीनकाल में ही जान लिए थे ऐसा प्रतिपादन कई विद्वान् करते रहते हैं। हो सकता है कि यह सही हो। क्योंकि विश्व की चक्राकार गति में वही बातें, वही सिद्धान्त, वही परिस्थितियाँ बार-बार प्रकट होती रहती हैं। उसी के अनुसार कई विद्वान समझते हैं कि डार्विन नामक अंग्रेज ने कृमि से कीटक, उनसे सर्प, उनसे पक्षी, तत्पश्चात् बन्दर और उनमें परिवर्तन होकर मानव-निर्माण हुआ, यह जो उत्क्रान्तिवाद का शोध लगाया गया वह सनातन धर्म के दशावतार (मत्स्य, कत्स्य, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि आदि) परम्परा में अन्तर्भूत है।

लेकिन हम इससे सहमत नहीं हैं, क्योंकि दोनों संकल्पनाओं में बहुत अन्तर है। एक तो यह बात ध्यान में रखनी होगी कि डार्विन आदि पाश्चात्य विद्वानों के सिद्धान्त टिकाऊ नहीं होते। कुछ समय तक उनका बोलबाला अवश्य होता है कि इतना बड़ा शोध पहले कभी नहीं हुआ था, किन्तु पाश्चात्य सिद्धान्तों का खण्डन होते देर नहीं लगती। उन्हीं पाश्चात्य विद्वानों में नए-नए शोध तथा सिद्धान्त अन्यों के सिद्धान्तों का खण्डन करते रहते हैं। उन नए सिद्धान्तों का और कोई खण्डन करता है। इस प्रकार पाश्चात्य विद्वानों के सिद्धान्त शाश्वत नहीं रहते। इसी प्रणाली में लगभग सौ वर्ष तक डार्विन के जीवोत्क्रान्ति सिद्धान्त की अन्तर्राष्ट्रीय प्रशंसा होती रही। किन्तु कई अग्रसर पाश्चात्य विद्वान अब डार्विन सिद्धान्त को दोषपूर्ण समझते हैं। उनके कई आक्षेप हैं। जैसे कृमि से कीटक बनते और मर्कट से मानव बनते तो कृमि तथा कपि नष्ट हो जाने चाहिए थे। इसी कारण एक जीवाणु में परिवर्तन होकर उसी जीवाणु से दूसरा प्राणी तैयार होना

यह डार्विन की संकल्पना अब अधिकाधिक मात्रा में अशास्त्रीय मानी जा
रही है।

वैदिक दशावतार प्रणाली डार्विनीय सिद्धान्त से पूर्णतया भिन्न है।
मत्स्य में ही परिवर्तन होकर मानव बना या नरसिंह बदलते-बदलते वामन
बना ऐसा वैदिक प्रणाली में नहीं माना जाता। वैदिक दशावतार प्रणाली
का उत्क्रान्ति-सदृश्य कोई अर्थ लगाना ही हो तो यह कहा जा सकता है कि
वैदिक प्रणाली के अनुसार प्रारम्भिक दौर में जलचर प्राणी निर्माण किए
गए। तत्पश्चात् कछुए की तरह जल तथा भूमि दोनों पर विहार करने वाले
प्राणी-निर्माण किए गए आदि। इसमें एक ही जीवयन्त्रणा का दूसरे में परि-
वर्तन नहीं कहा गया है। अपितु एक प्रकार के प्राणियों के पश्चात् अन्य
श्रेणी के प्राणी बनाए गए ऐसा मानना योग्य होगा। क्योंकि विश्व में सभी
प्रकार के प्राणी एक साथ जीते हुए दिखाई देते हैं।

इस्लाम के कारण मानव का अधःपतन

भारतीय सभ्यता में इस्लामी योगदान के गांधी-नेहरू शासन में बड़े
ढोल पीटे गए। वस्तुतः इस्लाम के प्रवेश से भारतीयों का बड़ा अधःपतन
हुआ। आज हिन्दू सामान्यतया लोभी, लुच्चा, अविश्वसनीय, निजी शब्द
का पालन न करने वाला, शिस्त का पालन न करने वाला, स्वार्थी, डरपोक
इत्यादि कहा जा सकता है। यह सारे दुर्गुण भारतीय लोगों में इस्लाम के
सम्पर्क से निर्माण होकर बढ़ते गए। इस्लामी क्रूरता, दुष्टता, अत्याचार,
व्यभिचार, लूटपाट, आग लगाना, बलात्कार, छल तथा कपट से लोगों को
बड़ी मात्रा में मुसलमान बनाने से हिन्दू समाज छिन्न-भिन्न होकर प्रत्येक
व्यक्ति को उस झमेले में जैसे भी हो जीवन बसर करने की आपत्ति आ
पड़ी। इसी कारण सारे गुणों का लोप होकर इस्लामी दुर्व्यवहार में भारतीय
हिन्दू जनता दुर्व्यवहारी बनती चली गई। जैसे एक सड़ा हुआ आम दूसरे
अच्छे आमों को सड़ाता है। अच्छे आम बहुसंख्य होने पर भी सड़े आम को
सुधार नहीं पाते।

वैदिक जीवन में पग-पग पर परोपकार, दान, त्याग, सेवाधर्म, कर्त्तव्य-
पूर्ति, निष्काम कर्म, ऐहिक जीवन की क्षणभंगुरता इत्यादि का पुनरुच्चार
होता रहता है। एक प्रकार से 'मदन मोहन' यह वैदिक जीवन का आदर्श
है जबकि इस्लाम का आदर्श 'मोह-मद' है। दोनों में आकाश-पाताल का
अन्तर है।

इस सम्बन्ध में जे० डी० पैटरसन नाम के एक अंग्रेज का पत्र देखें। वह
ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा नियुक्त किया ढाका नगर का न्यायाधीश
था। कलकत्ता में पुलिस समिति के अध्यक्ष को पैटरसन ने ३० अगस्त,
१७९९ को एक पत्र लिखा। तब तक भारत में इस्लाम का प्रवेश हुए १०८७
वर्ष बीत चुके थे। सन् १९७२ से तो ढाका इस्लामी बांग्लादेश की राजधानी
है। पैटरसन ने लिखा कि "इस जिले के पुलिस के व्यवहार की समिति को
कल्पना देने के लिए यहाँ की जनता, विशेषकर निचले वर्ग के लोगों के
रीति-रिवाज, आचरण तथा नैतिक धारणाओं का विवरण देना आवश्यक
है। उनके अनाचार, गैर-व्यवहार आदि का वर्णन सुविचारी व्यक्तियों को
कष्टदायी ही होगा। अतः मैं संक्षेप में ही लिखूंगा। हिन्दू-प्रणाली में
विविध स्तर तथा व्यवसायों से समाज के ३६ विभाग या वर्ग बने थे।
प्रत्येक व्यक्ति को निजी पूर्वजों का ही काम-धन्धा आगे चलाना पड़ता था।
इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति का निश्चित काम-धन्धा होता था। उससे उसकी
आमदनी बनी रहती थी। वे वर्ग उर्फ जातियाँ ब्राह्मण उर्फ पण्डितों के
मार्गदर्शन से अथवा प्रत्येक जाति की पंचायत की देख-रेख में निजी
कर्त्तव्यकर्म यथाक्रम करती रहती थीं। प्रत्येक व्यक्ति के आचरण पर
पंचायत की निगरानी रहती थी। दोषी पाए जाने पर कभी-कभी उस
व्यक्ति का सारे समाज द्वारा पूर्ण बहिष्कार भी किया जाता था।

"यदि कोई ब्राह्मण अज्ञानी हो या कनिष्ठ जातियों को पढ़ाने का
कर्त्तव्य नहीं करे या उन्हें नीति-धर्मशास्त्रों के नियम नहीं समझाता हो तो
समाज ऐसे ब्राह्मण को जीविका के साधन उपलब्ध नहीं कराता था। ऐसे
समाज में जहाँ निचले-स्तर के लोगों को सर्वदा नीति की शिक्षा दी जाती
थी पुलिस का कारोबार सरल हो जाता था। "किन्तु मुसलमानों के तत्व-
हीन, शिस्तहीन, क्रूर, दुर्व्यवहार से परिस्थिति एकदम उल्टी-पुल्टी होकर
भ्रष्टाचार की बाढ़ में सारा देश डूब गया है"।

"हिन्दुओं को परास्त कर उन्हें काफिर कहते हुए मुसलमान उनका

लगातार छल करते रहे। हिन्दुओं पर किए प्रत्येक घाव तथा अपमान से अल्लाह तथा मुहम्मद सन्तुष्ट होते हैं ऐसी उनकी धारणा थी। धार्मिक कट्टरता के कारण परायों का नाश करने की इस्लामी परम्परा रही है। तदन्तर्गत वे हिन्दू विद्या तथा ग्रन्थों के कड़े विरोधक बने। ब्राह्मणों का लगातार छल किए जाने के कारण ब्राह्मणों के सामाजिक कर्त्तव्यकर्म खण्डित होते रहे, तानाशाही, मनमानी के कारण भ्रष्टाचार फैला। करते-करते इस देश में लोगों का सोचने और आचरण का ढंग ही बदल गया। पठानों के शासन में लोगों के आचरण का स्तर गिरता ही चला गया क्योंकि पारम्परिक नैतिक बन्धन शिथिल होते गए।

निचले स्तर के कई लोग मुसलमान बनने पर विवश होते रहे। धर्म-परिवर्तन में उन्हें कोई अच्छाई नहीं दीखती थी। छल से बचने के लिए वे मुसलमान बनते थे। किन्तु इससे उन्हें मानसिक सुख-शान्ति या समाधान नहीं प्राप्त होता था। शासकों के अत्याचारों से वे त्रस्त रहते थे। ब्राह्मणों को कोई संरक्षण नहीं रहा। शासन का भी उन्हें कोई आधार नहीं था। ऐसी अवस्था में सदियों के अत्याचारों से हताहत हुए ब्राह्मणों को निजी पारम्परिक धर्माचरण चालू रखने का कोई अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ। धीरे-धीरे उनकी विद्या नष्ट होती गई और समाज को शिक्षित करने की उनकी भूमिका नष्ट होकर वे स्वयं वही शिक्षा ग्रहण करने लगे जो अन्य लोग सीखते। जीवन के संघर्ष में उलझे ये ब्राह्मण जनता की दृष्टि में अब उतने आदरणीय नही रहे जितने उनके आदर्शों तथा आज्ञाओं के सार्वजनिक पालन के लिए आवश्यक था।"

इस प्रकार न्यायाधीश पैटरसन के अनुसार भारत में अनाधूनी मचना, सर्वप्रकार के नैतिक बन्धन नष्ट हो जाना और भ्रष्टाचार फैलना, इस्लामी आक्रमण का परिणाम था। उसने हिन्दू तथा इस्लामी आचरण तथा आदर्शों को साथ-साथ देखा, उनकी तुलना की और इस्लामी चाल-चलन उसे बड़ा तिरस्करणीय प्रतीत हुआ।

इससे पाठक पहचान सकते हैं कि वर्तमान समय में अफगानिस्थान से अल्जीरिया तथा मोरक्को तक की लम्बी कतार के जो देश मुसलमान बन चुके हैं उनका कितना नैतिक अधःपतन हुआ है।

पटरसन का इतिहास सम्बन्धी ऊपर उद्धृत निष्कर्ष Paper No. 2, Papers Relating to East India Company Affairs, House of Commons, London, dated June 3, 1813 में अंकित हैं। जहाँ इस्लाम है वहाँ तानाशाही, गुलामी, छल-कपट, व्यभिचार, भ्रष्टाचार आदि सारे दुर्गुण होते हैं। भारत में भी इन दुर्गुणों का प्रसार तथा प्रभाव बढ़ने का कारण मुसलमानों की बढ़ती संख्या ही है।

राजनीतिज्ञों, अर्थशास्त्रियों तथा समाजशास्त्रियों ने इससे सबक सीखना चाहिए। वैदिक समाज लोहार, चमार आदि व्यावसायिक विभागों में बंधा था। प्रत्येक वर्ग के ऊपर उसके अपने पंचों की निगरानी तथा नियन्त्रण होता था। सारे हिन्दू समाज को शास्त्री, पण्डित तथा ऋषि-मुनियों का मार्गदर्शन प्राप्त था। वे सभी शुद्ध चाल-चलन वाले सीधे-सादे त्यागी जन होते थे।

लेकिन आजकल तो सारे सामाजिक तथा नैतिक बन्धनों को लांघकर शीघ्रातिशीघ्र अधिक-से-अधिक सम्पत्ति कमाने के ध्येय को प्राथमिकता दी जा रही है। धनिक बनने की महत्वाकांक्षा ही बड़प्पन का लक्षण समझा जाता है। आजकल के नवयुवक डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, सेनाधिकारी, व्यापार, कारखानेदार आदि व्यवसाय इसलिए चुनते हैं कि वे अधिक-से-अधिक सम्पत्ति बटोरकर आराम, आलस्य तथा व्यसनग्रस्तता का जीवन बिता सकें। इस प्रकार सार्वत्रिक लोभ की होड़ से ही समाज में दुर्गुण, संघर्ष, मारामारी, स्त्रियों की असुरक्षा, व्यसनाधीनता आदि से मानवीय जीवन आक्रान्त तथा आतंकित हो उठता है। यदि ऐसा ही चलता रहा तो बढ़ते संघर्ष और कलह से मानव जीवन छिन्न-भिन्न होने में देर नहीं लगेगी।

वैदिक व्यवहार की संकल्पना

इस्लाम के एकदम विपरीत वैदिक जीवनक्रम में मानव को त्याग, दान-धर्म, दया, सहिष्णुता, सेवा, कर्त्तव्यपरायणता इत्यादि के सबक हर घड़ी दिए जाते हैं। जैसे प्रत्येक धार्मिक क्रियाकर्म में यज्ञ करते समय 'इदं न मम' (यह मेरा नहीं है) यह सारा ईश्वर का दिया हुआ है—ऐसा प्रत्येक

यजमान के मुख से सैकड़ों बार कहलाया जाता है। इससे यह शिक्षा मिलती है कि व्यक्ति ने लोभ या अहंकार नहीं करना चाहिए। जीवन में जो कुछ भी है वह सब परमात्मा का दिया हुआ है और वह अशाश्वत है।

प्रतिवर्ष दुर्गा, गणेश आदि की मिट्टी की बनी प्रतिमाएँ सजा-सजाकर मण्डप में रखी जाती हैं। उनके सम्मुख नाच-गाना, कथा-कीर्तन आदि किए जाते हैं। पाँच-दस दिनों में उन प्रतिमाओं को जल में विसर्जित किया जाता है। इनसे यह दर्शाया जाता है कि इस जीवनचक्र में समय-समय पर विविध जीव प्रकट होते रहते हैं, सज-धज कर वे क्रीड़ा करते हैं और नियत समय के पश्चात् वे मृत्यु द्वारा अदृश्य हो जाते हैं। इसी कारण मानव ने लोभ, मोह आदि षड्रिपु त्यागकर ईश्वरदत्त नियत कर्म करना चाहिए।

प्राप्त कर्म करने की वैदिक जीवन-प्रथा

सारे पशु-पक्षी ईश्वरदत्त निजी भूमिका निभाते हुए दीखते हैं। जैसे हाथी, सिंह, मच्छर, मधुमक्खी, मयूर, कुत्ता, मछली आदि निजी वर्ग छोड़कर किसी अन्य वर्ग के प्राणी की भूमिका अधिक सुरक्षित या अधिक आरामदायक या लाभदायक समझकर नहीं अपनाते, उसी प्रकार मानव ने भी सामान्यतया जिस कुल में जन्म लिया हो उसी के कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए। लोभवश किसी दूसरे कुल के क्रियाकर्म करना महापाप है। अन्य किसी कुल के क्रियाकर्म अपनाना ईश्वरीय आंकन में तभी समर्थनीय तथा पुण्यदायक माना जाएगा जब व्यक्ति अधिक त्याग तथा अधिक सेवाभाव के उद्दिष्ट से उन पराए क्रियाकर्मों को अपनाएगा। ऐसा व्यक्ति लाखों में एकाध होता है। इसीलिए सामान्य वैदिक जीवन में विशिष्ट देश-काल-कुल में प्राप्त ईश्वरदत्त भूमिका निभाना ही विहित समझा जाता है।

देवालयों की संकल्पना

'ईश्वर सूक्ष्मरूप तथा अदृश्य होने पर भी यह विश्व परमात्मा द्वारा ही निर्माण हुआ है और उसी की माया से सारे व्यवहार होते रहते हैं', इस मूल वैदिक धारणा को मन्दिर की रचना द्वारा व्यवहार में प्रकट किया गया है। जैसे मन्दिर में देवमूर्ति काले पाषाण की छोटी (हाथ-पैर वाली या बाण

अथवा शालिग्राम के नाम से केवल एक गोल पत्थर वाली) गर्भगृह में अँधेरे में प्रतिष्ठापित होती है। उस मूर्त्ति के समीप रखी ज्योति से ही परिसर दीख पड़ता है। वह दीप—सूर्य, चन्द्र, तारका इत्यादि ईश्वरीय ज्योतिर्मय सृष्टि का प्रतीक होता है। मूर्ति की तुलना में मन्दिर बहुत विशाल होता है। उसी प्रकार सूक्ष्म ईश्वरीय तत्त्व ने इस अपार विश्व का विशाल ढाँचा प्रकट किया है।

इस विशाल ईश्वर निर्मित विश्व में पशु-पक्षी, सर्प, मूषक, वानर, मानव, स्त्री-पुरुष, साधु-सन्त, राक्षस आदि विविध प्रकार के जीव विहरते हैं। अतः मन्दिरों की दीवारें बाहर की ओर नीचे से ऊपर तक ऐसे जीवों से सजी होती हैं। इससे यह दर्शाया जाता है कि यह दृश्य जीवसृष्टि, ईश्वरीय माया का आविष्कार है।

कई मन्दिरों में स्त्री-पुरुष युगलों का मैथुन भी मूर्त्तियों द्वारा दिग्दर्शित किया होता है। उसे कामुकता का प्रदर्शन समझकर उसकी खिल्ली उड़ाना प्रेक्षक की निजी हीन भावना का द्योतक होता है। उस मैथुन द्वारा ईश्वरीय सृष्टि की प्रजनन यन्त्रणा दिग्दर्शित है। ऐसे उदात्त, प्रौढ़, प्रगल्भ, शास्त्रीय दृष्टिकोण से उस शिल्प को समझना आवश्यक है। इससे काम के प्रति आदर, विस्मय तथा पवित्रता का भाव निर्माण होना चाहिए। मैथुन को पवित्र दैवी प्रजनन-प्रणाली के रूप में ही देखना चाहिए। उसे व्यक्तिगत इन्द्रिय तुष्टि का साधन समझना अयोग्य है। इसी उद्देश्य से मन्दिरों में मैथुन शिल्प प्रदर्शित होता है।

जलधारा से चलने वाली चक्की

महाराष्ट्र राज्य के मराठवाड़ा प्रदेश में कटकी उर्फ खड़की नाम की एक प्राचीन राजधानी है। औरंगजेब के समय से उसे औरंगाबाद यह इस्लामी नाम दे दिया गया है। उस नगर के लगभग सारे ही प्राचीन मन्दिर तथा मठ आजकल मस्जिदें और कब्रें कहलाते हैं। उनके विशाल परिसर हैं। उनसे सम्बन्धित इमाम, मुजावर, फकीर आदि मुसलमान उन्हीं मन्दिरों के पुजारी, माली, तेली, शहनाई वाले आदि कर्मचारी थे। मन्दिरों पर जब इस्लामी आक्रमण हुआ तब वे पकड़े गए और उन्हें छल-बल से

मुसलमान बनाया गया।

वहाँ के एक मन्दिर में एक स्थानीय नहर का पानी एक स्थानीय इमारत के ऊपर चढ़ाकर उसकी छत पर से प्रपात के रूप में गिरने की व्यवस्था थी। गिरने वाली उस धारा के जोर से नीचे रखे एक लोहयन्त्र को चक्राकार गति मिला करती। उससे एक चक्की चलती रहती जिससे गेहूँ या अन्य धान्य पिसकर आटा तैयार होता रहता। इस्लामी कब्जे में आने के समय से नहर का जल ऊपर चढ़ाकर प्रपात के रूप में चक्रयन्त्र पर गिरते रहने की योजना इस्लामी अज्ञान के कारण बन्द हो गई। तब से चक्की चलने और धान्य पिसवाने की प्रक्रिया बन्द हो गई है। यद्यपि चक्की का यन्त्र अभी भी कार्यक्षम है, किन्तु उसे शक्ति से घुमाने वाला प्रपात ही बन्द हो गया।

इससे दो निष्कर्ष निकलते हैं। एक तो यह कि इस्लामी आक्रमण से भारत में प्रगति का योगदान होना तो दूर रहा लूटमार करने, अत्याचार आदि से भारत दरिद्र एवं पिछड़ा देश बनकर रह गया। दूसरा निष्कर्ष यह है कि पाश्चात्य लोगों में जैसी यान्त्रिक प्रगति सन १८३५ से आरम्भ हुई वैसी यान्त्रिक प्रगति प्राचीन भारत में भी थी।

औरंगाबाद की तथाकथित दरगाहें तथा मस्जिद प्रतिदिन सैकड़ों प्रवासी देखते हैं। उनमें से अधिकांश तो बाहर ही बाहर देखकर चले जाते हैं। वे यदि अन्दर तक जाकर देखें तो उन्हें वहाँ उजड़े हुए मन्दिरों के कई चिह्न दिखेंगे। कई स्थानों पर मन्दिरों का प्राचीन केसरी रंग कायम है। गुम्बजों के तले जहाँ देवमूर्तियाँ थीं वे अब एक-एक इस्लामी कब्र से छुपा दी गई हैं। उन इस्लामी कब्रों को फलाने की दरगाह आदि मनगढ़न्त नाम दिए गए हैं। खोज करने पर वे नाम तथा वहाँ की कब्रें झूठी तथा नकली सिद्ध होतीं। इन कब्रों के ऊपर वाले गुम्बजों के छत जानबूझकर लटकते कपड़ों से ढक दिए गए हैं ताकि गुम्बजों की भीतरी छत पर खुदे कमल आदि हिन्दू चिह्नों को प्रेक्षक देख न सकें। गुम्बजों का भीतरी भाग कपड़ों से ढकने के लिए लम्बे गोल पर्दे लटकाने की प्रथा औरंगाबाद में सर्वत्र दीखती है।

इतिहासज्ञ विद्वानों की मजदूर प्रणाली

अध्यापक, प्राध्यापक, लेखक, अन्वेषक, पत्रकार आदि जिस किसी विद्वान को इतिहास सम्बन्धी लेख या ग्रन्थ लिखने पड़ते हैं वे सारे उसे एक बेगार ही समझते हैं। एक मजदूर जैसे गड्ढे खोदना या मिट्टी ढोना आदि कार्य आत्मीयता से नहीं अपितु केवल औपचारिक भाव से करता रहता है, उसी प्रकार व्यावसायिक लेखक भी घिसा-पिटा इतिहास ज्यों-का-त्यों पढ़ाते या लिखते हुए जरा भी यह नहीं सोचता कि वह इतिहास सही है या गलत। इतना ही नहीं बल्कि झूठा इतिहास पढ़ाते रहने का ही दुराग्रह वह करता रहता है। यद्यपि सन् १९६१-६३ से मैंने लेख, ग्रन्थ तथा भाषण आदि द्वारा ऐतिहासिक नगर तथा इमारतें मुसलमानों की नहीं हैं, यह सिद्ध किया है तथापि व्यावसायिक इतिहासज्ञ, पत्रकार, लेखक आदि सभी ऐसा ढोंग कर रहे हैं जैसे उन्होंने कभी मेरे शोध सुने ही नहीं। वे जानबूझकर परम्परागत झूठा इतिहास सिखलाना ही निजी कर्त्तव्य समझते हैं। झूठा इतिहास पढ़ाने से देश की आगामी पीढ़ियों का नुकसान भले ही हो, इतिहासज्ञों को उसकी पर्वाह नहीं।

लांछन को गौरव मानने की इस्लामी प्रवृत्ति

विश्व में जितने भी लोग अपने आपको मुसलमान कहते हैं वे यह नहीं जानते कि उनके दादे-परदादे, माँ-बहनें आदि हिन्दू थे, वैदिक धर्मी थे। उन्हें पकड़-पकड़ कर चीखते-चिल्लाते, आक्रोश करते घसीट कर छल-बल-कपट आदि से मुसलमान बनाया गया। प्रत्येक मुसलमान सत्य इतिहासज्ञ तभी कहलाएगा जब वह सर्वप्रथम निजी कुल के इतिहास को छानकर पता लगाएगा कि कितनी पीढ़ी पूर्व उसका कुल हिन्दू था? उसका कौन-सा पूर्वज प्रथम मुसलमान बना? वह किस दबाव से मुसलमान बना। मुसलमानों को झूठे इतिहास का पुरस्कार करने की आदत पड़ी हुई है। इसी कारण लगभग कोई भी मुसलमान प्रकट रूप से यह नहीं कहेगा कि उसके पूर्वज हिन्दू थे। यदि एक-दो मान भी जाएँ कि उनके पूर्वज हिन्दू थे तो वे यह नहीं मानेंगे कि वे जुल्म तथा जबरदस्ती से मुसलमान बनाए गए। वे बड़े आग्रह से कहते रहेंगे कि किसी मुसलमान सूफी फकीर के प्रभावी

धर्मोपदेश से वे स्वेच्छा से मुसलमान बने। जबरन मुसलमान बनना पड़ा यह वे नहीं मानेंगे। इस प्रकार मुसलमानों को पढ़ाए जाने वाले इतिहास में एक के ऊपर एक ऐसे झूठ के कई स्तर बने होते हैं। जबरन मुसलमान बनाए जाने के लांछन को ही गौरव समझने की उल्टी मनोवृत्ति मुसलमानों में स्पष्ट दिखाई देती है।

क्या भारत में मुसलमानों का राज्य था ?

लगभग ६०० वर्ष भारत में मुसलमानों का राज्य रहा ऐसा भारत-पाकिस्तान, बांग्लादेश आदि के मुसलमान बड़े गर्व से कहते हैं। यदि उनका यह दावा सही होता तो जो भारत निवासी यूरोपियन गोरे लोगों के दबाव से ईसाई बन गए हैं वे भी यह दावा कर सकते हैं कि भारत पर लगभग २०० वर्ष ईसाइयों का शासन रहा। किन्तु भारतीय ईसाई ऐसा दावा कभी नहीं करते। क्योंकि भारत के ईसाई लोग भली प्रकार जानते हैं कि वे भले ही यूरोपवासी गोरे जनों के पूजा-पाठ की नकल मारते हों भारतीय ईसाइयों को यूरोप के गोरे लोग गुलाम या नौकरों का ही दर्जा देते रहे। इसी प्रकार अरब, ईरान, तुर्कस्थान आदि के इस्लामी आक्रामक भारत के हिन्दुओं को मुसलमान बनाने पर भी तुच्छ, तिरस्कृत, हल्के दर्जे के बन्दे, गुलाम ही मानते रहे। अतः भारतीय मुसलमानों का यह दावा कि मुसलमानों का भारत में राज्य रहा निराधार है। अरब, ईरान, तुर्क, पठान आदि का शासन भारत में अवश्य रहा किन्तु उस शासन में भारतीय मुसलमानों को हीन समझा जाता था।

क्या जन्मतः सारे मानव बराबर होते हैं ?

कई वचन कहने-सुनने में बड़े अर्थगर्भित एवं स्वयंसिद्ध लगते हैं किन्तु अधिक गहराई से सोचने के पश्चात वे खोखले सिद्ध होते हैं। ऐसा ही एक वचन थामस जैफर्सन का है। उसे अमेरिकी स्वतन्त्रता के घोषणा का मसविदा तैयार करने का कार्य सौंपा गया था। उसके उस मसविदे में एक वचन था कि "सारे मानव जन्म से समान दर्जे के होते हैं, यह स्वयंसिद्ध सत्य है।" अमेरिकी स्वतन्त्रता संग्राम के अन्त में इंग्लैण्ड के पंजे से छूटकर अमेरिका जब स्वतन्त्र राष्ट्र बन गया तब किसी बेचारे व्यक्ति ने जैफर्सन से पूछा

कि "भाई तुमने यह कैसे लिख मारा कि जन्म से सारे व्यक्ति समान होते हैं ? वास्तव में जन्म से ही मानवों में अनेक प्रकार की असमानता गढ़ी होती है। पिछड़े या प्रगत देश में जन्म होना, गरीब या श्रीमन्त माता-पिता होना, शारीरिक सौन्दर्य, मानसिक रोग, अपंगता, दुर्बलता, स्त्री-पुरुष आदि विविध प्रकार की असमानता मानव में जन्मजात ही होती है।" यह आक्षेप सुनकर जैफर्सन को भी मानना पड़ा कि कुछ वचन कहने-सुनने में भले ही जचते हों, गम्भीर रूप से विचार करने पर वे विफल, अर्थहीन, तथा निराधार सिद्ध होते हैं। अतः कोई भी कथन बिना विश्लेषण मान लेना बुद्धिमानी का लक्षण नहीं है।

समाजवादी लोगों के, जनता को गुमराह कर भड़काने वाले, ऐसे ही नारे होते हैं। जैसे उनकी घोषणा है 'Workers of the World Unite' यानि 'विश्व के कर्मचारियों का एक संघठन हो।' वास्तव में प्रत्येक मानव कर्मचारी है। रोटी पकाने वाली माता और बर्तन मांजने वाली बाई दोनों ही कर्मचारी होते हैं। विश्व में कौन ऐसा व्यक्ति है जो कर्मचारी नहीं है ? जनता को भड़काकर, हड़ताल आदि से काम रुकवाकर, जुल्म-जबरदस्ती से चन्द धनवान व्यक्तियों को दहशत दिलाने वाला यह मार्ग सही या अच्छा नहीं है। इससे समाज टूट-फूट जाता है। संघर्ष से समाज में सुरक्षा तथा सन्तुलन बिगड़ता है। चन्द पूंजीपतियों का धनकोष कम कराने के लिए संसद या सरकार ने उपाय करना चाहिए। भड़काने वाले नारे लगा कर भीड़-भड़क्का मचाने वाले गरीब, अनपढ़ मजदूरों को उकसाने की आधुनिक समाजवादी गतिविधि कठोर उपायों से बन्द करानी चाहिए। थॉमस जैफर्सन, कार्ल मार्क्स आदि चन्द एक व्यक्ति यद्यपि अपने विशिष्ट प्रहयोगों द्वारा निजी जीवनकाल में तथा मृत्यु के उपरान्त भी कुछ समय तक बड़े प्रसिद्ध हुए, फिर भी उनके वक्तव्यों या सिद्धान्तों की बारीकी से जाँच करने पर वे टिकाऊ या समाजहितवर्द्धक साबित नहीं होते। पूंजीवाद में स्वतन्त्रता होती है तथा अच्छा या भरपूर कार्य करने से कमाई भरपूर होगी, ऐसा प्रलोभन होता है। इसके विरुद्ध कम्युनिस्ट विचारधारा के अनुसार काम रुकवाकर, मारा-मारी से और दहशत द्वारा धनिकों का धन लूटा जाता है। कम्युनिस्ट शासन में प्रत्येक व्यक्ति पर गुप्त रूप से कड़ी

निगरानी रखी जाती है। व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर बन्धन पड़ने से जीवन भयग्रस्त हो जाता है। एक गांव से दूसरे गांव को जाना हो तो पुलिस आदि अनेक अधिकारियों की लिखित अनुमति लिए बिना निकल नहीं सकते। इस प्रकार पग-पग पर बन्धन प्रतीत होता है।

पूंजीवाद-समाजवाद आदि परस्पर विरोधी विचारधाराओं के भंवर से बचने के लिए प्रत्येक मानव ने निजी परिवार द्वारा परम्परागत काम-धन्धा करने की वैदिक प्रथा सबसे उत्तम है। किसी ने दूसरे के पारम्परिक व्यवसाय का लोभ नहीं करना चाहिए। यही नियम गीता में कहा गया है—

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।

देवता पक्ष

मानवीय जीवन में गुटबाजी के आदी जन आध्यात्मिक क्षेत्र में भी गुटबाजी की कटुता नहीं छोड़ते जैसे वैष्णव और शैव। वास्तव में ईश्वर एक ही है चाहे उसे शिव कहो या विष्णु। तथापि इस्कानपंथी (ISKCON) कृष्ण अनुयायी और परमात्मा को शिव कहने वाला प्रजापति ब्रह्मकुमारी पन्थ, इनकी आपस में बनती नहीं। ऐसे अध्यात्मवाद का क्या लाभ जो भक्तिभाव को भी गुटबाजी का आधार बना लेता हो। ब्रह्मकुमारी संघटना की भावना है कि शिव ने भगवद्गीता का उपदेश अर्जुन को दिया। इस्कान वाले इस पर चिढ़कर कहते हैं कि जब महाभारत में स्पष्ट रूप से कृष्ण ने अर्जुन को भगवद्गीता का उपदेश करने का उल्लेख है तो शिवजी को इसका श्रेय क्यों दिया जाए? आक्षेप तो सही है किन्तु इसका समाधान कई प्रकार से किया जा सकता है। श्रीकृष्ण ने स्वयं गीता में कहा है कि यही उपदेश इससे पूर्व भी दिया जा चुका है। इस दृष्टि से शिव भी कभी इस उपदेश के उद्गाता रहे हों। दूसरी ओर यह कहा जा सकता है कि 'शिव' यानि मंगल या पवित्र, कृष्ण यानि आकर्षित करने वाला। दोनों ही ईश्वर के विशिष्ट गुण हैं। अतः शिव कहो या कृष्ण, दोनों एक ही परमात्मा के नाम हैं। किन्तु इस्कान तथा ब्रह्मकुमारी संघटनाओं को यह कौन समझाए कि वे दोनों समान वैदिकपन्थ के अनुयायी होने के कारण यदि वे संयुक्त रूप से भागवत धर्मानुसार कोई जन-कल्याण अथवा जन-

सेवा योजना चलाएं तो कितना अच्छा होगा। इससे लोगों को सहकारिता का एक आदर्श तो मिलेगा ही साथ ही ईसाई लोगों के उपकार संघटनाओं के चंगुल में फंसकर ईसाई बनाए जाने का धोखा भी टलेगा। वैदिक विचारधारा में यही तो विशेषता है कि उसमें ईश्वर का नाम तथा भक्ति प्रथा अथवा नास्तिकता के सम्बन्ध में प्रत्येक व्यक्ति को पूरी स्वतन्त्रता है। परोपकार, सच्चा व्यवहार, सेवाभाव तथा निजी कर्त्तव्य निभाना ही भागवत, आर्य-सनातन-वैदिक, हिन्दू धर्म कहलाता है। उसमें ईश्वर के शैव या वैष्णव ऐसे दो ईश्वर विरोधी पक्ष मानना सर्वथा अयोग्य है। इसका एक प्रत्यक्ष प्रमाण देखें। वाराणसी के मुख्य देवता शिव को विश्वनाथ कहा जाता है। जबकि ईश्वर पुरी के मुख्य देवता श्रीकृष्ण को जगन्नाथ कहा जाता है। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि परमात्मा एक ही है यद्यपि मानव ने उसके विविध रूप संकल्पित किए हों।

श्रेष्ठत्व का निष्कर्ष

समाजवाद उर्फ Communist (यानि 'समूहनिष्ठ') विचारधारा के प्रणेता कार्लमार्क्स की इंग्लैण्ड में जब मृत्यु हुई तो गिने-चुने पांच-सात व्यक्ति ही उसकी अन्त्येष्टि के लिए उपस्थित थे। उनमें एंजल्स नाम का मार्क्स का एक मित्र भी था। उपस्थित व्यक्तियों को संबोधित करते हुए एंजल्स ने कहा कि "यद्यपि इस अन्त्येष्टि में गिने-चुने व्यक्ति ही सम्मिलित हैं। मृतक कार्लमार्क्स एक श्रेष्ठ व्यक्ति था। जिस व्यक्ति के वक्तव्य से कुछ व्यक्तियों में प्रगाढ़ भक्तिभाव या तीव्र शत्रुता निर्माण होती है वह श्रेष्ठ होता है।" कार्लमार्क्स ने धनिक तथा गरीब ऐसे दो वर्गों के निरन्तर संघर्ष का जो सिद्धान्त प्रतिपादित किया उससे कुछ लोग उसे एक नए युग का प्रणेता मानने लगे तो अन्य उसे समाज-शत्रु मानने लगे।

स्पेन से मुसलमानों का आमूल उत्पाटन

यूरोप के स्पेन देश को इस्लामी आक्रामकों ने पांच सौ वर्ष की लम्बी अवधि तक उसी प्रकार दबाए रखा था जैसे भारत को। तथापि स्पेन के लोगों ने स्पेन देश से इस्लाम को निर्मूल करने में जो आदर्श स्थापित किया वह भारत के हिन्दू लोग नहीं कर पाए। हिन्दू लोगों ने दया, समताभाव

आदि आत्मघात की भावनाओं के चंगुल में फंसकर भारत में तथा भारत की सीमाओं पर कश्मीर, पाकिस्तान, बांग्लादेश आदि प्रदेशों में इस्लामी शत्रुता को पनपने देने में ही आत्मगौरव समझा। हिन्दू नेताओं की और ऐसे नेताओं पर भरोसा करने वाली हिन्दू जनता की मूर्खता की चरमसीमा और क्या हो सकती है।

इतिहास विकृति

उधर पूरा यूरोप खण्ड ईसाई बना दिया गया तथा अफगानिस्थान से अल्जीरिया तथा मोरक्को तक के सारे देश छल-कपट तथा सैनिकी आक्रमण द्वारा मुसलमान बना दिए गए। यूरोप का ईसापूर्व इतिहास नष्ट किया गया। मुसलमान बनाए गए देशों का मुहम्मदपूर्व इतिहास जला दिया गया। अतः ईसाई तथा इस्लामी लोग इतिहास के शत्रु कहलाने चाहिएं। इसी कारण ईसाइयों तथा मुसलमानों द्वारा लिखे इतिहास पर तब तक यकायक विश्वास नहीं करना चाहिए जब तक उनके कथन की अन्य प्रमाणों से पुष्टि नहीं हो जाती।

ईसाई तथा इस्लामी इतिहास केवल १३००-१५०० वर्ष की अवधि के है जबकि हिन्दू इतिहास कई युगों का ब्योरा देता है। अतः मुसलमान तथा ईसाई बने लोगों को यह जान लेना आवश्यक है कि उन्हें ईसापूर्व तथा मुहम्मदपूर्व इतिहास से जानबूझकर वंचित किया जा रहा है। धर्मपरिवर्तन से उनके ज्ञान की सीमा की भी छटाई-कटाई करा दी गई। जिस प्रणाली से मानव के ज्ञान का गला घोंट दिया जाता है; किसी संकुचित दायरे में बन्द कर उसकी वैचारिक स्वतंत्रता को सीमित किया जाता है, उसे घृणित समझा जाना चाहिए। इस्लाम में तो स्त्रियों को सारा जीवन पर्दे के शारीरिकपाश तथा अंधेरे में रखा जाता है। ईसाई तथा इस्लामी परम्परा में मानव को गुलाम बनाकर नगरों के बाजारों में बेचने की या नीलाम करने की हीन प्रथा रही है। ऐसी तिरस्करणीय बातें ईसाई तथा इस्लामी विद्यार्थियों से बराबर छुपाई जाती है। अति क्रूर अत्याचारों से इस्लाम तथा ईसाई पन्थों का प्रसार किया गया यह बात भी इस्लामी तथा ईसाई बने देशों के इतिहास में पढ़ाई नहीं जाती। ईसा नाम का कोई व्यक्ति था

ही नहीं; वह एक काल्पनिक पात्र है यह बात ईसाइयों से कही नहीं जाती। इसी प्रकार मुसलमान आक्रामकों ने एक भी दर्शनीय ऐतिहासिक इमारत या नगर का निर्माण नहीं किया तथापि उन्हें सैंकड़ों प्रेक्षणीय कब्रें, मस्जिदें, किले, बाड़े, महल आदि बनाने का श्रेय दिया जाता है। ईसाइयों ने तथा मुसलमानों ने इतिहास को किस प्रकार खण्डित तथा विकृत कर रखा है इसके और भी कई उदाहरण पाठक स्वयं सोच सकते हैं।

इतिहासज्ञों के प्रकार

किसी व्यापार, व्यवसाय या कारखाने के व्यवस्थापक कई प्रकार के होते हैं। कुछ घर बैठे दूरभाष द्वारा निजी हस्तकों को सूचनाएँ देते रहते हैं। कुछ कार्यालयों में बैठकर कारोबार चलाते हैं। कुछ प्रत्यक्ष कार्यशाला के कर्मचारियों पर देख-रेख करते रहते हैं। इसी प्रकार इतिहासज्ञों के भी कई स्तर होते हैं। कोई इतिहास की पदवी पाकर पाठ्य-पुस्तकों में लिखा इतिहास छात्रों को सुनाते हैं। लिखा हुआ ब्योरा सही है या निराधार इसका चयन करना वे निजी कर्त्तव्य नहीं मानते। कोई सरकारी हस्तक बनकर सरकारी दृष्टिकोण के अनुकूल ऐतिहासिक घटनाओं को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करते हैं। कुछ इतिहासज्ञ पारम्परिक ऐतिहासिक ब्योरे, शिलालेख आदि में ही इतिकर्त्तव्यता मानते हैं। ऊपर निर्देशित इतिहासज्ञों की समाज में कभी कमी नहीं होती। जितने चाहो मिल जाते हैं। किन्तु ऐसे इतिहासकार क्वचित ही निर्माण होते हैं जो पारम्परिक निष्कर्षों को निजी अनोखी अन्तर्दृष्टि द्वारा निराधार सिद्ध करते हैं। जनमान्यताओं को उल्टा देने वाले सिद्धान्त ढूंढ़ लेने पर भी वह प्रकट रूप से कहने की हिम्मत रखने वाला इतिहासज्ञ कई युगों में एकाध ही होता है। सत्य का शोध करना और सत्य हाथ लगने पर उसे निर्भीकता से घोषित करना साधारण साहस नहीं है। सत्य को उच्चस्वर से प्रकट करने में बड़े-बड़े डर जाते हैं, झेंपते हैं, लज्जा या झिझक का अनुभव करते हैं। ताजमहल सम्बन्धी मेरा शोध इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है। ताजमहल शाहजहाँ से सैंकड़ों वर्ष पूर्व बनी तेजोमहालय नाम की हिन्दू इमारत है, इस तथ्य के एक सौ से अधिक सर्वांगीण प्रमाण प्रस्तुत किए हुए मुझे २५ वर्ष हो गए, तथापि सारे ही

इतिहासज्ञ, पत्रकार, संसद सदस्य, अध्यापक, प्राध्यापक आदि पारम्परिक प्रणाली के लोग ताजमहल की निर्मूल शाहजहानी कथा दोहराते रहना ही अपना कर्त्तव्य मानते हैं। उस पारम्परिक झूठ के पुरस्कार में उन्हें सार्वत्रिक सुरक्षा का अनुभव होता है। सामान्य इतिहासज्ञ इतिहास क्षेत्र के केवल मजदूर ही समझे जाने चाहिएँ। मजदूर जैसे टोकरी भर-भरकर मलबा ढोते रहते हैं वैसे ही सामान्य इतिहासज्ञ भी ऐतिहासिक घटनाओं के ब्यौरे का मलबा निजी ग्रन्थों द्वारा या भाषणों द्वारा इधर-उधर पटकते रहते हैं।

मनु की श्रेष्ठता

आजकल के अधःपतित नैतिक स्तर में, किसी को द्रव्य देकर उसके मुँह से या लेखनी से जो चाहे कहलवा लो। व्यापारी माल के प्रचार में सुन्दर युवतियों से या लोकप्रिय खिलाड़ियों से यह कहलाया जाता है कि "मैं सर्वदा...साबुन या वस्त्र या वस्तु ही खरीदता/खरीदती हूँ।" ऐसा दूषित, खुशामदी, लोभी, लालची, भ्रष्टाचारी वातावरण देखकर ही मनु, वशिष्ठ, विश्वामित्र, अगस्त्य आदि के आचरण की श्रेष्ठता जान पड़ती है। ऐसे ऋषियों के ग्रन्थ आर्ष साहित्य कहलाते हैं। आर्ष साहित्य वह होता है जो निर्भयता से सत्य तथा शाश्वत तथ्यों का ही प्रतिपादन करता है। आर्ष साहित्य का लेखक कभी किसी लोभ, रौब, लालच, भय, झिझक या दबाव में नहीं आता। वर्तमान विद्यालयों में पढ़ाए जाने वाले इतिहास ग्रन्थ सरकार के भय से, पैसे के लालच से, खुशामदी लोगों के लिखे होने के कारण अनार्ष साहित्य में उनका अन्तर्भाव होता है।

सामान्य व्यवस्थापक तो एकाध दूसरे व्यापार या कार्यालय की व्यवस्था देखता हुआ निजी स्वार्थ या लाभ का ही विचार करता है, चाहे उसमें झूठ भी बोलना पड़े या दूसरों पर अन्याय होता हो, किन्तु मनुस्मृति जैसे ग्रन्थ तो सभी मानवों के शाश्वत हित का ध्यान रखकर और न्याय-अन्याय, नीति-अनीति आदि का विचार करके ही लिखे जाते हैं।

वैदिक सभ्यता में मन्दिरों की भूमिका

वर्तमान सामाजिक जीवन पर पाश्चात्य प्रणाली की छाप पड़ी हुई है। तदनुसार प्रौढ़ सन्तान माता-पिता से दूर दूसरे घर में रहती है। वयोवृद्ध स्त्री-पुरुषों को अन्य कुटुम्बियों से पृथक एकाकी, असहाय जीवन बिताना पड़ता है। अड़ोसी-पड़ोसी अपने-अपने घरों को सर्वदा बन्द रखते हुए एक-दूसरे से कभी बोलते भी नहीं। दूसरे नगरों में जाने पर बड़े-बड़े होटलों में रहना पड़ता है जहाँ प्रतिदिन ५० रु० से ५००० रु० तक का अनाप-शनाप किराया देकर निवास करना पड़ता है। ऐसे खर्चीले निवास-स्थानों को पंचतारा होटल (Five Star Hotels) कहते हैं। उनमें ठहरने वाले प्रवासी अतिथियों को मदिरा तथा मदिराक्षी के उपभोग की सुविधा भी उपलब्ध कराई जाती है। यौवन, सम्पत्ति, अधिकार तथा अविवेक जहाँ हो वहाँ अनीति भी संलग्न हो जाती है।

इस दुर्व्यवहार से बचने के लिए प्राचीन वैदिक समाज-व्यवस्था में दानी लोग गाँव-गाँव में विशाल मन्दिर तथा धर्मशालाएँ बनवाते थे। उनमें यात्रियों के निःशुल्क निवास तथा भोजन की व्यवस्था होती थी। वहाँ कथा-कीर्तन-प्रवचन में उन्हें सन्मार्ग का बोध होने के साथ-साथ अन्य प्रवासियों से परिचय का अवसर भी मिलता तथा समय भी बड़े पवित्र वातावरण में कटता। युवक-युवतियों के विवाह की बात भी चलती। वेद-पाठ के गुरुकुल तथा सामान्य विद्या पढ़ाने वाले विद्यालय भी उन मन्दिरों में होते थे। मन्दिर तथा विद्यालयों से सम्बन्धित पण्डितजन गर्भाधान से लेकर अन्त्य-विधि तक समाज के सारे क्रियाकर्म करने में वहाँ के निवासियों की सेवा करते थे। गाँव के निवासियों के उत्सव, विवाह-उपनयनादि संस्कार, मेले आदि सभी मन्दिर के पवित्र परिसर में होते थे। इस प्रकार प्रत्येक मन्दिर एक सामाजिक केन्द्र होता था, जहाँ समाज को सारी साधन-सुविधा निःशुल्क उपलब्ध होती थी। रोगियों का वैद्यकीय उपचार भी होता था। मन्दिर के समीप गाँव का दैनिक या साप्ताहिक बाजार, मेला आदि भी लगता था। इस प्रकार वैदिक सभ्यता में मन्दिरों की सर्वांगीण सामाजिक उपयुक्तता की भूमिका रहती थी। वर्तमान समय में बढ़ती महँगाई तथा खर्चीले होटलों में निवास की व्यवस्था—एक बड़ा सामाजिक संकट है। इसमें बहुसंख्य निर्धन जनों की दुर्दशा तथा दयनीय अवस्था होती है।

आंग्लभूमि के कुछ दूरदर्शी विद्वज्जन

ऊपर वर्णित सामाजिक समस्याओं पर समय-समय पर गम्भीर विचार करने वाले दूरदर्शी सेवाभावी सज्जन भी कभी-कभी दिखाई देते हैं। लगभग तीस वर्ष पूर्व लन्दन नगर में कुछ विचारी विद्वानों ने एक मण्डल बनाकर काम-धन्धा, नौकरी आदि में दिन बिताने वाले प्रौढ़ व्यक्तियों को रात को अर्थशास्त्र और तत्सम्बन्धी अन्य विषय पढ़ाने वाला एक विद्यालय स्थापन किया। करते-करते विद्यालय चलाने वाले विद्वज्जनों में कुछ मूलगामी प्रश्नों की चर्चा होने लगी। प्रश्न यह थे कि व्यक्ति अर्थार्जन क्यों करता है? अर्थार्जन की सीमा क्या है? धन का व्यय किस प्रकार किया जाना चाहिए आदि।

इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढने के लिए उन्हें नीतिशास्त्र पढ़ने की आवश्यकता प्रतीत हुई। यूरोपीय सभ्यता का स्रोत यूनान देश माना जाता है। अतः उस आंग्ल शिक्षक मण्डल ने यूनानी ग्रन्थों का अध्ययन आरम्भ किया। किन्तु ग्रीस के साहित्य में उन्हें नीति या दर्शनशास्त्र का कोई गम्भीर विचार या समाधान नहीं मिला। अतः उन्हें वेदान्त उर्फ वैदिक दर्शनशास्त्रों का अध्ययन करने की सूझी। उस अध्ययन से उन आंग्ल विद्वानों का पूरा समाधान हो गया। सारा वैदिक दर्शनशास्त्र संस्कृत भाषा में होने के कारण उन्हें संस्कृत भाषा सीखना आवश्यक प्रतीत हुआ। संस्कृत भाषा उन्हें बड़ी सुगठित दिखाई दी। तब से बालक अवस्था से ही संस्कृत का अध्ययन बड़ा उपयुक्त, प्रभावी तथा आवश्यक है, यह जानकर उस विद्यामण्डल ने बाल-कक्षाओं से लेकर १२वीं तक एक पूरा दिन का विद्यालय स्थापन करने का निश्चय किया। इस प्रकार संस्कृत भाषा तथा वैदिक सभ्यता का महत्त्व जानकर उसकी प्रत्यक्ष पढ़ाई आरम्भ कराने वाले उस मण्डल की दूरदर्शिता, मूलगामी विचार-पद्धति तथा क्रियाशीलता बड़ी प्रशंसनीय है। उन्होंने लन्दन नगर में कुल चार विद्यालय स्थापित किए हैं। उनमें दो कन्याओं के और दो बालकों, छात्रों के लिए हैं। चारों विद्यालयों में दो निम्न श्रेणी के और दो उच्च कक्षाओं के हैं।

वे संस्कृत प्रार्थना गाकर प्रतिदिन शिक्षा का आरम्भ करते हैं। उनकी वार्षिक सभा के दिन भी संस्कृत प्रार्थना प्रथम गाई जाती है। मध्याह्न का

भोजन छात्र पाठशालाओं में ही लेते हैं। भोजन आरम्भ करने से पूर्व वे 'ॐ परमात्मने नमः' कहते हैं। संस्कृत भाषा तथा वैदिक संस्कृति की इंग्लैण्ड में प्रस्थापना होना आवश्यक है, यह विचार मन में पक्का होकर उसके अनुसार प्रत्यक्ष कृति इंग्लैण्ड निवासी गोरकाय ईसाई विद्वज्जनों द्वारा आरम्भ होना एक चमत्कार जैसी अद्भुत घटना है। ऐतिहासिक घटनाएँ विविध युगों में पुनः-पुनः वैसी की वैसी ही घटती रहती हैं। इस सम्बन्ध में 'History repeats itself' अर्थात् इतिहास पुनः अपने आपको दोहराता है ऐसा आंग्ल मुहावरा है। तदनुसार हो सकता है कि प्राचीनकाल में वहाँ आंग्लभूमि में जो वैदिक संस्कृति थी उसका मानो एक प्रकार से पुनरुत्थान ही हो रहा दिखाई देता है। क्योंकि उन चार विद्यालयों में साढ़े-चार वर्ष के बालक-बालिकाओं को प्रवेश दिया जाता है, तभी से देवनागरी लिपि तथा संस्कृत भाषा सब छात्रों को अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाती है। इससे छात्रों का शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक सन्तुलन, हस्ताक्षर, शिस्त आदि सब सुधरते रहते हैं, ऐसा संचालक विद्वानों का अनुभव है। उस शिक्षा मण्डल के प्रमुख हैं श्री निकोलस डेबेनहम। उनके विद्यालयों का नाम है—सन्त यमस् अन्फन्दन्त शाला (St. James Independent School for Boys तथा St. James Independent School for Girls)। दोनों विद्यालयों की कनिष्ठ तथा वरिष्ठ ऐसी पृथक् दो शाखाएँ हैं। वैदिक पद्धति के अनुसार बालक-बालिकाओं के विद्यालय अलग-अलग रखे गए हैं जबकि आंग्लभूमि में अन्यत्र बालक-बालिकाओं को एक ही कक्षा में पढ़ाने की प्रथा है। पृथक् पढ़ाने से छात्र-छात्राओं का चाल-चलन अच्छा होता है तथा पढ़ाई में ध्यान लगता है। बालक-बालिकाओं की भावनाएँ, आकांक्षाएँ, आवश्यकताएँ आदि परस्पर भिन्न होने के कारण उन्हें वैदिक तत्त्वों के अनुसार पृथक् पढ़ाना ही योग्य है, ऐसा संचालकों का पूरा विश्वास है।

मानव वंश का आरम्भ मनु से ही हुआ। अतः मनुस्मृति में मानव के आचरण के नियम कहे गए हैं। इस प्रकार मनु एक प्रकार के मानवधर्म, व्यक्तिधर्म के मूल उद्गाता या व्याख्याता थे। मानवों का ऐहिक तथा पारमार्थिक जीवन सुचारू रूप से चले एतदर्थ मनुजी के लिए नियम मनु-

स्मृति में अंकित हैं। आज मनुस्मृति के जो संस्करण उपलब्ध हैं उनका सूक्ष्मदृष्टि से अध्ययन होना आवश्यक है क्योंकि हो सकता है कि समय-समय पर उसमें कुछ भाग प्रक्षिप्त हो। जैसे कई श्लोकों में 'मनुरब्रवीत'—मनु ने ऐसा कहा—ऐसा उल्लेख है। वे श्लोक प्रक्षिप्त समझने चाहिएँ क्योंकि वह शैली मनु की न होकर किसी त्रयस्थ की है ऐसा लगता है।

आधुनिक व्यवस्थापन परिभाषा संस्कृतोद्भव है

वैदिक सभ्यता मानव की मूल परम्परा होने के कारण सभी मानवीय व्यवहारों की परिभाषा संस्कृतमूलक ही है। अतः वाणिज्य व्यवहार की परिभाषा भी संस्कृतोद्भव है।

व्यवस्थापन को मैनेजमेण्ट (management) कहते हैं जो मनज-मंत ऐसा संस्कृत शब्द है। किसी व्यापार, व्यवहार या संस्था की सर्वाङ्गीण व्यवस्था जिसे सौंपी होती है उसी के विचारों से उसका मन भरा होता है। 'मन-ज-मंत' का वही अर्थ है। मैनेजर (Manager) भी उसी प्रकार का शब्द है। समर्पित मन का व्यक्ति ऐसा उसका अर्थ है। इन्स्पायर (Inspire) यह शब्द "अन्तःस्फुरण" है। संस्था उर्फ संस्थान को इन्स्टीट्यूशन (Institution) कहते हैं जो अन्तस् अध्ययन यानि "जिस संस्था के अन्दर अध्ययन की व्यवस्था होती है वह।" किसी उद्योग, उद्यम, व्यवसाय को एण्टरप्राइज (Enterprise) 'अन्तर्प्रेरज' कहते हैं। इस आंग्ल शब्द का अर्थ वही है। जो व्यक्ति हिम्मत करके योजना बनाकर कोई बड़ा कामधन्धा आरम्भ करता है, उसे आंग्लभाषा में एण्ट्रीप्रीनियर (Entrepreneur) कहते हैं। वह 'अन्तर्प्रेरितनर' ऐसा संस्कृत शब्द है।

मनुस्मृति में कहे तत्त्वों के अनुसार मानवीय समाज का पुनः व्यवस्थापन करना योग्य होगा, तदनुसार आवश्यकताएँ कम-से-कम रखने की सावधानी बरतनी चाहिए। पाश्चात्य प्रणाली के जीवन-क्रम में तो मानव की आवश्यकताएँ बेशुमार बढ़ रही हैं। वे आवश्यकताएँ पूर्ण करने हेतु जंगल आदि प्राकृतिक सम्पत्ति बड़ी मात्रा में प्रयोग की जाती है। जीवन खर्चीला होने लगता है। ऐसे जीवन के लिए पग-पग पर अपार पैसा खर्च करना पड़ता है। इससे लोभ बढ़ता है और भ्रष्टाचार, अन्याय, अत्याचार आदि

विकृतियों से समाज का विघटन होता है। आवश्यकताओं की जितनी अधिक पूर्ति का यत्न करो उतनी ही आवश्यकताएँ बढ़ती ही रहती हैं। उनसे लालसा कम होने की बजाय बढ़ती रहती है। इससे असमाधान भी होता रहता है। जो व्यक्ति दिनभर खेल-कूद, नाच-रंग आदि सुखासीनता में निमग्न रहता है उसे चैन नहीं होती। लगातार मिठाई खाने वाला जैसा उससे उकताकर सादे भोजन की कामना करता है वैसे ही सुखासीनता में मग्न रहने वाले भी उस जीवन-प्रणाली से तंग आ जाते हैं।

ऐतिहासिक घटनाओं का सही अर्थ लगाना

ऐतिहासिक घटनाएँ अथवा प्रमाणों का सही अर्थ लगाना भी एक कला है। कुछ घटनाओं का या प्रमाणों का पक्षपाती लोग स्व-अनुकूल अर्थ लेना चाहते हैं। उदाहरणार्थ इतिहास परिषद् के एक अधिवेशन में पढ़े मेरे प्रबन्ध में मैंने यह दर्शाया था कि पड़दादा अकबर, प्रपौत्र औरंगजेब से विविध दुर्गुणों में किसी प्रकार कम नहीं था। इस पर अलीगढ़ के एक मुसलमान प्राध्यापक ने कहा कि छत्रपति शिवाजी ने औरंगजेब को भेजे पत्र में औरंगजेब को कहा है कि "आपके प्रपितामह इतने अच्छे और संयमशील थे, उनके जैसा आप सुखद व्यवहार करें।"

छत्रपति शिवाजी के उस प्रशस्ति-पत्र का अर्थ ज्यों-का-त्यों लेना ठीक नहीं होगा। क्योंकि शिवाजी एक राजनयिक व्यक्ति थे। उन्हें तो किसी तरह औरंगजेब को उसके कठोर व्यवहार से परावृत्त करना था। इस हेतु छत्रपति शिवाजी को जो कुछ उल्टा-सीधा कहना सूझा उसका अर्थ ज्यों-का-त्यों नहीं लेना चाहिए। जैसे रोने वाली सन्तान को चुप कराने के लिए माँ यदि बच्चे को धमकाए कि 'बाहर भालू खड़ा है या पुलिस खड़ी है जो तुझे उठा ले जाएगी" तो उसमें सत्यता का जरा-सा भी अंश नहीं होता। क्योंकि आसन्नसंकट को किसी प्रकार टालना ही उस कथन का एकमात्र उद्देश्य होता है। अतः अकबर के चाल-चलन, व्यवहार, व्यसनाधीनता, दुष्टता, क्रूरता, लोभ, अन्याय, अत्याचार आदि के प्रत्यक्ष प्रमाण देने के पश्चात् छत्रपति शिवाजी के अकबर सम्बन्धी प्रशंसोद्गार किस संदर्भ में कहे गए, यह जानना आवश्यक होता है।

दूसरा मुद्दा यह है कि अकबर की तीन पीढ़ी पश्चात् औरंगजेब तथा शिवाजी का युग था। उस युग में शिवाजी को औरंगजेब का व्यवहार जितना चुभता था उसकी तुलना में अकबर का गया-बीता युग सराहनीय कहना या समझना समयानुकूल था।

और तो और अकबर का मूल्यांकन करने में इतिहासज्ञों ने बड़ी धांधलेबाजी की है। गांधी नेहरू के आन्दोलन को सँवारने हेतु किसी तरह से मुसलमानों को प्रसन्न रखना उपयुक्त समझा जाता था। हिन्दू राजा अशोक की श्रेष्ठता का बोलबाला था ही। अत: राजनीतिक नेताओं को कोई मुसलमान व्यक्ति भी उतना ही श्रेष्ठ था ऐसा दर्शाना अनुकूल प्रतीत हुआ। इस षड्यन्त्र में उन्हें खुशामदी सरकारछाप इतिहासज्ञों का सहयोग मिला। क्योंकि सरकारी आधार से इतिहासज्ञों को प्रतिष्ठा प्राप्त होती रहती है और इतिहास की आवश्यक तोड़-मरोड़ से इतिहासज्ञ सरकार की नीति को सँवारते रहते हैं। इस प्रकार भारत में अंग्रेज सरकार या कांग्रेस सरकार और सरकारी कृपाछत्र के अभिलाषी इतिहासज्ञों में 'अहो रूपं अहो ध्वनि:' वाली साँठ-गाँठ रही है।

कांग्रेसी नेताओं द्वारा मुसलमानों की खुशामद हेतु बनावटी सामग्री देते रहने के प्रदीर्घ अभ्यास से भारतीय हिन्दू इतिहासज्ञ ऐतिहासिक तोल-मोल करने की प्रक्रिया ही भूल गए। अकबर को 'श्रेष्ठ' कहना या मानना यह उसी बेबसी का परिणाम है। प्रत्येक ऐतिहासिक सिद्धान्त की सत्यासत्यता परखने की कई कसौटियाँ होती हैं। जैसे अकबर की श्रेष्ठता में दीन-ए-इलाही धर्म की स्थापना का मुद्दा पुरस्कृत किया जाता है। एक ने कहा और दूसरों ने मान लिया, ऐसी अवस्था वर्तमान इतिहास में है। यदि अकबर ने सचमुच दीन-ए-इलाही नाम का धर्म स्थापन किया होता तो उसने घोषणा कर दी होती कि "आज से मैं मुसलमान नहीं हूँ। मुझे दीन-ए-इलाही का संस्थापक तथा अनुयायी माना जाए।" लेकिन ऐसी कोई घोषणा नहीं हुई थी। जन्म से मृत्यु तक अकबर मुसलमान ही था। उसका अन्त्य-संस्कार भी इस्लामी रीति-परम्परा के अनुसार ही हुआ।

'दीन' याने धर्म और 'इलाही' यानि अल्लाह का अर्थात अल्लाह का धर्म कहलाने वाला। अकबर का धर्म इस्लाम ही तो था। इस्लाम से वह किसी

प्रकार भिन्न नहीं था। उस धर्म का कोई कर्मकाण्ड नहीं था। इस धर्म का कोई दर्शनशास्त्र नहीं था। उस धर्म का एक भी अनुयायी नहीं था और न ही उसका कोई धर्मस्थान या धर्ममन्दिर था। ऐसी कोई भी कसौटी लगाए बगैर छात्रों से यह रटवाना कि अकबर ने दीन-ए-इलाही नाम के धर्म की स्थापना की, इस बात का सबूत है कि भारतीय इतिहासज्ञों को ऐतिहासिक तथ्य परखने की विधि ही ज्ञात नहीं है।

अकबर ने राजपूत राजघराने की स्त्रियों से विवाह किया, यह भी उसकी श्रेष्ठता का लक्षण कहा जाता है। यह लक्षण भी निराधार है। क्योंकि एक से अधिक स्त्रियों से सम्बन्ध रखना भोगवादी वृत्ति और कामुकता का लक्षण है या कि हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए बेचैन होने का? अकबर ने राजपूत स्त्रियों से विवाह किया यह दावा भी झूठा है। राजपूती रियासतों पर खूंखार हमले करके अनेक राजपूत स्त्रियाँ अवश्य अकबर के जनानखाने में बन्द करा दी गईं, किन्तु इस व्यवहार को विवाह कहना विवाह-संस्कार का अपमान है। राजपूत स्त्रियों से यदि सचमुच अकबर का विवाह होता तो दोनों दरबारों में उन विवाहों के निमन्त्रण पाए जाते। वैसा एक भी निमन्त्रण प्राप्य नहीं है। अत: विवाहों की बात झूठी है। वैसे भी विवाहों द्वारा हिन्दू-मुस्लिम एकता साधने की बात होती तो अकबर के इस्लामी जनानखाने की स्त्रियाँ भी तो हिन्दू राजाओं से ब्याही जा सकती थीं। वैसी एक भी घटना नहीं हुई।

अकबर की श्रेष्ठता का तीसरा आधार दिया जाता है कि उसने जजिया कर हिन्दुओं को माफ कर दिया था। यह बात भी सरासर झूठ है। क्योंकि सुरजनसिंह, हीर विजय सूरी और शान्तिविजय सूरी बार-बार अपने लिए जजिया कर से माफी की याचना करते हुए दिखाई पड़ते हैं। इस प्रकार अकबर की श्रेष्ठता जिन-जिन मुद्दों पर आधारित कही जाती है वे सारे झूठे एवं खोखले हैं। अत: पढ़े-लिखे विद्वान इतिहासकारों द्वारा आँखें मूँदकर इतिहास के मनगढ़न्त सिद्धान्त बिना प्रमाण छात्रों के मस्तिष्क में ठूँसना कितनी घृणास्पद एवं निन्दनीय बात है। इसका पाठक विचार कर सकते हैं।

अपराधियों के दुर्व्यवहारों के संस्कृत ग्रन्थ

अपराधियों के दुर्व्यवहारों के काव्यबद्ध वर्णन संस्कृत साहित्य में
अपराधियों के टेढ़े-मेढ़े रवैये का पाश्चात्य विद्वानों ने टिप्पणी की है कि
पाया जाता है। उस पर नासमझ पाश्चात्य विद्वानों ने टिप्पणी की है कि
वैदिक साहित्य में चोरी करना, डाका डालना आदि की सीख देने वाले
भी ग्रन्थ हैं। जिस वैदिक सभ्यता में सर्वदा सर्वत्र त्याग, सेवा, दान तथा
पवित्रता का आदर्श रखा गया, वह धर्म भला निन्दनीय अपराधों की शिक्षा
कैसे देगा।

वास्तव में बात यह है कि वैदिक सभ्यता के प्रदीर्घ इतिहास में इक्के-
दुक्के जो अपराध कभी होते रहे उनके नमूने उन ग्रन्थों में वर्णित हैं। लाखों
वर्षों के वैदिक सम्राटों के शासन में सम्राट् से दरिद्री तक और ऋषि-मुनियों
से चोर तथा खूनी तक सभी संस्कृत में ही बोला करते थे, अतः उस युग के
रक्षा पुरुषों (पुलिस) के दस्तावेज, वकीलों के विवाद, न्यायाधीशों के
निर्णय आदि सारे संस्कृत में होने से प्राचीन वैदिक समाज के चन्द अपराधों
का वर्णन भी प्राचीन संस्कृत साहित्य में उपलब्ध है। आधुनिक युग में भी
How to steal a million dollars (दस लाख डालरों की डकैती कैसे की
जाए) ऐसे शीर्षक चित्रपट (सिनेमा) होते हैं। इससे क्या यह निष्कर्ष
निकालना ठीक होगा कि वर्तमान युग के सारे लोग डाका डालने के
प्रशिक्षण के इच्छुक हैं?

महाभारतीय युद्ध के उपरान्त अर्जुन की असहायता

रामायण, महाभारत, पुराण आदि में ऐसे कई स्थल हैं जहाँ सामान्य जन बड़ी उलझन में पड़ जाते हैं। उन्हें कई घटनाएँ समझ में नहीं आतीं। क्योंकि उन्हें प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में वर्णित घटनाएँ वास्तविक रूप में समझाई जाने के बजाय अद्भुत दर्शायी गई हैं। साहित्यकार, इतिहासज्ञ आदि ने वे घटनाएँ स्वयं भली प्रकार समझकर उन्हें जनता को व्यवहारी प्रकार से समझा देना चाहिए।

महाभारत के मौसल पर्व में वर्णन है कि महाभारतीय युद्ध के पश्चात् यादवों के कुमारों ने किसी शक्तिमान अस्त्र के टुकड़े-टुकड़े कर सागर में बिखेर दिए। उससे सागर में कुश निर्माण हुए। एक रात को

यादवों ने अपार मदिरापान के नशे में अस्त्रशक्ति से दूषित उस कुश को उखाड़-उखाड़कर आपस में जो मारपीट की उससे यादव कुल का नाश हुआ। कई यादव वहीं मारे गए तो अन्य द्वारका प्रदेश ही छोड़कर दूसरे प्रदेशों में प्रस्थान कर गए। ज्यू या जुडेइस्ट कहलाने वाले वे यदुवंशी लोग उसी समय से अपना प्रस्थान संवत् गिनते हैं। इस संवत् का अभी ५८४८वाँ वर्ष चल रहा है। महाभारतीय युद्ध समाप्त होकर कितना समय बीत चुका उसका वह एक बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रमाण है।

यदु लोगों में यकायक इस प्रकार की भयंकर अनाधूनी मचने का एक स्वाभाविक कारण यह था कि महाभारतीय युद्ध में उनके असंख्य सगे-सम्बन्धी मारे गए, कुटुम्ब व्यवस्था भंग हो गई, शासन टूट गया। भगवान कृष्ण भी वानप्रस्थ को चले गए। घोर निराशा फैली और इसी निराश, व्यथित अवस्था में यादवों का संयम टूटकर भगदड़ मची।

इस उथल-पुथल में काम-धन्धे के अभाव में कई लोग डाकू बने। यादवों के घरों पर और स्त्रियों पर डाकुओं के हमले होने लगे। वह दुर्दशा सुनकर भगवान कृष्ण ने अर्जुन को भेजा कि वह असहाय स्त्रियों तथा अन्य लोगों को बचा ले आए। किन्तु अर्जुन की एक न चली। उन्हें निष्प्रभ होकर लौटना पड़ा।

सामान्य लोग यह नहीं समझ पाते कि अर्जुन इतना प्रसिद्ध योद्धा होते हुए भी सामान्य डाकुओं से जनता का रक्षण क्यों न कर सके? इसका विवरण अति सरल है।

योद्धा जो होता है उसके पीछे आज्ञा पालन करने वाली शिस्तबद्ध सेना होती है। जितना श्रेष्ठ सेनाधिकारी हो उसके अनुसार उसकी सेना भी संख्या में बड़ी होती है। महाभारतीय युद्ध के समय वे सेनाएँ सशक्त तथा शिस्तबद्ध थीं। सेना के पास उत्तमोत्तम अस्त्र-शस्त्र थे। किन्तु युद्ध के पश्चात् सारी परिस्थिति बदल गई थी। सारी सैनिक टुकड़ियाँ टूट चुकी थीं। कई मारे गए, अनेक घायल हुए, कई रोगी हुए। कुछ उदास और दुःखी होकर घर चले गए या भूला-भटका जीवन बिताने लगे। शस्त्रास्त्र टूट-फूट गए। अतः सेना बिना उसका अधिकारी योद्धा अर्जुन अकेला क्या करता? उसकी शक्ति उसकी सेना में थी। शिस्तबद्ध सेना के बिना तथा

सैनिकों को अन्न, धान्य, वस्त्र, गोलाबारूद, शस्त्र आदि सामग्री नियमित रूप से पहुँचाने की व्यवस्था न हो तो वह सेना लड़ नहीं सकती। अतः अर्जुन का प्रभाव न पड़ना स्वाभाविक था। ऐसे वास्तववादी ब्योरे से ही महाभारतीय युद्ध एक ऐतिहासिक घटना सिद्ध होती है।

जुल्म जबरदस्ती से लिखवाया गया इतिहास

इस्लामी तथा ईसाई बने देशों का इतिहास जुल्म तथा जबरदस्ती से लिखवाया गया है। इसी प्रकार सन् १९१७ में जब जार राजा का शासन समाप्त कर कम्युनिस्ट तानाशाही स्थापित हुई तो रूस का प्राचीन इतिहास नगण्य समझकर मिटा दिया गया। इस्लामी देशों ने भी मुहम्मद-पूर्व का इतिहास अनावश्यक कहकर नष्ट कर डाला। ईसाई लोगों ने भी चौथी शताब्दी से पूर्व का इतिहास मिटा डाला। अतः कम्युनिस्ट विचारधारा के लोग तथा ईसाई और इस्लामी, इतिहास के बड़े शत्रु माने जाने चाहिएँ। दीमक जैसे इतिहास के ग्रन्थ खा जाती है वैसे ही कम्युनिस्ट, मुसलमान तथा ईसाई लोग प्राचीन इतिहास को नष्ट कर देते हैं। वे इतिहास के सबसे बड़े शत्रु तथा विध्वंसक माने जाने चाहिएँ।

यूरोपीय सभ्यता का वैदिक ढाँचा

यद्यपि वर्तमान यूरोप ईसाई बना हुआ है तथापि ईसाइयत केवल एक मुखौटा है। यूरोपीय जीवन का मूल स्रोत वैदिक सभ्यता ही है। इसके कई उदाहरण दिए जा सकते हैं।

'माया' तथा 'योग' वैदिक संस्कृति के विशिष्ट शब्द हैं। माया से मायिक शब्द बनता है जैसा वेद से वैदिक। जैसे यशवन्त का उच्चार जशवंत और योगी का जोगी उच्चार होता है, उसी नियम से 'मायिक' शब्द का उच्चार 'माजिक' होगा। वही अंग्रेजी में magic लिखा जाता है। Magic (माजिक) यानि जादू। माया उर्फ मायिक का अर्थ भी (ईश्वरीय) जादू ही है।

योग का अर्थ है आत्मा को परमात्मा से जोड़ना। आंग्लभाषा में संस्कृत 'ग' का उच्चार 'क' होता है। अतः जिसे हम 'गौ' कहते हैं आंग्लभाषा में उसका उच्चार 'कौ' होता है। इसी नियम से योग का पर्यायी

आंग्ल शब्द है 'योक'। जैसे तांगे को घोड़ा जोतना हो तो उसे yoke (योक) कहते हैं। फ्रेंच भाषा में उसी को joug (जोग) कहते हैं। हिन्दी, मराठी आदि भाषाओं में भी योग तथा योगी का उच्चार जोग तथा जोगी होता है। अतः इंग्लैण्ड, फ्रांस आदि देशों में माया, योग आदि वैदिक संस्कृति की परिभाषा प्रचलित थी क्योंकि प्राचीनकाल में उन देशों में वैदिक सभ्यता ही थी।

अब ट्रायम्फ (Triumph) शब्द देखें। इसका अर्थ है 'विजय'। प्राचीन यूरोप में वैदिक क्षत्रियों का ही शासन था। उनके युद्ध देवता शिव (शंकर) थे। शिव को तीन चक्षुवाला (त्रिअम्बक) इस अर्थ से त्र्यंबक भी कहा जाता है।

युद्ध में विजय प्राप्ति के पश्चात् रोमन सेनाएँ रथ में आगे शिवलिंग रखकर उसी के पीछे 'त्र्यम्बक···त्र्यम्बक' ऐसा नारा लगाते चलती थीं। उस त्र्यम्बक शब्द का ही लैटिन आदि भाषाओं में ट्रायम्फ ऐसा उच्चार हुआ। आंग्लभाषा में भी Triumph (विजय) शब्द है।

यूरोपीय भाषा में अन्तिम केन्द्र या सीमा को terminus (टर्मिनस) कहते हैं। वह भी त्र्यम्बकेश का ही अपभ्रंश है। वैदिक परम्परा के अनुसार गाँव, तहसील, जिला, देश की सीमा पर शिवजी के मन्दिर बनाने की प्रथा थी। यह बड़ी दूरदर्शी एवं महत्वपूर्ण प्रथा थी। इससे शिवलिंग की पूजा करने सीमा पर लोगों का तांता लगा रहता था। मन्दिर में यात्री, साधु-संन्यासी, पुजारी आदि रहा करते थे। किसी पर्व के दिन बड़ी भीड़-भाड़ रहती थी। मन्दिर में दिए चढ़ावे से मन्दिर का खर्चा भी निकल आता था। इससे नगर तथा देश की सीमाओं पर नागरिकों की एक प्रकार की गश्त लगती रहती थी। ऐसी अवस्था में सरकार का कोई खर्चा भी नहीं होता था। इसी कारण त्र्यम्बकेश (शिव) शब्द एक तरह से अन्तिम केन्द्र या सीमा का द्योतक है। आंग्लभाषा में terminus(टर्मिनस) का अर्थ अन्त या अन्तिम स्थान है। इससे पाठक जान सकते हैं कि ईसापूर्व यूरोप में वैदिक सभ्यता होने से सीमाओं पर शिवमन्दिर होते थे। उनसे सरहद या अन्तिम स्थान का त्र्यम्बकेश उर्फ टर्मिनस शब्द पड़ा।

सरहद पर शिवदर्शन के बहाने जनता की गश्त लगती रहने से शत्रु का

आक्रमण नहीं होता। स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू को इस वैदिक प्रथा का ज्ञान न होने से उन्होंने भारत की सीमाओं पर शिवमन्दिर नहीं बनवाए, जिसके कारण चीन ने अक्षयचिन का भाग हथिया लिया। पाकिस्तान ने कश्मीर तथा कच्छ के कुछ प्रदेश पर कब्जा कर लिया। नेहरूजी देखते ही रह गए।

कोरे निरर्थक सीमा स्तम्भों की बजाय सीमावर्ती शिवमन्दिर बनाने से सीमा को पवित्रता तथा महत्व प्राप्त होता है। श्रद्धा और भक्ति के कारण शिवमन्दिरों पर शत्रु का कब्जा हो जाने से लोग या शासन बेचैन होकर मन्दिरों को पवित्र लक्ष्य समझकर उसे वापस जीत लेने के लिए संघर्ष तथा त्याग करना सीखते हैं। केवल खम्भों से सीमा का विभाजन करने से शिवमन्दिर से सीमानिर्देश करना सब प्रकार से अधिक श्रेयस्कर होता है। वैदिक शासन की इस प्रकार की खूबियाँ वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में अज्ञात रह जाती हैं। न तो शासक उनका प्रयोजन जानते हैं न ही प्रजा, इसी कारण भारत के शासक अनाड़ी सिद्ध हुए। उन्होंने देश दुर्बल कर छोड़ा। इतना ही नहीं अपितु कई जटिल समस्याओं से देश का भविष्य भी संकटमय कर रखा है।

हम प्राचीन विश्व में शिवपूजन का विवरण दे रहे थे। प्राचीन ग्रीक कथाओं में Cyclops जाति के राक्षसों का उल्लेख है। उनके ललाट के मध्य में एक ही बड़ा चक्षु होता था। वह कल्पना शिवजी के तृतीय नेत्र पर ही आधारित है।

यूरोप के कई नगरों के नाम वैदिक सभ्यता तथा संस्कृत स्रोत के दिखाई देते हैं जैसे इंग्लैण्ड के एक गाँव का नाम है Prince's Risboro, जो स्पष्टतया राजर्षिपुर नाम है। Prince's यानि (युव) राजा का Risboro यानि ऋषिपुर।

सामने पृष्ठ पर प्रदर्शित चित्र में ताजमहल परिसर में पुरातत्व विभाग द्वारा इस द्वार को सदा ताला लगाकर बन्द रखा जाता है। सात मंजिले कुएँ में उतरने वाली सीढ़ी का यह प्रवेश द्वार है। इस जीने से पानी के स्तर तक उतरा जा सकता है। यदि ताजमहल मुमताज का मकबरा होता तो उसे सातमंजिले कुएँ की क्या आवश्यकता थी? जीवित मुसलमान को भी
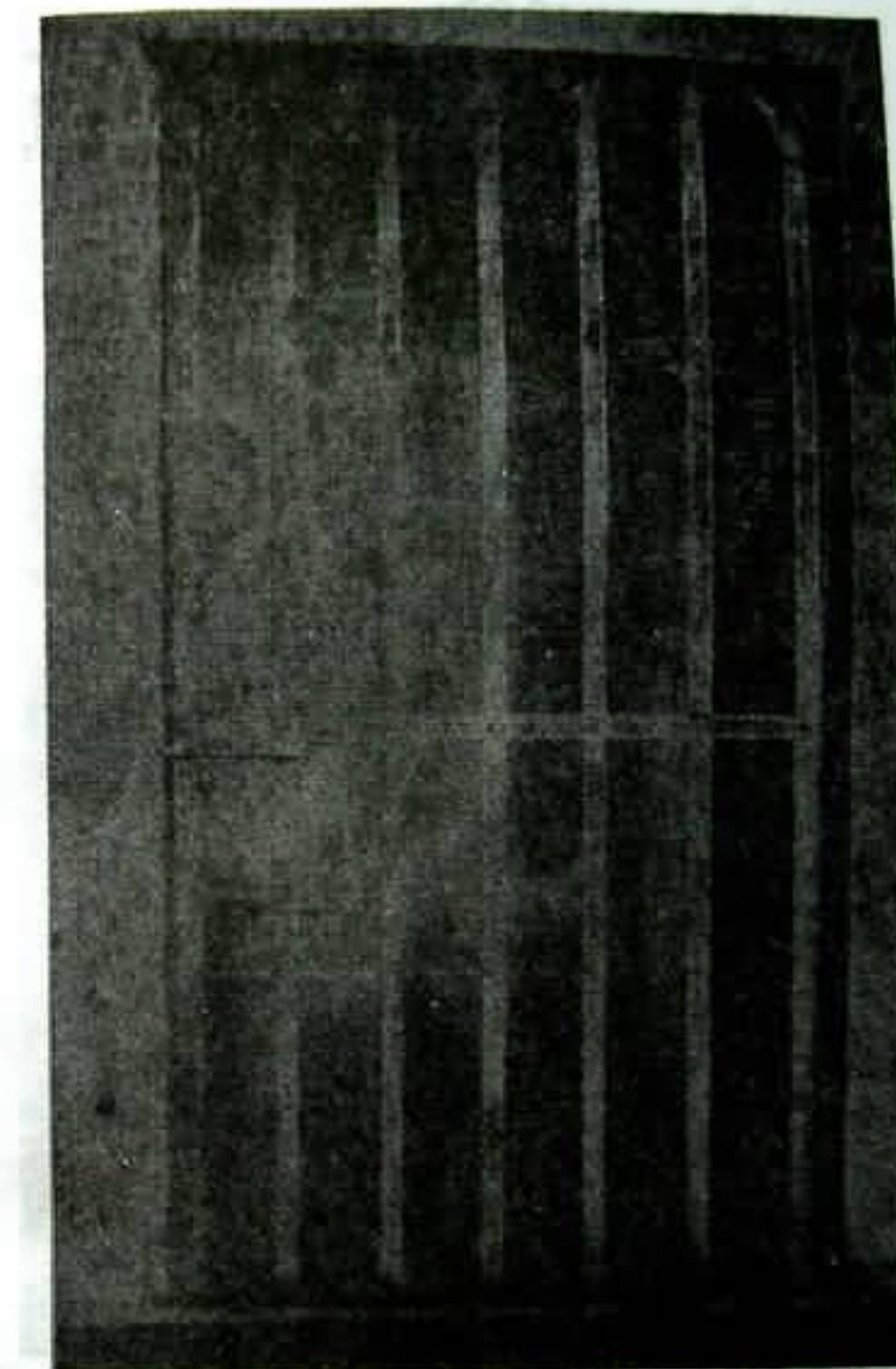
इतने जल की आवश्यकता नहीं होती।

राजस्थानी प्रथा में ऐसे बहुमंजिले कुएँ, महल तथा मन्दिरों के प्रांगण में होते थे। उन्हें खजाने का कुआँ कहा जाता था। सम्पत्तिवाली तिजोरियाँ जलस्तर वाली मंजिल में रखी जाती थीं। विविध स्तर के खजांची ऊपर की मंजिल में बैठते। उत्सव, विवाह संस्कार, राज्याभिषेक आदि के दिन वस्त्रालंकार आदि वहाँ से निकालकर पहनने के लिए दिए जाते और पश्चात् वहीं रखवा दिए जाते। ऐसे खजाने के लिए कुए सुरक्षा की दृष्टि

से बनवाए जाते थे। शत्रु के घेरे में आकर हारण जाने की नौबत आई तो तिजोरियाँ कुएँ में गिरा दी जातीं ताकि जल के अन्दर वे सुरक्षित रहें। इस परिसर पर पुनः कब्जा हो जाने पर तिजोरियाँ कुएँ के तल से बाहर निकाल ली जातीं। कभी अचानक डाका भी पड़ता तो गोल-गोल जीने से तिजोरियाँ ले जाना कठिन होता और इस अवधि में कुमुक बुलवाने की सम्भावना बढ़ जाती।

पृष्ठ २२८ पर तेजोमहालय का गुम्बज दिखाया गया है। गुम्बज के कटिभाग पर कमल के पटलों की नक्काशी है। गुम्बज का पद्मासन उसके हिन्दुत्व का लक्षण है। गुम्बज शब्द भी संस्कृत 'कुम्भ-ज' का अपभ्रंश है। गुम्बज के शीर्ष पर भी कमल अंकित है। शिखर पर सीधा सुवर्ण कलश है। यह सारे हिन्दू लक्षण हैं। गुम्बज को इस्लामी लक्षण समझना गलत है। गुम्बज तो ठोस हिन्दू प्रमाण है क्योंकि इस्लाम का प्रथम तथा मुख्य केन्द्रीय स्थान जो काबा है उसके ऊपर कोई गुम्बज नहीं है। यदि ताजमहल इस्लामी इमारत होती तो उस पर चाँदतारा खजूर के पेड़ आदि
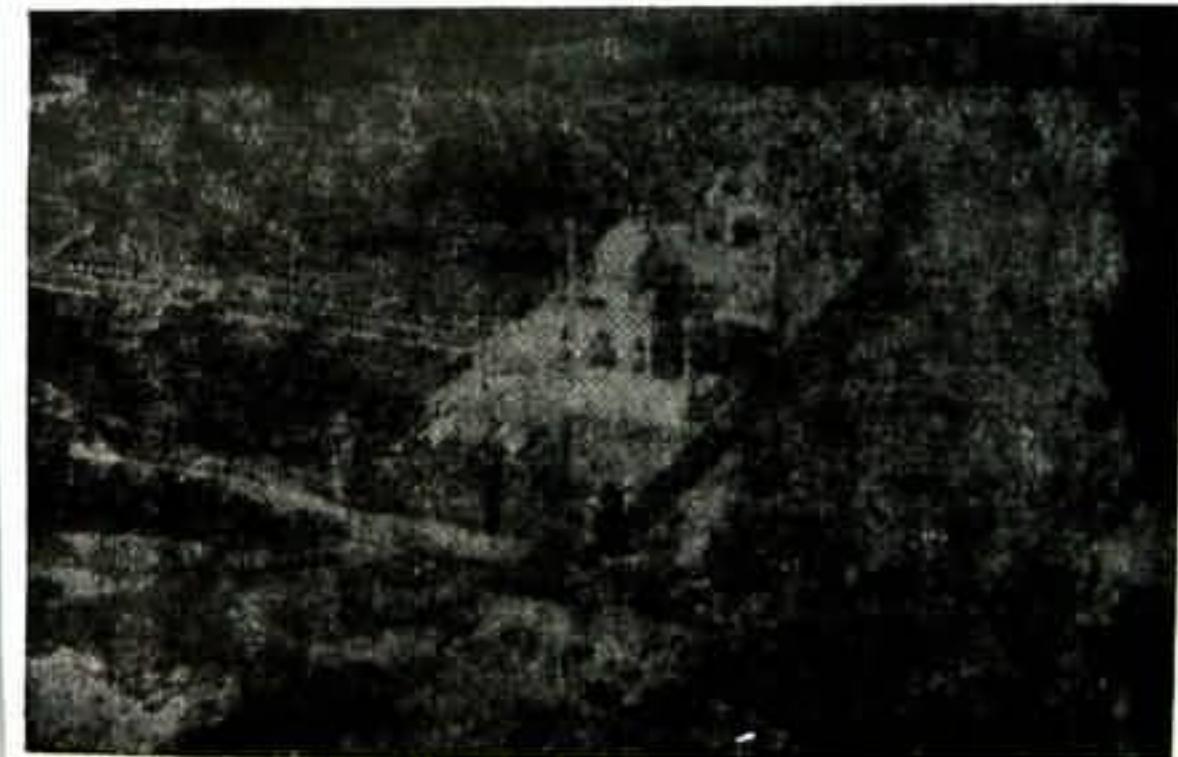
कोई अरबी चिह्न बने होते। वैदिक स्थापत्यशास्त्र में इमारत को वास्तु-पुरुष कहा जाता है। उस वास्तुपुरुष का शीर्ष गोल ही होना चाहिए। इसी कारण हिन्दू इमारतों पर गुम्बज होता है।

विमान से लिया यह ताजमहल परिसर का चित्र देखें (पृष्ठ २२९)। दाहिनी ओर यमुना का प्रवाह है। उसी के किनारे बाईं ओर ताजपरिसर का लालकोट दीख रहा है। कोट के पार तीन इमारतें हैं। मध्य में है संगमरमरी तेजोमहालय। उसके दाएं-बाएं एक जैसी दो इमारतें हैं। उनमें दाहिनी इमारत को मस्जिद कहा जा रहा है जबकि बाईं ओर की इमारत मस्जिद नहीं है। जिन इमारतों का ढांचा एक जैसा हो उनका उपयोग भी समान होना चाहिए। अतः बाईं ओर की इमारत भी मस्जिद होती। किन्तु उसे मस्जिद कोई नहीं कहता। इसलिए दाहिनी ओर वाली इमारत भी मस्जिद नहीं है। शाहजहां के उस परिसर को हड़प करने के पश्चात् पश्चिम वाली इमारत में नमाज पढ़ी जाने लगी। इसी कारण उसका नाम मस्जिद पड़ा। उस इमारत के दाईं-बाईं ओर दो मीनारें देखें। बाईं मीनार के अन्दर सात मंजिला कुआं है। उस कुएं वाली मीनार में प्राचीन प्रकार के शौचकूप भी बने हैं। मस्जिद वाली और उसकी जोड़ी की पूर्वस्थित इमारत दोनों सात मंजिली हैं। वे दोनों तेजोमहालय मन्दिर की धर्मशालाएं होने से समान विशाल ढांचे की हैं। इस्लाम के पक्ष में पश्चिम वाली इमारत मस्जिद तथा पूर्व वाली उसका 'जवाब' कही जाती है—जो कोरी धौंसबाजी है। सारा इस्लामी इतिहास ऐसी धौंसबाजी से भरा पड़ा है।

प्रेक्षक जब संगमरमरी चबूतरे के नीचे लाल पत्थर के आंगन में बीचों-बीच (संगमरमरी ताजमहल की ओर मुंह कर) खड़े हों तो बाईं तरफ कोने पर उन्हें एक सात मंजिली इमारत दिखेगी। इसी के अन्दर सात मंजिल वाला कुआं है। इसके प्रशस्त जीने से ठेठ पानी के स्तर तक उतरा जा सकता है। उस कुएं से जल निकालकर देखना चाहिए। हो सकता है कि शाहजहां ने जब उस परिसर का कब्जा लिया तब मची भगदड़ में कुछ महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रमाण कुएं में डुबो दिए गए हों।

वैदिक संस्कृति का मूल प्रदेश

हमारा निष्कर्ष है कि ऋषीय (रशिया) देश से हिमालय सहित त्रिविष्टप (तिब्बत) तक के प्रदेश में मानवीय वैदिक संस्कृति का प्रारम्भ हुआ। इस निष्कर्ष के प्रमाण इस प्रकार हैं—

(१) ऋषीय नाम उस प्रदेश का इस कारण पड़ा कि ऋषिकुल के प्रजनेता ऋषि कश्यप का जन्म वहां हुआ और निवास वहां रहा।

(२) छह मास दिन तथा छह मास रात वाला ऋग्वेदीय वर्णन उसी

प्रदेश को लागू है।

(३) त्रिविष्टप (तिब्बत) का अर्थ है स्वर्ग। स्वर्ग से आदिमानव पीढ़ी का निर्माण वहाँ होने से उसका त्रिविष्टप नाम पड़ा।

(४) कैलाश पर्वत तथा मानस सरोवर (जिनका वैदिक सभ्यता से घनिष्टतम प्राचीन पवित्र सम्बन्ध है) त्रिविष्टप में ही स्थित हैं।

(५) गंगावतरण की कथा भी उसी प्रदेश का निर्देश करती है। कुछ पाश्चात्य शास्त्रज्ञों ने यह अनुमान प्रकट किया है कि पृथ्वी के निर्माण के कई युगों पश्चात् हिमालय पर्वत श्रेणियों का निर्माण हुआ। पाश्चात्य शास्त्रियों के ऐसे अनुमानों का कोई भरोसा नहीं होता। विविध शास्त्री विविध अनुमान प्रकाशित करते रहते हैं जो आगे चलकर वे स्वयं या अन्य शास्त्री गलत सिद्ध करते हैं। प्राचीन वैदिक संस्कृत वाङ्मय से तो ऐसा ही लगता है कि हिमालय आरम्भ से ही पृथ्वी का नगीना बना हुआ है।

(६) अन्तर्राष्ट्रीय तिथि निर्णय रेखा (International dateline) भारत के सूर्योदय क्षितिज पर ही बनी हुई है।

(७) पूर्व, सुदूर पूर्व तथा पश्चिम के देश आदि जो विश्वसम्मत परिभाषा रूढ़ है वह भारत को प्रमाण मानकर ही बनी हुई है।

(८) राक्षस उर्फ निरुत् को नैऋत्य दिशा के पालक इसलिए माना गया है कि रावण के पूर्वज लंका में (भारत की नैऋत्य दिशा में) निजी सत्ता केन्द्र बनाए हुए थे।

(९) सोमनाथ के समीप एक शिला पर अंकित बाण से निर्दिष्ट दिशा में दक्षिण ध्रुव तक कोई भूमि नहीं है। वह निर्देश भारत की प्राचीनतम शास्त्रीय प्रवीणता का द्योतक है।

हिन्दू दस्तावेजों का अभाव ?

भारत में आंग्लशासन स्थापित होने के पश्चात् आंग्ल विद्वानों ने भारतीय इतिहास सम्बन्धी जो ग्रन्थ लिखे उनमें उन्होंने कई बार खेद प्रकट किया है कि भारत में जो शासक हुए उनके दरबारी कागजात, दस्तावेज, शिलालेख आदि लिखित ब्योरा न होने से इतिहास लिखने में बड़ी कठिनाई और न्यून अनुभव होते हैं। इसकी तुलना में वे बताते हैं कि यूरोप के देशों में नगरनिगम आदि से लेकर राजदरबार तक सबके दस्तावेज दीर्घकाल से क्रमवार पाए जाते हैं। इससे वे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि हिन्दू लोग इतिहास लिखने के आदी नहीं थे।

यह आरोप सर्वथा अयोग्य है। इसमें सूझबूझ तथा दूरदर्शिता का अभाव दिखाई देता है। इंग्लैण्ड तथा भारत के इतिहास की बराबरी करना सर्वथा अयोग्य है। सन् ७१२ ईसवी से १९४७ तक भारत पर परायों का शासन रहा। इस बीच काबुल तथा पेशावर से कन्याकुमारी तक जितने बड़े किले, बाड़े, महल आदि थे—वे मुसलमान तथा अंग्रेजों के हाथ लगने से उनमें रखे दस्तावेज या तो जला दिए गए या लूट लिए गए। इसी प्रकार शिलालेख भी तोड़-फोड़ कर उनके टुकड़े इधर-उधर बिखेर दिए गए। कुछ दस्तावेज, बहुमूल्य ग्रन्थ, अपार सम्पत्ति आदि लूट-लूटकर भारत के बाहर भेज दिए गए। जैसे इंग्लैण्ड में Bodleian Library, Oxford, India Office Library, Victoria & Albert Museum, British Museum आदि केन्द्रों में भारत से सम्बन्धित विपुल ऐतिहासिक लिखित सामग्री उपलब्ध है।

पुणे में पेशवा शासकों के दस्तावेज एक भवन में इकट्ठे रखे हुए हैं। उन्हें पेशवा दफ्तर कहा जाता है। उनमें नौ करोड़ दस्तावेज हैं। उनको खोलना, पढ़ना या उनका विषयवार विभाजन करना आदि कार्य तो दूर ही रहा उन्हें दीमक या अन्य कीटकों से बचाने हेतु उन पर नित्य रसायन छिड़कते रहना ही एक बड़ा उत्तरदायित्व है। इसके अतिरिक्त भारत सरकार के वास्तुसंग्रहालय (archives) आदि में तथा भारत में अन्य कई स्थानों पर ऐतिहासिक दस्तावेजों के भण्डार हैं।

भारत में जो ५५० से अधिक रियासतें थीं, उन राजाओं के निजी कार्यालयों में उनके पूर्वजों के गुप्त कागजों के भण्डार भरे पड़े हैं। कई मठ, देवालय, धर्मपीठ, पण्डों आदि के पास भी लिखित ऐतिहासिक सामग्री है। इतनी विस्तृत तथा बिखरी हुई सामग्री इकट्ठी एक स्थान पर एक साथ किसी विद्वान के अध्ययन के लिए उपलब्ध होना असम्भव है।

इंग्लैण्ड एक छोटा-सा देश है। कई शतकों से उस पर परायों का कोई आक्रमण नहीं हुआ। अतः उसके दस्तावेज सुरक्षित हैं इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। अंग्रेजों के अतिरिक्त पुर्तगाली, फ्रांसीसी, अमेरिकी, डच, जर्मन आदि पराए लोग भारत के दस्तावेज तथा अन्य ऐतिहासिक सामग्री लूट ले गए या खरीद ले गए।

यह भी ध्यान रहे कि ईसाई बने यूरोप के देशों में धर्मपरिवर्तन के पूर्व के दस्तावेज, शिलालेख आदि कहीं नहीं मिलते ? क्योंकि ईसाई बनने के पश्चात् उन्होंने वे जानबूझकर नष्ट कर दिए।

जब मानव दीमक बनते हैं

इसी प्रकार मुसलमान बने देशों में उनके धर्मपरिवर्तन से पूर्व के शिलालेख, दस्तावेज इत्यादि कहाँ मिलते हैं ? वे उन्होंने हेतुतः नष्ट किए। भारत का इतिहास तो शत्रुओं ने नष्ट किया जबकि इस्लामी तथा ईसाई बने देशों ने तो निजी हाथों से निजी इतिहास नष्ट किया। यह दुष्टता तथा धृष्टता ईसाई तथा इस्लामी पन्थों की विशेषता है। भारत के दो टुकड़े हाल ही में पाकिस्तान या बांग्ला देश होने के कारण, निजी प्रदेशों का इस्लाम पूर्व इतिहास मिटाकर निगल गए हैं। उसे पढ़ना या उसका

संशोधन करना वे घृणित समझकर वर्ज्य करते हैं। ऐसे मानवों को दीमक की ही उपमा देनी चाहिए क्योंकि वे इतिहास को खाकर नष्ट कर देते हैं। निजी पैरों पर स्वयं कुल्हाड़ा मारने वाली यह बात है। भारतीयों ने कभी ऐसा नहीं किया। भारतीयों ने इतिहास के प्रति सर्वदा आदर तथा भक्ति-भाव रखा है। प्रत्येक धार्मिक विधि में पुरोहित के मार्गदर्शन में संकल्प करते हुए यजमान निजी भौगोलिक स्थान तथा ऐतिहासिक परम्परा सृष्टि उत्पत्ति के दिन से संक्षेप में दोहराता है। इस प्रकार लाखों मुखों से प्रतिदिन विश्व के कोने-कोने में इतिहास तथा भूगोल का पुनरुच्चार कराने की वैदिक प्रथा अद्वितीय है।

कर्नल जेम्सटॉड नाम के आंग्ल लेखक ने राजपूतों की परम्पराओं से प्रभावित होकर 'Annals and Antiquities of Rajasthan' नाम का दो खण्डों का ग्रन्थ लिखा है। इसके प्रथम खण्ड के पृष्ठ ६ पर उसने लिखा है कि भारतीयों में इतिहासज्ञ या इतिहास लेखक नहीं हुए यह कहना अज्ञानी या अन्याय होगा। हस्तिनापुर, इन्द्रप्रस्थ, अनहिलवाड़ तथा सोमनाथ जैसे नगर, दिल्ली तथा चित्तौड़ के विजयस्तम्भ, वेरूल तथा अजन्ता जैसी गुफाएँ जब बनाई गईं उस समय इतिहास लेखक नहीं थे, यह कल्पनातीत है।

टॉड ने ठीक ही कहा है। इतिहासज्ञों ने ऐसे तर्क करना सीखना चाहिए। जब भारत में इतने विशाल निर्माण कार्य होते रहे तब इतिहास लेखकों का अभाव हो ही कैसे सकता है ?

लगातार १२३५ वर्षों के पराए आक्रमण, लूटपाट, कत्लेआम तथा आग लगाने की घटनाओं के पश्चात् भी हिन्दुओं को कहना कि तुम्हारे शासकीय दस्तावेज क्यों नहीं हैं ? घाव पर नमक छिड़कने जैसी दुष्टता है। यदि किसी सरदार-दरबारी के बाड़े पर लगातार १२३५ वर्ष शत्रु का आक्रमण होता रहे तो क्या इस दरबारी परिवार के दस्तावेज सुरक्षित रहेंगे ?

जन्म-मृत्यु की नोंद

दरबारी तथा शासकीय दस्तावेज आदि भारत में विपुल थे। अभी भी राजा-महाराजा, जागीरदार आदि के वारिसों ने निजी रियासतों के

महत्त्वपूर्ण दस्तावेज कौटुम्बिक गुप्त धन कहकर सुरक्षित रखे हुए हैं। उदाहरणार्थ ताजमहल उर्फ तेजोमहालय शाहजहाँ ने जब जब्त किया तब उसने राजा जयसिंह को जो दो पत्र भेजे थे। वर्तमान वारिस कर्नल भवानी सिंह वे बताने के लिए तैयार नहीं हैं। या तो उन्हें भय लगता है या लज्जा आती है या कोरी लापरवाही है। कारण चाहे कुछ भी हो यह सत्य, ज्ञान, देश तथा इतिहास के प्रति बड़ा अन्याय है। जयपुर का वह कपड़द्वारा विभाग वाला दस्तावेजों का गुप्त भण्डार यदि किसी सत्यवादी तथा निर्भय व्यक्ति के हाथ लगा तो इस्लामी शासन के कई गम्भीर रहस्य खुल जाएँगे और इतिहास दुबारा लिखना पड़ेगा।

प्राचीन हिन्दू शासन के अन्तर्गत प्रत्येक छोटी-मोटी घटना या व्यक्ति का पूरा ब्योरा आरम्भ से ही कितनी बारीकी से रखा जाता था इसका एक उदाहरण आंग्ल-इतिहासकार विन्सेंट स्मिथ ने 'Early History of India' नाम के निजी ग्रन्थ में पृष्ठ १२६ पर दिया है। स्मिथ ने लिखा है कि "चन्द्रगुप्त (मौर्य) के शासकीय नियमों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के जन्म तथा मृत्यु को सरकार में लिखवाना पड़ता था। यह कितनी आश्चर्य की बात है? भारत के ब्रिटिश शासक भी दीर्घ समय तक ऐसा ब्योरा नहीं रखते थे। वे उसका महत्त्व नहीं समझते थे, और इतना सूक्ष्म हिसाब-किताब रखना बड़ा कठिन कार्य मानते थे।"

विन्सेंट स्मिथ ने जो आश्चर्य प्रकट किया है वही आधुनिक पाश्चात्य इतिहासज्ञों के अज्ञान का द्योतक है। वे कल्पना कर बैठे हैं कि ईसाई यूरोप ही आजतक के युग में सर्वाधिक प्रगत सभ्यता जुटा पाया है। इससे उनका इतिहास सम्बन्धी संकुचित दृष्टिकोण प्रकट होता है। ब्रह्माण्ड-पुराण, महाभारत, गीता आदि कई प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में बार-बार कहा है कि यह जीवनचक्र अनादि-अनन्त है। इसमें कई सभ्यताएँ फूली-फलीं और कालचक्र में लुप्त हो गईं। गतिमान चक्र में लगी डोलियों में बैठे लोग जैसे उनकी डोली ऊपर चढ़ने पर अपने आपको दूसरों से ऊपर मानते हैं, इसी प्रकार प्रत्येक पीढ़ी के लोग अपने आपको दूसरों से प्रगत समझते हैं। विन्सेंट स्मिथ जैसे आंग्ल-विद्वानों को ज्ञात होना चाहिए था

कि कृतयुग से महाभारतीय युद्ध तक कई अति प्रगत, कुशल तथा प्रवीण सभ्यताएँ पनपीं और यथासमय अनन्त काल में खो गईं।

इस्लामी सुल्तानों के दस्तावेज

भारत में जितनी भी इस्लामी रियासतें थीं वे लगभग सारी ही जबरन् मुसलमान बनाए गए हिन्दू राजाओं की थीं। इस्लामी प्रथा के अनुसार मुसलमान बनते ही उन्होंने धीरे-धीरे निजी हिन्दू इतिहास नष्ट कर उसके स्थान पर निजी कुल का ठेठ मुहम्मद पैगम्बर के कुरेशी कुल से नाता जोड़ने वाला कपोलकल्पित वंशवृक्ष तैयार कर लिया। वह एक प्रकार का ढोंग था जो राजा से प्रजा तक मुसलमान बनाए गए प्रत्येक हिन्दू ने अपनाया। उसने यह बताना चाहा कि उसके पूर्वज कभी हिन्दू थे ही नहीं। वे तो आरम्भ से ही अरबस्थान, तुर्कस्थान या ईरान से आए मूल मुसलमान थे। उस नशे में वे यह भी भूल गए कि १४०० वर्ष पूर्व विश्व में कोई मुसलमान था ही नहीं। सारे हिन्दू थे। अतः प्रत्येक मुसलमान हिन्दू कुल का शिशु है।

तथापि मुसलमान बनाए गए हिन्दू राजा या सामान्य व्यक्ति को इस्लामी रीति-रिवाज सिखलाने वाले अरब, तुर्क, ईरानी आदि जो पराए मुसलमान थे वे नकली, ढोंगी, हेरा-फेरी की वंशबेली तैयार कर नए मुसलमान बने व्यक्ति से रट लगवाते थे कि "मैं कभी हिन्दू था ही नहीं। मैं तो आरम्भ से ही मुसलमान रहा हूँ। हिन्दू तो काफिर तथा कुत्ते होते हैं। उनसे सर्वदा तीव्र घृणा का ही व्यवहार करना चाहिए।"

मुसलमान बने सुल्तानों के दरबार में अनेक खुशामदकारों की भीड़ लगी रहती थी। सुल्तान को सन्तुष्ट कर इनाम, अधिकार, पद, पदवी या सम्पत्ति पाने के लालच से वे सुल्तान की निर्मूल प्रशंसा करने वाला नकली, कपोलकल्पित ब्योरा लिख देते। सुल्तान भी बिचारा क्या करे। वह उस प्रशस्ति को निजी दफ्तर में भेजकर लिखने वाले चाटुकार को कुछ इनाम देकर उन्हें टाल देता था।

दूर देशों से आने वाले ढोंगी मुसलमान

सन् १२०६ से १८५८ तक भारत में जो अनेक मुसलमान सुल्तान,
नवाब, निजाम, सरदार, दरबारी आदि पनपे उनका नाम सुनकर अरब
स्थान, ईरान, इराक, तुर्कस्थान, कझाकस्थान, उज्बेकिस्थान, अफगानि-
स्थान आदि से भूले-भटके उचक्के, अनपढ़, भिखारी या फकीर मुसलमान
भटकते-भटकते उन रईसों के दरबार में या महल में किसी नाई, धोबी, नौक-
रानी आदि से वसीला लगाकर पहुंच जाते। निजी विशेषता सिद्ध करने के
लिए वे किसी उजड़े हिन्दू मन्दिर से पत्थर में खुदे देव के चरण पादुका
उठा लेते या रास्ते की रेत भर लेते या किसी के बाल काटकर बांध लेते
और दरबारी या सुल्तान को कानाफूसी से कहला देते कि फलाना-फलाना
अब्दुल हमीद या अब्दुल मजीद मक्का की पवित्र रेत लाया है या मुहम्मद
पैगम्बर के पवित्र बाल लाया है या पैगम्बर के पैरों के चिह्न वाले पत्थर
लाया है। वह धौंस सुनकर बेचारा दरबारी या सुल्तान बड़ी उलझन में
पड़ जाता था। आया हुआ व्यक्ति लुच्चा, ढोंगी है यह जानते हुए भी यदि
वह उसे दुत्कार दे तो "पैगम्बर के बालों का या चरणचिह्नों का अपमान
भी सहन नहीं किया जाएगा" आदि हल्ला मचाकर वह उचक्का लोगों को
सुल्तान या दरबारी के विरुद्ध भड़का सकता था। अतः दरबारी या
सुल्तान, वह भूला-भटका ऐरा-गैरा व्यक्ति जो भी 'पवित्र' वस्तु भेंट लाया
हो, उसे चुपचाप रखवाकर द्वार पर आए अज्ञात पराए ढोंगी व्यक्ति को
ढोंग की तीव्रता के अनुसार कुछ न कुछ बख्शीश देकर ही रवाना करता
था। इस प्रकार भारत में कई स्थानों पर मुहम्मद पैगम्बर के जो चरण-
चिह्न या बाल आदि बतलाए जाते हैं या मक्का से लाई रेत या मिट्टी कही
जाती है उससे जनता सावधान रहे। हो सकता है कि लोगों को धोखा
दिया जा रहा हो। इस्लामी शासन में जनता पग-पग पर ठगी जाती है।
स्वयं बाबर ने बाबरनामे में एक घटना का उल्लेख किया है। किसी सूफी
फकीर की कब्र का नाम सुनकर बाबर उसका दर्शन करने गया। कब्र का
दर्शन ऊपर लटकी एक लकड़ी की पटरी पर खड़ा होकर किया जाता था।
उस कब्र का मुजावर बड़ा लुच्चा था। प्रेक्षकों को वह धौंस देता कि मृत
फकीर की आत्मा की शक्ति से उसकी कब्र हिलती है। वास्तव में प्रेक्षक

जब ऊपर टंगी लकड़ी की पटरी पर खड़ा होकर उस कब्र का दर्शन लेता
तो वहां के नौकर उस पटरी की निचली लोहे की डंडी पकड़कर उसे धीरे
आगे या पीछे ज़रा-सी सरका देते। इससे अनाड़ी, भावुक प्रेक्षक को आभास
होता था कि कब्र ही हिली हो। किन्तु बाबर बड़ा धूर्त था। उसने उस ठगी
को तुरन्त पहचान लिया।

सूफी फकीरों के सम्बन्ध में झूठा प्रचार

भारत में मुइनुद्दीन चिश्ती, सलीम चिश्ती, निजामुद्दीन, बख्तियार
काकी, मुहम्मद घौस, बाबा फरीद आदि कई फकीरों को बढ़ा-चढ़ाकर
सूफी सन्त कहा जा रहा है। और उन्होंने शान्ति, सभ्यता, सदाचार,
एकता, ममता आदि का प्रचार किया, ऐसा झूठा प्रचार किया जा रहा है।
इस हल्ले-गुल्ले में उनका वास्तविक चरित्र पढ़ने की किसी को सुधबुध न
रहे या विरोध करने की किसी की हिम्मत ही न हो, यह उस प्रचार का
मुख्य उद्देश्य है। ईसाई तथा इस्लामी परम्परा में सन्त उन्हें कहा गया है
जिन्होंने अत्यन्त क्रूरता से जबरन् हिन्दुओं को मुसलमान बनाया। उनके
जनानखाने में कई स्त्रियां भी होती थीं। उन्हें कई प्रकार के व्यसन थे।
उनका व्यवहार भी बड़ा घृणात्मक हुआ करता। गांधी-नेहरू युग में तथा-
कथित सूफी सन्तों के हीन तथा नीच कृत्यों को दबाकर उनके सन्त-
महात्मा होने का जो ढोल पीटा गया है वह इतिहास का एक बड़ा अन्याय
और अन्धेर है। उनके चरित्र का पूर्णतया तथा निष्पक्षता से निडर होकर
यदि अध्ययन किया जाए तो शायद सूफी-सन्त कहलाने वाला प्रत्येक
व्यक्ति रंगीला, क्रूर, दुरात्मा साबित होगा। अजमेर के मेयो कालिज के
प्रमुख के नेतृत्व में लगभग १०-१५ वर्ष पूर्व एक समिति गठित की गई थी।
उसे राजस्थान सरकार ने तथा अजमेर की मुइनुद्दीन चिश्ती दरगाह के
ट्रस्ट (वक्फ) ने लाखों रुपये का अनुदान दिया था। मुइनुद्दीन चिश्ती के
बड़प्पन का प्रचार करना इस समिति का उद्देश्य बताया गया था।

मैंने मेयो कालिज के प्रमुख को पत्र द्वारा चेतावनी दी कि वे एक
सत्यप्रिय इतिहासकार की भूमिका से मुइनुद्दीन चिश्ती का वास्तव चरित्र
लिखें तथा मुइनुद्दीन की कब्र एक प्राचीन ऐतिहासिक शिवमन्दिर में ही

बनी है या नहीं इसका शोध करें। उस परिसर के विविध द्वार अलाउद्दीन या शाहजहाँ द्वारा बनवाए गए हैं या वे प्राचीन शिवमन्दिर परिसर के हिन्दू द्वार हैं इसका भी शोध करें। सरकारी अनुदान के अन्तर्गत उन्हें किसी प्रकार सत्य को भूलकर या सत्य को दबाकर मुइनुद्दीन चिश्ती की खुशामद करने का ही कार्य कहा गया है ऐसे भ्रम में वे इस कार्य को न करें। बेचारे प्रिंसिपल (कॉलेज प्रमुख) ने मेरे पत्र का कोई उत्तर ही नहीं दिया। किन्तु इससे दो बातें स्पष्ट हुईं। एक तो यह कि स्वतन्त्र भारत में पाकिस्तान आदि को अलग करने पर भी इस्लाम की तुष्टि करने वाला झूठा इतिहास लिखते रहना ही कांग्रेस पक्षीय सरकार ने 'सत्यमेव जयते' की आड़ में अपना कर्त्तव्य समझ रखा है। दूसरा यह कि कॉलेज प्रमुख आदि सरकारी छाप विद्वान भी अपने आपको सत्य की बजाय असत्य का गुलाम समझे बैठे हैं। सत्य का पुरस्कार करने की उनमें हिम्मत ही नहीं है।

दरिद्रता से लुप्त दस्तावेज

भारत पर लगातार एक सहस्र वर्ष से अधिक मुसलमानों के तथा यूरोप के गोरे लोगों के जो आक्रमण हुए उनमें कई बार धनिक भारतीयों के घर, किले, बाड़े, मठ, मन्दिर आदि उजड़ते रहे। बेघर और दरिद्र बने वे लोग या तो अपने दस्तावेज साथ ले जा न सके या ले भी गए हों तो दरिद्रता के कारण एक-दो पीढ़ियों में वे निकम्मे पड़े दस्तावेज नष्ट हो गए।

खानगी दस्तावेज

भारत में सोमनाथ, उज्जयिनी, वाराणसी, प्रयाग, गया, मथुरा, वृन्दावन, हरिद्वार, नालंदा, कांचीपुरम्, मदुरई, बीजापुर आदि कई नगरों में अपार दस्तावेज थे। समय-समय पर इस्लामी आक्रमण, लूटपाट, मुसलमानों द्वारा लगाई आग आदि से वे नष्ट होते गए।

पड़ोसी देशों में भारत के दस्तावेज

भारत के ग्रन्थों आदि की प्रतिलिपियाँ तिब्बत, चीन, कोरिया, काम्बोज, स्याम, ब्रह्मदेश, मलयेशिया, जावा, सुमात्रा, बाली, बोर्नियों आदि कई देशों में विपुल मात्रा में विद्यमान थीं। इस्लामी आक्रमण के कारण

भारत से सम्बन्ध टूट जाने पर वह प्राचीन भारतीय साहित्य उन देशों से लुप्त या नष्ट होता गया। यत्न करने पर अभी भी उस साहित्य का तथा सोमनाथ के पवित्र शिवलिंग आदि लूटी वस्तुओं तथा सम्पत्ति का पता लगाया जा सकता है। विदेशों में नियुक्त भारतीय राजदूतों को वह कार्य सौंपना चाहिए। किन्तु जब तक भारत में इस्लाम समर्थक कांग्रेस पक्ष का शासन है तब तक इस प्रकार की देशहितकारी कृतियों की अपेक्षा करना निरर्थक है।

प्राचीन इतिहास ग्रन्थ

भारत के शत्रुओं द्वारा ग्रन्थ सामग्री, इतिहास तथा दस्तावेजों का अपार नाश होने पर भी कल्हण लिखित राजतरंगिणी, बाणभट्ट लिखित हर्षचरित, चन्द्रवरदाई लिखित पृथ्वीराज रासो, चाणक्य लिखित अर्थशास्त्र आदि कई महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ आज भी उपलब्ध हैं।

प्राचीन शास्त्रीय साहित्य

शत्रु द्वारा अपार नाश किए जाने पर भी आयुर्वेद, स्थापत्य, विद्या, संगीत, पशुपालन, गणित, यन्त्रविद्या, धातुसाधन आदि विविध औद्योगिक शाखाओं का साहित्य तथा वेद, उपनिषद, पुराण, भगवद्गीता आदि अपार प्राचीन संस्कृत वैदिक साहित्य अभी भी उपलब्ध है। किन्तु इस सारे साहित्य की पूर्णतया उपेक्षा हो रही है। उदाहरणार्थ आयुर्वेद मृत्युपथ पर है। जिस वैदिक स्थापत्यशास्त्र के अनुसार प्राचीन विश्व के विशाल महल, बाड़े, किले, पुल, मीनार, सरोवर आदि बनाए गए उसके लगभग ५०० संस्कृत ग्रन्थ आज विद्यमान होते हुए भी वर्तमान भारत में वह विद्या सिखलाने वाला एक भी विद्यालय नहीं है, यह कितनी लज्जा की बात है। वर्तमान कांग्रेसी शासन की देशद्रोहिता तथा वैदिक संस्कृति की उपेक्षा का इससे अधिक घृणित और क्या उदाहरण हो सकता है।

निराधार कल्पनाएँ

वर्तमान इतिहास अधिकतर मुसलमान तथा यूरोप के गोरे ईसाइयों ने ऊटपटांग निजी विचारधारा के अनुसार लिखा होने से कबाड़ी की गठरी की तरह वह अनेक असंगत, असम्बद्ध, नए-पुराने, छोटे-मोटे सिद्धान्तों का जमघट बना हुआ है।

मुसलमान तथा ईसाइयों की अयोग्यता

सामान्यतया मुसलमान तथा ईसाइयों में इतिहासकार कहलाने योग्य लक्षण या गुण नहीं होते हैं। क्योंकि वे ईसा या मुहम्मद से जुड़े होते हैं। मुहम्मद या ईसा जैसा व्यक्ति कभी हुआ नहीं और होगा भी नहीं, ऐसी उनकी धारणा होती है। कुरान जैसा ज्ञान अन्यत्र हो ही नहीं सकता अतः अन्य सारा साहित्य जलाने योग्य है, इस मन्तव्य से प्रभावित मुसलमान हमलावर जहाँ भी गए वहाँ वे प्रत्येक ग्रन्थालय को आग ही लगाते गए। इस्लाम के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति, वस्तु या विषय का इतिहास लिखना निरर्थक है ऐसा मुसलमान मानते हैं। पाकिस्तान (कराची) से प्रकाशित Pakistan Historical Journal के अंक देखें। उनमें इस्लाम के अतिरिक्त क्वचित् ही कुछ होता है। इस्लाम के १३६५ वर्ष और पाकिस्तान निर्मिती के ४० वर्ष इन पर ही उनका ध्यान केन्द्रित रहता है। उनके लिए वही ऐतिहासिक काल की परिसीमा है।

मुसलमानों तथा ईसाइयों का दूसरा अवगुण यह है कि उनके पंथ वैदिक सभ्यता से तीव्र शत्रुता बरतते रहे हैं। ऐसे लोग कदापि निष्पक्ष अध्ययन, संशोधन या लेखन नहीं कर पाएँगे।

इतिहासकार की भूमिका के लिए मुसलमान तथा ईसाई पन्थी लोगों का तीसरा अवगुण यह है कि उनकी परम्परा केवल १४०० या १६०० वर्षों की होने से उन्हें मुहम्मद या ईसा से पूर्व का लाखों वर्ष का इतिहास सर्वथा अज्ञात है। किसी घर का एक चार वर्षीय बालक जैसे अपने दादा-परदादाओं का इतिहास कहने में असमर्थ होगा उसी प्रकार केवल १४०० या १६०० वर्षों की परम्परा वाले ईसाई या इस्लामी लोगों का प्राचीन इतिहास के विषय में अज्ञानी तथा अनभिज्ञ होना स्वाभाविक है।

अज्ञान तथा अयोग्यता के परिणाम

वैदिक सभ्यता के पास जिस प्रकार सृष्टि निर्माण के दिन से कृत-त्रेता-द्वापर तथा कलियुग का सुसूत्र अखण्डित इतिहास है उस प्रकार का इतिहास न होने से यूरोप के विद्वान जीवोत्पत्ति के डार्विन जैसे जीवशास्त्री के अनुमान को इतिहास से जोड़ देते हैं। तत्पूर्व भौतिक सृष्टि का निर्माण कैसे हुआ? इस प्रश्न के उत्तर के लिए वे आधुनिक पाश्चात्य भौतिक-शास्त्रियों का अनुमान जोड़ देते हैं। वे कहते हैं कि आकाश में करोड़ों वर्ष पूर्व एक विशाल अग्निगोल गुब्बारे जैसा उड़ रहा था। उसमें यकायक विस्फोट हुआ। उस धमाके से जो धज्जियाँ उड़ीं वे विविध ग्रह, तारका इत्यादि बन गए।

इस तरह के अनुमान कभी इतिहास नहीं कहलाते। शिवाजी, राणा प्रताप, नेपोलियन आदि जैसे व्यक्तियों की जीवनी के सम्बन्ध में सुना-सुनाया या लिखित ब्यौरा न हो तो क्या कल्पना दौड़ाकर उनका इतिहास लिखा जा सकता है?

यदि किसी सूतिकागृह में, किसी बालक का जन्म हुआ तो उसके घराने का इतिहास क्या डार्विन जैसा कोई जीवशास्त्री उस परिसर के कीड़े-मकोड़े जाँचकर लिख सकेगा? या कोई भौतिक शास्त्री उस परिसर की मिट्टी तथा चट्टानें जाँचकर उस बालक के घर-बार का इतिहास लिख सकेगा?

किसी विद्यालय में यदि इतिहास का अध्यापक अनुपस्थित हो तो क्या डार्विन जैसा कोई जीवशास्त्री या कोई भौतिक शास्त्री छात्रों को उस

दिन इतिहास का पाठ पढ़ा सकेगा।

यूरोप के गोरे ईसाइयों को डार्विन या भौतिकशास्त्रियों के अनुमान जोड़कर जैसे-तैसे उनके इतिहास की त्रुटि इसलिए पूरी करनी पड़ती है कि उनकी अपनी इतिहास परम्परा सन् ३१२ के लगभग ईसाई पन्थ के प्रसार से ही आरम्भ होती है। इससे पूर्व क्या था यह उनकी परम्परा में उल्लिखित न होने से वे बेचारे किसी तरह से उस न्यून को पूरा करने का यत्न करते रहे हैं।

फिर भी इससे कहाँ काम चलता है। डार्विन के अनुसार छोटे जीवों का रूपान्तर बड़े जीवों में होते-होते बन्दर से मानव का निर्माण हुआ। इस वनमानव ने किसी प्रकार सामाजिक तथा राजनयिक व्यवस्था बनाकर सीरिया, असीरिया आदि राष्ट्र चार या पाँच सहस्र वर्ष पूर्व बना लिए। यह है आधुनिक इतिहास का ढाँचा जो विविध पाश्चात्य विद्वानों के कपोल-कल्पित अनुमानों के टुकड़े-टुकड़े जोड़कर किसी प्रकार सँवारा गया है।

वैदिक परम्परा में कहा इतिहास

वैदिक परम्परा में तो सृष्टिनिर्माण से पूर्व सर्वत्र घना अँधेरा तथा स्तब्धता और निश्चलता थी, ऐसा कहा है। यकायक वायु बहने लगी। तब शेषशायी भगवान विष्णु प्रकट हुए। उनके नाभिकमल से ब्रह्मा तथा उनकी भार्या सरस्वती अवतरित हुए। उनसे मनु का जन्म हुआ। कई प्रजापति तथा मातृकाएँ निर्माण हुईं। उनसे मानवों की जो पहली पीढ़ी निर्माण हुई वे कृतयुग के देवतुल्य मानव थे। अतः उनमें आयुर्वेद के प्रणेता धन्वन्तरी, यन्त्रशास्त्र, स्थापत्य विद्या आदि के जानकार विश्वकर्मा, संगीत आदि कला में प्रवीण गन्धर्व थे।

इस प्रकार वैदिक परम्परा के अनुसार देवसमान ज्ञानी अवस्था से मानव का निर्माण होकर त्रेता, द्वापर तथा कलि आदि युगों में मानव का अधःपतन ही होता रहा है। सृष्टि के क्रम को देखते हुए यह ठीक भी लगता है। क्योंकि यन्त्रणा नई हो तब वह अच्छी चलती है। किन्तु समय के साथ-साथ उस वस्तु में, यन्त्र में या मानव में गिरावट आने लगती है।

'कृतयुग' नाम की सार्थकता

ऊपर कहे इतिहास से आरम्भ के युग का नाम 'कृत' अर्थपूर्ण सिद्ध होता है। क्योंकि आरम्भ में स्वयं भगवान ने पृथ्वी, ग्रह, तारका, सूर्य, चन्द्र तथा जीवसृष्टि का आरम्भ किया। तत्पश्चात् जीवनचक्र चल पड़ा। व्यावहारिक दृष्टि से वह ठीक भी लगता है। क्योंकि किसी को कुक्कुट-पालन का व्यावसाय करना हो तो उसे कुक्कुट, मुर्गियाँ, अण्डे आदि मूलतः कहीं-न-कहीं से लाने ही पड़ते हैं, तभी उनका प्रजनन आगे आरम्भ होता है। इसी प्रकार भगवान ने प्रजापति, मातृकाएँ, बालक आदि सारे जीवों की प्रथम पीढ़ी स्वयं निर्माण कर इस जीवनचक्र को चलाया।

वेद क्यों और कैसे दिये?

देवतुल्य प्रथम पीढ़ी निर्माण करते ही इस मर्त्यलोक में जीवन बसर करने के लिए आवश्यक ऐसी सारी शाखाओं का सम्पूर्ण ज्ञान ग्रन्थ भी ईश्वर ने उस प्रथम पीढ़ी को रटाया तथा लिखवा भी दिया। यह भी सब प्रकार से उचित था। जैसे कोई पिता निजी सन्तान को भावी प्रवास की पूरी तैयारी हेतु कुछ बातें रटवा देता है और लिखित रूप में भी उपलब्ध कराता है।

मानवीय व्यवहार का दूसरा भी एक उदाहरण दिया जा सकता है। जब कोई व्यक्ति बाजार से मोटर, फ्रिज, टी० वी० या रेडियो जैसा यन्त्र खरीदने जाता है तो उसे उस यन्त्र के साथ उस वस्तु की यन्त्रणा की पुस्तक भी अवश्य मिलती है। ग्राहक उसे लेकर कहीं रख छोड़ता है क्योंकि वह यन्त्र-तन्त्र उसे कतई समझ नहीं आता। केवल उस यन्त्र के उपयोग की ही उसे आवश्यकता होती है। पुस्तक में लिखी तान्त्रिक बातें वह समझ नहीं पाता। वेदों की बाबत वही समस्या है। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों की अपार-असीम यन्त्रणा का सर्वांगीण ज्ञान सीमित शब्दों के सांकेतिक संक्षेप में जिस भण्डार में ग्रन्थित है उस समस्त ग्रन्थ सम्पदा का नाम है—वेद। उसमें धनुर्वेद यानि प्रक्षेपास्त्रों की विद्या भी अन्तर्भूत थी। उस मूल ज्ञान-भण्डार के कई भाग लुप्त भी हो गए हैं। जैसे ग्रन्थालयों में रखी कई पुस्तकें विविध कारणों से लुप्त या नष्ट हो जाती हैं।

प्रथम मानवीय पीढ़ी के साथ ही वेद दिए जाने से उनमें किसी प्रकार की ऐतिहासिक या भौगोलिक सामग्री नहीं है। वेदों में केवल सर्वशाखाओं का उच्चतम शास्त्रीय ज्ञान तथा मानव जीवन के नीति-नियम अन्तर्भूत हैं।

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों की सकल विद्याशाखाओं का मिलाजुला उच्चतम शास्त्रीय ज्ञान का भण्डार होने से वेद किसी को समझ नहीं आते। इसके शब्दों या ऋचाओं का जो अर्थ लगाया जाता है वह केवल एक ऊपरी अर्थ है।

वेदों की अद्‌भुतता का प्रमाण

विश्व में अनादिकाल से वेदों को बड़े भक्तिभाव तथा कर्त्तव्यबुद्धि से पीढ़ी-दर-पीढ़ी मुखोद्‌गत रखने की परम्परा लाखों पण्डित घराने चलाते आए हैं। क्या यह एक दैवी चमत्कार नहीं है? उन्हें किसी भी प्रकार का प्रलोभन नहीं था। न ही किसी तानाशाह के दबाव से वे उस कर्त्तव्य को निभाते थे। उस जीवन में उन्हें निर्धन रहना पड़ता था। वे किसी प्रकार का व्यसन भी नहीं करते थे। उन ऋचाओं का अर्थ भी वे भली प्रकार नहीं जानते थे। तथापि वेद मुखोद्‌गत रखने का अपना कर्त्तव्य वे बड़ी प्रसन्नता, श्रद्धा, विनयशीलता तथा सुशीलता से परम्परागत निभाते रहते थे। वेदों में यदि कोई दैवी शक्ति या प्रेरणास्रोत नहीं होता तो वेदपाठियों की परम्परा निर्माण ही नहीं होती और न ही लाखों वर्ष इस प्रकार बिना हिचकिचाहट अखण्ड चलाई जाती।

बिना समझे मुखोद्‌गत रखने का लाभ?

अनेक विद्याओं के परमोच्च ज्ञान का सम्मिश्रण, ऐसा वेदों का स्वरूप होने के कारण, यदि वेद किसी की समझ में आना अशक्य हो तो उन्हें मुखोद्‌गत रखने से क्या लाभ? ऐसा प्रश्न उठाया जा सकता है।

इसका विवरण समझने हेतु हम एक व्यवहारी उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। समझ लीजिए कि किसी अज्ञात स्थान पर रखे गुप्त धन के भण्डार की क्लिष्ट सांकेतिक चिह्नों की कुंजी किसी के हाथ लग गई तो वह क्या उसे निकम्मी समझकर फेंक देगा? वह तो रोज बारीकी से उसका निरीक्षण, अध्ययन कर उन चिह्नों में अंकित सूचनाओं का हल निकालना चाहेगा। इसी प्रकार वेदों का ज्ञान भण्डार चाहे किसी की समझ में आए या न आए, उसे मुखोद्‌गत कर सुरक्षित रखना ही अपने आपमें एक बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य उर्फ कर्त्तव्य है।

क्या वेद प्रदान समय लेखन शैली अज्ञात थी?

वेद मुखोद्‌गत करने की परम्परा के कारण कई विद्वानों ने ऐसा निष्कर्ष प्रकट किया है कि उस समय लेखन कला अवगत नहीं थी। जिस सर्वशक्तिमान परमात्मा ने मानव की प्रथम पीढ़ी को वेद का ज्ञान-भण्डार उपलब्ध कराया क्या वह लिपि जैसी सामान्य बात भी मानव को सिखा नहीं पाया? नाटक जब रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाता है तो उसमें विविध पात्र अपने-अपने सम्भाषण मुखोद्‌गत करके बोलते हैं। इससे क्या यह कहना ठीक होगा कि नाटक बिना लिखे ही नाटककार ने विविध पात्रों को उनके अपने भाषण रटा दिए थे। कोई भी साहित्य तभी मुखोद्‌गत होगा जब वह प्रथम लिखित तैयार हो।

शेषशायी विष्णु के चित्र में ब्रह्माजी हाथ में 'वेद' की पोथी लिए दिखाए जाते हैं। क्या इससे यह बात स्पष्ट नहीं होती कि मुखोद्‌गत कराने से पूर्व वेद लिखित रूप में ही उपलब्ध कराए गए।

वेदों की ऋचाओं की संख्या, शब्दों की संख्या आदि का पक्का हिसाब अनादिकाल से रखा गया है। ऐसा हिसाब लगाना तभी शक्य हो सकता है जब ऋचाएँ लिखकर उनका निरीक्षण किया जाए।

वेदों से ज्ञान पाने की तीन शर्तें

वेद तो अनेक उच्चतम् विद्याओं का मिला-जुला भण्डार होने के कारण वेदों से किसी एक विद्या के उच्चतम सिद्धान्त या तत्व अलग कर उन्हें ग्रहण करना किसी सामान्य व्यक्ति के वश की बात नहीं है।

(१) वेदों से किसी विशिष्ट शाखा का उच्चतम ज्ञान पाने के लिए संस्कृत भाषा में प्रवीणता आवश्यक है क्योंकि वेद संस्कृत भाषा में लिखे गए हैं।

(२) वेदों से ज्ञान ग्रहण करने का इच्छुक व्यक्ति भौतिकशास्त्र, गणित, रसायनशास्त्र आदि किसी एक विद्याशाखा में उच्चशिक्षा प्राप्त

किया होना चाहिए तभी उसे उस शाखा के कुछ अगले सिद्धान्तों का ज्ञान वेदों से प्राप्त हो सकता है।

(३) तीसरी शर्त यह है कि एकाध वेदमन्त्र के ऊपर चिन्तन मनन करते-करते जिसकी समाधि लग जाती है वही वेदों से कुछ उच्च ज्ञान संकेत पा सकता है।

ऊपर जो तीन शर्तें हमने कहीं हैं उनका एक प्रत्यक्ष उदाहरण भी है। दो पीढ़ी पूर्व पुरी में भारती कृष्णतीर्थ शंकराचार्य थे। वे संस्कृत के विद्वान थे तथा गणित में भी प्रवीण थे। सर्वसंग परित्याग किए हुए संन्यासी होने के कारण वेद ऋचाओं के मनन-चिन्तन में उनकी समाधि भी लग जाती थी। अत: उन्हें वेद ऋचाओं में गणित के जटिल प्रश्न छुड़ाने के कई नियम ज्ञातहुए, जो उन्होंने वैदिक गणित (Vedic Mathematics) ग्रन्थ प्रकाशित कर प्रस्तुत किए हैं।

वैदिक काल

वर्तमान समय में कई विद्वान निजी भाषणों में Vedic Times यानि वेद उत्पत्ति काल का उल्लेख करते रहते हैं। यद्यपि वे उस काल का निश्चित निर्देश नहीं करते लेकिन उनका मन्तव्य होता है कि लगभग १२०० B.C. (यानि ईसवी सन् पूर्व १२०० वर्ष) के आसपास वेदों की रचना हुई। ईसापूर्व १२०० वर्ष उन्होंने कैसे या क्यों मान लिया ? क्योंकि अंग्रेजों के शासन में Maxmuller साहब ने वेदों को ईसापूर्व १२०० वर्ष में निर्मित बताया। मैक्समूलर ने जब वह मत प्रकट किया तब अंग्रेज भारत के शासक बन चुके थे। अत: अंग्रेज अधिकारियों का प्रत्येक निष्कर्ष शिरोधार्य माना गया। मैक्समूलर यद्यपि जर्मन था, वह आंग्ल शासन का कर्मचारी था। वेदों को ईसापूर्व १२०० वर्ष का मानना हमें सम्मत नहीं। वेदकाल यानि सृष्टि उत्पत्ति काल यही हमारी धारणा है क्योंकि सृष्टि-निर्माण अथवा प्रथम मानवीय पीढ़ी के निर्माण के समय ही वेदों का ज्ञान भण्डार मानवों को दिया जाना अनिवार्य था। वेदों के मार्गदर्शन के बिना मानवीय जीवन दिशाहीन तथा ध्येयहीन हो जाता।

वेदप्रदान का चमत्कार कैसे हो सकता है ?

वेद जैसा अपूर्व ज्ञानभण्डार मानव की प्रथम पीढ़ी को दिया जाना एक अद्‌भुत चमत्कार है। ऐसा चमत्कार होना अशक्य है। अत: वेद गडरियों के ही उत्स्फूर्त काव्य होने चाहिएँ ऐसा तर्क सामान्य विद्वान प्रस्तुत करते रहे हैं। उन्हें हम कहना चाहेंगे कि आकाश में चमकने वाली असंख्य तारिकाएँ, अनगिनत सूक्ष्म तथा स्थूल प्राणियों का जीवन-मृत्यु का अखण्ड चक्र आदि कई चमत्कार जब हम प्रतिदिन-प्रतिक्षण होते देख रहे हैं तो उनमें वेद जैसे ईश्वरीय ज्ञान-भण्डार की मानव की प्रथम पीढ़ी को प्राप्ति भी और एक चमत्कार असम्भव क्यों माना जाए। मानव तथा अन्य प्राणी कहाँ से निर्माण होते रहते हैं और कहाँ लुप्त होते रहते हैं इस समस्या का हल मानव जब नहीं कर पा रहा है तो परमात्मा ने वेद किस प्रकार दिए इसका उत्तर न पाना भी कोई आश्चर्य की बात नहीं।

क्या प्राचीन वर्ष दस महीनों का ही था ?

प्राचीनकाल में पाश्चात्य देशों में भी भारत की तरह चैत्र शुक्ल प्रतिपदा ही नववर्ष दिन माना जाता था। वह मार्च मास में पड़ता है अत: मार्च प्रथम मास माना गया। इंग्लैण्ड में तो सन् १७५२ तक मार्च २२ ही नववर्ष दिन माना जाता था। इसी कारण सप्ताम्बर, अष्टाम्बर, नवाम्बर, दशाम्बर (September, October, November, December), यह नाम ७वें, ८वें, ९वें, १०वें महीनों के द्योतक हैं। तत्पश्चात् मार्गशीर्ष तथा पौष ११वें और १२वें मास गिनकर मार्च प्रथम मास माना जाता था।

उस विस्मृत क्रम को न समझने वाले कुछ विद्वान कहते रहे हैं कि प्राचीनकाल में मार्च से दिसम्बर तक दस महीनों का ही वर्ष होता था। उनका वह मन्तव्य इस कारण गलत है कि यदि दस महीनों का ही वर्ष माना जाता तो हर मास ३६।। दिन का होता।

मार्च मास का नाम मरीचि (सूर्य) से पड़ा है। आंग्ल सैनिकी परि-भाषा में सैनिकों को 'चल पड़ो' ऐसी आज्ञा देनी हो तो कहते हैं MARCH। प्राचीन वर्ष जिस मास से चल पड़ता था उसे मरीचि उर्फ MARCH कहते-कहते उस शब्द का अर्थ प्रवास पर 'चल पड़ना' हो गया।

सप्तम-अष्टम-नवम-दशम ऐसे नाम होते हुए भी विद्यमान यूरोपीय मास गणना में वे मास ९वें, १०वें, ११वें तथा १२वें क्यों गिने जाते है ? यह समस्या ही अधिकतर विद्वानों को अज्ञात रहती है। उत्तर यह है कि मार्च से फरवरी तक, जब वर्ष के १२ मास गिने जाते थे तब सप्तम, अष्टम, नवम, दशम, यह क्रम ठीक बैठता था। उस क्रम को तोड़कर जब जनवरी से वर्ष गणना आरम्भ कर मार्च तीसरा महीना कहलाने लगा तब ७वें, ८वें ९वें, १०वें नाम वाले मास ९वें, १०वें, ११वें तथा १२वें बनकर रह गए।

यूरोप को भारतीय विद्या क्या अरबों ने सिखलाई ?

पाश्चात्य विद्वानों में यह धारणा प्रचलित है कि भारत की विद्याएँ उन्हें अरबों ने सिखाई। अल्-कोहल् (Alcohol), अल्केमि (Al-chemy), अल्-जेब्रा (Algebra), अस् दमा (Asthama) आदि शब्दों पर उनका वह निष्कर्ष आधारित है। वह धारणा दो अन्य गलत कल्पनाओं पर आधारित है।

एक गलत कल्पना यह रही है कि भूले-भटके अरबी व्यापारी, चोर, डाकू, उचक्के आदि भारत को आते-जाते विद्याएँ सीख लेते और वापस लौटने पर अन्य अरबों को उन विद्याओं में प्रवीण करते। तत्पश्चात् वे अरब यूरोप के विविध देशों में जाकर उन्हें भारतीय विद्याएँ सिखाते।

वह धारणा सर्वथा निराधार है। किसी व्यापारी को कोई विद्या सीखने की इच्छा भी नहीं होती, क्षमता भी नहीं होती और समय भी नहीं होती। विद्या कोई ऐसी कला नहीं होती जो चलते-फिरते व्यापार करते-करते सीखी जा सकती हो। उन दिनों सागरीय प्रवास में कई महीने बीत जाते। प्रवास में सुविधाएँ कम होतीं और सुरक्षा का अभाव होता था। ऐसी अवस्था में थोड़ा बहुत जो सीखा हो उसे भी व्यक्ति भूल जाता था। स्वदेश लौट जाने के पश्चात् व्यापारी व्यापार करेगा या लोगों को सिखाता फिरेगा ? दूसरों को पढ़ाने की क्षमता शिक्षक में तभी आ सकती है जब वह स्वयं ज्ञानी बन जाए। अतः अरब व्यापारियों ने स्वयं भारतीय विद्याएँ ग्रहण कीं और यूरोप के लोगों को पढ़ाईं, यह सार्वमान्य धारणा पूर्णतया निराधार है।

दूसरी अव्यक्त तथा धुँधली धारणा यह है कि वे अरब जिन्होंने भारतीय विद्याएँ स्वयं सीखकर यूरोप को पढ़ाईं वे मुसलमान थे। वह कल्पना भी सर्वथा निर्मूल है। सातवीं शताब्दी में जब अरबों को जुल्म-जबरदस्ती से मुसलमान बनाया गया तब से अरब लोगों की सभ्यता, विद्याएँ आदि नष्ट होती गईं। अरब लोग निरक्षर, क्रूर, लुटेरे बन गए। विविध देशों पर डाका डालना, उन्हें लूटना, जलाना और वहाँ के लोगों को कठोर व्यवहार से मुसलमान बनने पर बाध्य करना, यही उनका एक-मात्र धन्धा रह गया। केवल कुरान पढ़ना ही विद्वत्ता का लक्षण बन गया।

अतः जो भी भारतीय विद्याएँ यूरोप के लोगों ने अरबों से सीखीं वे ७वीं शताब्दी से पूर्व सीखीं। तब तक अरब लोग हिन्दू होते थे। अरब यह केवल एक प्रादेशिक जाति थी। उस समय वे वेदशास्त्र पारंगत होते थे। अरब प्रदेशों में सर्वत्र भारतीय विद्याएँ ही पढ़ाई जाती थीं। अरबों के Palestine प्रदेश का नाम पुलस्तिन् ऋषि से पड़ा है।

सारे अरब प्रदेश में सातवीं शताब्दी से पूर्व भारतीय विद्यालय होते थे। अलेक्जेंड्रिया, काहिरा, मक्का, मदीना, दमस्कस, बगदाद आदि नगरों में जो वेद विद्यालय होते थे वे समीप होने के कारण उनमें यूरोप के लोग भरती होकर भारतीय विद्याएँ सीखते थे।

शून्य का आकड़ा भारत से सीखा

वर्तमान विद्वानों में जो अनेक टूटी-फूटी, कच्ची-पक्की धारणाएँ प्रचलित हैं उनमें एक यह भी है कि विश्व के लोग १ से ९ तक के आंकड़े तो जानते थे किन्तु उन पर शून्य (०) लगाकर उनका मूल्य बढ़ाने की विधि भारत ने उन्हें सिखाई। वह धारणा गलत है। क्या वे विद्वान कह सकेंगे कि आठ सौ, एक हजार या दो हजार वर्ष पूर्व फलाने भारतीय विद्वान् ने किसी विदेशी विद्वान् को प्रथम बार शून्य का उपयोग सिखाया ? वैसा कोई प्रमाण नहीं है। विद्वानों में ऐसी कई निराधार धारणाएँ दृढ़मूल हो गई हैं। किन्तु बारीकी से उनकी जांच करने पर वे 'केवल अफवाहें सिद्ध होती हैं।

इस ग्रन्थ में सर्वांगीण प्रमाणों द्वारा हम यह सिद्ध कर चुके हैं कि

आरम्भ से सारे विश्व में वैदिक सभ्यता ही थी। वैदिक परम्परा में वेदों के शब्दों की संख्या का हिसाब रखा जाता है। वह संख्या लाखों की होने से उसमें कई शून्यों का अन्तर्भाव होता है। वही वेद-पठन की प्रथा विश्व के दूसरे देशों में भी थी। अतः शून्य का प्रयोग सारे लोग करते थे। किन्तु महाभारतीय युद्ध के पश्चात् जब गुरुकुल शिक्षा यकायक कई प्रदेशों में बन्द हो गई तब वहाँ के लोग सारी गिनती भूलकर केवल १ से ९ तक के आंकड़े ही लिखते रहे। कुछ समय पश्चात् उनके विद्यालय जब फिर खुल गए तब वे शून्यसहित सारे आंकड़े पुनः लिखने लगे।

आर्यों का आगमन

आर्य नाम की कोई विशिष्ट जाति थी। वे ऊँचे कद के गोरे लोग थे। वे यूरोप तथा भारत में जाकर बस गए। ऐसी एक अफवाह इतिहास में पाश्चात्य विद्वानों ने रूढ़ कर रखी है। यद्यपि वह निराधार है। इसे विद्वानों द्वारा उखाड़ फेंकना बड़ा कठिन कार्य हो गया है। क्योंकि उनकी सारी सिखलाई ही उस कपोलकल्पित सिद्धान्त पर आधारित है। जब आर्य लोग भारत में आए तब फलानी बात हुई—इस तरह के वक्तव्य दिए जाते हैं। यदि उन्हें पूछा जाए कि आर्य लोग भारत में कब आए, कहाँ से आए, क्यों आए, कैसे आए? तो वे कुछ भी बता नहीं पाते।

स्कूल, कॉलिज की कई परीक्षाओं में प्रश्न पूछा जाता है कि आर्य लोग कौन थे? इसकी चर्चा करो। इस पर हास्यास्पद उत्तर यह लिखा जाता है कि "आर्य नाम के कोई अज्ञात लोग थे, वे किसी अज्ञात स्थान पर रहा करते थे, उनकी भाषा कौन-सी थी हम नहीं जानते, वे कौन-सी लिपि लिखते थे इसका भी पता नहीं। वे उस अज्ञात स्थान से किसी समय चल दिए। उनके प्रस्थान का कारण हम नहीं जानते। उनकी एक टोली यूरोप की ओर गई, दूसरी भारत की ओर आई। शायद आर्यों का निष्क्रमण दो बार हुआ। कितने हजार वर्ष पूर्व वह घटना हुई हम नहीं जानते।" इस प्रकार आर्यों के सम्बन्ध में यह पता नहीं, वह पता नहीं, फिर भी आर्य नाम के कोई लोग अवश्य थे ऐसा दावा किया जाता है। आर्यों की बाबत इस प्रकार का सर्वथा अनिश्चित विवरण देकर ही सारे विद्वान् बड़ी-बड़ी

शैक्षणिक पदवियाँ पाकर अनेक अधिकारिक पदों पर बैठे हुए हैं।

उन्हें हम कहना चाहेंगे कि आर्य किसी कुल या जाति का नाम नहीं है। आर्य संस्कृत भाषा का शब्द है। री धातु है जिसका अर्थ है किसी वस्तु को बढ़ाना, वृद्धिगत करना, संगोपन करना, पुष्ट करना, समृद्ध करना आदि। इसके पीछे 'आ' लगाने से आर्य शब्द बनता है। परोपकार, त्याग, सेवाभाव, स्वच्छता आदि जो अच्छी भावनाएँ मानव के मन में निवास करती हैं उन्हें बढ़ाकर आत्मा का महात्मा और महात्मा का परमात्मा बनाना—इस विचारधारा को आर्य-प्रणाली कहा जाता है। किसी जाति या कुल के व्यक्ति उसे अपना सकते हैं। अतः हब्शी, अरब, मुगल आदि किसी भी वंश, वर्ण, कुल या जाति के लोग आर्य प्रणाली अथवा विचारधारा को अपना सकते हैं। इतना ही नहीं, अपितु 'कृण्वन्तो विश्वंआर्यम्' इस आदेश में सारे मानवों को वैदिक नियमानुसार आचरण कर आर्य बनने को कहा गया है। तदनुसार गो पूजा, दान, धर्म, सेवाभाव, कर्त्तव्यतत्परता, कर्म सिद्धान्त, आदि आर्यधर्म के कुछ लक्षण कहे जा सकते हैं।

आर्य नाम की कोई जाति नहीं थी इसका और एक उदाहरण देखें। भारत में आर्यसमाज नाम का संगठन इसलिए स्थापन हुआ कि वैदिक सनातन आचार-प्रणाली का नाम ही आर्य धर्म है।

दूसरा प्रमाण यह है कि आर्य यदि कोई जाति होती तो आर्यसमाज संगठन का पहला नियम यह होता की द्रविड़, मुगल, हब्शी आदि अन्य वंश के लोग आर्यसमाज के सदस्य नहीं बन सकते। आर्य समाज संगठन का सदस्य तो कोई भी बन सकता है। अतः आर्य किसी जाति विशेष का नाम नहीं है।

आर्य को जाति मानने से हुआ हाहाकार

गलत इतिहास पढ़ाने से भयंकर आतंक मच सकता है। इसका उदाहरण जर्मनी के तानाशाह हिटलर के जीवन में पाया जाता है। यूरोप के विद्वानों ने आर्य बड़े बुद्धिमान, बलवान, श्रेष्ठ, गोरे लोग थे—ऐसा हल्ला-गुल्ला मचाकर अपने आपको अन्य मानवों से श्रेष्ठ समझा। इस सिखलाई से प्रभावित हुए जर्मन तानाशाह हिटलर ने ज्यू लोगों को हीन व अनार्य समझकर उनकी सारी

जाति नष्ट करने के उद्देश्य से ६०-७० लाख लोग मरवा डाले। वास्तव में ज्यू लोग तो द्वारिका प्रदेश से निर्वासित हुए यदु लोग हैं। उनके नेता भगवान कृष्ण तो आर्यधर्म के उद्गाता तथा प्रवक्ता थे। उनके यदु लोगों को अनार्य कहकर नष्ट करने का यत्न करना कितना घोर अन्याय था। गलत इतिहास पढ़ाने से इतना बड़ा हाहाकार भी होता है, यह हिटलर की जीवनी से सीखा जा सकता था।

उधर भारत में महमूद गजनवी से बहादुरशाह जफर तक जो अनेक अपार अत्याचार हुए उन्हें भारत की सभ्यता में इस्लाम का योगदान कहकर गौरवान्वित करने का रवैया गांधी-नेहरू युग से भारत में रूढ़ करना इतिहास से दूसरे प्रकार का खिलवाड़ है। इससे भारत में शत्रुता भरी इस्लामियत को प्रोत्साहन देकर हिन्दुत्व की जड़ें खोदने के प्रयास को देशभक्ति तथा समताभाव का लाड़ला नाम दिया जा रहा है।

तौलनिक भाषाशास्त्र एवं तौलनिक दन्तकथाएं

अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में सर विलियम जोन्स तथा अन्य आंग्ल विद्वानों ने यूनान, रोम, ईरान आदि देशों की प्राचीन भाषाएं तथा दन्तकथाएं भारत की संस्कृत भाषा तथा पौराणिक कथाओं से मिलती-जुलती है, यह देखकर Comparative Philology तथा Comparative Mythology इस नाम की दो नई विद्याशाखाएं स्थापित कीं। भारत के विद्वानों के मन उस समय भयंकर न्यूनगंड से ग्रस्त थे। ब्रिटेन का भारत पर शासन लागू होने के कारण अंग्रेज बड़े विद्वान समझे जाने लगे। अत: Comparative Philology तथा Comparative Mythology यह दो नयी विद्याशाखाएं स्थापित होना अंग्रेजों के दो बड़े शोध माने गए। भारतीय विद्वान बड़े प्रभावित हुए। हमारी दृष्टि में यह बड़ा निरर्थक-सा प्रयास था। इसी कारण Comparative Philology तथा Comparative Mythology का अब कोई बोलबाला नहीं सुनाई देता। देश-विदेश की भाषाओं में तथा दन्तकथाओं में समानता का एक निश्चित सूत्र दिखाई देता है यह शोध या सिद्धान्त अवश्य उल्लेखनीय एवं प्रशंसनीय था। किन्तु इतना ही पर्याप्त था। उसमें और समय गँवाकर "यह देखो और समानता,

यह देखो और समानता" ऐसा दोहराती रहने वाली विद्याशाखाएं प्रस्थापित करना बुद्धिमानी या दूरदर्शिता का लक्षण नहीं था।

वे दो विद्याशाखाएं स्थापन करने पर भी विविध भाषाओं में तथा दन्तकथाओं में समानता क्यों है इस मूल समस्या का उत्तर वे गोरे पाश्चात्य विद्वान भी न दे सके और इनसे प्रभावित भारतीय विद्वान भी न दे सके। इस समस्या का उत्तर हमने इस ग्रन्थ द्वारा प्रस्तुत किया है।

सृष्टि उत्पत्ति के समय से महाभारतीय युद्ध तक संस्कृत ही एकमेव विश्वभाषा थी और वैदिक प्रणाली ही सारे मानवों की एकमेव सभ्यता थी। अत: उनके त्योहार, रीति-रिवाज, भाषा, परम्पराएं, दन्तकथाएं आदि समान होना अनिवार्य था।

इस्लामी वास्तुकला

वर्तमान युग में इस्लामी वास्तुकला का बड़ा ढोल पीटा गया है। उसे Islamic Architecture या Indo-Saracenic Architecture कहा जाता है। वह सर्वथा निर्मूल है। इस्लाम को १४०० वर्ष भी पूरे नहीं हुए। इतनी सी अवधि में कोई नई वास्तुकला निर्माण होकर चरमसीमा तक पहुंच ही कैसे सकती है? और इस्लाम की स्थापना पर उसके लिए किसी विशेष वास्तुकला की आवश्यकता है ऐसा मुहम्मद पैगम्बर या किसी खलीफा ने कहकर कारीगरों की सभा बुलाई होती तो माना जा सकता था कि उन्होंने किसी विशेष प्रकार की वास्तुकला का निर्माण किया। वैसा तो कोई प्रमाण या चिह्न है नहीं।

मुसलमानों ने जीते प्रदेशों में जो इमारतें कब्जे में आईं उन्हें मकबरे या मस्जिदें कहकर उनमें कब्रें बनवा दीं और दीवारों पर कुराण लिखवा दिया, इससे प्रेक्षक धोखा खाकर उन इमारतों को इस्लाम द्वारा निर्मित इमारतें समझने लगे।

रशिया, भारत, अफगानिस्थान, तुर्कस्थान, ईरान, जेरूसलेम, जॉर्डन, इराक, अरबस्थान से लेकर स्पेन तथा अल्जीरिया, मोरक्को तक के देशों में जिन प्राचीन ऐतिहासिक इमारतों को इस्लाम द्वारा निर्मित समझा जाता है वे सारी कब्जा की हुई हिन्दू इमारतें है। क्योंकि इस्लाम तथा ईसाइयत

से पूर्व सर्वत्र हिन्दू धर्म ही था।

मुसलमानों के जिस प्रकार वास्तुकला के कोई ग्रन्थ नहीं हैं इसी प्रकार उनके अपने कोई नाप भी नहीं हैं। यदि उनके अपने कोई नाप होते तो ६०० वर्षों की उनकी सल्तनत में वे अवश्य जारी किए जाते। जनता ने इस प्रकार सर्वांगीण विचार करना सीखना चाहिए। आजतक सामान्यजन तथा इतिहासज्ञ मुसलमानों के प्रत्येक दावे को बगैर सोचे-समझे भोलेपन से मान्यता देते रहे। भविष्य में उन्होंने वह भोली प्रथा त्याग कर मुसलमानों का कोई भी दावा सर्वांगीण प्रमाण पाए बिना मान्य नहीं करना चाहिए।

मुसलमानों का केन्द्रीय धर्मस्थान काबा स्वयं भी तो कब्जा किया हुआ ३६० वैदिक देवमूर्त्तियों का देवालय था। जब वह भी इस्लाम द्वारा निर्मित नहीं है तो अन्य छोटी-मोटी दुनिया भर की तथाकथित कब्रें और मस्जिदें दूसरों की अपहृत सम्पत्ति हैं, इसकी बाबत किसी को कोई शंका नहीं रहनी चाहिए।

रशिया के उज्बेकिस्थान, कजाकस्थान आदि प्रान्तों में बड़ी संख्या में मुसलमान बनाए गए लोग हजार-बारह सौ वर्ष पूर्व वैदिकधर्मी हिन्दू थे। वहाँ की ऐतिहासिक इमारतों पर कुराण की आयतें अंकित होने से लोग उन्हें इस्लामी कब्रें या मस्जिदें कहते आ रहे हैं। किन्तु लोग अन्य प्रमाणों पर ध्यान नहीं देते। जैसे कई भवनों के ऊपर सूर्य, बाघ, हिरण आदि चित्रकारी है जो इस्लाम में मना है। उस चित्रकारी का 'सूर साहुल' (यानि 'सूर्य शार्दूल') ऐसा संस्कृत नाम है। इतिहासज्ञ जब वे इमारतें कब बनाई गई इस बात का शोध करने लगते हैं तो उन्हें मानना पड़ता है कि यद्यपि लोग उन इमारतों को कब्रें या मदरसे कहते आ रहे हैं लेकिन कई बार वह किसकी कब्र है या वह मदरसा किसने बनाया इसका किसी को कुछ पता ही नहीं है।

ताश्कन्त नगर उज्बेकिस्थान प्रान्त की राजधानी है। समरकन्द उर्फ समरखण्ड उस प्रान्त का दूसरा प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर है। बुन्देलखण्ड, रोहिलखण्ड जैसा ही समरखण्ड नाम संस्कृत है।

समरखण्ड के दक्षिण में जो पहाड़ियाँ हैं उनमें गुफाएँ बनी हुई हैं। एक का नाम है Aman-Kutan गुफा, दूसरी है Takalyksai गुफा। रशिया ऋषीय देश होने से उन गुफाओं में वेदपठन होता था। पारसियों के 'जेन्द अवेस्ता' ग्रन्थ में समरखण्ड वाले प्रान्त को Sogdian भूमि कहा है। हो सकता है कि वह मूलतः साधुओं की भूमि कहलाती हो।

समरखण्ड नगर में Shak-hi-Zinda नाम का एक ऐतिहासिक परिसर है जिसमें कई भव्य प्राचीन इमारतें हैं। शक-इ-जिन्द का अर्थ है 'जीवित सम्राट्'। कहते हैं कि सातवीं शताब्दी के अन्त में जब अरब आक्रामकों ने उस प्रदेश पर चढ़ाई की तब मुहम्मद पैगम्बर का दूर का (चचेरा, ममेरा) भाई उस हमले में मारा गया। उसकी कब्र भी शायद उन इमारतों में है। उसका नाम था कसम इब्न अब्बास। SAMARKAND—A GUIDE (प्रकाशक Progress Publishers, Moscow, सन् १९८२) पुस्तक में पृष्ठ ५३ लिखा है कि वह कब्र जब खोदी गई तो वह खाली पाई गई। उसमें कोई दफनाया नहीं था। इससे हमारे शोध की पुष्टि होती है कि मुसलमान आक्रामक जीती हुई इमारतों के अन्दर नकली कब्रें बना देते (और बाहर कुराण लिखवा देते। इन इमारतों के निर्माण के सम्बन्ध में कोई मूल प्रमाण नहीं है। भारत स्थित इमारतों के निर्माण की बाबत जैसी उल्टी-सीधी अफवाहें हैं वैसी ही रशिया देश में बनी ऐतिहासिक इमारतों के सम्बन्ध में भी हैं। प्रेक्षकों ने इस प्रकार की इस्लामी धौंसबाजी पर जरा भी विश्वास नहीं करना चाहिए।

उलुघबेग का मदरसा नाम की एक इमारत समरखण्ड में है। उसके समीप एक अष्टकोणीय मीनार और प्राचीन (वैदिक) ज्योतिषीय वेधशाला के अन्य अवशेष लगभग उसी आकार के हैं जैसे उज्जैन, दिल्ली आदि की प्राचीन हिन्दू वेधशालाओं में हैं।

उलुघबेग मदरसे के सामने Sher-Dor मदरसा है। 'शेर-डोर' शार्दुल उर्फ 'सूर्य शार्दुल' का अपभ्रंश है। उस पर भी वही सूर्य शार्दुल चित्रकारी है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन समय में रशिया में जब वैदिक सम्राटों का शासन था तब मुख्य सरकारी राजचिह्न 'सूर्य-शार्दूल' अंकित किया जाता था।

वहीं एक अन्य इमारत का नाम है Tillya-Kari मदरसा। उस समय के मुसलमान आक्रामक निरक्षर, अनपढ़ होते थे। फिर भी अनेक विशाल

तथा सुन्दर इमारतें मदरसा इसलिए कहलाती हैं कि वहां इस्लामी आक्रमण से पूर्व वैदिक गुरुकुल होते थे। गुरुकुल पर मुसलमानों का कब्जा होने के बाद उन इमारतों को इस्लामी परिभाषा में मदरसा कहा जाने लगा।

इस प्रकार जिन इमारतों को इस्लामी माना गया है वे इस्लामपूर्व इमारतें हैं। अतः उन इमारतों के लक्षणों को इस्लामी स्थापत्य का मानना बड़ी भूल है। अतः विश्वभर के जो अनेक विद्वान निजी भाषणों द्वारा या ग्रन्थों द्वारा जिस वास्तुकला को इस्लामी कहते आ रहे हैं वह वास्तव में वैदिक वास्तुकला है।

स्त्रियों की भूमिका

पाश्चात्य समाज-प्रणाली में स्त्रियों को भोगसुन्दरी माना जाता है। इस्लामी प्रणाली में स्त्रियों को घर के अन्दर भी पर्दे में बन्द रखा जाता है। केवल वैदिक सभ्यता में ही स्त्रियों की शारीरिक सुरक्षा, शरीरधर्म, मानसिक प्रवृत्तियों आदि का ध्यान रखकर उन्हें गृहलक्ष्मी तथा गृह-साम्राज्ञी की भूमिका देकर पुरुषों को बाहरी व्यवहारों की जिम्मेदारी सौंपी गई है।

मुगली चित्रकारी का निर्मूल सिद्धान्त

मध्ययुगीन रंगीन ऐतिहासिक चित्रों को Mughal Miniatures, Mughal Paintings आदि नाम देकर इतिहासज्ञ तथा कलासमीक्षक आदि विविध विद्वानों ने ऐसा भ्रम निर्माण कर रखा है जैसे वह चित्रकारी मुगलों ने या अन्य मुसलमानों ने निर्माण की हो। वे यह नहीं सोचते कि इस्लाम ने तो चित्रकारिता को बुतपरस्ती मानकर उस पर कड़ा प्रतिबन्ध लगाया है। दूसरा मुद्दा यह है कि इस्लामी आक्रमणों से पूर्व उस शैली के चित्र भारत में पुरातनकाल से बराबर बनते रहे हैं। उन्हें राजपूत चित्रकला या बशोली चित्रकारी या राजस्थानी शैली ऐसे नाम दिए गए हैं। गरीब लोगों की झोपड़ियों में विवाह आदि के उपलक्ष्य में दीवारों पर वैसी चित्रकारी की जाती है।

भारत में जब इस्लामी राज्य की स्थापना हुई तब दरबार में हिन्दू चित्रकारों द्वारा परम्परागत हिन्दू शैली से ही चित्र बनते रहे। अतः यद्यपि

वे मुगलकालीन जीवन के दृश्य हों या इस्लामी सल्तनत में बने चित्र हों शैली तथा कला तो प्राचीन भारतीय ही थी। अतः उसे मुगल या इस्लामी चित्रकला कहने में विश्व भर के विद्वानों ने भारी भूल की है। चित्रकार का नाम भी मुसलमानी हो तो भी छल-कपट, दबाव या प्रलोभन से मुसलमान बनाया गया व्यक्ति, हिन्दू ही होता था या किसी हिन्दू चित्रकार का इस्लामी चेला होता था। जो भी हो चित्रकारी की शैली प्राचीन हिन्दू होती थी। अतः पाश्चात्य विद्वानों को यह समझा देना आवश्यक है कि विश्व में हिन्दू वास्तुकला जैसी कोई इस्लामी वास्तुकला नहीं है। इसी प्रकार विश्व में कोई इस्लामी चित्रकला भी नहीं है।

कॉकटेल तथा टेलकोट

पाश्चात्य लोगों में मेलजोल, उत्सव, समारम्भ, त्योहार आदि सामाजिक सद्भाव या आनन्द के प्रसंगों पर कॉकटेल (Cocktail) पेय लेना-देना प्रतिष्ठित माना जाता है। विभिन्न प्रकार की दारू के सम्मिश्रण को कॉकटेल कहा जाता है। इनमें ह्विस्की, ब्रांडी, जिन, शैम्पेन, रम्, आदि पाश्चात्य मादक पेयों के प्रकार होते हैं। इन पेयों को मिलाने का कोई प्रमाण नहीं होता। बोतल टेढ़ी कर पात्र में विविध प्रकार की दारू थोड़ी-थोड़ी डाली जाती है। जिस बोतल से जितनी पड़ जाए। इस मिश्रित पेय का कॉकटेल नाम पड़ा है। किन्तु उसमें न तो कॉक (cock) यानि कुक्कुट होता है न ही उसकी tail यानि दुम। फिर भी उस सम्मिश्रित पेय का कॉकटेल नाम क्यों पड़ा ? कोई नहीं जानता। वास्तव में वह काकतालीय संस्कृत शब्द है। कव्वा डाल पर बैठे और उसी समय डाल टूट पड़े तो उसे कव्वे के भार से टूटा समझना इसे काकतालीय न्याय कहते हैं। इसी प्रकार अनुमानित मिश्रण से बने पेय को काकतालीय पद्धति से सिद्ध किए जाने से काकतालीय उर्फ कॉकटेल नाम पड़ा।

टेलकोट (TAILCOAT)

पाश्चात्य राजदूतों की दरबारी-सरकारी पोशाक टेलकोट (Tailcoat) तथा टापहैट (Tophat) हुआ करती थी। टेलकोट (Tailcoat) यानि पूंछवाला कोट। राजदूतों में पूंछ वाले कोट परिधान करने की प्रथा क्यों

पड़ी ? शायद ही कोई इस प्रश्न का उत्तर जानता हो ।

प्राचीनकाल से विश्व में सर्वत्र राम आदर्श सम्राट माने जाते थे। उनका दूतहनुमान पूंछ वाला कोट (tailcoat) (यूरोप की रामलीलाओं में) परिधान किया करता था। तदनुसार यूरोप के सारे राजदूतों में पूंछ वाला कोट परिधान करने की प्रथा पड़ी। इससे दो महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं। एक तो यह कि हनुमान पशु नहीं था यानि पूंछ उसके शरीर का अवयव नहीं था। और दूसरा यह कि रामायण सारे विश्व में बड़े आदर तथा भक्तिभाव से पढ़ा जाता था। इसी कारण रामायण यूरोप के देशों में, अरब में, ईरान आदि में सर्वत्र होती थी। इटली के मिलॅनो (Milano) शहर का नाम राम-भरत मिलन का प्रसंग बड़े रोमहर्षक ढंग से वहाँ प्रस्तुत किया जाता था, उससे पड़ा है।

इतिहास का दैनन्दिन जीवन में उपयोग

अधिकतर लोग इतिहास को एक नगण्य शालेय विषय मानते हैं कि किसी प्रकार महाविद्यालय की परीक्षा उत्तीर्ण होने के लिए अनेक विषयों में से वह भी एक ऐच्छिक विषय हो सकता है। परीक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात् वे इतिहास का महत्त्व नहीं समझते।

अन्य कुछ लोग इतिहास विषय को नौकरी का साधन मानकर पदवी पाने के पश्चात् पुरातत्त्व विभाग में नौकरी पाते हैं या इतिहास के अध्यापक आदि बनते हैं।

कुछ राजनयिक या संकुचित दृष्टि के लोग भारत के विशिष्ट हिन्दू-मुस्लिम विरोध को देखकर इतिहास को शत्रुता उत्पन्न करने वाला विषय मानकर मन में सोचते हैं कि "यदि मेरा बस चले तो मैं तो इतिहास विषय की पढ़ाई ही बन्द कर दूं।" वे यह नहीं जानते कि बीते क्षण तक हुई प्रत्येक घटना इतिहास कहलाती है। यदि वे इतिहास पर प्रतिबन्ध लगा दें तो स्वयं उनके माता-पिता का नाम उच्चारण करने पर वे अपराधी तथा दण्डनीय माने जाएंगे।

कुछ लोग इतिहास को राजवंशावली तथा युद्ध की सनावली की सूची मानकर चलते हैं। किन्तु वह तो केवल एक ढांचा या बाहरी रूपरेखा होती है। वैसी रूपरेखा हर एक देश की अपनी-अपनी होती है। जैसे हम यदि कहें कि "फलाना व्यक्ति आया था। उसके दो कान, दो आँखें, एक नाक, एक मुँह था" तो इससे कौन व्यक्ति आया था इसका पता नहीं चलेगा क्योंकि उसकी विशेषता तो कही ही नहीं गई। उसकी विशेषता जानने के

लिए उसके रंग-रूप, पोशाक, बोलने का ढंग आदि का वर्णन करना होगा। जैसे कब्रिस्तान से एकाध अस्थिपंजर लाने पर उससे पता नहीं चलेगा कि उस मृतक का जीवन कार्य क्या था? उसके गुण, उसका व्यक्तित्व, उसका कर्तृत्व, उसके विचार आदि का पता ही नहीं चलेगा।

अतः राजाओं की वंशावली तथा लड़ाइयों की सनावली के अतिरिक्त किसी देश की मूल संस्कृति वहाँ के लोगों की नीति, गुण-दुर्गुण, शत्रुओं के आक्रमण, लोगों ने किया शत्रु का प्रतिकार आदि का ब्योरा महत्त्वपूर्ण होता है। वर्तमान भारत के कांग्रेसी शासकों ने ठेठ वही ब्योरा पाठ्य-पुस्तकों से बहिष्कृत कर रखा है। वे समझते हैं कि मुहम्मद बिन कासिम से बहादुरशाह जफर तक जो अत्याचार, अनाचार, व्यभिचार हुए उनका वर्णन यदि पाठ्य-पुस्तकों में सम्मिलित किया गया तो मुसलमान क्रुद्ध होंगे। परिणामस्वरूप वे कांग्रेस को मत नहीं देंगे जिससे कांग्रेस शासनाधिकार खो बैठेगी। इससे सीधा यह निष्कर्ष निकलता है कि इतिहास को झुठलाकर ही जो कांग्रेस पक्ष सत्ता में रह पाया वह निजी देशभक्ति का कितना ही ढोल पीटता हो, वह एक धर्म विघातक देशद्रोही संगठन समझा जाना चाहिए।

इतिहास का यह एक बड़ा उपयोग है कि इससे सच्चा देशभक्त कौन या देशहितैषी संघटना कौन सी है, यह पहचाना जा सकता है। किन्तु इसके लिए इतिहास स्वच्छ एवं सत्यनिष्ठ रखना आवश्यक है। जिस प्रकार दर्पण पर यदि धूल पड़ी हो तो दर्पण में चेहरा ठीक नहीं दिखेगा उसी प्रकार इतिहास झुठलाया गया हो तो वह राष्ट्रीय मार्गदर्शन के लिए बेकार साबित होगा।

इति-ह-आस

इतिहास शब्द के मूल अर्थ के प्रति ध्यान दें। 'इति' यानि 'ऐसा', 'ह' यानि निश्चित रूप से, 'आस' यानि 'हुआ था'। यह इतिहास शब्द का मूल अर्थ है। यानि गत घटनाओं का कालक्रमबद्ध सत्यकथन, यह इतिहास का मूल स्वरूप होना चाहिए। किन्तु वर्तमान भारत में जो इतिहास प्रचलित है वह इति-ह-आस न होकर इति-ह-नास है। क्योंकि उसमें ऐतिहासिक नगर तथा इमारतें हिन्दुओं के बनाए होते हुए भी मुसलमानों द्वारा बनवाए गए, कहे गए हैं। मुसलमान आक्रामकों के अत्याचार दबाए गए हैं।

विश्व इतिहास भी इसी प्रकार ईसाई और इस्लामी धारणाओं के अनुसार काटा-छांटा गया है।

मूल व्यक्तित्व जानना आवश्यक

प्रत्येक व्यक्ति का एक विशिष्ट व्यक्तित्व होता है। इसी से उसकी पहचान होती है। यदि उसके दाँत गिर गए हैं या टाँग टूटी हो तो उसके पीछे उसके बुढ़ापे का, किसी रोग का या दुर्घटना का इतिहास होता है। इसी प्रकार भारत तथा विश्व के अन्य देश अतीत में वैदिकधर्मी थे। उनका वह व्यक्तित्व भंग होकर वे ईसाई या मुसलमान बनाए गए और उनके वैदिक मन्दिरों को तथा धर्मपीठों को गिरिजाघर, मस्जिद या कब्रगाह कहा गया। इससे एक तरह से भारत तथा अन्य देशों के मूल इतिहास के व्यक्तित्व को क्षति पहुँची है।

दुर्घटना से अपंग या घायल हुआ व्यक्ति वैद्यकीय चिकित्सा से अपने शरीर को पुनः अव्यंग या सक्षम बनाना निजी कर्त्तव्य समझता है उसी प्रकार प्रत्येक देश के नेताओं ने इतिहास की उथल-पुथल से दुर्बल बने राष्ट्र को पुनः बलवान, सक्षम, गुणी, समृद्ध, शत्रुहीन, बनाना चाहिए था। ऐसा न कर पाने वाले नेता लोग निकम्मे या देशद्रोही माने जाने चाहिएँ। तथापि उनके गले में हार पहनाने वाले तथा उनके भाषणों पर तालियाँ बजाने वाले लोग तथा वे नेता स्वयं देशद्रोही एवं दण्डनीय माने जाने चाहिएँ।

ईसाई तथा इस्लामी लोगों को सजग कराने की आवश्यकता

इस दृष्टि से वर्तमान भारतीय इतिहास में तथा अन्य देशों के इतिहास में आमूलाग्र परिवर्तन लाना आवश्यक है। किसी भी देश का इतिहास आरम्भ करने से पूर्व उसका मूल सांस्कृतिक व्यक्तित्व निश्चित करना आवश्यक होता है। तभी पता चलेगा कि उस व्यक्तित्व को कहाँ तक क्षति पहुँची है। ब्रिटेन छठवीं शताब्दि तक ईसाई देश नहीं था। इसी प्रकार अरब, ईरानी, तुर्की, लोग सातवीं शताब्दी तक मुसलमान नहीं थे। उन लोगों पर ईसाइयत तथा इस्लाम छल-बल से थोपे गए। अतः उन देशों के इतिहास ने यूरोप के लोगों को तथा पश्चिम एशिया की जनता को

उनकी मूल वैदिक सभ्यता के प्रति सजग कराना चाहिए। तत्पश्चात किस
छल-बल-कपट से वे ईसाई या मुसलमान बनाए गए यह इतिहास उन्हें
समझाना चाहिए। जब तक ईसाई या मुसलमान देश, ईसापूर्व तथा मुहम्मद
पूर्व निजी इतिहास के प्रति आँखें नहीं खोलेंगे उनकी इतिहास की शिक्षा
आधी-अधूरी, लंगड़ी, ढोंगी एवं क्षतिपूर्ण समझी जानी चाहिए।

राष्ट्रीय पुनर्गठन

जिस प्रकार शरीर का मूल आकार ध्यान में रखकर ही अपंगत्व या
बाद ठीक किया जा सकता है, इसी प्रकार देश की मूल सभ्यता क्या थी
यह निश्चित करने के पश्चात् ही उस देश की वर्तमान स्थिति परखी जा
सकती है। इस दृष्टि से भारत का तथा अन्य देशों का पुनर्गठन करना हो
तो भारत में जितने भी लोग ईसाई या मुसलमान बने हुए हैं उन्हें पुनः
वैदिकधर्मी यानि हिन्दू बना लेना होगा। यह कार्य शीघ्रातिशीघ्र होना
आवश्यक है।

किसी घर का कोई युवक यदि भटक गया हो या डाकुओं का गिरोह
यदि उसे उठा ले गया हो तो उसके माता-पिता, सगे-सम्बन्धी तथा मित्र-
गण बेचैन होकर तार, पत्र सन्देश आदि द्वारा उसे घर वापस लाने का
हर प्रकार का यत्न करते रहते हैं, इसी प्रकार हिन्दू जाति के लोगों ने भी
बेचैनी से प्रत्येक ईसाई तथा मुसलमान व्यक्ति को कदम-कदम पर हिन्दू
धर्म में वापस ले आने का यत्न करना आवश्यक है।

वैदिक प्रणाली सनातन धर्म कहलाती है। उसे ईश्वर का वरदान
है। उसी के फलस्वरूप विश्व में विभिन्न स्थानों पर विविध प्रकार से
सनातन वैदिक धर्म का पुनरुत्थान हो रहा है।

सनातन धर्म का पुनरुत्थान

उस पुनरुत्थान के कई लक्षण दिखाई दे रहे हैं। जैसे प्रजापति
ब्रह्मकुमारी पन्थ की देश-विदेश में शाखाएँ प्रस्थापित हुईं। तत्पश्चात्
प्रभुपाद स्वामी ने इस्कान (ISKCON) नाम से कृष्णभक्ति पन्थ के
विश्व भर में लाखों अनुयायी बनाए। उधर महर्षि महेश योगी द्वारा देश-
विदेश में आयुर्वेद विद्यालय आदि स्थापन कराए गए। रजनीश, मुक्तानन्द

आदि कई अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियों ने तथा आनन्दमार्ग ने जैसे उनसे बना
सनातन वैदिक धर्म का प्रसार अहिन्दू लोगों में किया। हो सकता है कि इस
प्रकार के यत्नों में और तेजी आए।

अपने आपको हिन्दू कहलाने वाले गोरे अमेरिकी

ऊपर वर्णित नई बढ़ती परम्परा में हाल में और एक नई हिन्दू संघ-
टना चल पड़ी है। स्वयं गोरे अमेरिकनों ने ही वह चलाई है। वे अपने
आपको शिवपन्थी शिवभक्त मानते हैं। इस संघटना का नाम है शिव
सिद्धान्त पन्थ (Shiva Siddhant Church)। इस संघटना द्वारा एक
समाचार-पत्र हर दो मास के पश्चात् प्रकाशित होता है। इस पत्रिका का
नाम है Hinduism Today यानि 'वर्तमान हिन्दुत्व'। इस संघटना के
सदस्य शिवजी से निजी नाम रखते हैं। जैसे इस समाचार-पत्र के सम्पादक
का नाम है शिव आदमुखस्वामी। फिजी, श्रीलंका, नेपाल, भारत,
मलयेशिया, बाली, मॉरिशस्, दक्षिण अफ्रीका, अमेरिका, मेडागास्कर,
ब्रिटेन, इण्डोनेशिया, अफगानिस्थान, सिक्किम, त्रिनिदाद, टोबेगो,
सिंगापुर, हांगकांग, जर्मनी, भूटान, बांग्लादेश, कॅनाडा, स्याम, सूरीनाम,
अरबदेश, ब्रह्मदेश, आस्ट्रेलिया, पाकिस्तान, फ्रांस, गयाना आदि देशों में
उस समाचार पत्र के लाखों ग्राहक हैं। क्रुस्तपन्थी गोरे अमेरिकनों द्वारा
अपने आपको हिन्दू कहलाना, शिवपूजन करना, शिवजी से निजी नाम
रखना तथा हिन्दूधर्म प्रसार हेतु एक समाचार-पत्र चलाना अपने आप में
एक दैवी चमत्कार ही है।

ऐतिहासिक नगरों के प्राचीन हिन्दू नाम बदलकर जहाँ भी उनके
इस्लामाबाद, फिरोजाबाद, महमूदाबाद आदि नाम रखे गए हैं उन नगरों
के मूल हिन्दू नाम पुनः प्रचलित करना आवश्यक है।

बरबाद करना और आबाद रखना

मुसलमान आक्रामकों की करतूतों से अरबस्थान की तरह हिन्दुस्थान
भी एक रूखा मरुस्थल बन जाता। प्राचीनकाल में अरबस्थान एक हरा-
भरा देश था। जब से वहाँ इस्लाम की स्थापना हुई वह सारा मरुस्थल
बन गया क्योंकि इस्लाम ने लोगों को पांच बार नमाज पढ़ना और अन्य

समय में लूटमार करना यही सिखाया । इस प्रकार जब कोई किसी प्रकार का काम-धाम न करते हुए केवल लूटमार पर जीवन बसर करेगा तो देश प्रगत हो ही नहीं सकता । इसी कारण विश्व में इण्डोनेशिया से अल्जीरिया व मोरक्को तक इस्लामी देशों की कतार की कतार है फिर भी किसी भी क्षेत्र में विश्वविख्यात स्तर का एक भी मुसलमान किसी भी पीढ़ी में नहीं हुआ ।

भारत में इस्लामी आक्रामक एक-एक नगर को बरबाद करते हुए उनके नाम 'आबाद···आबाद' रखते गए । अतः उन नगरों की बरबादी दुरुस्त करके उन नगरों के प्राचीन हिन्दू नाम पुनः रूढ़ कर देना चाहिए ।

चार मार्गदर्शक सूत्र

मुसलमानों का वश चलता तो हिन्दुस्थान के प्रत्येक नगर का नाम इस्लामी होता । मुसलमानों ने वैसा यत्न भी किया था । उदाहरणार्थ मिरज का नाम मुर्तजाबाद, नासिक का गुलशनाबाद, बनारस का नाम मुहमदाबाद, आगरा का अकबराबाद, दिल्ली का शहाजहाँनाबाद आदि रखे गए थे, किन्तु इतिहास के प्रवाह में टिके नहीं, स्वयं लुप्त हो गए । तथापि ऐतिहासिक नगर या इमारतें देखते समय प्रेक्षक लोग हमारे कुछ मार्गदर्शक सूत्र ध्यान में रखें । 'Destroyers have been called builders' यानि नाश करने वालों को ही निर्माता कहा गया है । Construction is all Hindu while destruction is all Muslim यानि इमारतों के जो भी भाग खड़े हैं वे हिन्दुओं के बनाए हैं किन्तु जहाँ तोड़-फोड़ दिखाई देती है वह इस्लामी आक्रामकों की करतूत है । प्रत्येक ऐतिहासिक नगर तथा इमारत हिन्दू होते हुए भी इस्लामी कही जा रही है । प्रत्येक मुसलमान हिन्दू का वंशज है ।

हिन्दुत्व के विश्वप्रसार के उपाय

हिन्दुत्व के पुनरुत्थान तथा विश्वप्रसार के लिए परधर्मियों को पुनः हिन्दू बना लेना, नगरों के नाम हिन्दू करना, ऐतिहासिक इमारतों के हिन्दू निर्माण की जानकारी फैलाना आदि जो उपाय ऊपर कहे हैं उनके साथ-साथ प्राचीन गिरिजाघर, मस्जिदें तथा मकबरों को पुनः देवालय बनाना

भी आवश्यक है । आयुर्वेद, वैदिक वास्तुकला, वैदिक संगीत आदि का प्रसार करना, स्थानीय उद्योगधन्धों का पुनर्निर्माण करना, संस्कृत की पढ़ाई प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य करना । वैदिक समाज जीवन-प्रणाली को रूढ़ करना, धूम्रपान-मदिरापान आदि व्यसनों पर प्रतिबन्ध लगाना और वैदिक शिवसेना का गठन करना आदि उपायों की योजना करनी होगी ।

पुनरुत्थान की अवधि

किसी भी देश का शत्रुओं द्वारा सर्वनाश होने पर उसके निवासी जितने अधिक देशभक्त, कृतिशील तथा शिस्त पालन वाले हों उतना शीघ्र उसका पुनरुत्थान होगा । १९४५ में द्वितीय महायुद्ध समाप्त हुआ तब जापान तथा जर्मनी में बड़ा विनाश हुआ । तथापि ऊपर कहे गुण उन लोगों में होने के कारण केवल तीस वर्ष की अवधि में ही वे बड़े समृद्ध देश बन गए । उनकी लश्करी क्षमता पहले जैसी नहीं रही क्योंकि विजयी देशों ने उनके सैनिकी पुनरुत्थान पर कड़े प्रतिबन्ध लगा रखे थे, तथापि उनमें भिखमंगी या गरीबी का नामोनिशान तक नहीं था ।

भारत में तो लगभग पचास प्रतिशत जन अत्यन्त हीन, दरिद्र, भूखे, नंगे, निरक्षर, रोगी, शक्तिहीन, दुर्बल अवस्था में जीवन बिताते रहते हैं । यद्यपि स्वतन्त्र भारत का शासन लिए हुए कांग्रेस पक्ष को ४० वर्ष हो चुके हैं । करोड़ों लोगों को इस प्रकार मरणप्रायः अवस्था में रखने वाले कांग्रेस नेतागण एक अन्धे की तरह अपने ही पक्ष के निकम्मे, आलसी, देशद्रोही, भ्रष्टाचारी, लोभी, खुशामदी व्यक्तियों को भारतरत्न आदि उपाधियों की रेवड़ियाँ बाँटते रहे हैं । जवाहरलाल नेहरू तथा मोहनदास गांधी से लेकर उन सभी पर भविष्य के जागरूक नेताओं ने हिन्दूराष्ट्र का सर्वनाश करने का अभियोग चलाना योग्य होगा ।

जापान तथा जर्मनी का पुनरुत्थान यदि केवल ३० वर्षों में हो सका तो भारत का क्यों नहीं हुआ ? ऐसा अनेक लोग अचम्भा करते रहते हैं । इसका एक कारण तो हमने ऊपर बता ही दिया है कि कांग्रेसी नेतृत्व पूरी तरह नाकारा सिद्ध हुआ है । भीड़भाड़ इकट्ठी कर भाषण देने के सिवाय

वे और कुछ जानते ही नहीं थे। हजारों-लाखों तालियों की गड़गड़ाहट सुनकर, भिखारी स्तर के लोगों से अपने गले में अनेक हार डलवा लेने में ही उन्हें अपनी कर्त्तव्यपूर्ति का अनुभव होता था। भूखे-नंगे लोगों को ४० वर्ष आश्वासन ही आश्वासन देकर अर्द्धजीवित अवस्था में नंगा रखना इससे बड़ा देशद्रोह क्या हो सकता है ?

भारत का १२३५ वर्षों का युद्ध

जापान तथा जर्मनी को चार-पांच वर्ष के युद्ध की ही क्षति पहुंची थी अतः वे यदि ३० वर्ष में ही फिर समृद्ध हो गए तो भी उनकी तुलना भारत की अवस्था से करना अयोग्य है। भारत ने सन् ७१२ से १९४७ तक शत्रु की लूटपाट का सामना किया। वे शत्रु भी कोई एक-दो नहीं थे बीसियों थे जैसे गुलाम, खिलजी, तुगलख, सय्यद, लोदी, मुगल, बहमनी, आदिलशाह, कुतुबशाह, निजामशाह, निजामउलमुल्क, हैदरअली, टीपू, आरकाट के नवाब, जंजीरा का सिद्दी सुल्तान, मालवा के सुल्तान, खानदेश के सुल्तान, मदुरई के भावर सुल्तान, गुजरात के सुल्तान, बंगाल के सुल्तान, जोनपुर के शर्की सुल्तान, अवध के नवाब, छत्रपुर, रामपुर, मलेरकोटला आदि के नवाब, पुर्तगाली, फ्रेंच, डच, अंग्रेज ऐसे कितने ही शत्रु थे। जैसे किसी धान्य के भण्डार को चूहों का झुण्ड खा जाए या ग्रन्थालय को दीमक नष्ट करे या खेत को टिड्डियों का दल खा जाए, उस प्रकार भारत को इतने सारे इस्लामी और ईसाई शत्रु नोंच-नोंच कर लगातार १२३५ वर्ष तक खाते रहे।

इस प्रकार भारत तथा जर्मनी व जापान के सर्वनाश में महद् अन्तर था। तथापि ४० वर्षों में देहातों में पीने का पानी पहुंचाना, रास्ते बनाना, कुटीर उद्योग चलाकर जनता की आय बढ़ाना, भारत को हिन्दूराष्ट्र घोषित करना, प्रत्येक मुसलमान को पाकिस्तान भेज देना, ईसाई प्रचारकों को भारत के ईशान्य सीमा प्रान्तों से हटाकर वापस इंग्लैण्ड-अमेरिका भेजना आदि महत्त्वपूर्ण कार्य भी कांग्रेस ने कार्यान्वित नहीं किए।

योजना आयोग की अनावश्यकता

भारत के स्वतन्त्र होने पर विदेशों में अंग्रेजी शिक्षा पाए हुए धनिक लोगों के बेटों की बड़ी चाँदी हुई। उनके लिए राज्यों के राजपाल, योजना

आयोग का सदस्यत्व आदि अनेक बड़े वेतन वाले निकम्मे पद बनाए गए। भारत जैसे गरीब देश में जहाँ किसी की आमदनी ४-५ हजार रुपये प्रति माह हो उसके किसी सदस्य को कोई सरकारी नौकरी देनी ही नहीं चाहिए।

भारत में बरसात में बाढ़ आती है और अन्य दिनों में पानी की तंगी रहती है। ग्रीष्म ऋतु में हिमालय की बर्फ पिघलकर उत्तरी हिन्दुस्तान की नदियों में विपुल जल होता है। अतः यदि भारत की उत्तर तथा दक्षिण की विविध नदियों तथा सरोवरों को नहरों से जोड़ा जाता तो इससे बाढ़ का पानी बंट जाता, बहता रहता, तंगी नहीं होती और भूमि का अन्तर्गत जलस्तर ऊंचा रहकर कुएं सूखते नहीं। कई बार इस योजना की इंजीनियरों ने चर्चा भी की किन्तु प्रत्यक्ष में कुछ नहीं हुआ।

दूसरी आवश्यकता थी खनिज तेल (पेट्रोल) की बाबत देश को आत्म-निर्भर बनाने की। स्वतन्त्रता मिलते ही तेल का शोध आरम्भ कर दिया जाता तो देश में पर्याप्त तेल निर्माण होकर मुसलमान देशों से तेल खरीदना नहीं पड़ता।

तीसरी आवश्यक बात थी चम्बल घाटी को लाखों एकड़ ऊबड़-खाबड़ भूमि को समतल बनाकर उसमें खेती आरम्भ कर देना।

चौथी आवश्यक बात थी भीख माँगना बन्द करने की। भिखारियों को छावनियों में रखना। उनमें जो अपंग या रोगी हों उनकी चिकित्सा करना। हट्टे-कट्टे हों उन्हें भूतपूर्व सैनिकों द्वारा रोज प्रातः परेड जैसा शारीरिक व्यायाम कराना तथा शिस्त सिखलाकर बाग-बगीचे में, अस्पतालों में या अन्य सरकारी संस्थाओं में उनसे काम कराना। ऐसी अनेक योजनाएँ योजना आयोग के खर्चीले तथा दिखलाऊ आडम्बर तथा विलम्ब के बिना ही सम्पन्न हो सकती थीं।

यदि नेता लोगों के अन्तःकरण में देशभक्ति दृढ़मूल होती तो भारत जैसे देश को समृद्ध बनाना कठिन नहीं। किन्तु खोखली देशभक्ति का प्रदर्शन कर भारत की बची-खुची सम्पत्ति भी सोख लेने वाले स्वार्थी एवं भ्रष्टाचारी कांग्रेसी नेताओं की करतूतों से देश अधिकाधिक दुर्बल तथा दरिद्री होता जा रहा है।

ईसाई तथा मुसलमानों को हिन्दू बनाना

ईसाई तथा मुसलमान बने अधिकांश लोग पुनः हिन्दू बन सकते हैं यदि सारे हिन्दू लोग उन्हें बार-बार आग्रह से, प्रेम से हिन्दू बनने को कहते रहें। मन-ही-मन वे पुनः हिन्दू बनना चाहते तो हैं किन्तु वे भयभीत हैं। उन्हें आशंका है कि क्या हिन्दू समाज में हम पुनः घुल-मिल सकेंगे? उनकी इस आशंका को दूर करने के लिए घर-घर तथा हिन्दू संस्थाओं पर बड़े-बड़े अक्षरों के आवाहन प्रदर्शित करने चाहिएं कि "इस्लाम और ईसाई पन्थों में गए बन्धुओं को हम बड़े प्रेम तथा आग्रह से पुनः हिन्दू धर्म में शामिल होने का हार्दिक निमन्त्रण देते हैं। आपसे सारे समाज का पूरा मेल जोल रहेगा" आदि। सदियों से भूले हुए इस कर्त्तव्य को हिन्दूओं ने तुरन्त निभाना चाहिए।

मुसलमान तथा ईसाई बने अनेक भाई बड़ी श्रद्धा से उनके प्राचीन हिन्दुत्व की कई परम्पराओं को अपने हृदय में संवारे हुए हैं। गोमांस वर्ज्य मानना, किसी वैदिक देवता की पूजा करना, विवाह-निमन्त्रण पर गणेश का चित्र छापना, विवाह पर ब्राह्मण से तिलक लगवाना, कुराण या बाइबल के अन्दर भगवद्गीता छुपाकर रखना आदि अनेक हिन्दू प्रथाएँ ईसाई तथा मुसलमान बने लोग सैंकड़ों वर्षों से बड़े आदरभाव से जतन किए हुए हैं।

वस्तुतः भारत के शासन ने ही हिन्दू बनने वाले परधर्मियों को विशेष रियायतें घोषित करनी चाहिएँ थीं। तथैव पाकिस्तान या बांग्लादेश से घुसपैठ से प्रवेश करने वाले व्यक्तियों को या ज्ञापित समय से अधिक दिन भारत में रहने वालों को हिन्दू नाम लेकर रहना होगा, ऐसा नियम करना चाहिए। किन्तु भारत के कांग्रेसी शासकों ने तो देशद्रोही उल्टी कार्य-प्रणाली अपनाई है कि सिख, दलित, बौद्ध, मुसलमान, एंग्लो-इण्डियन आदि कहकर हिन्दुत्व से जो अपने आपको अलग कहलाएगा उसे विशेष रियायतें दी जाएँगी।

महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी आदि के समय से जो हजारों हिन्दू छल-बल से मुसलमान बनाए जाते थे उन्हें उन आक्रामकों के जाते ही दुबारा हिन्दु समाज में सम्मिलित करने का कर्त्तव्य यदि हिन्दू समाज निभाता रहता तो भारत में मुसलमानों की संख्या करोड़ों तक न पहुँचती। अतः सैंकड़ों वर्षों से बढ़ती रही इस समस्या को आधुनिक प्रगत युग में अधिक तत्परता से हिन्दू समाज ने हल करना आवश्यक है।

ऊपर दिए विवरण से पाठक जान सकते हैं कि राष्ट्र, धर्म, संस्कृति आदि के पुनरुत्थान में इतिहास का कितना उपयोग है। किन्तु उपयुक्त सिद्ध होने के लिए इतिहास आत्मीयता से लिखा होना चाहिए। कांग्रेसी शासकों ने जो इतिहास पढ़ा है वह अंग्रेजों तथा मुसलमानों द्वारा लिखा इतिहास है। इसी कारण नेताओं के घोषित उद्देश्य या मनोभावना अच्छी होते हुए भी उनकी कार्यप्रणाली देशद्रोही तथा धर्मविरोधी सिद्ध हुई है।

इसी कारण दीर्घ परतन्त्रता में रहे प्रत्येक देश ने राष्ट्रीय दृष्टि से निजी इतिहास लिखने का कार्य सर्वप्रथम पूर्ण करना चाहिए। भारत का इतिहास केवल किसी त्रयस्थ ने नहीं अपितु भारत के कट्टर शत्रुओं ने लिखा है। क्या कोई स्वतन्त्र देश शत्रु द्वारा लिखा इतिहास पढ़ाता है? क्या इंग्लैण्ड अपने लोगों को नेपोलियन द्वारा लिखा इंग्लैण्ड का इतिहास पढ़ाएगा? क्या रशिया अपने लोगों को हिटलर का लिखा रशिया का इतिहास पढ़ाएगा? यदि नहीं तो भारत के अध्यापक तथा सरकारी अधिकारी बाबरनामा, जहाँगीरनामा, Oxford History, Cambridge History को प्रामाणिक क्यों मानते हैं?

भारत में गाँव के पंच से संसद सदस्य तक के चुनाव के लिए खड़े प्रत्येक उम्मीदवार को जो विविध शर्तें पूर्ण करनी होती हैं उनमें एक यह शर्त भी शामिल करनी आवश्यक है कि उसका ऐतिहासिक दृष्टिकोण राष्ट्रीय है। ऐसा भारतीय इतिहास पुनर्लेखन संस्थान का प्रमाण-पत्र वह प्रस्तुत करे।

ईसाई तथा मुसलमान बने देशों में किसी भी चुनाव के लिए उन्हीं उम्मीदवारों को चुनाव लड़ने की मान्यता मिलनी चाहिए जो ईसापूर्व या मुहम्मद पूर्व जागतिक वैदिक संस्कृति का इतिहास भली प्रकार जानते हों। उन्हें उस जानकारी का दाखला जागतिक वैदिक इतिहास संस्थान की जाँच पारित करने पर दिया जा सकेगा। इससे मानवीय एकता, सद्भाव तथा शान्ति बढ़ेगी।

चुनाव की सरल विधि

वर्तमान चुनाव विधि बड़ी खर्चीली है, अतः भ्रष्टाचार से पूर्ण है।
वर्तमान चुनाव विधि बड़ी खर्चीली पंचों का ही चुनाव प्रौढ़ निवासियों के मत
प्रत्येक गाँव में केवल स्थानीय पंचों का ही चुनाव प्रौढ़ निवासियों के मत
से होना चाहिए। उसके पश्चात् प्रत्येक पंचसमितियों से एक-एक प्रति-
निधि चुनकर तहसील समिति, उनके एक-एक प्रतिनिधि की जिला समिति,
उन समितियों का एक-एक प्रतिनिधि प्रान्तीय समिति का सदस्य हो तथा
हर प्रान्त की समिति के एक-एक प्रतिनिधि से राष्ट्रसंसद बने इस तरह का
यदि विधान बनाया जाए तो इससे समय की बचत होगी, हल्ला-गुल्ला एवं
मारपीट नहीं होगी, खर्चा तो लगभग होगा ही नहीं और इसी कारण से
भ्रष्टाचार भी नहीं होगा। हाल में तो निजी चुनाव में लाखों रुपये खर्च
करने वाला उम्मीदवार चुनाव जीतने या हारने पर भी भ्रष्टाचार से
करोड़ों रुपये कमाने की ईर्ष्या अवश्य रखता है। वर्तमान पक्षबाजी को
समाप्त कर देना चाहिए। राजनयिक पक्ष दादागिरी और गुटबन्धन से
दहशत निर्माण कर अपनी सत्ता बनाए रखते हैं। उसमें प्रत्येक व्यक्ति निजी
मत प्रकट करने से भी डरता है कि कहीं पक्ष से निकाल न दें। संसद में
प्रत्येक प्रश्न पर बहुमत से जो निर्णय हो उसे प्रधानमन्त्री ने कार्यान्वित
करना ही चाहिए, ऐसा नियम हो। समितियों के इस प्रकार के संविधान
से अल्पसंख्यकों के अनेक गुटों का और उनके आरक्षित स्थानों का झंझट
ही समाप्त हो जाएगा।

अष्टप्रधानों का मन्त्रिमण्डल

वैदिक परम्परा के अनुसार आठ मन्त्रियों से अधिक सदस्य मन्त्रि-
मण्डल में नहीं होने चाहिएँ। वर्तमान कांग्रेसी शासन में तो मन्त्रिमण्डल के
गठन पर किसी प्रकार का अंकुश न होने से किसी प्रकार के भ्रष्टाचार की कोई
सीमा ही नहीं रहती। लोभी व्यक्तियों को प्रसन्न रखने के लिए जनता के
धन से मन्त्रिपद को वेतन तथा अन्य खर्चीली सुविधाएँ दी जाती हैं।

इतिहास लेखन, पठन-पाठन, संशोधन की विधि

इतिहास लेखन, पठन-पाठन, संशोधन की विधि इस प्रकार हो कि
उससे श्रोता या पाठक को पता लगे कि उस राष्ट्र का मूल व्यक्तित्व कैसा

था? अब कैसा है? वह दुरवस्था या प्रगति किन कारणों से हुई? वर्तमान
समस्याएँ क्या हैं? उनका हल कैसा हो? आदि।

वर्तमान भारत में ऊपर कही विधि की जानकारी इतिहास के किसी
भी विद्वान को नहीं दीखती। वर्तमान इतिहासज्ञ अपने आपको कांग्रेस
पक्ष के ताबेदार-सेवक मानते हैं। उन्हें सरकार का जैसा आदेश मिलता है
वैसा इतिहास वे प्रस्तुत करते हैं। उदाहरणार्थ उनके कथन का सार यह है
कि मुहम्मद बिन कासिम से अहमदशाह अब्दाली तक जितने भी इस्लामी
आक्रामक आए उनको भारतीय ही माना जाए क्योंकि यहाँ आतंक मचाते
समय वे भारत में ही निवास करते थे। अनेक मन्दिर भ्रष्ट कर उन्हें
मस्जिद या मकबरे बनाकर उन्होंने वास्तुकला में तथा भारत की सभ्यता
में बड़ा योगदान दिया। वे हिन्दुओं को कुत्ते, चोर, डाकू, काफिर, उचक्के,
कम्बख्त, हरामजादे आदि कहते थे इस बात का इतिहास में कदापि उल्लेख
न हो। सारे सुल्तान बादशाह पाँच हजार स्त्रियाँ जनानखाने में रखते थे,
शराब पीते थे, अफीम खाते थे, समलैंगिक मैथुन करते थे यह बात भी
गुप्त रखी जाए। दारा ने उपनिषद, महाभारत आदि ग्रन्थों का फारसी में
अनुवाद किया यह कहते समय दारा ने संस्कृत कब, किससे और कितने
वर्ष सीखी आदि प्रश्नों को कभी उठाया न जाए। इतिहास किस प्रकार
झुठलाया जाए इसके ऊपर कहे नमूनों के अनुसार आदेश देने वाली कांग्रेस
सरकार द्वारा स्थापन मण्डल का नाम है N.C.E.R.T. (National
Council for Educational Research and Training)।

त्वरित न्याय

भारत में वर्तमान न्याय-पद्धति अंग्रेजी ढाँचे की है। उसमें कई वर्ष
तक दावा लड़ना पड़ता है। उसमें खर्चा अत्यधिक होकर वादी या प्रतिवादी
की मृत्यु से दावा विफल भी होता है। विलम्ब से होने वाला निर्णय स्वयं
में एक अन्याय है। इसे सुधारकर तुरन्त निर्णय की व्यवस्था होनी चाहिए।
कायदा-कानून सीखे हुए अनेक न्यायाधीश नगर की किसी मध्यवर्ती इमारत
में कतारों में बैठकर उनके समक्ष वादी-प्रतिवादी अपना-अपना लिखित
कथन प्रस्तुत करें और उस पर न्यायाधीश निजी निर्णय दे। जहाँ तक हो

मके वकील होने ही नहीं चाहिएं। निर्णय अमान्य हो तो दो या तीन वरिष्ठ स्तरों तक वादी प्रतिवादी को निजी कथन प्रस्तुत करने की सुविधा रखी जा सकती है। अनेक वाद तो गाँव या मुहल्लों की पंचायतों में ही निबटाने का प्रावधान होना चाहिए। जैसे मकान के स्वामी से किराएदारों के विवाद या पति-पत्नि के बीच मतभेद।

स्वाध्याय

वैदिक परम्परा के अनुसार हर व्यक्ति ने (विशेषतया पुरुषों ने) प्रातःविधि, स्नान, व्यायाम के पश्चात् लौकिक व्यवहार के लिए घर से बाहर निकलने से पूर्व प्रतिदिन स्वाध्याय करना पड़ता था। स्वाध्याय यानि आत्मशिक्षा अर्थात् आत्मबोध यानि अपने आपको चेतावनी देना। वह स्वाध्याय इस प्रकार होता था—"सत्यं वदामि, धर्मं चरामि, सत्यान्न प्रमदितव्यम्, देव पितृ कार्यान्न प्रमदितव्यम्, मातृदेवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव" आदि।

यह एक प्रकार से अपने आपको आदर्श आचरण का स्मरण दिलाना था। इससे समाज का सन्तुलन अच्छा बना रहता था। वर्तमान सन्दर्भ में यह स्वाध्याय इस प्रकार हो सकता है कि "मैं लौकिक व्यवहार में झूठ नहीं बोलूंगा, घूस नहीं लूंगा, भ्रष्टाचार नहीं करूंगा, हेरा-फेरी नहीं होने दूंगा, आदि। मानसशास्त्रीय दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति ने अपने-आपको इस प्रकार चेतावनी देने से उसका अधिक दृढ़ तथा अच्छा परिणाम होता है। वर्तमान समय में बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार रोकना हो तो उसके जो अनेक उपाय हो सकते हैं उनमें से एक स्वाध्याय का हो सकता है। सरकारी या अन्य कार्यालयों में कार्य आरम्भ करने से पूर्व प्रत्येक कर्मचारी ने उच्चस्वर में स्वाध्याय करने की प्रथा जारी की जानी चाहिए। इससे सरकारी काम-काज सुधरेगा।

प्राचीन अरबस्थान का सामवेद गायन

संगीत की मधुर ध्वनि लहरों के परिणाम आँखों को भले ही न दिखें, बड़े दूरगामी होते हैं। शास्त्रज्ञ कहते हैं कि देहातों में, खेतों के बीच रात को जब ग्रामीण जनता ढोल आदि लेकर नाचती-गाती है तो उनकी ध्वनि से

धान्य की उपज अच्छी होती है। अन्य कुछ लोग कहते हैं कि प्रातः जब लोग भजन गाते हैं तो गौएँ दूध प्रसन्नता से, सरलता से, भरपूर छोड़ती हैं।

एक संगीतज्ञ स्त्री ने लिखा है, "मैं एक गायिका हूँ। संगीत के प्रेम से सामवेद के स्वरों का अध्ययन करने की मेरी अनेक वर्षों से इच्छा थी। कुछ मास पूर्व वह कुछ मात्रा में सफल हुई। पुणे नगर निवासी धुण्डीराज शास्त्री लेले जी का ध्वनिमुद्रित गायन मैं सुन पाई। उनके गुरु वेदमूर्ति स्व० बापटशास्त्री का ध्वनिमुद्रित सामवेदीय गायन सुनने की सन्धि भी मुझे वहीं प्राप्त हुई। उन स्वरों का मैंने स्वयं गान किया। तत्पश्चात् शोलापुर की स्थानीय मस्जिदों से मुझे जब प्रातः मुएझ्झिन की नमाज की पुकार सुनाई देती तो मुझे प्रतीत होने लगा कि उस पुकार में भी सामवेद के ही स्वर हैं। दोनों के समान स्वर, दीर्घ या ह्रस्व उच्चारण की पद्धति, उनका ठेका, त्रिस्वरी तान, चतुःस्वर तक का मर्यादित विस्तार व लोक-संगीत का दोनों में हुआ मिश्रण यह विशेषताएँ दोनों में समान मिलती हैं। संगीतशास्त्र की दृष्टि से ना-सा-रे-भा रे गऽऽ रे-सा-नी-सा-रे-सा—इन स्वरों में प्रचलित शास्त्रीय परिपाटी में नी अति कोमल है। रे यह थोड़ा चढ़ा हुआ कोमल रे है जिसे त्रिश्रुतिक रि कहकर सम्पूर्ण वैदिक संगीतशास्त्र का रहस्य तथा मर्म माना जाता है। नमाज की पुकार में वे दोनों स्वर उसी उच्चारण में तथा श्रुति के गणितीय हिसाब में भी उसी ऊंचाई के होते हैं। लंदन नगर में भी जब सामवेद की ध्वनि मुद्रिका कुछ लोगों को सुनाई गई तो उन्हें भी वह मस्जिद से दी जाने वाली पुकार की तरह प्रतीत हुई। मेरे अनुभव से भी मुझे वही प्रतीत हुआ। अब मुझे प्रतीत होने लगा कि इस्लामपूर्व अरबस्थान में सामवेद का गान होता होगा। उन पवित्र मन्त्रों के स्वर अमुक होते हैं, उन्हें गाने की विधि इस प्रकार होती है, यह इस्लामपूर्व अरब वासी जानते थे। इस्लाम की स्थापना से पूर्व ही अरबस्थान में वेद-पठन की परम्परा होने से कुराण की आयतें भी उसी प्रकार गाने की प्रथा रूढ़ हुई।"

इस ग्रन्थ में हम पहले ही बता चुके हैं कि कुराण में एक स्थान पर मुहम्मद ने कहा है कि "ईसाई तथा यहूदी ग्रन्थ मुझे मान्य नहीं, किन्तु उनसे प्राचीन ग्रन्थों का पुरस्कार करने मैं आया हूँ।"

ईसाइयों से तथा यहूदियों से भी प्राचीन ग्रन्थ वेदों के अतिरिक्त अन्य कोई हो ही नहीं सकते।

हज यात्रा के समय मक्का में जो अरबी कुराण गायन दूरदर्शन द्वारा बताया जाता है वह वेद-पठन की तरह तो लगता ही है किन्तु उसका गान करने वालों के वस्त्र भी वेदपाठी ब्राह्मणों जैसे ही (यानि एक धोती और कन्धों पर ओढ़ी एक चादर। दोनों वस्त्र बिना सिलाई के) होते हैं। कितना अच्छा होगा यदि मुसलमानों को कोई समझाए की मूलतः उनकी सभ्यता भी वैदिक ही थी।

अतः वेद-पठन तथा भजन गायन स्वयं करना या मधुर संगीत के स्वरों के साथ-साथ प्रातः के तथा शाम के दैनंदिन व्यवहार करने की प्राचीन वैदिक परिपाटी है। इससे मन शान्त तथा प्रसन्न रहकर कार्य अच्छे होते हैं और सहकार्य बढ़ता है।

सेना

विद्यमान भारत की जनसंख्या कोटि से भी अधिक कही जाती है तथापि उसकी सशस्त्र सेना में केवल आठ लाख व्यक्ति हैं। प्रति १०० नागरिक के पीछे एक सैनिक। इस हिसाब से भारत में लगभग ७० लाख सैनिक होने चाहिएं। इनसे आधे समय में सरकारी खेती तथा आधे समय में सैनिकी प्रशिक्षण करवाया जाए तो सेना के खर्चे का सारा बोझ सरकार पर नहीं पड़ेगा। चम्बल घाटी की लाखों एकड़ भूमि समतल कराकर यदि उसपर सरकारी खेती करवाई जाए तो उससे सेना का पर्याप्त खर्चा निकल जाएगा। विश्व के सारे झगड़ालू पन्थ समाप्त कर उनमें विहित कर्म तथा कर्तव्य पर आधारित समाज व्यवस्था पुनः रूढ़ कर मानव जाति की एकता प्रस्थापित करने में इस सेना का उपयोग होगा। मैं जब नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की आजाद हिन्द सेना का अधिकारी था (जून १९४३ से १५ अगस्त १९४५ तक) तब भारत स्वतन्त्र होने पर उसका शासन किस प्रकार चलाया जाए इस सम्बन्ध में एक योजना बनाकर मैंने उन्हें विचारार्थ दी थी। मराठी भाषा में "हिन्दुस्थानाचे दुसरे स्वातन्त्र्ययुद्ध" नाम का लगभग ४५० पृष्ठों का मेरा जो ग्रन्थ है उसमें वह योजना वर्णित है।

सामाजिक नियन्त्रण

इस योजना में मैंने यह सुझाया था कि भारत की प्रान्तीय सरकारें समाप्त कर एक ही केन्द्रीय सार्वभौम शासन स्वतन्त्र भारत में लागू किया जाए। भारत के लगभग समान आकार के जिले बनाए जाएँ। उन पर एक-एक जिला अधिकारी हो। केन्द्रीय गृहमन्त्री के आदेशानुसार सारे जिला अधिकारी निजी जिले का शासन करेंगे। कोई राज्यपाल नहीं होगा और न कोई प्रान्तीय मन्त्रिमण्डल। इससे वर्तमान सरकारी खर्चे की जो अपार बचत होगी वह दरिद्र जनता को काम-धन्धा आदि दिलाने में काम आएगी। हाल में विविध विधानमण्डलों के सदस्य, संसद सदस्य, राज्यपाल, प्रान्तीय मण्डलों के सदस्य सभी धनिकों के बेटे हैं जो भारत को आर्थिक दृष्टि से लूटकर भारत को अधिक खोखला बना रहे हैं।

ऊपर वर्णित सभी भारत पर बोझ बने बैठे हैं। कोई उपजाऊ कार्य करने की बजाय निर्धन लोगों के श्रम से निर्मित सम्पत्ति को वे निजी राग-रंग, भ्रष्टाचार, मौज, चैन, व्यसनग्रस्तता आदि में उड़ा देते हैं।

ऐसे कई वर्ग भारत में हैं जैसे आढ़त या कमीशन एजेण्ट का धन्धा करने वाले, वकील लोग, दिन-भर सिनेमा देखने में समय गँवाने वाले लोग, चोरबाजारी करने वाले व्यक्ति, मन्दिरों के बाहर या सड़क के किनारे बैठे भिखारी। इस प्रकार प्रौढ़ जनता का एक-तिहाई भाग निकम्मा व निठल्ला बैठकर राष्ट्रीय सम्पत्ति का उपभोग लेता रहता है। ऐसे व्यक्तियों का एक कार्य दल बनाकर उनसे देश के विविध कार्य करा लेने चाहिएँ। सरकार की तरफ से सेना छावनियों जैसी उनके निवास तथा भोजन की व्यवस्था हो। अस्पतालों का कारोबार, पंगु, कुष्ट रोगी तथा अन्धे, बहरे, पागल या अनाथ लोगों के आश्रम चलाना, हट्टे-कट्टे भिखारियों से सैनिकी संचलन, व्यायाम आदि करवाकर उन्हें कार्यरत नागरिक बनाना, कारागृहों का कारोबार चलाना, शहरों के उद्यान तथा सड़कें आदि की देखभाल ऐसे कई कार्य राष्ट्रदल को सौंपे जा सकते हैं। भोजन, निवास, कपड़ा तथा रोगी होने पर स्वास्थ्य सुधार की व्यवस्था, शासन द्वारा प्रत्येक नागरिक को उपलब्ध होनी चाहिए। किन्तु स्वतन्त्र उद्योग, कारखाने आदि चलाकर व्यक्तिगत नफाखोरी समाप्त कर देनी चाहिए।

सूर्यनमस्कार व्यायाम का महत्त्व

योगासनों का महत्त्व तो सर्वश्रुत है ही। किन्तु योगासनों में भी सूर्यनमस्कार सर्वोत्तम व्यायाम है। प्रत्येक व्यक्ति ने प्रातः ४ बजे उठकर प्रातःविधि तथा स्नान कर सर्वप्रथम १०० से १५० शास्त्रोक्त सूर्यनमस्कार करने चाहिएँ। सूर्यनमस्कार से व्यक्ति रोगमुक्त, पीड़ारहित, दीर्घजीवन जी सकता है। उसका शरीर सशक्त होगा, चेहरा प्रसन्न दिखेगा, दिन-भर शक्ति तथा स्फूर्ति बनी रहेगी। उसकी सन्तान भी सशक्त, दीर्घायु तथा कर्तृत्ववान बनेगी।

दरिद्राश्रम

भारत में स्थान-स्थान पर निर्धन लोगों के लिए दरिद्राश्रम बनाए जाने चाहिएँ। इनका खर्चा सरकार पर नहीं पड़ेगा। स्थानीय मन्दिरों की आय से वह खर्चा चलाया जाएगा। यदि वह आय पर्याप्त न हो तो दरिद्राश्रम के खर्च का भार स्थानीय व्यापारी लोगों के संघटन पर सौंपना चाहिए। भिखारियों को पकड़कर दरिद्राश्रम में रखना चाहिए। वहाँ दुर्बल, वृद्ध, रोगी व्यक्तियों की चिकित्सा की जाए तथा हट्टे-कट्टों को सैनिकी शिस्त में रखकर उनसे सार्वजनिक कार्य प्रतिदिन आठ घण्टे करवाया जाए।

अभयाश्रम

जीवन में कई संकट आते रहते हैं। विवाहित महिला का ससुराल में छल होना। गुण्डों द्वारा किसी को धमकियाँ दी जाना। ऐसी अवस्था में स्थान-स्थान पर अभय आश्रम होने चाहिएँ, जहाँ असहाय व्यक्ति को अभय मिले। सेवानिवृत्त सैनिकों पर इस प्रकार का संरक्षण सौंपा जाना चाहिए। इस प्रकार के कई कार्यों में सेवानिवृत्त सैनिकों को काम पर लगाया जा सकता है।

वचन पालन

रघुकुल रीति सदा चली आई। प्राण जाय पर वचन न जाई॥

सन्त तुलसीदास जी के इस दोहे का लोग बड़े भक्तिभाव से उच्चारण तो करते हैं किन्तु पालन क्वचित् ही करते हैं। स्वीकृत कार्य न करना या

विलम्ब से करना, वचन को न निभाना आदि शिथिलता तथा लापरवाही हिन्दू समाज में बढ़ रही है। अतः वचनपालन की बड़ी शिस्त समाज में कड़ करने की आवश्यकता है।

वस्तुतः नियत समय पर व्रतबन्ध, विवाह आदि संस्कार सम्पन्न कराने के मुहूर्त की कल्पना वैदिक परम्परा की है। तथापि स्वयं हिन्दू लोग ही अब व्यवहार से बड़े शिथिल हो गए हैं। अंगीकृत कार्य को भूल जाना या समय पर न निभाना अथवा सभा में विलम्ब से पहुँचना। इस प्रकार की सार्वजनिक शिथिलता के कारण ही राष्ट्र का अधःपतन होता है।

इतिहासकारों के स्तर

इतिहासकारों के कई स्तर होते हैं। सामान्य इतिहास लेखक द्रव्य दाता या आश्रयदाता वरिष्ठ को प्रसन्न रखने हेतु उसकी इच्छा या आदेश के अनुकूल इतिहास लिखता है या पढ़ाता है। विद्यालयों के पदवीधर अध्यापक इस प्रकार के इतिहासज्ञ होते हैं। इस्लामी तथा ईसाई लोग निजी धर्म तथा धर्मगुरु को अनुकूल इतिहास ही लिखते हैं। वे अपने आपको निजी पन्थ के गुलाम समझकर सारे प्रतिकूल ब्योरे को दबा देते हैं या तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करते हैं। तीसरा एक वर्ग कम्युनिस्ट आदि विशिष्ट विचारधारा का गुलाम होता है। उस विचारधारा से असंगत ऐतिहासिक घटनाएँ वे या तो नगण्य कहकर दबा देते हैं या उन्हें विकृत रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार के इतिहासज्ञ क्षुद्र लोभी अनार्ष वर्ग के होते हैं।

उनकी तुलना में मनु, वाल्मीकि, व्यास आदि निर्भीक, विश्वजन कल्याण चिन्तक, सत्यनिष्ठ, ऋषिओं का साहस अजर-अमर होने से उन्नतम, चिरस्थायी आर्ष साहित्य कहलाता है।

मुसलमानों के दावे

भारत के अधिकतर मुसलमान ऊपरी दिखावे के लिए अपने आपको भारतीय कहते हुए भी मन-ही-मन में हिन्दुस्थान के कट्टर शत्रु होते हैं। इसी कारण तो नब्बे प्रतिशत मुसलमानों ने विभाजन का समर्थन कर पाकिस्तान (बांग्लादेश) इस्लामी राज्य का निर्माण करवाया तथा संविधान की धारा ३७० द्वारा कश्मीर को स्वायत्त इस्लामी प्रदेश का दर्जा

दिलवाया। मुसलमान अध्यापक भी छात्रों को इतिहास की पढ़ाई में झूठे उदाहरण देकर गुमराह करते रहते हैं। उदाहरणार्थ भारत में जो अरब, ईरानी, तुर्क, अफगान आदि सुल्तान बन गए थे उन्हें चंगेजखान के जो वंशज मुसलमान बने थे उनके आक्रमणों का, वे भारत में घुसकर कहीं सुल्तानों की गद्दी न छीन लें, इस डर से सुल्तान की सेना काबुल, कन्धार आदि प्रदेशों में मुगल उर्फ मंगोल सेना का प्रतिकार करते थे। ऐसी घटनाओं को लेकर मुसलमान अध्यापक कहते हैं, "देखिए अरब-तुर्क-ईरानी सुल्तान भी देश की सीमा का रक्षण करते थे अतः वे हिन्दू राजाओं जैसे ही देशवासी, देशभक्त माने जाने चाहिएँ।"

जब एक डाकू किसी के घर में घुसकर उसे लूट रहा हो और उसी समय कोई दूसरा डाकू उस घर में घुसकर उस लूट का भागीदार बनना चाहे या पहले लुटेरे को मारना चाहे तो उसका विरोध करने वाला पहला डाकू क्या घर के स्वामी जितना उस घर का हितैषी कहलाएगा? दूसरा डाकू आने से, पहले डाकू को मकान मालिक का दर्जा प्राप्त नहीं होता।

जंगल में भी जब एक चीता किसी हिरण को मारकर उसका मांस खा रहा हो तब वह किसी दूसरे चीते को हिरण के शव के पास आने नहीं देगा। उस समय क्या हम पहले चीते को हिरण का दोस्त मानेंगे? इसी प्रकार भारत में लूट तथा कत्ल का आतंक मचाने वाली एक इस्लामी जमात यदि दूसरी किसी जमात को भारत में घुसने से प्रतिबन्ध करे तो पहली इस्लामी जमात को भारत-मित्र, भारत-रत्न या भारत-हितैषी कहना शिक्षा-क्षेत्र की निन्दनीय हेरा-फेरी समझनी चाहिए। इतिहास के छात्र मुसलमानों की ऐसी करतूतों से सावधान रहें।

द्रोह की व्याख्या

मुसलमान भी हिन्दुस्थान में देशभक्त कहला सकता है यदि वह केसरिया ध्वज, वैदिक संस्कृति तथा संस्कृत भाषा का पुरस्कार करे। इन तीन बातों से जो घृणा करे या उन्हें कुचलना चाहे, उसे देशद्रोही ही समझना चाहिए चाहे उसका धर्म या पन्थ कुछ भी हो।

इतिहास शिक्षा का वर्तमान अनुचित ढंग

भारत में दीर्घकाल तक मुसलमान तथा अंग्रेजों जैसे परायों का शासन रहने से यहाँ की इतिहास शिक्षा-पद्धति सर्वथा अराष्ट्रीय-सी बन गई है। भारत में गणित, भूगोल आदि की तरह इतिहास भी शुष्क, भावनाहीन, तटस्थ की भूमिका से पढ़ाया जाता है। इतिहास सर्वदा देशभक्ति, संस्कृति रक्षा आदि का ध्यान रखकर आत्मीयता की भावना से ही पढ़ाया जाना चाहिए। उदाहरणार्थ पानीपत के तीन युद्ध किस-किस के बीच हुए? ऐसा प्रश्न करने की बजाय छात्रों को पूछना चाहिए कि पानीपत के तीन युद्धों का विवरण देते हुए हिन्दू संस्कृति को उनसे क्या लाभ हुआ या हानि पहुँची, इसकी चर्चा करें।

इतिहास जो मोड़ ले उस पर देश तथा धर्म की रक्षा, साहस, वीरता, दरिद्रता या समृद्धि आदि निर्भर करते हैं। अतः इतिहास की पढ़ाई में तथा परीक्षाओं में सर्वथा आत्मीयता (subjective view) प्रधान होनी चाहिए। हमारा देश हिन्दुओं का ही नहीं अपितु मुसलमान, ईसाई आदि सबका है। कांग्रेसी प्रतिपादन से इतिहास पर कुठाराघात होता है। क्योंकि वैसी भूमिका लेने पर मुसलमान या ईसाई आक्रामक का विरोध करने की भारतीय सेना को इच्छा ही नहीं रहेगी। अतः प्रत्येक नागरिक तथा सैनिक को बार-बार यह शिक्षा मिलनी चाहिए कि हिन्द भूमि, वैदिक सभ्यता तथा संस्कृत भाषा ही हमारी विरासत है। इस विरासत की जो भी अवहेलना करेगा वह हमारा शत्रु है, जो उसकी सराहना करेगा उसे हम अपना मित्र मानेंगे।

पानीपत के युद्ध के सम्बन्ध में भारतीयों को जो दृष्टिकोण अपनाने को ऊपर कहा है वही ट्रैफलगर (Trafalgar) या वाटरलू (Waterloo) की लड़ाइयों की बाबत इंग्लैंड के लोग अपनाते हैं। किसी भी देश की स्वाभिमानी या देशभक्त जनता ऐसा ही करेगी।

इतिहास का जमा खर्च

'जैसा कर्म करो वैसा फल पाओ' यह कर्मसिद्धान्त वैदिक सभ्यता का एक मूलगामी नियम है। इतिहास में भी वह लागू होता है। मुसलमानों ने

७१२ ई० से १७६१ तक भारत पर लगातार आक्रमण कर लाखों मुसलमान सैनिकों का बलिदान दिया। तत्पश्चात् अंग्रेजों ने भारत में कई युद्ध लड़े। इसके बदले में हिन्दू परास्त होकर पीछे-पीछे हटते गए। इतना ही नहीं अपितु मोहनदास गांधी के नेतृत्व में बिना युद्ध एवं बिना बलिदान, अहिंसा से स्वतन्त्रता पाने की भाषा चल पड़ी। मुसलमान तथा अंग्रेज शत्रुओं ने जो भारत का शासनाधिकार खड्ग से जीता, वह केवल टकली तथा चरखा घुमा-फिराकर प्राप्त करने की अभिलाषा भारत में जगाई गई। इसी कारण हमें जो स्वतन्त्रता मिली वह लंगड़ी-लूली और टूटी-फूटी सिद्ध हुई। इसी ने हमारे नेताओं को बार-बार यह कहना पड़ता है कि ८५% हिन्दू, १२% मुसलमान और दो प्रतिशत ईसाई सारे बराबर हैं। यह देश केवल हिन्दुओं का नहीं है। क्या यह स्वतन्त्रता की भाषा है? क्या विश्व में ऐसा अन्य कोई देश है जहाँ ८५ प्रतिशत जनता कहे कि यह देश केवल हमारा नहीं है? इस लज्जास्पद अवस्था का दोष जवाहरलाल नेहरू तथा मोहनदास गांधी के नेतृत्व पर ही लगाया जाना चाहिए।

मुसलमानों के जितने सैनिक तथा युद्धसामग्री भारत पर विजय पाने में खर्च हुई उतने हिन्दू तथा उतनी सामग्री जब तक हिन्दू युद्ध में नहीं झोंकेंगे तब तक सही अर्थ में हिन्दू स्वतन्त्र नहीं होगा।

हिन्दू शासकों की अद्वितीय मूर्खता

मुसलमानों को परास्त कर मुगल सम्राट् का शासन समाप्त करने की जो वीरता तथा बुद्धिमानी अंग्रेजों ने दिखलाई वह हिन्दू सेना ने अन्त तक नहीं दिखलाई। निजामुल्मुल्क, टीपू तथा मुगल सम्राट् को बार-बार परास्त करने पर भी उन्हीं की गद्दी तथा अधिकार चालू रखने की मूर्खता जो हिन्दू राजाओं ने की वह अद्वितीय है। मुसलमान सुल्तान, बादशाह, सरदार, दरबारी, नवाब आदि ने सैकड़ों वर्ष इतने अत्याचार किए थे कि उनको परास्त करते ही उन पर देशद्रोह, हत्या, लूट, अत्याचार, व्यभिचार, आतंक आदि मचाने के आरोप लगाकर उन्हें तोप से उड़ा देना चाहिए था। इस मिली कठोर शासन का कर्त्तव्य न करने का घोर परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजों का दबाव निकल जाते ही इस्लामी शक्ति-सत्ता-आकांक्षा

मुस्लिम लीग, नोआखाली का कत्लेआम, रजाकार, सुहरावर्दी द्वारा किया हत्याकाण्ड, मोपलाओं का विद्रोह आदि रूपों में उभर आए और सिंह जैसे किसी मनुष्य पर झपट्टा मारकर उसके हाथ पैर फाड़ देता है वैसे ही भारतमाता के अंग पाकिस्तान तथा बांग्लादेश के नाम देकर काट कर अलग कर दिए गए। यह भी केवल इस्लामी पुनरुत्थान का आरम्भ है। जिस शत्रु को अरबस्थान, ईरान, इराक, फरगाना, अफगानिस्थान आदि दूर-दूर प्रदेशों से आना पड़ता था, उसे मोहनदास गांधी और जवाहरलाल नेहरू ने पाकिस्तान तथा बांग्लादेश के रूप में भारत की छाती पर ही बिठा दिया। इतना ही नहीं अपितु पाकिस्तान के निर्माण के लिए जिन्होंने भारत में हत्याएँ कीं, ऐसे करोड़ों मुसलमानों को गांधी-नेहरू जोड़ी ने कश्मीर से कन्याकुमारी तक और गुजरात से असम तक बड़े आग्रह से बसा लिया है ताकि पाकिस्तान और बांग्लादेश, जब शेष भारत पर हमला करेंगे तब उन्हें भारत से अन्दरूनी सहायता मिलने में कोई कसर न रहे।

एक ऐतिहासिक सिद्धान्त

अनिर्बंध इस्लामी सत्ता या और कोई भी सत्ता यदि अपार बढ़ती चली जाए और उसे किसी कल्याणकार्य में न जोता जाए तो वह जनता को दाहक तथा मारक बनाती है। एक बिजलीघर का उदाहरण लेकर यह सिद्धान्त स्पष्ट होगा। समझ लीजिए एक नया बिजलीघर कहीं स्थापित कर उसमें दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक विद्युत्शक्ति का निर्माण हो रहा है। किन्तु उस बिजली से जनता के घर प्रकाशित करना या कारखाने चलाना आदि कार्य कराने की बजाय तीव्र विद्युत् शक्ति के तार यदि रास्ते पर तथा गली-कूँचों में बिखरे रहें तो इन्हें स्पर्श करने पर जाने-आने वाले लोग मरते रहेंगे।

भारत में जो इस्लामी शक्ति बढ़ती गई वह भी इसी तरह गली-कूचों में फैलकर लोगों को अत्याचारों से जलाती रही। प्रथम आया मुहम्मद बिन कासिम, तत्पश्चात् महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी, गुलाम, खिल्जी, तुगलक, सय्यद, लोदी, मुगल, बहमनी, निजाम और अनेक नवाब, सुल्तान तथा अहमदशाह अब्दाली तक के सारे आक्रामक व्यसनाधीन तानाशाह

जनता को विविध प्रकार से छलने का कार्य ही करते रहे क्योंकि उन्होंने निजी शक्ति जनता के हित में नहीं लगाई।

यदि शरीर के किसी हिस्से को बिजली झटका का लगे तो जैसे व्यक्ति पागल या बुद्धिहीन व मतिहीन बन जाता है उसी तरह एक सहस्र वर्षों की दाहक इस्लामी शक्ति से हिन्दुओं की विचारशक्ति इतनी अकार्यक्षम बन गई है कि ताजमहल आदि ऐतिहासिक इमारतें मुसलमानों की बनाई नहीं हैं, इस तथ्य के ढेर सारे प्रमाण प्रस्तुत करने पर भी हिन्दू अधिकारी, इतिहासज्ञ, विद्वान तथा सामान्य जनता उस पर विश्वास नहीं करती। वह अपने श्रेष्ठ पूर्वजों को बुद्धू तथा निकम्मे मानकर निरक्षर, क्रूर, व्यभिचारी, अत्याचारी पराए मुसलमान आक्रामकों को ही गण्यमान्य व्यक्ति समझे बैठे हैं, इससे बढ़कर राष्ट्रीय दुर्भाग्य और क्या हो सकता है?

इतिहास में परायों का हस्तक्षेप

विश्व का वर्तमान इतिहास इस कारण विकृत तथा खण्डित हुआ पड़ा है कि उसमें परायों का हस्तक्षेप हुआ है। यहाँ पराए शब्द केवल अन्य देशों के निवासियों पर ही लागू नहीं है। एक ही देश के निवासी जब निजी धर्म या विचारनिष्ठा बदल देते हैं, वे निजी देश में रहते हुए भी उसके शत्रु बन जाते हैं। पाकिस्तान तथा बांग्लादेश के निवासियों का उदाहरण लें। कुछ समय पूर्व वे जब तक हिन्दू थे, वे भारतनिष्ठ थे, किन्तु जबसे वे मुसलमान बनाए गए हैं तब से वे भारत के, भारतीयों के तथा वैदिक सभ्यता के शत्रु बन गए हैं। इसी प्रकार जो व्यक्ति कम्युनिस्ट विचार-प्रणाली अपना लेता है वह भारत से अधिक रूस जैसे किसी पराए देश की परम्परा का समर्थक बन जाता है।

स्वयं रूस के निवासी सन् १९१७ में कम्युनिस्ट बनते ही तत्पूर्व के निजी इतिहास का तिरस्कारयुक्त उल्लेख करने के आदी बन गए। इसी प्रकार ईसाई बने देश ईसाइयत अपनाने के पूर्व का इतिहास भूल जाना चाहते हैं। मुसलमान बने देश इस्लामपूर्व का निजी इतिहास घृणित समझने लगे हैं।

जिस दिन से सृष्टि का निर्माण हुआ है तबसे आज तक, सारे विश्व का ब्योरा इतिहास कहलाता है। तथापि मुसलमान लोग इतिहास में इस्लाम के अतिरिक्त और किसी विषय का अन्तर्भाव होने ही नहीं देते। इसी प्रकार कम्युनिस्ट लोग सन् १९१७ की उनकी क्रान्ति के पूर्व का इतिहास नगण्य तथा बेकार समझते हैं। वे कभी उस इतिहास का उल्लेख

भी करेंगे तो उसे पूर्णतया विकृत और घृणित कर छोड़ते हैं। ईसाई और मुसलमान लोगों की यही प्रथा है। अतः उनके लिखे इतिहास से पाठकों ने अत्यन्त सावधान रहना आवश्यक है।

आंग्ल विद्वानों द्वारा इतिहास से खिलवाड़

ऊपर कहे सामान्य दोषों के अतिरिक्त अंग्रेज विद्वानों ने अपनी संकुचित दृष्टि के कारण भारतीय इतिहास परम्परा का १३०० वर्षों का खण्ड निराधार समझकर कटवा डाला। सन् १८५८ से अंग्रेज जब भारत के सर्वाधिकारी बने तब विद्याक्षेत्र में भी उनकी मनमानी चलने लगी।

उस युग में प्रचलित संकुचित ईसाई विचारधारा के अनुसार यूरोप के सारे गोरे विद्वानों ने यह समझ रखा था कि विश्व का आरम्भ ईसापूर्व सन् ४००४ में हुआ। उस समय मानव जंगली अवस्था में था। अतः मानव की पर्याप्त बौद्धिक प्रगति होकर वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत आदि साहित्य का निर्माण होने में सैंकड़ों वर्ष लगे।

वेद सम्बन्धी मैक्समूलर के तथ्यहीन तर्क

मैक्समूलर नाम के एक गोरे साहब ने ऋग्वेद को ईसवीपूर्व वर्ष १२०० का बतलाकर यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद तत्पश्चात् २००-२०० वर्षों के अन्तर से बनाए गडरियों के निराधार तथा निरर्थक गंवार गीत हैं ऐसा अनुमान इतिहास में ठूंस दिया। तब से आंग्ल-प्रणाली के सारे 'जी हुजूरे' विद्वानों ने ईसापूर्व वर्ष १२०० तक के काल को वेदपूर्व काल कहना आरम्भ कर दिया। ईसापूर्व वर्ष १२०० से ईसापूर्व ६०० तक वैदिक काल कहा। तत्पश्चात् के काल को वेदोत्तर ऐतिहासिक काल समझा जाता है। हमारे हिसाब से वेदपूर्व काल मानव के लिए कोई हो ही नहीं सकता क्योंकि वेद सृष्टि निर्माण के साथ ही आए। वेदों को बनने में कोई समय नहीं लगा अतः 'वैदिक काल' यह वाक्प्रचार गलत है।

ईसापूर्व वर्ष ६०० में तो लगभग शाक्यमुनि सिद्धार्थ गौतमबुद्ध का काल था। अतः उस समय तक वेद बनते रहे यह मैक्समूलरी सिद्धान्त हास्यास्पद है। वैसे भी यदि वेद गंवार गडरियों के गीत हैं तो गौतम बुद्ध के काल में जब भारत तो प्रगत एवं सघन देश होते हुए उस समय गडरियों के गीतों को दैवी प्रतिष्ठा कैसे प्राप्त हुई और बुद्ध के समय जब लेखन-कला भारतीयों को अवगत थी तो वेद मुखोद्गत रखने की प्रथा क्यों पड़ी? उधर तो आंग्ल प्रणाली के विद्वान कह रहे हैं कि वेद इसलिए मुखोद्गत करने पड़े क्योंकि उस समय के लोग लेखन नहीं जानते थे, और इधर तो मैक्समूलर द्वारा ईसापूर्व वर्ष १२०० से ईसापूर्व वर्ष ६०० तक का जो समय दे रखा है उसमें तो लोग लेखन भली प्रकार जानते थे। वेद यदि गडरियों के नगण्य गीत हैं तो उन्हें मुखोद्गत रखने वाले विश्वभर में पीढ़ी-दर-पीढ़ी लाखों कुटुम्बीजन समर्पित भाव से कैसे जुट गए? इन तर्कों से मैक्समूलर साहब के वेद-सम्बन्धी सभी निष्कर्ष खोखले और तर्कहीन सिद्ध होते हैं।

वेदों को ईसापूर्व वर्ष ६०० के मानने से गौतम-बुद्ध का समय, रामायण का काल, महाभारत का काल आदि अनेक घोटालों की खिचड़ी-सी बन जाती है। इस प्रकार सृष्टि-उत्पत्ति समय की संकुचित कल्पना तथा वेदों को नगण्य, गंवार गीत कहना यह पाश्चात्य विद्वानों की इतिहास सम्बन्धी दो मूलभूत भूलें हैं।

तीसरी भूल है—आर्यों के सम्बन्ध की। जबकि आर्य यह सनातन वैदिक हिन्दू विचार-प्रणाली का नाम है, उसे पाश्चात्य लोग यूरोप के गोरे लोगों का वंश मानते रहे। आर्य यदि वंश होता तो यूरोप के गोरे लोग भी आर्य तथा भारत के काले लोग भी आर्य ऐसा कैसे हो सकता था? और यदि भारत के काले लोग भी आर्य हैं तो नर्मदा के दक्षिण में रहने वाले लोग द्रविड़ क्यों कहलाए? ऐसे आक्षेपों से पता चलेगा कि इतिहास के सम्बन्ध में पाश्चात्यों के विचार बड़े घोटाले के हैं।

पाश्चात्यों की चौथी खिलवाड़ यह रही कि उन्होंने अलेक्जेण्डर (सिकन्दर) को गुप्त वंश के चन्द्रगुप्त का समकालीन न मानकर चन्द्रगुप्त मौर्य का समकालीन माना।

पाश्चात्यों की पाँचवीं भूल आद्य शंकराचार्य के सम्बन्ध में है। आद्य शंकराचार्य का काल प्रचलित पाश्चात्य धारणाओं के अनुसार विद्यालयों में ईसवी सन की आठवीं शताब्दी कहा जाता है जबकि आद्य शंकराचार्य ईसा पूर्व छठवीं शताब्दी में हुए। इस प्रकार अंग्रेजों ने भारतीय ऐतिहासिक परम्परा के १३०० वर्ष काट छोड़े हैं।

आजकल जो गौतमबुद्ध का काल माना जाता है वह वास्तव में आद्य शंकराचार्य का काल होने से गौतमबुद्ध का समय और १३०० वर्ष पीछे चला जाएगा। तदनुसार गौतमबुद्ध का समय ईसापूर्व वर्ष १६०० के आस-पास का बनता है। उन तथ्यों का विवरण अनेक प्रमाणों सहित "भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें" नाम के हमारे ग्रन्थ में दिया गया है, अतः हम उन्हें यहाँ दोहराना नहीं चाहते।

भारतीय इतिहास में विक्रम सम्वत् तथा शालिवाहन शक के अनुसार कालगणना की बड़ी दृढ़ परम्परा है। हर पंचांग तथा धार्मिक विधि में इन्हीं दो कालगणनाओं का उल्लेख होता है। तथापि पाश्चात्य विद्वानों ने विक्रमादित्य तथा शालिवाहन दोनों को काल्पनिक समझकर इतिहास से बहिष्कृत कर छोड़ा। आंग्ल प्रणाली में पले भारतीय विद्वान पाश्चात्यों के इस प्रकार के खिलवाड़ को प्रकाण्ड पाण्डित्य मानकर आंग्ल निष्कर्षों को चुपचाप अपनाते रहे।

भारतीय इतिहास की कालगणना में कलि शक, युधिष्ठिर शक, विक्रम संवत्, शालिवाहन शक आदि कोई भारतीय मानदण्ड लेने की बजाय अंग्रेजों ने पाश्चात्यों के लिखे प्रवासवर्णन अधिक विश्वास योग्य माने। अतः अलेक्जेंडर ने भारत पर किए आक्रमण को ऐतिहासिक कालगणना का एक निश्चित केन्द्रबिन्दु मानकर वहाँ से आगे-पीछे प्रत्येक घटना का काल आँकने की ऊटपटाँग प्रणाली अंग्रेजों ने आरम्भ की। उनका कहना था कि अलेक्जेंडर के आक्रमण का जो वर्णन ग्रीक लेखकों ने लिख रखा है वह सर्वाधिक विश्वसनीय है क्योंकि पाश्चात्य लेखक बड़े सत्यवादी, जिम्मेवार तथा समझदार होते हैं।

यदि वह निष्कर्ष सही होता तो हम उसे अवश्य मानते। किन्तु अंग्रेजों का वह निष्कर्ष पक्षपातपूर्ण तथा निर्मूल है। हमें तो यह शंका है कि कहीं अलेक्जेंडर एक काल्पनिक आक्रामक तो नहीं था। क्योंकि किसी भारतीय ग्रन्थ या दस्तावेज में न तो सिकन्दर का नाम मिलता है न उसकी चढ़ाई का कोई उल्लेख। इसी प्रकार अलेक्जेंडर की चढ़ाई का आँखों-देखा हाल लिख रखने का श्रेय मेगॅस्थनीज, अॅरियन आदि जिन ग्रीक लेखकों को दिया जाता है उनका किसी का लिखा साहित्य उपलब्ध नहीं है। इस आक्रमण का जो हवाला दिया जाता है वह "मेगॅस्थनीज ने ऐसा लिखा था," या "अॅरियन ने इस प्रकार उल्लेख किया था कि···" इस प्रकार कहा-सुना त्रयस्थों का लिखा ब्योरा होता है। इतिहास में कही-सुनी बातों को विश्वसनीय नहीं माना जाता।

Mc Crindle नाम के जिस यूरोपीय लेखक ने सिकन्दर की चढ़ाई का वर्णन संकलित किया है। उसने प्रस्तावना में उल्लेख किया है कि अलेक्जेंडर का लिखा कोई विवरण उपलब्ध नहीं है। अलेक्जेंडर के समय के पश्चात् ग्रीक तथा रोमन लेखकों के सिकन्दर सम्बन्धी उल्लेख बॉन नगर के डा० इच्छवानबक (Dr. Ichwanback) ने प्रथम संकलित किए। मैक क्रिण्डल (Mc Crindle) ने इस जर्मन संकलन का आंग्ल अनुवाद किया। इस प्रकार सारे यूरोपीय विद्वान एक-दूसरे की कही सुनी बातों को ही प्रमाण मानते रहे हैं।

हो सकता है कि अलेक्जेंडर की चढ़ाई एक कपोलकल्पित कहा सुना उपन्यास ही हो। इस बात की अवश्य जाँच होनी चाहिए। क्योंकि इतिहास में ऐसे कई निर्मूल विषय हैं जिनकी बाबत सारे विश्व के इतिहासज्ञ हल्ला-गुल्ला मचा रहे हैं। जैसे शाहजहाँ ताजमहल का निर्माता न होने पर भी उसके नाम से उस सम्बन्ध में सारे विश्व में ढोल पीटे गए हैं। आर्यों को जाति या वंश मानकर ही विश्वभर में इतिहास पढ़ाया जा रहा है जबकि आर्य नाम का कोई वंश कभी था ही नहीं।

ग्रीक सभ्यता पूरी वैदिक होते हुए भी उसे एक भिन्न यूरोपीय संस्कृति मानने की गलती आज तक के लगभग सारे ही इतिहासज्ञ करते आ रहे हैं।

बांग्लादेशी तथा पाकिस्तानी मुसलमानों ने जिस प्रकार पश्चिमी-पंजाब तथा पूर्वी बंगाल का हिन्दू इतिहास मिटाकर अपनी एक अलग परम्परा दर्शाने का यत्न किया है वही ग्रीक लेखकों ने किया। अलेक्जेंडर ने जब भारत पर तथाकथित चढ़ाई की तब उसकी सेना के साथ जो लेखक थे उनके नाम थे Bacto, Diogenetos, Nearchos, Onesikritos, Aristoboulos, Kallisthanes आदि। किन्तु उनमें से किसी का भी लेख प्राप्य नहीं है। Strabo,Pliny तथा Arrian नाम के अन्य लेखकों ने अलेक्जेंडर के समकालीन उन लेखकों का हवाला देकर जो लिखा है वह

कहासुना वर्णन ही केवल उपलब्ध है। अतः वह अविश्वसनीय है।

Mc Crindle के ग्रन्थ में पृष्ठ १६ पर लिखा है कि "प्राचीन लेखकों के अनुसार मैगस्थनीज ऐसे लेखकों में से एक था जो घौंस देने आदि के कारण जिनके कथन पर विश्वास किया नहीं जा सकता।"

Mc Crindle ने स्ट्रैबो (Strabo) का मत भी उद्धृत किया है। स्ट्रैबो ने लिखा है "सामान्यतः यह कहना चाहिए कि भारत के सम्बन्ध में जिन (ग्रीक) लेखकों ने ब्योरा दिया है, वे झूठे हैं। डीमेकोस (Demachos) घौंसबाजी में अग्रसर था। उसके पश्चात् मैगस्थनीज का क्रम आता है। डीमेकोस तथा मैगस्थनीज दोनों ने ऐसे कपोलकल्पित वर्णन लिखे हैं कि भारत के लोगों के कान इतने लम्बे-चौड़े होते थे कि उनमें कोई व्यक्ति लेट भी सकता था। उनके नाक या मुँह नहीं होते थे। आँख एक ही होती थी। तंगड़िया कीटकों के जैसी बारीक होती थीं और उंगलियाँ पीछे की तरफ मुड़ी हुई होती थीं।

प्लिनियस (Plinius) (His. Nat, VI, XXI, 3) ने लिखा है कि ग्रीक लेखकों की लिखी सामग्री पढ़ने योग्य नहीं होती क्योंकि वह अविश्वसनीय होती है तथा विविध लेखकों ने दिया ब्योरा एक दूसरे से मेल नहीं खाता।

हेरोडोटस (Herodotus) भी इसी प्रकार का ग्रीक लेखक है। उसने भी भारत के सम्बन्ध में बड़ी विचित्र तथा अविश्वसनीय बातें लिखी हैं। उदाहरणार्थ उसने उल्लेख किया है कि "जिन-जिन भारतीय जातियों का मैंने उल्लेख किया है वे पशुओं जैसे खुले में संभोग करती हैं। उनकी त्वचा का रंग हब्शियों जैसा होता है। उनका वीर्य भी काले रंग का ही होता है।"

ऊपर दिए उदाहरणों से पाठक जान सकते हैं कि ग्रीक लेखकों ने भारत के सम्बन्ध में किस प्रकार के घृणित तथा झूठे वर्णन लिख रखे हैं। यूरोपीय विद्वानों ने तथा उनकी प्रणाली के भारतीय विद्वानों ने भी इन्हीं कपोलकल्पित, हास्यास्पद वर्णनों को प्रमाण मानकर भारत के प्राचीन इतिहास का संकलन तथा गठन किया है। ग्रीक लेखकों के बालिश तथा काल्पनिक झूठे वर्णनों के उद्धरण संकलित कर एक ग्रन्थ प्रकाशित करना चाहिए जिससे सब विद्वानों को पता चले कि ग्रीक इतिहास लेखकों के लिखे वर्णन कितने निराधार तथा हास्यास्पद हैं।

दाहिर की निन्दा

दाहिर, भारत के सिन्ध प्रान्त का पहला हिन्दू राजा था जो अरब आक्रामकों के हाथों मारा गया। चचनामा नाम की उस समय की जो अरबी तवारीख है उसमें दाहिर का नाम बद् तथा घृणित करने के हेतु यह कह रखा है कि दाहिर ने निजी बहन से ही विवाह कर उसे पटरानी बनाया था। यदि भाई-बहन ही पति-पत्नी बनकर सिन्ध के सिंहासन पर बैठते तो प्रजा चुप नहीं बैठती। उस दम्पति का बहिष्कार किया जाता। उन्हें अभिवादन करने दरबार में कोई नहीं जाता। अतः शत्रुलिखित इतिहास में उल्लिखित ब्यौरे पर यकायक विश्वास नहीं करना चाहिए। इस प्रकार के तिरस्करणीय आरोप राजा के विरुद्ध हिन्दू प्रजा को उकसाने की दृष्टि से मुसलमान शत्रु द्वारा लगाए जाते थे। अतः इस्लामी तवारीखों के प्रत्येक कथन को बड़ी सूक्ष्मता से परखने की आवश्यकता है। इसी प्रकार यूरोपीय लेखक भी धार्मिक तथा राजनयिक दृष्टि से भारतीयों के विरोधी होने के कारण उनके लेख भी बारीकी से जाँचना आवश्यक है।

यूरोपीय लेखकों की एक और गलती यह हुई कि उन्होंने इतिहास को सरल विषय समझकर भारत के इतिहास के आंकन में भारतीय विद्वानों से विचार-विमर्श नहीं किया। वे करते भी तो शायद उनकी 'हाँ' में 'हाँ' मिलाने वाले भारतीय विद्वान ही मिलते। भारतीय विद्वानों को भी वह अन्तर्दृष्टि कहाँ थी जिससे वे अंग्रेज अधिकारी तथा विद्वानों को समझा सकते कि जो तथाकथित मकबरे, मस्जिदें, दरगाह, मीनार, पुल, किले, बाड़े, महल, नगर आदि मुसलमानों के समझे गए हैं वे वस्तुतः अपहृत हिन्दू सम्पत्ति हैं। किन्तु वह सत्य न तो भारतीय लोग स्वयं समझ सके, न ही अंग्रेज शासकों को समझा सके।

इस्लामी ठगबाजी का नमूना

सर थामस रो (Sir Thomas Roe) नाम का आंग्ल राजप्रतिनिधि मुगल बादशाह जहाँगीर के शासनकाल में अंग्रेजों के लिए व्यापार की

सुविधाएं मांगने भारत आया था। उस समय उसने मांडवगढ़ में जहांगीर का तुलाभरण समारोह देखा।

भारतीय क्षत्रिय राजाओं की कुछ पवित्र वैदिक परम्पराएं थीं। प्रत्येक राजधानी में, प्रमुख चौराहे पर नक्काशीदार प्रस्तरों का एक मण्डप होता था। उसमें तुला लटकाने की व्यवस्था होती थी। झूला लटकाने के जैसे सुन्दर कारीगरी के प्रस्तर स्तम्भ होते है वैसे ही वह तुला मण्डप होते थे। उसमें जन्मदिन, राज्याभिषेक के दिन, ग्रहण आदि के दिन राजा तथा अन्य राजपरिवार के व्यक्तियों का तुलाभरण कर, वह धन-धान्य निर्धन प्रजा में बांटा जाता था।

मुसलमान सुल्तान बादशाहों ने उन गौरवपूर्ण राजपूत परम्परा का खोखला नाटक जनता की आंखों में धूल झोंकने के उद्देश्य से चालू रखा। इसका एक बड़ा मार्मिक उदाहरण आंग्ल राजप्रतिनिधि Sir Thomas Roe के संस्करणों में पाया जाता है।

रो साहब ने जहांगीर को तुला की एक तांगड़ी में बैठा देखा। दूसरी तांगड़ी में सोना, चांदी, जवाहरात आदि की चमक-धमक भारतीय क्षत्रिय राजाओं के तुलाभरण प्रसंग पर दिखाई देती है। किन्तु जहांगीर के तुलाभरण के समय तोल में क्या रखा था वह प्रेक्षकों को बताया नहीं जाता था। वह वस्तुएं थैले में या कपड़े में बंधी होती थीं। हो सकता है कि उनमें कंकर तथा पत्थर ही भरे हों। तोल के पश्चात् वे बोरे महल के अन्दर ले जाए गए। लोग देख ही नहीं सके कि उनमें कौन-सा मौलिक माल था। अतः वह धन गरीबों में बांटे जाने की कोई शक्यता दिखाई नहीं देती थी।

इस प्रकार के इस्लामी ठगी के उदाहरण भारतीय इतिहासज्ञों ने नेहरू-गांधी युग में जनता से जानबूझकर छुपा रखे है। विद्यालयों की पाठ्य-पुस्तकों में ऐसे मार्मिक उदाहरणों को स्थान न देना एक शैक्षणिक अपराध है. राजनेताओं को प्रसन्न रखकर उनकी कृपा से धन, पद तथा अधिकार प्राप्ति की अभिलाषा से छात्रों तथा जनता को इतिहास की ऐसी महत्त्वपूर्ण बातों से वंचित रखना एक दण्डनीय तथा निन्दनीय अपराध माना जाना चाहिए। भारत में NCERT नाम का सरकारी संगठन ऐसा महत्त्वपूर्ण ब्योरा इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में कभी अन्तर्भूत होने नहीं देता।

जनता का कर्त्तव्य

इतिहास जनता की निजी कथा होने से जनता द्वारा इतिहास की पुस्तकों पर कड़ी दृष्टि रखना आवश्यक है। व्यावसायिक इतिहासज्ञों पर निर्भर रहने में बड़ा धोखा है। व्यावसायिक इतिहासकार स्वार्थी तथा लोभी होते हैं। पद, अधिकार, पदवी, धन आदि के लोभ से तथा ईसाई या इस्लामी लोगों और सरकारी अधिकारियों से कहीं विवाद ना चल पड़े इस भय से वे सत्य को छुपा देते हैं या टाल देते हैं।

उनका दृष्टिकोण तमाखू, भांग, गांजा, चरस, मदिरा आदि हानिकारक वस्तुओं के व्यापारियों जैसा होता है। वे व्यापारी कभी यह नहीं सोचते कि हम जो पदार्थ बेचते हैं उनसे जनता की कितनी हानि होती है। वे तो यह सोचते हैं कि 'जो पदार्थ बेचने के लिए सरकारी लायसेंस मिला हुआ है और जिस माल के लिए लोगों की मांग है वह चाहे समाज के लिए कितना ही हानिकारक क्यों न हो, हम तो वह बेचकर अवश्य धन कमाते रहेंगे।" व्यावसायिक इतिहासकारों का दृष्टिकोण भी वैसा ही होता है। वे सोचते हैं कि कांग्रेसी शासक जिस प्रकार का इतिहास चाहते हैं वह चाहे कितना ही झूठा हो वह लिखकर यदि हम धन, पद और अधिकार प्राप्त कर सकते हैं, तो हम वैसा ही इतिहास लिखेंगे।

हिन्दुत्व विरोधी षड्यन्त्र

भारत पर आक्रमण करने वाले या भारत में सुल्तान, नवाब, बादशाह आदि बनकर आतंक मचाने वाले मुसलमान तो प्रकट रूप से कहा करते थे कि छल-बल से सारे हिन्दू मन्दिरों का अन्त करना तथा हिन्दुओं को जबरन मुसलमान बनाना ही उनका उद्देश्य था।

ईसाई राष्ट्रों में पुर्तगालियों का भी वैसा ही रवैया था। किन्तु अंग्रेज, डच आदि लोगों का मुख्य उद्देश्य था व्यापार से धन कमाना और जैसा बन सके प्रलोभन से हिन्दुओं को ईसाई बना लेना। तथापि उन तीनों में अंग्रेजों को तो अनजाने ही भाग्यवश भारत का सम्राट् पद प्राप्त होने से आर्थिक लूट करने की तथा हिन्दुओं को ईसाई बनाने की सभी सुविधाएँ तथा अधिकार बिना प्रयास ही प्राप्त हो गए।

पादरियों का षड्यन्त्र

भारत में ईसाई देशों का चंचुप्रवेश होते ही उनके पादरियों के षड्यंत्र शुरू हो गए। प्रथमतः उन्होंने वेदों का एक नकली अनुवाद कर यूरोप में बाँटना आरम्भ किया ताकि भारत की सभ्यता के प्रति यूरोपीय लोगों में तिरस्कार उत्पन्न हो और वे हिन्दुओं को ईसाई बनाने के लिए अधिकाधिक धन देते रहें। तत्पश्चात् यूरोप की कई भाषाओं में लगातार वेदों के उल्टे-सीधे अनुवाद प्रकाशित होते रहे।

वेदों का अनुवाद हो नहीं सकता

इस विश्व की सम्पूर्ण यन्त्रणा के संकेत, मानवीय जीवन का विधान तथा सारे शास्त्रों के उच्चतम तथ्य इन सबका मिला-जुला संक्षिप्त भण्डार ऐसा वेदों का वर्णन किया जा सकता है। अतः वेदों में जो स्वर, अक्षर या शब्द पाए जाते हैं उनमें प्रत्येक विद्या को लागू होने वाली अर्थ-प्रणाली या संकेत प्रणाली सम्मिलित है। अतः एक ही स्वर, अक्षर या शब्द के भिन्न सन्दर्भ में अलग-अलग अर्थ या संकेत होंगे। इसी कारण वेदों का किसी अन्य भाषा में अनुवाद हो ही नहीं सकता। जिन्होंने भी अनुवाद करने का यत्न किया है, वह हास्यास्पद-सा लगता है। उस अनुवाद का कुछ गहरा, गम्भीर या उपयुक्त अर्थ नहीं निकलता, तथा कोई भी अनुवाद सर्वमान्य नहीं है। अनुवादों से अनेक मतमतान्तर तथा विवाद निर्माण हुए हैं। ऐसा होना अनिवार्य क्यों था, इसका कारण हमने पीछे स्पष्ट किया है।

वेदों के प्राचीनतम ज्ञात भाष्यकार यास्क हैं। उन्होंने भी स्पष्ट उल्लेख किया है कि वेदों के मूल अर्थ का केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है।

एक उदाहरण देखें। अथर्ववेद (१६-१-१) ऋचा इस प्रकार है—

अतिसृष्टो अपांवृषभोऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्यः।

शौनिक सांख्य अथर्ववेद संहिता का बर्लिन नगर से सन् १८५६ में जो अनुवाद प्रकाशित हुआ उसे W. D. Whitney ने सम्पादित किया है। इसमें इस पंक्ति का आंग्ल भाषा में अनुवाद इस प्रकार है—

Let go the bulls of water, let go the heavenly fires.

("जल के बैलों को छोड़ें—आकाश की अग्नि को भी जाने दो।")

T. H. Griffith नाम के दूसरे विद्वान इसी पंक्ति का अनुवाद इस प्रकार करते हैं—

The bulls of the waters have been let go
The heavenly fires have been let go.

("जल के बैलों को जाने दिया था तथा आकाशस्थ अग्नियों को भी मुक्त कर दिया है।")

चाहे किसी अनुवाद को लें उससे कुछ पता ही नहीं लगता कि इसका सन्दर्भ क्या है, अर्थ क्या है? अतः आज तक के सारे ही अनुवाद निरर्थक सिद्ध हुए हैं। वेदों का अनुवाद हो ही नहीं सकता। क्योंकि उनके अक्षर, स्वर तथा शब्दों का संकेत भिन्न-भिन्न विद्याशाखाओं में भिन्न-भिन्न होगा।

वर्तमान कुछ वाक्प्रचार ही देख लें। हम बार-बार कहते, सुनते, पढ़ते आए हैं कि सन् १९१७ से अमेरिका तथा रूस में Cold War (शीत युद्ध) चला हुआ है। आज से एक या दो सहस्र वर्ष पश्चात् उस समय के लोग आश्चर्य करेंगे कि युद्ध में अग्नि अस्त्र छोड़े जाते हैं। तो क्या रशिया तथा अमेरिका एक-दूसरे पर बरफ के ढेले फेंकते थे? जब उनकी सीमा भी एक-दूसरे से लगती नहीं थी और उनके बीच हजारों मील का अन्तर था, तब युद्ध होने का कारण हो क्या था? इस प्रकार भावी इतिहासज्ञों को रशिया-अमेरिका के एक-दूसरे से सम्बन्ध उलझन से बने रहेंगे। यह तो हुई एक साधारण मुहावरे की बात। किन्तु वेदवाणी की समस्या तो उससे कई गुणा जटिल है क्योंकि उसमें अनेक विद्या शाखा, कला, शास्त्र, गणित, स्थापत्य विद्या, आयुर्वेद, दर्शनशास्त्र, विश्वयन्त्रणा आदि का सम्मिलित संक्षिप्त, सांकेतिक ज्ञान है।

रशिया का Iron Curtain यानि 'लोहे का पर्दा' भी भविष्य में विद्वानों को एक समस्या बना रहेगा।

इसी प्रकार यजुर्वेद (१६-२८) के आरम्भ के शब्द हैं "नमः श्वभ्यः"। मध्ययुगीन भाष्यकार महीधर इसका अर्थ करते हैं—"रुद्र रूपी कुत्ते को नमस्कार।" किन्तु "रुद्र' का नाम तो मूल ऋचा में है नहीं। वह नाम केवल इसीलिए डालना पड़ा कि "कुत्ते को नमस्कार" यह अनुवाद भद्दा तथा तथ्यहीन लगता।

इसी कारण ईसाई पादरियों को वेदों का ऊपरी शब्दशः अनुवाद प्रकाशित कर वेदों की खिल्ली उड़ाने का अवसर मिला। उसी समय अंग्रेज अधिकारी भी सारे भारत निवासियों को त्वरित से त्वरित ईसाई बनाने का उद्देश्य घोषित करने लगे थे।

लॉर्ड विलियम बैंटिक जब भारत का गवर्नर जनरल था तब सन् १८३४ में लॉर्ड मैकॉले उसके सलाहकार मण्डल का सदस्य नियुक्त किया गया। उस समय यह प्रश्न उठा कि आंग्ल शासन में प्राचीन संस्कृत-वैदिक पद्धति की शिक्षा दी जाए या आधुनिक यूरोपीय पद्धति की? इस पर मैकॉले का सुझाव ही मान्य हुआ। मैकॉले ने लिखा—"We must do our best to form a class who may be interpreters between us and the millions whom we govern; a class of persons Indian in blood and colour, but English in taste, opinion, words and intellect." ("हम लोगों ने एड़ी-चोटी का जोर लगाकर भारतीयों का ऐसा एक वर्ग तैयार करना चाहिए जो हमारे उद्दिष्ट उन लाखों लोगों को समझा सकेंगे जो हमारे प्रजाजन बने हैं। वे मध्यस्थ कार्यकर्ता वंश तथा वर्ण से तो भारतीय होंगे किन्तु उनकी रुचि, बोलचाल और बुद्धि, सारी आंग्ल ढांचे की होगी।")

मैकॉले के वे शब्द आकाशवाणी जैसे सत्य सिद्ध हुए। आंग्ल शिक्षा-पद्धति ने सचमुच ही भारतीयों को रहन-सहन, विचारधारा, बोलचाल आदि के प्रति अंग्रेज बना छोड़ा है। मैकॉले की वह कुटिल योजना उसके जीवनकाल में ही फलदायी होती दिखाई दी। अपने पिता को पत्र में मैकॉले ने लिखा, "पिताजी—आंग्ल शिक्षा पाया हुआ कोई भी हिन्दू निजी धर्म से लगन नहीं रखता। कोई तो अपने आपको केवल नाममात्र हिन्दू मानते हैं, कोई अपने आपको केवल आस्तिक बताते हैं तो कोई ईसाई बन जाते हैं। मुझे विश्वास है कि हमारी शिक्षा नीति यदि लागू की गई तो तीस वर्षों के अन्दर ही बंगाल की उच्चवर्णीय जनता में एक भी मूर्त्तिपूजक (हिन्दू) नहीं होगा (यानि सारे ईसाई बन जाएँगे)।"

मैकॉले का वह दूसरा भविष्य तो सही नहीं निकला किन्तु अंग्रेजी शिक्षा विभूषित हिन्दू रहन-सहन तथा विचारधारा से पूरे अंग्रेज बनने की बात पूर्णतः सही निकली।

उन्हीं दिनों मैक्समूलर नाम का एक जर्मन विद्वान अंग्रेजों का कर्मचारी था। सन् १८६६ में उसने वेदों का आंग्ल अनुवाद पूरा किया। उस समय अंग्रेज नए-नए भारत सम्राट् बने थे। अतः मैक्समूलर का वेदों का अनुवाद उन दिनों बड़ी उपलब्धि मानी गई। उसका बड़ा ढोल पीटा गया। किन्तु हमने ऊपर स्पष्ट किया है कि वेदों में अनुवाद की कोई गुंजाइश ही नहीं है। वेद जैसे हैं वैसे मूल संस्कृत में ही पढ़े जाने चाहिएँ। किसी एक विद्या का सूत्र पकड़कर ही वेदवाणी में समाधिस्थ अन्तर्दृष्टि द्वारा कोई संन्यस्त वृत्ति का व्यक्ति कुछ अर्थ निकाल पाए तो निकाल पाए अन्यथा किसी ऐरे गैरे व्यक्ति ने वेदों का सामान्य शब्दशः अनुवाद करना ठट्ठा मस्करी बनकर रह

जाती है।

तथापि अनुवाद करते समय मैक्समूलर ने स्वपत्नि को पत्र में लिखा "मुझे आशा है मैं (अनुवाद) कार्य सम्पन्न कर सकूंगा। यद्यपि उसे फलित होते हुए मैं देख नहीं पाऊंगा। यह संस्करण तथा वेदों के मेरे अनुवाद का भारत के ऊपर तथा लाखों भारतवासियों पर गहरा प्रभाव पड़ेगा। उनका भविष्य बदल जाएगा। वेद उनकी सभ्यता (धर्म) का मूल हैं। उन्हें उस मूल का दर्शन कराना ही एकमेव मार्ग है जिससे गत ३००० वर्षों में फूटे अंकुरों सहित उनका वह पूरा धर्मवृक्ष उखाड़ा जाएगा।"

उधर एक सेनानिवृत्त ब्रिटिश सेनाधिकारी कर्नल बोडन ने भारत में जो अपार धन कमाया था उससे उसने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में एक संस्कृत शिक्षा विभाग स्थापित किया। मोनियर विलियम्स कुछ समय तक उस विभाग में संस्कृत के अध्यापक रहे। उन्होंने जो संस्कृत-आंग्ल शब्दकोश प्रकाशित किया है उसकी प्रस्तावना में उन्होंने लिखा है "मैं यह जतलाना चाहता हूँ कि मैं इस विभाग का दूसरा अध्यापक हूँ। इस विभाग के निर्माता कर्नल बोडेन ने (१५ अगस्त, १८११) के निजी मृत्यु-पत्र में बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि उनका वह बड़ा अनुदान संस्कृत धर्मग्रन्थों का अनुवाद कराने में इस प्रकार लगाया जाए जिससे भारतीयों को ईसाई बनाया जा सके।"

कुछ समय पश्चात् एच० एच० विल्सन उस विभाग में अध्यापक नियुक्त हुए। उन्होंने 'The Religious and Philosophical System of the Hindus' नाम का ग्रन्थ लिखा है। इस प्रकाशन के उद्देश्य के बारे में प्रस्तावना में विल्सन ने लिखा है "मेरे (इस ग्रन्थ में संकलित) व्याख्यानों का उद्देश्य है कि उन्हें पढ़कर Haileybury के निवासी संस्कृत के विद्वान जान म्यूर ने जो २००० पौंड का पारितोषिक रखा है वह पाने में इच्छुक उम्मीदवारों को सहाय्य हो ताकि वे हिन्दू धर्म का उच्चाटन् कर सकें।" भारत सचिव (Secretary of State for India) पद के भारतीय शासन के ब्रिटिश प्रमुख को दिसम्बर १६, १८६८ के पत्र द्वारा मैक्समूलर ने लिखा था "भारत का प्राचीन (वैदिक हिन्दू) धर्म तो नष्ट होने ही वाला है, यदि उसका स्थान ईसाई धर्म न ले सका तो दोषी कौन होगा?"

ऊपर दिए उद्धरणों से देखा जा सकता है कि एक तरफ मुसलमानों ने तलवार के जोर से हिन्दुओं को मुसलमान बनाना चाहा था तो दूसरी ओर अंग्रेज कलम से हिन्दुओं को ईसाई बनाने का षड्यन्त्र करते रहे।

एक पादरी कामिल बुल्के

बेल्जियम देश के एक पादरी कामिल बुल्के (Cammile Bulcke) भारत में अनेक वर्ष रहकर हिन्दी के विद्वान बने। सन् १९८३ के लगभग उनकी भारत में मृत्यु हुई। मृत्यु के कुछ ही दिन पूर्व वे कह गए कि बेल्जियम् में उनका जन्म जिस गाँव में हुआ उसका नाम है Rama's Campel यानि राममन्दिर।

फिलिपीन पर प्राचीन श्रीविजय साम्राज्य

प्रशान्त महासागर में एक बड़ा देश है जिसका वर्तमान नाम फिलिपीन है। उसके एक बड़े प्रान्त का नाम Visayas है जो 'विजयस्' शब्द का आंग्ल रूप है। इससे पता चलता है कि प्राचीनकाल में पूर्व के प्रदेशों में पूर्व वैदिक, हिन्दू श्रीविजय साम्राज्य था उसमें फिलीपीन द्वीपसमूह का भी अन्तर्भाव हुआ।

कुरुक्षेत्र के कृष्णार्जुन रथ की प्रतिमा

जावा का प्रमुख नगर जकार्ता (उर्फ जयकर्त्ता) के प्रमुख चौराहे पर आठ घोड़े वाले एक रथ की भव्य प्रतिमा बनाई गई है जिसमें अर्जुन को गीतोपदेश देते हुए श्रीकृष्ण भी विराजमान हैं।

रशिया में कृष्णोदक (Krasnodak)

यूरोप के ईसाई बनाए जाने पर वहाँ के लोगों ने भगवान कृष्ण भुला दिए गए हैं तथापि यूरोप के कई स्थलनाम कृष्ण की स्मृति उजागर करते हैं, जैसे Krasnoarak और Krasnodak। यह दोनों स्थान सोवियत संघ में है।

असुरों का १२७ प्रान्तों का विश्व वैदिक साम्राज्य

बाइबल के The Book of Esther के प्रथम प्रकरण में उल्लेख है, 'Now it came to pass in the days of A-Has-u-a'rus' (This is A Has-u-e'-rus which reigned in India even unto Ethiopia

over one hundred and seven and twenty provinces.' (यानि "असुरों के शासन में ऐसा हुआ। असुर वे हैं जो भारत सम्राट होते हुए इथिओपिया तक के उनके साम्राज्य में १२७ प्रान्त थे।")

ऊपर कहे उदाहरण से हमारे सिद्धान्त की पुष्टि होती है कि कौरव-पाण्डव युद्ध से वैदिक विश्व साम्राज्य भंग होने पर टूटी-फूटी अवस्था में वैदिक सभ्यता चलती रही। उसमें वैदिक असुरों के अधिकार में १२७ प्रान्तों वाला इथिओपिया या प्राचीन अबीसीनिया (Ethiopia उर्फ Abyssinia) का साम्राज्य था। इस प्रकार ईसाइयों के धर्मग्रन्थ बाइबल का सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाए तो उसमें प्राचीन वैदिक विश्वसाम्राज्य के विपुल उल्लेख मिलेंगे। अन्य धर्मग्रन्थों का भी ऐसे प्रमाणों के लिए सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन उपयुक्त रहेगा।

वैदिक अशौच की विश्व प्रथा

महिलाओं का मासिक धर्म, प्रसूति, किसी व्यक्ति की मृत्यु आदि पर उस घर में वैदकीय दृष्टि से अशौच (अशुद्धि) मानकर ४ से १० या १३ दिन तक उस कुटुम्ब के व्यक्तियों को अन्य लोग छूते नहीं थे। वैदिक परम्परा की यह प्रथा सारे विश्व में प्रचलित थी। इसका एक प्रमाण बाइबल के Leviticks खण्ड के १२वें अध्याय में पृष्ठ १०८ पर इस प्रकार है—'Speak unto the children of Israel saying, if a woman have conceived seed, and born a male child, then she shall be unclean for seven days; according to the days of the separation for her infirniety shall she be unclean. If she bear a female child she shall be unclean for two weeks.'

इसका अनुवाद इस प्रकार है "ईश्वरालय (Israel) की प्रजा को कहें कि कोई स्त्री यदि पुत्र को जन्म दे तो सात दिन वह अछूत रहे। यदि वह कन्या को जन्म दे तो दो सप्ताह तक अछूत मानी जाए।"

Ravenshow (रावणेशः)

ईसाई लोगों में किसी कुल का नाम Ravenshaw होता है जो मूलतः रावणेशः यानि रावण का ईश्वर (राम) के अर्थ का है।

VALENTINE DAY यानि बसन्त पंचमी

ईसापूर्व समय से यूरोप के लोग १४ फरवरी को व्हैलेण्टाइन दिन मनाते हैं। उस दिन वे एक-दूसरे का अभिवादन कर कार्ड भेजते हैं। उस पर लाल रंग में हृदय की रूपरेखा बनाई जाती है। पक्षीगण उस दिन निजी पत्नि चुनते हैं ऐसा यूरोप के लोग मानते हैं। इससे स्पष्ट है कि वे आजकल जिसे व्हैलेण्टाइन डे कहते हैं वह वस्तुतः उनकी प्राचीन वैदिक परम्परा का बसन्तोत्सव है।

डच पादरी का वैदिक नाम

सत्रहवीं शताब्दि के मध्य में सीलोन उर्फ श्रीलंका को एक डच ईसाई पादरी ने भेंट दी थी। उसका नाम था Philip Baldaeus. Dutch (डच) दैत्य शब्द का अपभ्रंश है। उस पादरी का नाम बलदेवस् स्पष्टतया वैदिक परम्परा का है। इससे पता चलता है कि भारत की तरह यूरोप में भी बलदेव नाम प्रचलित था।

वैदिक परम्परा की उदार विशालता

किसी माता के १२-१५ या उससे भी अधिक सन्तान विविध गुण, हुनर तथा मत-प्रणाली की हों तो उस माता को अपने आप पर बड़ा गर्व और समाधान होगा कि "मेरी कोख से इतने विविध गुणों के पुत्र निर्माण हुए जो एक-दूसरे से बन्धुभाव से व्यवहार करते हैं।" इसी प्रकार वैदिक धर्म में कितने ही प्रकार के भक्ति सम्प्रदाय, पूजा-प्रथा, प्रार्थना-पद्धति से लेकर नास्तिक तक के विविध लोग होते हैं जिनकी बाबत वैदिक संस्कृति को एक माँ की भाँति बड़ा सुख, शान्ति, समाधान और गर्व का अनुभव होता है। उदाहरणार्थ बौद्ध, जैन, सिख, प्रार्थना-समाजी, ब्रह्मसमाजी, आर्य-समाजी, सनातनी, वैष्णव, शैव आदि। यह तो वर्तमान भारत में पाए जाने वाले पन्थ, उपपन्थ आदि के नाम हैं। किन्तु प्राचीनकाल में भी विश्व के विविध प्रदेशों में Saduceeans, Malencians, Essenese, Stoics, Philistines, Samaritans, Chrisnians; Osiris, Isis; मरिअम्मा, अन्नपूर्णा, Venus आदि देवताओं के अनुयायियों के विविध पन्थ होते थे।

वैदिक संस्कृति की शिक्षानुसार ऐसे सारे पन्थ-उपपन्थ बड़े भाइचारे

से रहते है। वे एक-दूसरे पर आक्रमण नहीं करते। अतः ईसाई और इस्लामी लोग भी उस विशालहृदयी वैदिक समाज में सम्मिलित हो सकते थे, यदि वे हिंसा या आक्रमण का मार्ग छोड़ देते। किन्तु ईसाई तथा इस्लामी लोगों का ढंग तथा उद्देश्य ही अलग है। वे दूसरे पन्थों को मारपीट से समाप्त कर अपना एकमेव पन्थ जगत् में सभी लोगों के ऊपर थोपना चाहते हैं। इस प्रकार की तानाशाही या जबरदस्ती वैदिक सभ्यता को कतई पसन्द नहीं है। दैवी तथा आध्यात्मिक मामलों में आचार-विचार की प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण स्वतन्त्रता ही वैदिक प्रणाली का प्रमुख गुण है।

वैदिक प्रणाली का व्यक्ति कभी दूसरे को यह नहीं पूछेगा कि तुमने पूजा की या नहीं? प्रार्थना की या नहीं? तुम्हारा कोई गुरु है या नहीं? तुम आस्तिक हो या नास्तिक? क्योंकि इन बातों की प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण स्वतन्त्रता है।

वैदिक प्रणाली केवल सदाचार मांगती है। प्रत्येक व्यक्ति निष्काम सेवाभाव से निजी जन्मदत्त भूमिका तत्परता से निभाए। पिता, पुत्र, पत्नि नागरिक, शिक्षक, पति आदि सारे निजी कर्त्तव्य सेवा-भाव से करते रहें यही वैदिक परम्परा का आदेश तथा अपेक्षा है। इससे सीधा सादा, सरल धर्म और कौन-सा हो सकता है। इस्लाम या ईसाइयत से यह बिल्कुल भिन्न है। अतः विश्व में मुसलमान तथा ईसाइयों की जो होड़ सी लगी होती है कि बुरे से बुरे मार्ग से भी निजी पन्थ के अनुयायी बढ़ाते रहना, उससे वैदिक प्रणाली का मार्ग पूर्णतया भिन्न है। अतः इस्लाम तथा ईसाइयत की वैदिक परम्परा से कोई बराबरी नहीं हो सकती।

प्राचीन अफ्रीका खण्ड की वैदिक-प्रणाली

जिन अमेरिकी लोगों ने शैव सिद्धान्त चर्च नाम का शिव पंथ अमेरिका में स्थापन किया है वे हर दो मास में Hindusim Today नाम का समाचार-पत्र प्रकाशित करते हैं। उसके अमेरिकी हिन्दू सम्पादक का नाम है शिव आरमुखस्वामी। उन्होंने अप्रैल १, १९८८ के पत्र में मुझे लिखा है—"Without question, as one goes back in the history of any place on the earth, the religion of the people becomes

more and more Hindu-like. Recently very strong connections were found in African regions with Hindu Gods." उन्होंने लिखा है कि "इतिहास में हम जितने अधिक पीछे चलते जाएँ उतना ही हर स्थान में अधिकाधिक मात्रा में निश्चित रूप से हिन्दू धर्म सदृश्य प्रणाली दिखाई देती है। हाल ही में अफ्रीका खण्ड में हिन्दू देवी-देवताओं की अनेक दृढ़ परम्पराएँ दिखाई दी हैं।"

अफ्रीका खण्ड में 'दार-ए-सलाम' नाम का नगर सागर तट पर स्थित है। वह वास्तव में 'द्वार ईशालयम्' ऐसा संस्कृत शब्द है। वह नाम तभी पड़ सकता है जब उस परिसर में सागर किनारे के निकट ही किसी वैदिक देवता का विशाल मन्दिर रहा होगा।

इटली

यूरोप में इटली देश है। वहाँ के लोग लगभग १६०० वर्ष पूर्व छलबल से ईसाई बनाए गए। ईसाई तथा मुसलमान लोगों को उनकी पूर्व परम्परा जानबूझकर भुला दी जाती है। अतः इटली के लोग नहीं जानते कि वे मूलतः संस्कृत भाषी वैदिक धर्मी थे।

उनके देश का नाम ही देखें। वे स्वयं नहीं जानते होंगे कि उनके देश का नाम इटली क्यों पड़ा और उसका अर्थ क्या है? धरातली, रसातली जैसा इटली शब्द यह सूचित करता है कि वह यूरोप (Europe) खण्ड के तल (दक्षिणी भाग) का देश है।

पृथ्वी के अन्य कुछ स्थानों से भी 'तल' शब्द जुड़ा हुआ है जैसे Tel Aviv, Tel Amerna इत्यादि। जहाँ भूमितल समाप्त होकर सागर आरम्भ होता है उसे प्राचीनकाल में, वैदिक प्रणाली में 'तल' नाम दिया जाता था। इटली भी सागरतट वाला देश है। उसकी तीनों दिशाओं में (पूर्व-पश्चिम तथा दक्षिण में) सागर है।

इटली में बीसवीं शताब्दि तक राजसत्ता धर्मगुरु के आदेशानुसार चला करती थी। वह प्रथा इटली में ईसापूर्व वैदिककाल से चलती आ रही थी। इटली की राजधानी 'रोमा', 'राम' नाम का विकृत उच्चार है। राम जिस प्रकार वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि के आदेश शिरोधार्य मानते थे,

थी। रोमा नगर की वेदवाटिका (Vatican) इटली में उसी प्रकार की प्रथा थी। रोमा नगर की वेद वाटिका (Vatican) में पापह (पापहर्ता, पापहंता) वैदिक शंकराचार्य रहा करते थे। सन् ३१२ ईसवी में ईसाई बने दुष्ट सम्राट् Constantine (कंसदैत्यन्) ने धकामक उस वेदवाटिका पर चढ़ाई कर वहाँ के वैदिक शंकराचार्य को मारकर उनके स्थान पर नव-प्रस्थापित ईसाई पन्थ का रोमा नगर का धर्मगुरु उस धर्मपीठ की गद्दी पर बैठाया। बीसवीं शताब्दी में जब मुसोलिनी इटली का सर्वाधिकारी बना उसने इटली को कैथोलिक पन्थी घोषित किया।

स्पेन

स्पेन देश में आधुनिक समय में, कैथलिक पन्थी लोग, नास्तिक लोग तथा सत्ताधारी लोग—इनमें जो तीव्र संघर्ष होता रहा उसमें लगभग २०,००० गिरिजाघरों को लूटकर भ्रष्ट किया गया। दस सहस्र धर्मगुरु या तो मारे गए या फाँसी पर चढ़ा दिए गए तथा तीन लाख अन्य लोग भी मारे गए। सन् १८५१ में संघर्षकारियों में जो समझौता हुआ उसमें कैथोलिक पन्थ स्पेन का धर्म घोषित किया गया।

पुर्तगाल

सन् १९४० की पुर्तगाल की घोषणानुसार सारी शिक्षण-प्रणाली तथा देश का कारोबार कैथोलिक पन्थ के अनुसार ही चलाया जाएगा।

स्वीडन

सन् १८०९ में बने संविधान की धारा २ के अनुसार स्वीडन का राजा तथा मन्त्रि ईसाई ही होने चाहिएँ। विद्यालयों में ईसाई छात्रों को धार्मिक शिक्षा अनिवार्य है। उन्नीसवीं शताब्दि तक ईसाई धर्म त्यागने वाले को स्वीडन में रहने नहीं दिया जाता था।

नॉर्वे

प्रोटेस्टेण्ट पन्थी ईसाइयत नॉर्वे का सरकार मान्य धर्म है। राजा के मन्त्रियों में पचास प्रतिशत से अधिक मन्त्रि ईसाई होने आवश्यक हैं।

डेन्मार्क

प्रोटेस्टेण्ट ईसाई पन्थ डेन्मार्क का धर्म है। राजा उसी धर्म का होना चाहिए।

ग्रीस

ईसाई पन्थ का Eastern Orthodox Church ही ग्रीस देश का अधिकृत धर्म है। वह छोड़कर किसी अन्य धर्म को अपनाने पर प्रतिबन्ध लगाया गया है।

ब्रिटेन

प्रोटेस्टेण्ट पन्थी ईसाइयत ही इंग्लैण्ड का राजधर्म है। राजा, रानी तथा लार्ड चांसलर उस धर्म के ही होने चाहिएँ, ऐसा उनका नियम है।

जापान

शिण्टो-प्रणाली को मान्यता है। शिण्टो शब्द सिंधु शब्द का अपभ्रंश है। यह स्वयं जापानी लोग भी भूल गए हैं। विश्वभर में यही हाल है। उनमें जो वैदिक धर्म के अवशेष हैं उनका विवरण वे और ही कुछ देते हैं। जैसे जापानी लोगों को यह पाठ पढ़ाया गया कि जब उन्होंने बौद्ध धर्म अपनाया तो उसी के साथ-साथ शिव, पार्वती, गणेश, सरस्वती, हनुमान, राम, कृष्ण आदि अन्य वैदिक देव भी उनके मन्दिरों में स्थानापन्न हो गए। वे यह नहीं समझते की मूलतः जापान में बौद्ध धर्म फैला कैसे और क्यों ? दूसरा प्रश्न यह उठता है कि यदि बौद्ध धर्म वैदिक प्रणाली से भिन्न था तो उसके साथ-साथ वैदिक देवता भी जापानियों ने क्यों अपनाए। इस प्रकार लोगों को प्राचीन इतिहास अज्ञात होने से उनके मस्तिष्क में इस सम्बन्ध में अनेक उल्टे-सीधे प्रश्नों की घोटाले की खिचड़ी-सी बनी रहती है।

नेपाल

केवल इस छोटे देश में हिन्दुत्व उर्फ वैदिक प्रणाली सरकारमान्य धर्म है, तथापि उस राज्य में अन्य धर्मियों पर किसी प्रकार का दबाव नहीं लाया जाता।

बौद्धधर्म सरकारमान्य प्रणाली है।

इसमें बौद्धधर्म सरकारमान्य प्रणाली है। ऊपर दिए ब्यौरे के अनुसार प्रत्येक देश या सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त एक-एक विशिष्ट धर्म है। ऐसी अवस्था में भारत जैसे देश में जहाँ ८५ प्रतिशत प्रजा हिन्दू है, कांग्रेसी नेताओं ने भारत को धर्मनिरपेक्ष देश कहकर बहुत भारी गलती की है। हिन्दुत्व उर्फ वैदिक प्रणाली तो अपने आप में एक धर्मनिरपेक्ष परम्परा है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति को पूरी आध्यात्मिक स्वतन्त्रता है। इसी कारण यहाँ ईसाई तथा इस्लाम जैसी लड़ाकू, अत्याचारी प्रणालियाँ भी पनपी तथा पारसी, यहूदी आदि लोगों ने समय-समय पर शरण ली जब उनके अपने देशों पर अरब मुसलमानों के हमले होने लगे। अतः भारत की हिन्दू जनता ने तथा यूरोप के ईसाई लोगों ने इस्लाम का संकट पहचानना आवश्यक है। पौराणिक काल में जिस प्रकार राक्षसों के अत्याचारों से लोग डर-डरकर भागते थे वैसे ही सातवीं शताब्दी से १७वीं शताब्दी तक इस्लामी अत्याचारों से लोग भागते थे। अरबी, तुर्की, ईरानी, मुगल आदि जो भी जाति इस्लाम की लपेट में आई वह अत्याचारी, दुराचारी बनकर रह गई।

कांग्रेसी नेताओं ने ८५ प्रतिशत हिन्दुओं को अपने आपको न केवल हिन्दू कहलाने से पराभूत किया है अपितु अल्पसंख्यक मुसलमान आदि विरोधियों की सेवाचाकरी कर मुसलमानों को रियायतों पर रियायतें देकर प्रसन्न रखते रहने का आदेश दिया है। यह सारे विश्व के लिए एक बड़ा संकट है। विश्व में धार्मिक तथा आध्यात्मिक स्वतन्त्रता तभी रहेगी जब सारे लोग हिन्दू होंगे। यदि हिन्दुत्व दुर्बल करा दिया गया तो सारा विश्व इस्लामी अत्याचारों का शिकार बनेगा। अतः विश्व में प्रत्येक व्यक्ति ने अपने आपको बड़े गर्व से हिन्दू कहलाना चाहिए।

एक तरफ जहाँ हिन्दू भारत में अल्पसंख्यक मुसलमानों की सेवा तथा तुष्टि करते रहने की प्रथा कांग्रेसी नेताओं ने रूढ़ की है, उधर इस्लामी देशों में हिन्दुओं पर बड़े कड़े प्रतिबन्ध लगाए गए हैं। उनका ब्यौरा इस प्रकार है—

(१) किसी भी इस्लामी देश में कोई हिन्दू विद्यालय स्थापित नहीं

किया जा सकता जबकि भारत में अलीगढ़ विश्वविद्यालय, दिल्ली का जामियामिलिया, देवबन्द की इस्लामी संस्था आदि अनेक इस्लामी शैक्षणिक संगठनों को सरकारी अनुदानों से पनपने दिया जाता है।

(२) भारत में उर्दू-अरबी-फारसी माध्यम के विद्यालय खोले जा सकते हैं किन्तु इस्लामी देशों में संस्कृत माध्यम के वैदिक विद्यालय स्थापन नहीं किये जा सकते। मुसलमानों को डर है कि अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान स्पर्द्धा में इस्लामी रीति-रिवाज, भाषा तथा विचार-प्रणाली पिछड़कर नष्ट हो जाएगी। उसे केवल सरकारी इस्लामी सख्ती से ही जीवित रखा जा सकता है।

(३) किसी इस्लामी देश में हिन्दी या संस्कृत भाषा में पढ़ाई या किसी प्रकार की वैदिक संस्थाएँ प्रस्थापित करना मना है।

(४) किसी भी इस्लामी देश में किसी हिन्दू त्योहार या व्रत की छुट्टी नहीं होती।

(५) किसी इस्लामी देश में आकाशवाणी या दूरदर्शन द्वारा कोई भी वैदिक त्यौहार, जुलूस आदि का ब्योरा कभी दिया नहीं जाता।

(६) किसी इस्लामी देश के आकाशवाणी या दूरदर्शन द्वारा किसी भी भारतीय भाषा में वार्ताएँ नहीं दी जातीं।

(७) भारत में राष्ट्रपति पद तक किसी भी चुनाव में मुसलमान उम्मीदवार खड़ा हो सकता है किन्तु किसी भी इस्लामी देश में राजनयिक मामलों में कोई हिन्दू किसी प्रकार का भाग नहीं ले सकता।

(८) अल्पसंख्यक जमात के नाते भारत में मुसलमानों को विशेष अधिकार प्राप्त हैं जबकि इस्लामी देशों में हिन्दू व्यक्ति को किसी विद्यालय में भी प्रवेश के कोई अधिकार प्राप्त नहीं हैं।

(९) घर या विद्यालय के लिए किसी इस्लामी देश में कोई हिन्दू भूमि नहीं खरीद सकता।

(१०) भारत के दफ्तरों में मुसलमान व्यक्तियों के चित्र लगाए जाते हैं किन्तु किसी इस्लामी देश में किसी हिन्दू नेता का चित्र प्रदर्शित किया नहीं जा सकता।

(११) दिल्ली के राष्ट्रपति भवन तक किसी भी सार्वजनिक स्थान में

मुसलमान राष्ट्रपति या उसके इस्लामी सेवक नमाज पढ़ सकते हैं किन्तु किसी इस्लामी देश में सार्वजनिक स्थान पर कोई हिन्दू अग्निपूजा, मूर्त्तिपूजा आदि निजी धार्मिक प्रथाओं का पालन नहीं कर सकता।

(१२) भारत में ताजिए आदि के इस्लामी जुलूसों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है किन्तु इस्लामी देशों में हिन्दू जुलूस या हिन्दू संगीत सार्वजनिक मार्गों या स्थानों पर प्रतिबन्धित है।

(१३) भारत में मीनाक्षीपुरम् जैसे स्थानों में एकसाथ सैकड़ों व्यक्ति जबरन मुसलमान बनाए जा सकते हैं जबकि इस्लामी देशों में एक भी मुसलमान हिन्दू बनाया नहीं जा सकता।

(१४) भारत में मुसलमानों को पशु को हलाल करने की पूरी स्वतन्त्रता है जबकि इस्लामी देशों में हिन्दू पद्धति से पशु को झटके से मारना प्रतिबन्धित है।

(१५) भारत में मुसलमानों को गोमांस भक्षण की पूरी सुविधा है जबकि इस्लामी देशों में सुअर का मांस बेचने वाले हिन्दू व्यक्ति का ही वध होगा।

(१६) गोमांस बिक्री पर प्रतिबन्ध लगाने की हिन्दू माँग भारत में कांग्रेसी शासन द्वारा ठुकराई जाती है। इतना ही नहीं अपितु भारत के मुसलमान बड़े ठाठ से सार्वजनिक रूप में गोमांस भक्षण की पंगत भी लगा सकते हैं।

(१७) किसी इस्लामी देश में वैदिक ग्रन्थों का प्रदर्शन या बिक्री नहीं होने दी जाती। स्वामी दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश का तो सारे मुसलमान देशों में प्रवेश भी वर्जित है।

(१८) भारत ने कांग्रेस की अति दयालु मूर्खता से कश्मीर को इस्लाम प्रमुख प्रान्त रखने की सुविधा संविधान में प्रदान की है। जबकि किसी इस्लामी देश में किसी हिन्दू को चूँ करने की भी सन्धि नहीं मिलती।

(१९) भारत में रास्ते के बीच या रेलपटरी के साथ भी कब्रें साबुत रखने की मुसलमानों को सुविधा प्राप्त है जबकि किसी वीरान या नगण्य, निर्जन स्थान में किसी इस्लामी देश में किसी हिन्दू की समाधि नहीं बनाने दी जाती।

(२०) किसी इस्लामी देश में किसी हिन्दू को धोती आदि उसकी देशी पोशाक पहनने की अनुज्ञा नहीं है। सिखों को कृपाण तक रखना मना है। सऊदी अरबस्थान में तो सिखों को प्रवेश ही नहीं दिया जाता।

(२१) इस्लामी देशों के पुलिस या सेनादलों में हिन्दुओं को लेना तो दूर रहा इस्लामी देशों में किसी भी सरकारी नौकरी में हिन्दुओं को लिया नहीं जाता।

(२२) किसी इस्लामी देश में कोई हिन्दू निजी कारखाने या व्यापार के लिए भूमि नहीं खरीद सकता। स्वतन्त्र रूप से निजी नाम पर वह कोई व्यवसाय भी नहीं कर सकता। वह वहाँ व्यापार धन्धा आदि तभी कर सकता है जब मुसलमानों का उसमें कम-से-कम ५१ प्रतिशत भाग हो।

(२३) भारत स्वतन्त्र होने पर आजतक मुसलमानों द्वारा गोहत्या होने पर कई दंगे भड़क उठे किन्तु सऊदी अरब में गोहत्या करने वाले को मृत्युदण्ड दिया जाता है। कुराण के एक अध्याय का शीर्षक बकर (यानि "गौ") है।

(२४) 'इस्लाम खतरे में' नारा लगाकर उधम मचाने की मुसलमानों को भारत में पूरी स्वतन्त्रता है। भारत में हजारों मस्जिद बनाने की मुसलमानों को पूरी सहूलियत दी जाती है। किन्तु इस्लामी देशों में हिन्दुओं को एक भी मन्दिर बनाने का अधिकार नहीं है।

(२५) किसी इस्लामी देश के खिलाड़ियों की टुकड़ी में एक भी हिन्दू सम्मिलित नहीं किया जाता। परन्तु भारत के खिलाड़ी गुटों में कई मुसलमान होते हैं।

(२६) सऊदी अरब में मुसलमानों के अतिरिक्त सबको काफिर कह कर उनका रियादनगर तथा काबा के ३५ मील के घेरे में प्रवेश वर्जित है।

इस तरह का अन्तर्राष्ट्रीय इस्लामी पक्षपात समाप्त कराने के लिए ईसाई, बौद्ध, यहूदी, हिन्दू आदि देशों ने भी मुसलमानों पर वैसे ही कड़े प्रतिबन्ध लागू कर देने चाहिएँ। जबतक अन्य राष्ट्र इस्लामी ईंट का प्रत्युत्तर प्रस्तर में नहीं देंगे, इस्लामी राष्ट्रों का राक्षसी व्यवहार अप्रतिहत चलता रहेगा। अन्तर्राष्ट्रीय समानता तथा स्वतन्त्रता कायम रखना सनातन, आर्य, वैदिक हिन्दू धर्म का उत्तरदायित्व है। उसे निभाने के लिए

संगठित करना
हिन्दुओं को एक प्रभावी सशक्त अन्तर्राष्ट्रीय छात्रदल
होगा।

सनातन धर्म ही विश्व की स्थायी व्यवस्था है

इस विश्व में प्रत्येक कृमि, कीटक, पशु आदि जीव निजी ईश्वरदत्त
भूमिका निभाता है। एक पशु किसी अन्य वर्ग के पशु की भूमिका हड़प
नहीं करता। इसी प्रकार मानव ने भी निजी पिता से प्राप्त कौटुम्बिक
काम-धन्धा चालू रखने की प्रथा सनातन धर्म में विहित है। लोभ या ईर्ष्या
के कारण दूसरे किसी व्यक्ति के कामधन्धे में अतिक्रमण करना सनातन
धर्म की दृष्टि से अपराध है। इससे समाज में असन्तुलन, असमाधान तथा
अशान्ति निर्माण होती है। केवल अधिक त्याग और अधिक सेवाभाव के
उद्देश्य से ही जन्मजात काम या धन्धा बदल दिया जाए तो वह पाप नहीं।
किन्तु वर्तमान विश्व में जन्मजात कामधन्धा अति लोभ या ईर्ष्या के कारण
बदला जाता है—अमुक व्यवसाय में श्रम कम तथा कम समय में विपुल
आर्थिक लाभ।

इस सम्बन्ध में एक हिन्दू स्त्री का जीवन आदर्श होता है। उसका
विवाह होने पर वह सारा जीवन अथक परिश्रम कर निजी कुटुम्ब का
भरण-पोषण करने में व्यतीत करती है। वह वेतन नहीं माँगती, बढ़ोतरी
माँगना तो दूर ही रहा। वह कभी छुट्टी नहीं लेती। सन्तान का मलमूत्र या
घर का कूड़ा-कर्कट उठाते रहने में वह कभी हिचकिचाती नहीं। दिन भर
काम करके थक जाने पर भी घर में कोई अस्वस्थ होने पर या अचानक
कोई अतिथि आ जाने पर वह रात में जागकर भी सेवा करती रहती है।
इतना होने पर भी झगड़ालू समाजवादी (कम्युनिस्ट) मजदूर संघटनों जैसी
हड़ताल, मारामारी या विविध उद्धत माँगें प्रस्तुत करने का विचार कभी
मन में आने नहीं देती। इसी कारण हम हिन्दू नारी का जीवन निष्काम
सेवाभाव का एक उत्तम उदाहरण समझते हैं। वास्तव में विश्व के पुरुष
भी यदि इसी प्रकार कौटुम्बिक कर्त्तव्य तथा जन्मप्राप्त काम धन्धा चलाना
ही निजी लक्ष्य रखें तो समाज में लोभ, क्षोभ, अशान्ति आदि की मात्रा
बहुत कम हो जाएगी।

मुसलमानों में जात-पांत

इस्लाम में जात-पांत, ऊँच-नीच आदि भेदभाव नहीं है ऐसा प्रचार कई लोग करते हैं। यह खोखला तथा निराधार प्रचार है। इस्लाम में सब प्रकार का भेदभाव तो है ही किन्तु उसके अतिरिक्त कुरान का शरीयत कानून भी सबके लिए भिन्न है। स्त्री-पुरुष में तो इस्लाम जितनी ऊँच-नीच और किसी धर्म में नहीं होगी। एक तो इस्लामी स्त्री का सारा जीवन पर्दे के अन्धेरे में श्वांस की घुटन के साथ बीतता है। पति द्वारा केवल तीन बार "तलाक-तलाक-तलाक" कहने से स्त्री घर से बाहर फेंकी जाती है। और दो स्त्रियों की गवाही एक पुरुष की गवाही के बराबर मानी जाती है। इस प्रकार इस्लाम में स्त्री को अत्यन्त नीच तथा घृणित स्थान दिया गया है जबकि प्रचार यह किया जाता है कि इस्लाम ने स्त्रियों की परिस्थिति सुधारी। इस प्रकार कट्टर इस्लामी लोग इतना झूठा प्रचार करते हैं कि सत्य परिस्थिति उनके दावे से पूर्णतया उल्टी होती है।

'मुम्बई इलाख्यातील जाती' नाम की सन् १९२८ में प्रकाशित मराठी पुस्तक में मुसलमानों में ८३ विभिन्न जातीय भेद वर्णित हैं।

अहमदिया लोग अपने आपको मुसलमान कहलाने पर भी अन्य मुसलमान उनका बहिष्कार करते हैं।

जो अपने आपको 'खोजा' मुसलमान कहलाते हैं वे गुजरात के लोहाण हिन्दू हैं। अब्दाली नाम के हिन्दू लोग अहमदशाह अब्दाली के हमलों में छल-बल से मुसलमान बनाए गए।

पंजाब के मोहयाल लोग हुसैनी ब्राह्मण भी कहलाते हैं। सातवीं शताब्दी से पूर्व जब अरब में वैदिक परम्परा अस्तित्व में थी तब वहाँ जो ब्राह्मण थे वे भारत वापस चले आए। उन्हें मोहयाल उर्फ हुसैनी ब्राह्मण कहा जाता है।

ताजमहल परिसर में हिन्दू मण्डप की तरह ऐसी कई बारादरियाँ हैं। कईयों के अन्दर कक्ष भी बने हुए हैं। वह चुने हुए केसरिया रंग के पत्थर की बनी हैं जो वैदिक परम्परा का धार्मिक रंग है और हिन्दू ध्वज का भी रंग है। जहाँ भी इस रंग के पत्थर प्रयुक्त हैं वह इमारत अपने-आपमें हिन्दू होने का एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण है। ताजमहल उर्फ ताज-ई-महल संस्कृत

तेजोमहालय नाम है। जो इतिहासज्ञ कहते नहीं थकते कि शाहजहां ताजमहल का निर्माता था वे जानते नहीं कि शाहजहां तथा औरंगजेब के समकालीन किसी इस्लामी दरबारी दस्तावेज या तवारीख में ताजमहल शब्द का उल्लेख भी नहीं है। उल्टा शाहजहां का दरबारी इतिहास बादशाहनामा स्वयं मानता है (भाग १, पृष्ठ ४०३) की मानसिंह महल नाम की गुम्बज वाली आलीशान इमारत जयपुर नरेश की थी। उस पर कब्जा कर उसी में मुमताज को दफ़नाया गया। पुरातत्व खाते के अनुसार ताजमहल का निर्माण शाहजहां ने सन् १६३१ से १६५३ तक किया। किन्तु शहजादा औरंगजेब ने बादशाह शाहजहां को सन् १६५२ में ही लिखे पत्र में शिकायत की है कि उस "पवित्र कब्र परिसर की सारी सातमंजिला इमारतें चू रही थीं और गुम्बज की उत्तर की विशाल दिशा में दरार पड़ गई थी अतः मैं उसकी जल्दी-जल्दी मरम्मत करवा रहा हूं। मगर इन्हें आप अधिक पक्की दुरुस्ति कराएं नहीं तो यह इमारतें बहुत प्राचीन होने से टिकेंगी नहीं।"

इस प्रकार एक तरफ औरंगजेब ताजमहल को सन् १६५८ में ही पुरानी इमारत कह रहा है जबकि भारत सरकार के पुरातत्व विभाग के अनुसार वह इमारत सन् १६५३ में नई कोरी बनकर तैयार हुई। तो क्या आजकल के इतिहासज्ञ औरंगजेब की माता की कब्र के बारे में स्वयं शाहजहां या औरंगजेब से अधिक जानकारी रखते हैं?

ताजमहल के संगमरमरी अष्टकोणीय कक्ष में जहां मुमताज की कब्र है वहां शिवजी का तेजोलिंग होता था। हो सकता है कि अभी भी कब्र के अन्दर मुमताज का शव न होकर शिवलिंग ही दफनाया हो।

वहां खड़े रहकर ऊपर छत में देखें। वहां पीले रंग में हिन्दू चित्रकारी बनी है, मध्य में अष्टदिशा निदर्शक आठ बाण हैं। दूसरे चक्र में १६ सर्प दिखाए गए हैं। क्योंकि नीचे भूमि पर शिवलिंग विराजमान था। तत्पश्चात् के चक्र में ३२ त्रिशूल बताए गए हैं। इससे चौड़े अन्तिम चक्र में ६४ कमल की कलियां दर्शाई गई हैं। यह सारे हिन्दू परम्परा के चिह्न ही नहीं अपितु उनकी आठ के पहाड़े की (आठ दुने १६, दुने ३२, ६४) यह गिनती वैदिक परम्परा की होती है। वैदिक प्रणाली में आठ के आंकड़े का बड़ा महत्त्व

अष्टावधानी मनुष्य, योग की आठ
है जैसे—अष्ट दिशा, अष्ट दिक्पाल, स्वामि श्री श्री १०८; सद्गुरु श्री श्री
सिद्धि, राजा का अष्टप्रधान मण्डल, सत्यनारायण पूजा ८ या १०८ बार, साष्टांग
१००८; जप १०८ बार, अष्टांग आयुर्वेद, पाणिनी की अष्टा-
नमस्कार, मंगलाष्टक, अष्टमंगल, अष्टविनायक, कलश १०८, "अष्टपुत्रा
ध्यायी, अष्टधातु का कलश, आशीर्वाद आदि। ताजमहल यदि मुमताज की कब्र के
सौभाग्यवती भव" नहीं होते।
रूप में बनता तो उसमें ऐसे हिन्दू चिह्न नहीं होते।

छत के मध्यबिन्दु से लोहे की सांकल लटकी हुई है, उसी पर सोने का
घट टंगा था। शाहजहाँ ने ताजमहल से अपार अन्य सम्पत्ति के साथ उस
घट को भी निजी खजाने में जमा करा दिया। आजकल उस निरर्थक बने
सांकल को Lord Curzon द्वारा दिया गया कहकर लटका रखा है।

गुजरात राज्य की राजधानी अहमदाबाद हिन्दू कर्णावती उर्फ राज-
नगर कहलाता था। उस नगर के मध्य भाग का 'भद्र' नाम है क्योंकि
उसमें अनेक हिन्दू मन्दिर बने हैं। वे सारे इस्लामी कब्जे के कारण मस्जिदें
या मकबरे कहलाते हैं। इसी कारण उनके नाम भी बड़े मजेदार हैं,
जैसे—राणि क्षिप्रा मस्जिद तथा राणि रूपमती मस्जिद। हिन्दू रानियों
के वे महल इस्लामी कब्जे के पश्चात् मस्जिद कहलाने लगे।

नगर का केन्द्रीय भाग 'भद्र' इसलिए कहलाया कि वहाँ भद्रकाली का
मन्दिर होता था। वही नगर देवी थी। इस्लामी कब्जे के समय से मुसलमान
उस इमारत को जामा मस्जिद कहते हैं। पृष्ठ ३१५ पर चित्र में इसी मन्दिर
का सभामण्डप दिख रहा है। सारे स्तम्भ हिन्दू नक्काशी के हैं। उनका
रंग भी बादामी है जो हिन्दू रंग है। हिन्दू देवमण्डपों में ही स्तम्भों की
ऐसी कतारें होती हैं। मस्जिद के लिए बनी इमारत में स्तम्भ होने नहीं
चाहिएं क्योंकि मुसलमान लोग सैकड़ों की कतारों में नमाज अदा करते
समय आँखें मूंदकर बार-बार उठते-बैठते-झुकते हैं। यदि ऐसी अवस्था
में उनके आगे-पीछे और दाएं-बाएं पत्थर के खम्भे होंगे तो नमाज के
समय सैकड़ों नमाजियों के सिर फूटेंगे। अतः तथाकथित अहमदाबाद की
जामा मस्जिद भद्रकाली का मन्दिर था। उसकी दीवार पर पुरातत्त्व
विभाग ने अंग्रेजी भाषा की एक छोटी संगमरमरी शिला लगा दी है,

जिसके अनुसार वह जामा मस्जिद सन् १४१४ में सुल्तान अहमदशाह ने बनवाई।

जनरल कनिंघम की पुरातत्त्वीय हेरा-फेरी का यह एक नमूना है। यदि अहमदशाह उसे बनवाता तो अहमदशाह स्वयं उस इमारत पर फारसी में वैसा शिलालेख लगवाता या उस अंग्रेजी शिलालेख में अहमदशाह के दरबारी दस्तावेज का आधार दिया होता। इतिहास पठन-पाठन, लेखन, संशोधन की प्रणाली भारत में इतनी भोली-भाली, सीधी-सादी रूढ़ है कि ऊपर बताए जैसे प्रश्न कोई इतिहासज्ञ उठाता ही नहीं। यदि ऐसे अनेक प्रकार के सर्वांगीण प्रश्न उठाकर प्रत्येक तथ्य या सिद्धान्त परखा जाए तो उसमें वर्तमान कई धारणाएँ निर्मूल प्रतीत होकर इतिहास ही बदल जाएगा।

वैसे प्रश्न उठाने पर इस्लामी दावों का भांडा फोड़ा जा सकता है तथा प्रत्यक्ष न्यायालयों के दावे भी जीते जा सकते हैं। ऊपर उल्लिखित इमारत के सम्बन्ध में भी ऐसी ही एक घटना हुई।

सन् १९६४ के आसपास के० सी० ब्रदर्स नाम के होजरी का सामना बेचने वाले धनिक व्यापारी ने दुकान की पुरानी इमारत गिराकर उसी स्थान पर एक ऊँची हवेली खड़ी कर दी। वह हवेली रास्ते के दूसरे किनारे पर तथाकथित जामा मस्जिद के सामने स्थित है।

महमूद गजनवी, गोरी आदि के समय से मुसलमान बनाए गए हिन्दुओं को यह पाठ पढ़ाया गया है कि वे अन्य हिन्दुओं से सदा नए-नए टंटे, बखेड़े, दंगे-फसाद, मारामारी, विवाद, संघर्ष आदि के प्रसंग ढूँढते रहें। तदनुसार अहमदाबाद की तथाकथित जामा मस्जिद के ट्रस्टी मुसलमानों ने स्थानिक न्यायालय में दावा दाखिल किया कि के० सी० ब्रदर्स की नई हवेली (तथाकथित) जामा मस्जिद से ऊँची बनाई गई है जो अल्लाह का अपमान है अतः हवेली गिरा दी जाए।

किसी भी नगर के नियमों में ऐसा कोई नियम हो ही नहीं सकता कि किसी के घर की ऊँचाई नगर के मुसलमानों की सहमति से तय की जाए। इसी प्रकार ऐसा भी कोई नियम नहीं हो सकता कि मस्जिद से इतनी दूरी तक की इमारतें मस्जिद से ऊँची न हों। तथापि धर्मांध मुसलमानों का

इस प्रकार की सूझबूझ से क्या काम? उन्हें तो हिन्दुओं से किसी प्रकार कटुता तथा शत्रुतापूर्ण व्यवहार करने से मतलब।

के० सी० ब्रदर्स को इस दावे की नकल न्यायालय द्वारा भेजी गई। न्यायालय ने पूछा था कि मुसलमानों की माँग के अनुसार आपकी इमारत गिराई न जाए इसके आप कारण बतलाना चाहें तो बताएँ।

के० सी० ब्रदर्स के मालिक हड़बड़ा गए। इस प्रकार की माँग कोई करेगा यह तो वे सोच भी नहीं सकते थे। निजी इमारत का बचाव किस तरह किया जाए वे जानते नहीं थे। अतः वे मित्र, परिवार के लोग, अड़ोसी-पड़ोसी से उपाय पूछते रहे। करते-करते उन्हें कोई ऐसा व्यक्ति मिला जिसने मेरा एक लेख पढ़ रखा था जिसमें मैंने यह सिद्ध किया था कि अहमदाबाद के सारे ऐतिहासिक अवशेष हिन्दुओं के हैं और जिसे मुसलमान जामा मस्जिद कहते हैं वह भद्रकाली का मन्दिर है।

उस वार्ता से के० सी० ब्रदर्स को आशा उत्पन्न हुई। उन्होंने लेखक का नाम पूछा तो पता लगा कि लेखक पु० ना० ओक हैं जिनका मूलसिद्धान्त यह है कि मुसलमानों की कही जानी वाली प्रत्येक ऐतिहासिक इमारत हिन्दुओं की है। अतः तथाकथित जामामस्जिद समेत अहमदाबाद की कोई भी इमारत मुसलमानों की नहीं है।

किन्तु किसी को पु० ना० ओक का पता ज्ञात नहीं था। अतः पता ढूँढने का अभियान आरम्भ हुआ। अनेक नगरों में पत्र भेजे गए। अन्त में एक पत्र दिल्ली आया। उसमें के० सी० ब्रदर्स दुकान के स्वामी ने बड़ी चिन्ता व्यक्त करके पूछा था कि क्या मेरे शोध से वे लाभान्वित हो सकते हैं? न्यायालय में मैं यदि सिद्ध कर सकूँ कि तथाकथित जामा मस्जिद एक हिन्दू मन्दिर है तो उनकी दुकान उससे ऊँची या नीची होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठाया जा सकता। उस पत्र में उन्होंने इस प्रकार का गहरा दुःख और बड़ी चिन्ता व्यक्त की थी और मेरा साहाय्य माँगा था।

मुझे तो बड़ा हर्ष हुआ। सन् १९६३ के दिसम्बर के अखिल भारतीय इतिहास परिषद् के पुणे अधिवेशन में पढ़े प्रबन्ध द्वारा मैंने अपना शोध प्रकट किया था कि मुसलमानों की कही जाने वाली सारी ऐतिहासिक इमारतें हिन्दुओं से कब्जा की हुई हैं। भारत के विश्वविद्यालयों के लगभग

सारे ही श्रेष्ठतम ऐतिहासिक विद्वान तथा कुछ अन्य देशों से आए इतिहासज्ञ सैकड़ों की संख्या में वहाँ उपस्थित थे। फिर भी उनमें से एक में भी मेरे सिद्धान्त को गलत सिद्ध करने की हिम्मत नहीं थी और न ही उस सिद्धान्त को मान्यता देने का उनमें सौजन्य था। इससे पाठक देख सकते हैं कि विश्वविद्यालयों से पदवी प्राप्त विद्वान भी अनपढ़ या देहाती लोगों के कितने ही स्वार्थी, डरपोक और लुच्चे होते हैं। यहाँ तक कि मेरा सिद्धान्त प्रकट हुए पच्चीस वर्ष बीत जाने के पश्चात् भी अभी तक पुरातत्त्व विभाग के कर्मचारी एवं अलीगढ़, जयपुर आदि विश्वविद्यालयों में इतिहास पढ़ाने वाले विद्वान प्रत्यक्ष शाहजहाँ के बादशाहनामे का (भाग १, पृष्ठ ४०३) उल्लेख और औरंगजेब का सन् १६५८ का फारसी में लिखा पत्र इनका जानबूझकर गलत अर्थ लगाने का दुराग्रह कर जनता को गुमराह करते रहते हैं। ऐसा करने में हर एक का कुछ न कुछ स्वार्थ होता है। जैसे आक्षेप करने वाला व्यक्ति मुसलमान हो तो उसे यह सहन नहीं होता कि ताजमहल बनाने का श्रेय मुसलमानों से छीना जाए। कुछ हिन्दू विद्वानों को मेरा शोध इसलिए चुभता है क्योंकि उन्होंने ताजमहल को इस्लामी इमारत या कला का नमूना कहने वाली पुस्तकें या लेख लिखे हैं या उसी सिद्धान्त पर उन्हें पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई। अतः वह धारणा निराधार सिद्ध होने से उन्हें बड़ी बेचैनी होती है।

मैंने के० सी० ब्रदर्स दुकान के स्वामी को लिखा कि "मुसलमानों के आक्षेप से आप भले ही उदासीन, निराश, चिन्तित, दुखी, व्यथित आदि हुए हो मुझे तो आनन्द हुआ। मैं काफी समय से ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में था जिससे मैं न्यायालय में अपने शोधों की सत्यता सिद्ध कर सकूँ। अतः आप किसी तरह की जल्दबाजी में कोई समझौता न कर लें।"

मैंने उन्हें सुझाव दिया कि वे अपने वकील से मुसलमानों की माँग के उत्तर में सर्वप्रथम मुद्दा यह लिखें की "वादी मुसलमानों को यह दावा करने का कोई अधिकार नहीं क्योंकि जिस इमारत को वे जामा मस्जिद कह रहे हैं वह वास्तव में भद्रकाली का मन्दिर होने से हिन्दुओं को वापस दी जाए। इस मुद्दे के पश्चात् तुम्हारे वकील को जो अन्य मुद्दे लिखने हैं लिखें।"

मेरे सुझाव के अनुसार प्रतिवादी के० सी० ब्रदर्स की तरफ से उनके वकील ने प्रतिवादी का उत्तर न्यायालय को तथा मुसलमानों को भेजा।

वह उत्तर पहुँचते ही अहमदाबाद के तथाकथित जामा मस्जिद के इस्लामी ट्रस्टी मण्डल में खलबली मच गई। ऐसा अनुभव उन्हें कभी नहीं आया था। मुसलमानों ने उल्टी-सीधी दुराग्रही ऊटपटांग माँगें करते रहना और सरकार ने तथा जनता ने चुपचाप उनकी माँगें पूरी करना यह कांग्रेसी शासन में प्रथा रही है। उन्हें पहली बार उनकी माँग का कड़ा विरोध करने वाली चुनौती की ललकार मैंने दी थी।

अहमदाबाद के मुसलमानों ने मुल्ला मौलवी, पुरातत्त्ववेत्ता, स्थापति, इतिहासज्ञ आदि अनेक से वार्ताविमर्श किया। तब उन्हें पता चला कि वह तथाकथित जामा मस्जिद सचमुच ही कब्जा किया हुआ मन्दिर है। इससे उन्हें डर हुआ कि न्यायालय में यदि वह दावा चलाया तो के० सी० ब्रदर्स की हवेली गिराना तो दूर ही रहा वह इमारत भद्रकाली का मन्दिर सिद्ध होकर हिन्दुओं को वापस लौटाना पड़ेगी। अतः मुसलमानों ने न्यायालय में दूसरी अर्जी देकर दावा वापस ले लेने की माँग की।

इस तरह के० सी० ब्रदर्स पर जो संकट आया था वह तो टल गया किन्तु इससे दावा रुक गया। न्यायालय में उस दावे की पूरी सुनवाई होना आवश्यक था। इससे इतिहास के विद्वान् तथा मुसलमान इन्होंने मिलकर ऐतिहासिक इमारतों के सम्बन्ध में जो ढोंग और पाखण्ड मचा रखा है उसका भण्डाफोड़ करने का एक अवसर हाथ से निकल गया।

कई मास बीत गए फिर भी के० सी० ब्रदर्स के मालिक से मुझे कोई पत्र नहीं आया। अब मैं चिन्तित हो गया। न्यायालय में जाकर मेरा सिद्धान्त प्रस्थापित करने का अवसर मैं गँवाना नहीं चाहता था। अतः मैंने के० सी० ब्रदर्स को पत्र लिखकर पूछा तब उनका जो उत्तर आया उससे सारा खुलासा हो गया कि मुसलमानों ने अपने आप न्यायालय से दावा निकाल लिया।

अब के० सी० ब्रदर्स के मालिक का कर्त्तव्य था कि वे मुसलमान ट्रस्टीमण्डल पर दावा करते कि उस भद्रकाली मन्दिर का कब्जा हिन्दुओं को दिया जाए। उन्होंने वह नहीं किया। उन्होंने 'आप मरे और जग

डूबे' वाली बात की। 'अपनी हवेली बच गई, अपना स्वार्थ साध लिया, बस अब बाकी हिन्दुओं का चाहे कुछ भी हो।' हिन्दुओं ने इस प्रकार की स्वार्थी, डरपोक लापरवाही छोड़ देनी चाहिए।

ऐतिहासिक इमारतों की न्यायिक जाँच

ऐतिहासिक इमारतों में मुसलमानों की बनवाई एक भी नहीं है इस मेरे सिद्धान्त पर अखिल भारतीय इतिहास परिषद ने, भारत सरकार ने, तथा संसद ने एक राष्ट्रीय जाँच मण्डल नियुक्त करना आवश्यक है। फिर भी वे तीनों संगठन वह कर्तव्य निभाने में आनाकानी कर रहे हैं। अतः किसी कारणवश अहमदाबाद में जिस प्रकार एक इमारत के वास्तविक रूप का प्रश्न उठा वैसे योगायोग से अन्य इमारतों के सम्बन्ध में विवाद उठाने की प्रतीक्षा करना ठीक नहीं होगा। स्थान-स्थान के हिन्दू समाज ने संगठित होकर स्थानिक दरगाहें, मस्जिदें आदि अपहृत हिन्दू इमारतें हैं अतः उनका कब्जा हिन्दुओं को मिलना चाहिए ऐसे न्यायालयीन दावे दाखिल करने चाहिएँ।

ऐतिहासिक इमारतें यद्यपि मुसलमानों के कब्जे में रहकर दरगाहें मस्जिदें आदि कहलाती रही हैं तथापि उन्हें हिन्दू सिद्ध करना यह ज्ञान, सत्य तथा न्याय की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण कार्य है। वह न करने से बड़ा अनाचार और अन्याय हो रहा है। इसके कुछ उदाहरण नीचे देखें—

(२) नई दिल्ली, साउथ एक्सटेंशन, भाग दो में मस्जिद मोठ नाम की एक ऐतिहासिक इमारत है। वह वास्तव में मन्दिर मठ है। उसमें सन् १९८४ के लगभग इधर-उधर के ऐरे-गैरे मुसलमान इकट्ठे होकर वहाँ नमाज पढ़ना आरम्भ करने की धमकी देने लगे। वहाँ के हिन्दू मेरे पास आए। मैंने उनके वकील को, architect को तथा कार्यकर्त्ताओं को समझा दिया कि किस प्रकार वह इमारत पूरी तरह हिन्दू है। सन् १८८० तक उस इमारत का नाम तक मस्जिद मोठ था ही नहीं। अलेक्जेंडर कनिंघम ने जानबूझकर उस इमारत पर वह नाम थोपने की बदमाशी की। इस मुहल्ले के हिन्दुओं ने न्यायालय में दावा दाखिल कराकर मुसलमानों के उस इमारत में नमाज पढ़ने पर रोक लगवा दी।

(३) दिल्ली की तथाकथित जामा मस्जिद भी हिन्दू इमारत है यद्यपि वह मुसलमानों का एक बड़ा अड्डा बनी है। वे मुसलमान भी उन हिन्दुओं के दादा-पोते आदि हैं जो हिन्दू व्यक्ति उस इमारत के साथ मुसलमान आक्रामकों के छल-बल से मुसलमान बना दिए गए।

उस इमारत से लगभग १००-२०० गज दूर नगरपालिका द्वारा चलाया जाने वाला महिलाओं का (जनाना) अस्पताल है। नगर की बस्ती बढ़ने से वह इमारत सातमंजिली कराने का निर्णय लिया गया। इस योजना की कार्यवाही आरम्भ हो गई। इतने में पग-पग पर हिन्दू विरोध का बीड़ा उठाने वाले मुसलमानों को पता लगा। हिन्दुओं से झगड़ा शुरू करने का मौका वे ढूँढ़ते ही रहते हैं। तदनुसार कुछ ऐरे-गैरे मुसलमानों ने सरकार को अर्जी दी कि वह सात मंजिली इमारत जामा मस्जिद से ऊँची होगी, इससे मुसलमानों की भावना को ठेस पहुँचेगी। कांग्रेस पक्ष ने भयभीत होकर अस्पताली योजना से दो मंजिल कटवा दिए।

इतिहास के अज्ञान के कारण दिल्ली के कांग्रेसी शासकों ने महिलाओं के प्रति कितना घोर अन्याय किया। उनके उपचार के लिए सात मंजिले अस्पताल में से दो मंजिलें अल्लाह के बन्दों की धमकियों के डर से छोड़ दी गई।

दूसरा भी एक घोर अन्याय इस डरपोकी के कारण हुआ है। अहमदाबाद के मुसलमानों ने जिस प्रकार जामा मस्जिद से ऊँची और कोई इमारत नहीं हो सकती ऐसा बहाना बनाकर के० सी० ब्रदर्स की हवेली गिरानी चाहिए, किन्तु मेरे हस्तक्षेप से हवेली बच गई, इतना ही नहीं अपितु मुसलमानों को परास्त होकर दावा निकाल लेना पड़ा, वही करतब मैं दिल्ली में भी बना सकता था यदि दिल्ली नगर निगम मुसलमानों की माँग पर उनकी शरण जाने की बजाय उन्हें चुनौती देता कि दिल्ली की जामा मस्जिद भी हिन्दुओं का हड़प किया हुआ मन्दिर है। इस इमारत का निर्माण शाहजहाँ ने किया यह केवल धौंसबाजी या जानबूझकर उड़ाई हुई अफवाह है। इतिहास में इसका कोई प्रमाण नहीं है। इस तरह दिल्ली वाली जामामस्जिद के निर्माण का भांडाफोड़ करने का सुनहरी मौका कांग्रेस शासित दिल्ली नगरनिगम के अज्ञान तथा कायरता के कारण

हाथ से निकल गया।

(४) दिल्ली में ही बहादुरशाह जफर मार्ग पर मौलाना आजाद मेडिकल कॉलिज के परिसर के रास्ते के किनारे एक प्राचीन मन्दिर का खण्डहर भी मुसलमानों ने दुराग्रह से उसे मस्जिद कहकर हड़प कर लिया है। न्यायालय में Delhi Land Office नाम का कोई सरकारी संगठन तथा एक हिन्दू भजनमण्डली ने मुसलमानों के दावे का विरोध किया। किन्तु न्यायालय ने मुसलमानों के पक्ष में निर्णय दिया। हिन्दू पक्ष तथा उस पक्ष के वकीलों ने यदि मेरी पुस्तकें पढ़ी होतीं तो वे दावा कभी नहीं हारते। कोई भी इमारत हिन्दू है या इस्लामी इसके प्रमाण प्रत्येक इमारत में ही पाए जाते हैं। न्यायालय में दावा जीतने पर उस छोटे-लम्बे कक्ष (जिसे वे मस्जिद कह रहे हैं) को तुरन्त हरा रंग दे डाला।

उन्होंने उसके चारों ओर जो तार, खम्भे, फाटक आदि लगवाए थे उसे भी हरा रंग दे दिया। यही अपने आप में कितना बड़ा प्रमाण है कि वह परिसर मूलतः इस्लामी नहीं था। अतः उसका कब्जा मुसलमानों को देने में न्यायालय ने बड़ा अन्याय तथा गलती की है। दावा हारने में हिन्दू वकील का भी इतिहास सम्बन्धी अज्ञान प्रकट होता है। मैं सारे वकीलों को कहना चाहता हूँ कि जब किसी ऐतिहासिक स्थान की बाबत मुसलमानों की तरफ से कुछ विवाद खड़ा किया जाए तो वे मुझसे परामर्श करें क्योंकि मुसलमानों ने कहीं एक भी ऐतिहासिक इमारत या नगर नहीं बनवाया है।

(५) महाराष्ट्र के चालीस गाँव नगर में एक पीर है जहाँ एक स्थानिक हिन्दू देशमुख के घर की तलवार उर्स के समय पूजा के लिए भेजी जाती है। इससे स्पष्ट है कि वह देशमुख घराने की कुलदेवी का मन्दिर था जो मुसलमानों के हमले में भ्रष्ट किया गया है। हो सकता है कि वह पीर की कब्र नकली हो और उसके अन्दर शिवलिंग या देवी की मूर्त्ति ही दबी हो।

(६) महाराष्ट्र के जलगाँव नगर से थोड़े अन्तर पर एरण्डोल गाँव है। वहाँ पाण्डवकालीन कुछ अवशेष हैं और पाण्डव बाड़ा भी है। किन्तु मध्ययुगीन इस्लामी आक्रमणों में उस इमारत पर मुसलमानों के हमले हुए और वहाँ के पाण्डवकालीन प्राचीन हिन्दू मन्दिर के पुजारी आदि मुसलमान

बनाए गए। अतः वहाँ के मुसलमानों सहित बाड़ा भी पुनः हिन्दू बना लेना आवश्यक है।

(७) मराठवाड़ा में जायकवाड़ी नदी घाटी योजना में अनेक तालाब, नहर आदि बनवाने का करोड़ों रुपयों का कार्य था। उसमें जब ८१ लाख रु० खर्च हो गए और एक नए तालाब के निर्माण की तैयारी हो रही थी तब स्थानीय मुसलमानों ने महाराष्ट्र के कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल को एक अर्जी भेजी कि वहाँ एक इस्लामी दरगाह थी जो तालाब में डूब जाएगी अतः योजना स्थगित की जाए। कांग्रेस मन्त्री भयभीत होकर भागे-भागे वहाँ गए और अगला काम रुकवा दिया गया। वहाँ जो बड़े-बड़े मिट्टी ढोने वाले यन्त्र थे वे भी वहाँ से अन्यत्र भेजे गए। मुझे किसी ने उस दरगाह की फोटो भेजी। इससे स्पष्ट दिखाई दिया कि वह एक हड़प किया हुआ मन्दिर है। मैंने सरपंच को लिखा कि क्या मुसलमानों का आक्षेप अयोग्य था। आक्षेप उठाने वाले स्वयं उस अपहृत हिन्दू मन्दिर के पुजारी आदि के वंशज थे जो जबरन मुसलमान बनाए गए थे। कुछ दिन पश्चात् कांग्रेसी मन्त्री को काम स्थगित रखने का आदेश वापस लेना पड़ा और योजना आगे चल पड़ी।

(८) बिहार के ससाराम (सहस्रराम) नगर में एक किला है जो शेरशाह का किला कहलाता है। शेरशाह ने उस किले को जीता था किन्तु बनवाया नहीं था। सामान्यजन तथा इतिहासज्ञ बड़ी गलती करते हैं कि इस्लामी आक्रामकों के नाम यदि किसी स्थान से जुड़े हुए हैं तो वे इसलिए नहीं कि वे उसके निर्माता थे किन्तु इसलिए कि कुछ समय तक वह स्थान उनके कब्जे में रहा। ससाराम के उस किले में कई व्यापारियों की दुकानें आदि हैं। लगभग दो वर्ष पूर्व सरकार की तरफ से वह ऐतिहासिक स्थान खाली करवाने की आज्ञा हुई। सारे व्यापारी बेचैन हो उठे। उन्होंने मुझे पत्र लिखकर मेरा सहाय्य माँगा। वह किला शेरशाह का नहीं अपितु वहाँ के प्राचीन हिन्दू राजाओं का है इतना तो मैं सिद्ध कर देता किन्तु उतने से उन व्यापारियों की समस्या हल नहीं होती। क्योंकि चाहे वह किला शेरशाह का हो या किसी हिन्दू राजा का, कांग्रेस सरकार द्वारा पारित किसी आधुनिक कानून द्वारा ऐतिहासिक परिसर खाली करवाने का

अधिकार शासन को प्राप्त हो तो उसमें मैं उनकी सहायता नहीं कर सकता था। तथापि इस घटना से यह दिखाई देता है कि जहाँ कहीं किसी ऐतिहासिक स्थान की बाबत कुछ विवाद हो, जनता को मेरे सिद्धान्त का बड़ा आधार दिखाई देता है।

(६) जलगाँव नगर के केन्द्रीय राजमार्ग पर एक बाजार है। वहाँ एक मारवाड़ी युवक की भी कोई दुकान थी। उसकी यह प्रथा थी कि वह अपनी दुकान के आगे एक काले फलक पर प्रत्येक दिन की प्रमुख वार्ता आने जाने वालों की जानकारी के लिए मोटे अक्षरों में लिखा करता था। सन् १९६५-६६ में जब उसने मेरे ताजमहल सिद्धान्त की बाबत सुना तो उसने उस काले फलक पर लिखा कि ताजमहल हिन्दू महल है। स्थानिक पुलिस अधिकारी को पता ही नहीं था कि उस विषय पर मेरी कोई शोध पुस्तक प्रकाशित हुई है। उन्होंने उस मारवाड़ी युवक द्वारा लिखी वार्ता को जातीय दंगा उकसाने का एक यत्न समझकर उसे उस आरोप में बन्धक बनाया। गुप्ते नाम के एक स्थानीय वकील उस युवक के वकील बने। जमानत पर मारवाड़ी युवक बन्धनमुक्त हुआ। युवक पर अभियोग चलाने की सिद्धता हुई। वकील गुप्ते मुझे गवाही के लिए बुलाने की सोच ही रहे थे कि इतने में Tajmahal is a Hindu Palace, India Book House द्वारा प्रकाशित मेरी पुस्तक उनके हाथ आई। उन्होंने वह पुस्तक पुलिस के प्रमुख अधिकारी को दी। ताजमहल हिन्दू इमारत है इस तथ्य के सारे प्रमाण उस पुस्तक में पढ़ते ही पुलिस अधिकारी ने उस युवक पर दावा चलाने का विचार रद्द कर दिया।

ऐसे अन्य कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। अब हर स्थान के हिन्दुओं ने पहल कर प्रत्येक स्थानीय ऐतिहासिक दरगाह तथा मस्जिद का कब्जा माँगने के लिए मुसलमानों के विरुद्ध दावे दाखिल करने चाहिएँ। साथ-साथ उन मुसलमानों को भी उनके मूल हिन्दुत्व का स्मरण दिलाकर उन्हें भी हिन्दू समाज में विलीन करा लेना चाहिए। जब तक हिन्दू यह कर्त्तव्य नहीं निभाएँगे मुसलमानों की शत्रुता नष्ट नहीं होगी और पग-पग पर हिन्दुओं का विरोध करने की मुसलमानों की आदत नहीं जाएगी। १९८८ के मई मास में निर्वाचन आयोग ने कुछ उपचुनावों की तारीख प्रकट की।

हर बात पर किसी बहाने कुछ आक्षेप अवश्य उठाया जाना चाहिए। इस आदत के अनुसार कुछ मुसलमानों ने कहा कि अभी हमारा रमजान का 'उपवास' चालू है अतः मई मास में चुनाव न हों। डरपोक और अज्ञानी कांग्रेस शासन ने तुरन्त वह आक्षेप मान्य लिया और चुनाव आयोग द्वारा जून १६ उपचुनावों की तारीख घोषित की। रमजान हो तो क्या हुआ? क्या रमजान के दिनों में मुसलमान घर से बाहर नहीं जाते? क्या वे उन दिनों किसी से बोलते नहीं? तो उपचुनाव में वे मत क्यों नहीं दे सकते थे? यह कितनी लज्जा की बात है कि १२ प्रतिशत जनसंख्या वाली इस्लामी जमात के दो-चार ऐरे-गैरे मुसलमान कांग्रेसी शासन के प्रत्येक सुझाव के विरुद्ध किसी न किसी बहाने एक अड़ियल टट्टू की तरह आक्षेप उठाते रहते हैं और कांग्रेसी शासक उस आक्षेप के आगे सिर झुका

मुसलमानों को यह आदत इसलिए पड़ी है कि हिन्दू प्रत्येक इस्लामी
देते हैं। मुसलमानों की वह आदत छुड़वाने के लिए
माँग पर शरण जाते रहे हैं। मुसलमानों इमारतें वापस लेने का अभियान हिन्दुओं ने शुरू
उनके कब्जे में गई हिन्दू
करना आवश्यक है।

ताजमहल के संगमरमरी अष्टकोणीय कक्ष के द्वार में दाखिल होने
से पूर्व दाएँ-बाएँ दीवारों पर जो पौधों की नक्काशी है उनमें पृष्ठ ३२५ की
तरह के शंख के आकार के पत्ते बने हुए हैं। शंख पूर्णतया हिन्दू धर्म चिह्न
है। इस्लाम में शंख का कोई अस्तित्व नहीं है। ताजमहल यदि मुसलमानों
द्वारा बनी कब्र होती तो उसमें शंख की आकृति नहीं होती। कारीगर हिन्दू
थे अतः ऐसे हिन्दू चिह्न कब्र में लगे हैं यह कथन भी गलत है। क्योंकि
इस्लामी परम्परा में ताजमहल के कारीगरों के जो कपोल-कल्पित नाम
दिए जाते हैं उनमें कोई हिन्दू नाम नहीं है। दूसरा मुद्दा यह है कि मकान
मालिक यदि हिन्दू चिह्न बनाने की सामग्री, रेखाचित्र आदि देगा ही नहीं
तो कारीगर हिन्दू चिह्न कैसे बना सकता है? तीसरा मुद्दा यह है कि
कारीगरों के ऊपर शाही मुकादमों की देख-रेख होती है। तो क्या वे
मुसलमान मुकादम कारीगरों को हिन्दू चिह्न बनाने से रोकेंगे नहीं? कब्र
जैसी धार्मिक इमारत में, जहाँ मृतात्मा के परलोक जाने का प्रश्न होता है,
किसी प्रकार के अ-इस्लामी चिह्न कोई आने ही नहीं देगा। अतः ताजमहल
में लगे शंका के पत्तों के हिन्दू चिह्न यही सिद्ध करते हैं कि वह तेजोमहालय
नाम का हिन्दू चिह्न शिवमन्दिर था, जिसे हड़पकर शाहजहाँ ने उसमें
मुमताज के नाम से एक कब्र बनवा दी। कब्र में मुमताज का शव ही
दफनाया गया है यह भी प्रामाणिक नहीं है।

उत्तर प्रदेश का जौनपुर नगर वास्तव में यौवनपुर था। वहाँ की नगर
देवी थी—अटला देवी जो अटल भविष्य की प्रतीक थी। उस नगर पर
इस्लामी हमले आरम्भ होते ही इस्लाम के क्रूर रवैये के अनुसार वहाँ
की मूर्ति नष्ट कराकर उस इमारत को अटलादेवी मस्जिद नाम दे दिया
गया। किन्तु यदि यह मस्जिद होती तो इसमें पाँच मंजिल नहीं होतीं।
बीच की मंजिल के दालान में कोई नमाज पढ़ रहा हो और ऊपर की
मंजिल में अन्य जन चल रहे हों या लेट रहे हों तो इस्लाम में ठीक नहीं
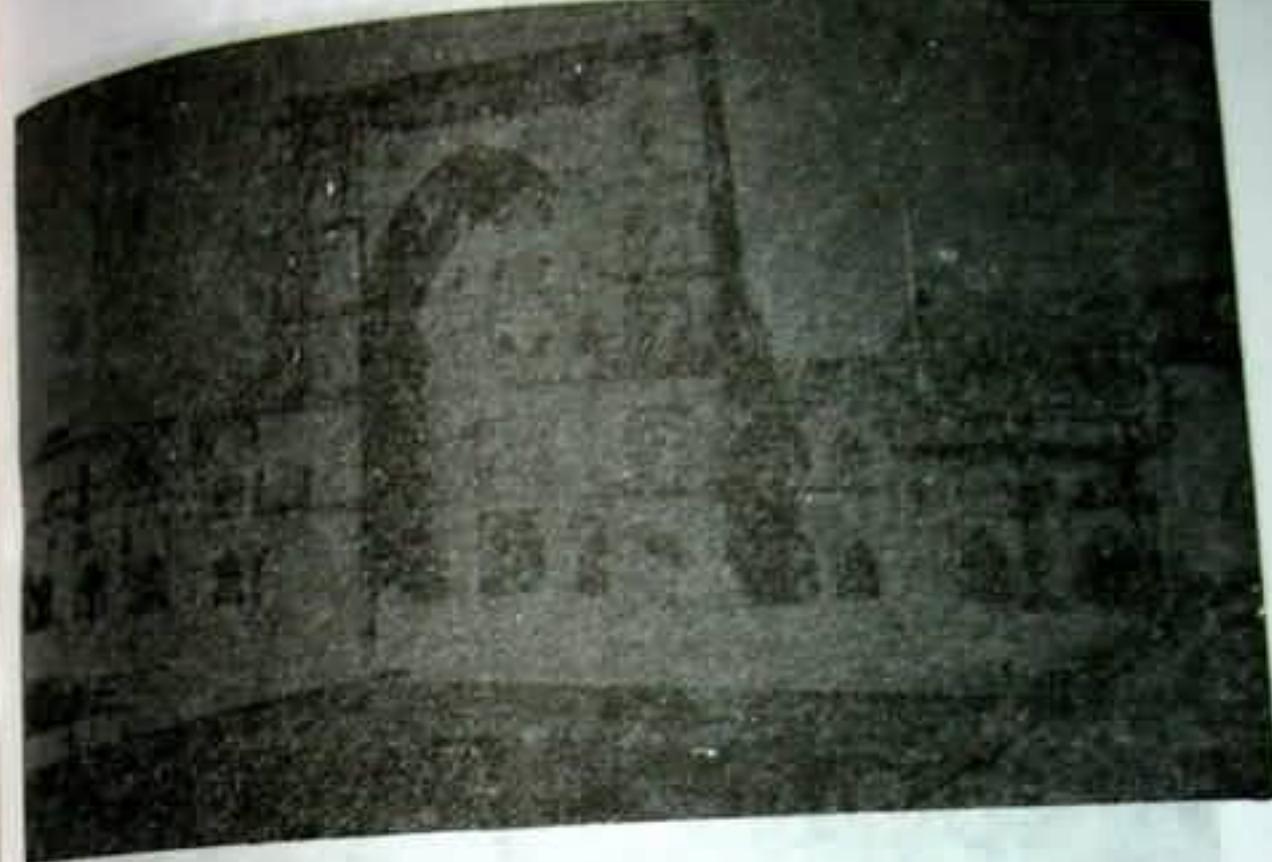
माना जाता। अतः ऊपर का चित्र मूलतः मस्जिद नहीं है।

प्राचीन यौवनपुर के इस देवी मन्दिर में अन्य मन्दिरों की भाँति वेद
विद्यालय, धर्मशाला तथा निर्धनों के लिए अन्तछत्र होता था। इसी कारण
अटलादेवी मन्दिर में पाँच मजिल और अनेक कक्ष बने हुए हैं।

दिल्ली में तीन परकोटे वाली अनेक मंजिलों की सैकड़ों कक्षवाली
एक विशाल इमारत है जिसे कनिंघम ने जानबूझकर हुमायूँ का मकबरा
कह रखा है जबकि वह वास्तव में लक्ष्मी का मन्दिर था। उसका रंग
केसरिया है जो वैदिक परम्परा का पवित्र धार्मिक रंग है। उस इमारत के
केन्द्रीय कक्ष में जी ल बाँ (G. Le. Bon) नामक फ्रेंच व्यक्ति ने सन् १८५२
के लगभग संगमरमर के बने विष्णु के चरण बने हुए देखे। उस फ्रेंच ग्रन्थ
का आंग्ल अनुवाद The World of Ancient India शीर्षक से अमेरिका
के Newyork नगर के Trudor Publishing House ने सन् १९७४ में
प्रकाशित किया। उस ग्रन्थ में विष्णु के चरणों का चित्र (पृष्ठ ३२७)
प्रकाशित हुआ है।

इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि सन् १८६१ में जब अलेक्जेंडर कनिंघम् भारत के आंग्ल शासन का पुरातत्व प्रमुख नियुक्त हुआ तो उसने लक्ष्मीमन्दिर से विष्णु के चरण चिह्न उखाड़कर वहाँ हुमायूं के नाम से संगमरमर की एक नकली कब्र बनवा दी। कनिंघम के उस षड्यन्त्र का एक प्रमाण यह है कि उस नकली संगमरमरी कब्र पर हुमायूं का नाम भी नहीं लिखा है। वह इसलिए कि यदि कनिंघम हुमायूं का नाम लिखवाता

तो हुमायूं के नाम के आगे 'शहंशाह बादशाह-ए-हिन्द' आदि बिरुदावली लिखवाने में गलती करता और इससे उसकी हेरा-फेरी पकड़ी जाती। अतः कनिंघम ने केवल एक नकली कब्र ही बना छोड़ी। फिर भी हेरा-फेरी तो हेरा-फेरी ही होती है जो अन्य सबूतों से पकड़ी जाती है। इस इमारत की दीवारों पर अनेक स्थानों पर निम्न तरह का वैदिक तान्त्रिक
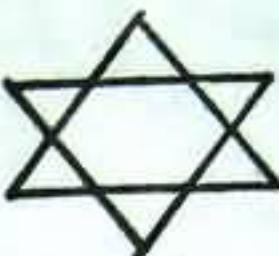
शक्ति चक्र जड़ा हुआ है। इस शक्ति चक्र के मध्य में कमलचिह्न बना हुआ है। सन् १५५५ के मध्य में हुमायूं पन्द्रह वर्ष पश्चात् जब भारत लौटा तो वह निर्धन बन गया था। उसके पश्चात् छह मास ही वह जीवित रहा। जब उसका कोई महल दिल्ली में नहीं है तो उसकी मृत्यु के पश्चात् किसी अज्ञात बेगा बेगम (उर्फ हमीदाबानू) ने लाखों रुपये खर्च कर वह विशाल कब्र बनवाई आदि केवल धोंसबाजी है। यदि वह कब्र की इमारत हो तो उसमें सैकड़ों कक्ष क्यों हैं? तहखाने में भूमिस्तर पर हुमायूं की कब्र क्यों नहीं है? ऊपर की मंजिल में नकली कब्र तो है किन्तु उस पर किसी का नाम क्यों नहीं है? अन्य कक्षों में तथा ऊपर के आंगन में ऐरे-गैरों की सैकड़ों कब्रें क्यों बनी हैं। हुमायूं दिल्ली में दफनाया ही नहीं गया क्योंकि अबुल फजल के अनुसार हुमायूं की कब्र सरहिन्द में है तथा फरिश्ता के अनुसार हुमायूं आगरा में दफनाया गया। अतः हम पाठकों को सावधान करना चाहते हैं कि वास्तव में हुमायूं की कब्र का किसी को कुछ पता ही नहीं। इस विवरण से पाठक जान जाएंगे कि विश्व में कोई कब्र, मस्जिद आदि कोई इमारत, नगर या ऐतिहासिक इमारत मुसलमानों द्वारा बनवाई गई है ही नहीं।

दिल्ली में महरौली बस्ती के पार दाहिने हाथ को महिपालपुर जाने वाली सड़क है। उस पर चार या पांच मील आगे जाने पर बाईं ओर सड़क के किनारे से लगभग दो सौ गज दूरी पर प्राचीन १०-१२ टूटी-फूटी

हवेलियाँ दीखती हैं। कनिंघम ने इन्हें सुल्तान गढ़ी नाम दे रखा है। वह नाम लादा हुआ इस्लामी नाम है। हमारा निष्कर्ष यह है कि कनिंघम के समय तक उस परिसर का नाम राजगढ़ी रहा होगा जिसे बदलकर सुल्तान गढ़ी कहा गया। इन भवनों के बीचों-बीच एक अष्टकोना छत वाला शिव मन्दिर का गर्भगृह बना हुआ है। उस गर्भगृह में अब मूर्ति नहीं है। कब्र भी नहीं है तथापि कनिंघम ने इस इमारत को पुरातत्त्वीय कागजातों में विश्व का प्राचीनतम कब्रगाह कहकर उस स्थान का ढोल पीटा है। कनिंघम के अनुसार गुलाम वंश के द्वितीय सुल्तान इल्तुतमिश के युवा पुत्र नासिरुद्दीन मुहम्मद के लिए वह कब्र बनवाई गई। इमारती कब्र का इस्लाम के इतिहास में वह सबसे प्राचीन नमूना है और उसी के अनुसार भविष्य में महलों वाली आलीशान कब्रें बनते-बनते शाहजहाँ ने मुमताज की मृत्यु पर आलीशान ताजमहल बनवाया—आदि ऊटपटांग कब्रो भाष्य आजकल के पाश्चात्य प्रणाली के विद्यालयों द्वारा वास्तुकला, पुरातत्त्व, इतिहास आदि के पाठ्यक्रमों में दिया जाता है। वह कोई एक इमारत थोड़े ही है? वह तो आठ-दस इमारतों का संस्थान बना हुआ है। उसमें किसी की भी कब्र नहीं है। केन्द्रीय इमारत शिवमन्दिर की है। उसकी अष्टकोने छत में लगी लम्बी-लम्बी लाल रंग की शिलाएँ जब निकाली गईं तो उनके

अन्दर की ओर दोनों कोनों पर बराह तथा कामधेनु की प्रतिमाएँ बनी हुई थीं। एक संस्कृत शिलालेख भी पाया गया था। कनिंघम ने वे सारे हिन्दू प्रमाण वहाँ से कहीं दूर ले जाकर पटकवा दिए ताकि किसी को इस इमारत के हिन्दुत्व निर्माण का पता न चले। अभी भी वहाँ दो-चार शिलाएँ चूने से पक्की लगी हुई हैं। वे लाल शिलाएँ यदि निकाली जाएँ तो हो सकता है कि उनके भी एक कोने पर बराह तथा दूसरे कोने पर कामधेनु बनी मिलेगी। वे दोनों प्राणि हिन्दू राजप्रथा में बड़ा महत्त्व रखते हैं जबकि इस्लाम में उन्हें अत्यन्त तिरस्करणीय माना जाता है। इल्तुतमिश का पुत्र नासिरुद्दीन मुहम्मद यदि वहाँ दफनाया गया होता तो उसके सिर पर सुअर तथा गौ की मूर्त्तियाँ क्यों बनी होतीं? तथा इन मूर्त्तिवाली शिलाएँ लज्जा या भय से उल्टी लगाई गई थीं क्या? मूर्त्ति वाला स्तर अन्दर की तरफ कर मूर्त्तियाँ चूने से क्यों ढकी गईं? इन सब प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि वह राजगढ़ी थी। उसे कब्जा करने पर मुसलमानों ने उसका नाम सुल्तान गढ़ी रखा। उसको अंग्रेजों ने Sultan Ghatry लिखा। वहाँ कोई कब्र नहीं है। कब्र की धौंस कनिंघम ने दी। मुसलमानों ने वह राजगढ़ी जीतने के बाद जिन शिलाओं पर संस्कृत शिलालेख तथा बराह-कामधेनु अंकित थे वे शिलाएँ उखड़वाईं और उन्हें उल्टा करवाकर उन्हीं स्थानों में ठूँस दिया ताकि सुल्तान हिन्दू चिह्नों वाली इमारत में रह रहा है ऐसा आक्षेप मुल्ला मौलवी आदि न उठा सकें।

इमारतों की छिन्न-भिन्न अवस्था वहाँ मची घमासान लड़ाई की साक्षी है। यह इमारतें कितनी प्राचीन हैं यह इसमें पाए संस्कृत शिलालेख आदि अन्य प्रमाणों से तय करना होगा। नासिरुद्दीन की मृत्यु से उस इमारत का निर्माणकाल जोड़ना पूर्णतया गलत है। नासिरुद्दीन से सदियों प्राचीन वह राजगढ़ी होनी चाहिए। हो सकता है कि इल्तुतमिश ने उस राजगढ़ी को छिन्न-भिन्न कर सुल्तानगढ़ी नाम दिया हो। वे इमारतें पूर्णतया हिन्दू मन्दिर-महल हैं। कनिंघम की हेरा-फेरी से उस इमारत की शैली, उसका मूल निर्माण तथा उसकी आयु के सम्बन्ध में सारे विश्व के विद्वान कैसे गुमराह किए गए हैं इसका सुल्तानगढ़ी उर्फ राजगढ़ी एक ठोस उदाहरण है।

ऐतिहासिक अज्ञान से होने वाली असीम हानि

इतिहास सम्बन्धी अज्ञान से समस्त मानव जाति की असीम हानि होती है। वर्तमान में ही देखें। मानव-मानव में कितने प्रकार की शत्रुता है। पूंजीवाद, समाजवाद, ईसाई, मुसलमान, शिया-सुन्नी-अहमदिया, दक्षिण अफ्रीका के गोरे शासक तथा काले प्रजाजन आदि कितने ही प्रकार के संघर्ष चल रहे हैं।

इन संघर्षमय विवादों का मूल, इतिहास की शिक्षा में पाया जाता है। वर्तमान इतिहास में सिखाया जाता है कि मानवीय समाज आरम्भ से ही विविध विरोधी गुटों में बंटा हुआ है।

इस ग्रन्थ द्वारा हमने उस प्रचलित धारा को उल्टाकर यह बतलाया है कि मानव का इतिहास एक केन्द्रीय दैवी सूत्र से हुआ है। इसी कारण प्रथम युग को कृतयुग कहते हैं। वह ईश्वर का बनाया युग था। अतः प्रथम मानव पीढ़ी के व्यक्ति देवतुल्य गुणों के और निजी कार्यक्षेत्र में बड़े प्रवीण थे—जैसे विश्वकर्मा, गन्धर्व, धन्वन्तरि आदि।

अपने आपको आज जो ईसाई या इस्लामी मानते हैं उन्हें यह समझाना आवश्यक है कि उन सबके पूर्वज वैदिकधर्मी थे। इस ज्ञान से सबमें एकता का भाव लाया जा सकता है।

आधुनिक राष्ट्रीयत्व एक नकली बन्धन

वर्तमान समय में प्रत्येक राष्ट्र में कई तरह के लोग बसते हैं। सरकारी दृष्टि से तो वे राष्ट्र के नागरिक कहलाते हैं, किन्तु क्या उनमें एक-दूसरे

के प्रति स्नेहभाव होता है? भारत में बसने वाले मुसलमानों को ही देखिए। वे सारे ही कुछ पीढ़ियाँ पूर्व हिन्दू थे। किन्तु समय-समय पर वे छल-बल से मुसलमान बनाए गए। उन्हें उनके कुटुम्ब में, घर में, इस्लामी स्कूलों में, समाज में, मस्जिदों में और साहित्य द्वारा यह शिक्षा दी जाती है कि हिन्दू काफिर हैं, कुत्ते हैं, उनका सर्वदा तिरस्कार करना चाहिए, उनके प्रत्येक प्रस्ताव को ठुकरा देना चाहिए (इसके हम कुछ उदाहरण इस खण्ड में यत्र-तत्र दे चुके हैं), उनको हर तरह लूटकर अपमानित करते रहना चाहिए क्योंकि वे नफरत करने योग्य घटिया स्तर के व्यक्ति होते हैं। इसी शिक्षा के कारण भारत के ९० प्रतिशत मुसलमानों ने पाकिस्तान बनाने की माँग की, कश्मीर इस्लामी प्रान्त बने रहने का दुराग्रह किया और भारत में रहते हुए भी वे निजी हिन्दुत्व को दबाकर अपने आपको अरबी, तुर्की, ईरानी या अफगानी कहलाने में बड़ा गौरव मानते हैं। ऐसे व्यक्ति राष्ट्रीय नागरिक कहलाने की बजाय राष्ट्रीय शत्रु या देशद्रोही माने जाने चाहिएं।

आजतक जो इतिहास प्रचलित है वह ऊपर कहे अराष्ट्रीय मुसलमानों की तुष्टि करने के हेतु से लिखा होने से उसमें कई झूठी बातें प्रविष्ट हो गई हैं। जैसे ऐतिहासिक नगर या इमारतें इस्लाम निर्मित न होते हुए भी मुसलमानों की कही गई हैं। अकबर, औरंगजेब जितना ही क्रूर और दुर्गुणी होते हुए भी श्रेष्ठ कहा गया है। ऐसे गहरे दोषों से वर्तमान इतिहास भरा पड़ा है।

ऐसा दोषपूर्ण, भ्रामक, झूठ, असत्य इतिहास सिखलाकर दुर्बल, कायर और भ्रष्टाचारी नागरिक ही तैयार होते हैं। ऐसे इतिहास के प्रति एक भी इतिहास का पदवीधारी अध्यापक अपनी आवाज नहीं उठाता इसी से उसके नैतिक अधःपतन तथा डरपोकी का अनुमान लगाया जा सकता है। ताज-महल आदि इमारतें मुसलमानों की बनाई हुई नहीं हैं यह सिद्धान्त रूप से मान्य करने पर भी लगभग कोई भी हिन्दू या मुसलमान प्रकट रूप से उस सत्य को दोहराना नहीं चाहता। इससे हिन्दुओं की कायरता तथा मुसलमान की सच्चाई स्पष्ट दीखती है।

विविध सुल्तान बादशाहों के विवाद और संघर्षों की जन्त्री यही प्रचलित इतिहास का स्वरूप है। उसे त्यागकर सृष्टि निर्माण से मानवों

की मूल वैदिक एकता भंग होकर उसमें से समाज में किस प्रकार फूट पड़ती गई, संघर्ष बढ़ता गया इसका ज्ञान मानव-जाति को कराकर उन्हें दुबारा वैदिक सभ्यता के प्रति मोड़ना इतिहास का ध्येय होना चाहिए।

मुसलमानों ने भी मुहम्मद से ही इतिहास आरम्भ करके इस्लाम तथा कुराण तक ही सीमित रखने की अपनी प्रणाली त्याग देनी चाहिए। मानव के निर्माण से मानव के अन्त तक के ब्यौरे तक को, इतिहास, यह संज्ञा है।

ईसाई लोग यद्यपि निष्पक्ष अध्ययनशीलता का दावा करते हैं लेकिन ईसामसीह की ऐतिहासिकता जाँचने से वे मुँह फेर लेते हैं। ईसामसीह एक कपोलकल्पित व्यक्ति है ऐसा कई ईसाई विद्वानों ने स्वयं माना है तथापि उनके इस निष्कर्ष को जनता तक पहुँचने नहीं दिया जाता।

इतिहास से राष्ट्रीय व्यक्तिमत्व का दर्शन

केवल भारत का राष्ट्रीयत्व वैदिक नहीं अपितु विश्व के हर प्रदेश का मूल व्यक्तियत्व वैदिक ही था। इतिहास का यह मूल तत्त्व हर मानव को पढ़ाया, जंचाना जाना चाहिए ताकि उसे पता लगे कि वह निज मूल व्यक्तित्व से कितना ढल चुका है या विचलित हो चुका है।

भारत हिन्दू राष्ट्र है

वर्तमान कांग्रेसी शासकों ने भारत को, अनेक धर्म के लोगों का एक खिचड़ी देश है, ऐसा बार-बार घोषित किया है। वह सर्वथा अन्यायी तथा अज्ञानी भूमिका है। विश्व के सारे प्रदेशों में भारत का हिन्दुत्व ही उसका मूल व्यक्तियत्व है। योग, प्राणायाम, संस्कृत भाषा, वैदिक सभ्यता, आयुर्वेद, वैदिक संगीत-नृत्य आदि कलाएँ, वेदान्त आदि भारत के व्यक्तियत्व के विशेष पहलू हैं। किसी अन्य प्रदेश का ऐसा अपना विशिष्ट व्यक्तियत्व नहीं है। इस्लामी देशों में कुरान पठन और ईसाई देशों में बायबल पठन इसके अतिरिक्त कोई विशेषता नहीं है। विश्व में कहीं भी भारत या हिन्दुत्व यह नाम लेते ही ऊपर वर्णित एक विशिष्ट हिन्दू, प्यारी, पवित्र, आध्यात्मिक वैदिक छवि दृष्टिगोचर होती है। हिन्दुस्थान देश ईसाई तथा इस्लामी आक्रमणों से बचा रहने पर ही उसकी हिन्दू वैदिक छवि टिक सकेगी। अतः इतिहास द्वारा भारतीयों को तथा विश्व के अन्य लोगों को भी हिन्दुत्व जीवित तथा सशक्त रखने की प्रेरणा मिलनी चाहिए।

धर्मरक्षक (Defender of the Faith)

ब्रिटेन के राजा की बिरुदावली में Defender of the faith यानि 'धर्मरक्षक' यह गुण या कर्त्तव्य अन्तर्भूत है। वस्तुतः वह संस्कृत 'गो ब्राह्मण प्रतिपालक' ध्येय का अनुवाद है। गौ की रक्षा कर जनता को हृष्ट-पुष्ट रखना तथा ब्राह्मणों की रक्षा कर समाज को ज्ञानी तथा सद्गुणी और सम्वर्तनी बनाना राजा का आद्य कर्त्तव्य माना जाता था।

भारत तथा हिन्दुत्व एक-दूसरे से संलग्न

हिन्दुत्व तथा हिन्दुस्थान दोनों एक-दूसरे से पूर्णतया निगड़ित या संलग्न हैं, हिन्दुत्व के बिना हिन्दुस्थान निरर्थक हो जाएगा तथा हिन्दुस्थान के बिना हिन्दुत्व निराधार हो जाएगा।

कसौटी

ऊपर कहे सिद्धान्त की एक कसौटी बताई जा सकती है। भारत के चार शासकों को देखें। अकबर तथा औरंगजेब मुसलमान थे। अन्य दो राणाप्रताप और शिवाजी हिन्दू थे। चारों भारत में ही रहा करते थे। तथापि चारों को भारतीय कहना एक बड़ी भूल होगी। मुसलमान, ईसाई तथा कॉंग्रेसी हिन्दू भी उन चारों को भारतीय शासक कहने में बड़ा अन्याय करते हैं। मन्दिर नष्ट करना, मूर्त्ति तोड़ना, हिन्दुओं पर जजिया कर लगाना, छलबल से हिन्दुओं को मुसलमान बनाना, पराए इस्लामी आक्रामक शत्रुओं का चाँद-सितारे वाला हरा ध्वज फहराना, यह भारतीय राष्ट्रीयता के करतूत या लक्षण थोड़े ही हैं। वे तो राष्ट्रद्रोह के तथा कट्टर शत्रुता के लक्षण हैं। सारांश में हम यह कह सकते हैं कि राणाप्रताप तथा शिवाजी वैदिक सभ्यता के संरक्षक होने से देश के लाल समझे जाने चाहिएँ तथा अकबर और औरंगजेब वैदिक संस्कृति के भक्षक या मारक होने से भारत के शत्रु या देशद्रोही माने जाने चाहिएँ। किन्तु इतिहास में उनका ऐसा विश्लेषण नहीं किया जाता यह वर्तमान इतिहास का बड़ा न्यून है। इसी प्रकार वैदिक संस्कृति का संरक्षण तथा सम्वर्द्धन करने वाला देशमित्र

समझा जाएगा। वैदिक संस्कृति का खण्डन करने वाला भारत का शत्रु तथा मानवशत्रु कहलाना चाहिए।

देशहितैषी कौन तथा देशशत्रु कौन? यह ऊपर कही व्याख्या से पहचानने की निर्णायक कसोटी प्राप्त होती है। इतना ही नहीं अपितु प्रत्येक व्यक्ति की कौन-सी कृति या उक्ति देशद्रोही या देशहितकारी थी इसकी भी परख साथ-साथ होती रहती है। जिसकी जिस कृति या उक्ति से वैदिक संस्कृति को हानि पहुँचती है वह देशद्रोही समझनी चाहिए। इस कसोटी से मोहनदास गांधी तथा जवाहरलाल नेहरू की कृतियों की तथा उक्तियों की छानबीन की गई तो उनमें से कई देशद्रोही सिद्ध होंगे।

प्रत्येक नागरिक, शिक्षक, सैनिक अधिकारी अर्थात जिस-जिस से प्रतिदिन, प्रतिक्षण काम पड़ता है उसकी प्रत्येक कृति या उक्ति में से कौन-सी देशद्रोही या देशहितकारी है यह परखने में हमारा ऊपर कही कसोटी बड़ी काम आएगी? यदि उसमें वैदिक संस्कृति सशक्त होती है तो वह कृति या उक्ति योग्य है। यदि वैदिक सभ्यता को उससे हानि पहुँचती है तो वह कृति या उक्ति दण्डनीय समझनी चाहिए।

पदाधिकार की शपथ

विश्व में कहीं भी कोई भी अधिकार का पद ग्रहण करते समय वैदिक संस्कृति का पुरस्कार करने की ही शपथ ली जानी चाहिए। क्योंकि वैदिक सभ्यता में ही मानवीय जीवन का सर्वांगीण विचार किया गया है। उसी वैदिक संस्कृति में ही केवल प्रत्येक व्यक्ति को आध्यात्मिक स्वतन्त्रता दी गई है।

दैनन्दिन जीवन में इतिहास का मार्गदर्शन

राजा अनंगपाल ने दिल्ली के लालकोट (वर्तमान लालकिला) के निजी प्रजामहल में एक न्याय घण्टा लगाकर उसकी डोर का अग्रभाग किले के द्वार के बाहर चांदनी चौक में लटका रखा था ताकि कोई भी संकटग्रस्त प्रजाजन राजा से न्याय या सहाय्य मांग सके। क्या वर्तमान युग का कोई शासक इस तरह की व्यवस्था करता है? कई बहुएँ दहेज की मांग के कारण अत्याचार की शिकार होती हैं। कोई निराश होकर आत्महत्या करना चाहता है। कोई विरोधियों की धमकियों से भयभीत रहता है। कोई दरिद्रता से पीड़ित होता है। क्या ऐसों के लिए देश के प्रमुख शासक की शरण लेने की कोई व्यवस्था होना आवश्यक नहीं है? वैदिक संस्कृति में बेसहारा व्यक्तियों के लिए स्थान-स्थान पर धर्मशालाएँ तथा अन्नछत्र होते थे। मुसलमानों ने उन स्थानों पर कब्जा करने के पश्चात् उन स्थानों को अरब की सराय, सराय रोहिला आदि कहना आरम्भ किया। जहाँ-जहाँ शब्द सराय आता है उसे प्राचीन हिन्दू धर्मशाला समझ लेना चाहिए। जहाँ मदरसा शब्द आए जैसे अलाउद्दीन खिल्जी का मदरसा, फिरोजशाह तुगलक का मदरसा, वहाँ समझ लेना चाहिए कि इन सुल्तानों द्वारा कब्जा किए वे प्राचीन हिन्दू वेद विद्यालय हैं।

चन्द्रगुप्त मौर्य आदि के शासन में उनकी प्रशंसा में इतिहास में लिखा है कि वे रास्ते के दोनों ओर फल के पेड़ या आयुर्वेदिक उपयुक्तता के छायादार वृक्ष लगवाते थे ताकि कोई भी पथिक भूख या रोग से ना मरे। क्या आधुनिक सरकारें यह सावधानी बरतती हैं? आजकल देखो तो रास्ते के किनारे निकम्मे पेड़ लगाए जाते हैं जिनसे न तो औषधि प्राप्त होती है, न फल, न छाया और न ही अच्छी लकड़ी। वास्तव में रास्ते के किनारे जामुन, इमली, आँवला, नीम, भिलावा, बड़, पीपल, आम आदि के वृक्ष लगाने चाहिएँ। यदि प्रौढ़ शासक शिशु अवस्था में पढ़े इतिहास के ऐसे सबक प्रत्यक्ष जीवन में नहीं उतारते तो उनका ऐतिहासिक ज्ञान या राष्ट्रीय अधिकार पद विफल ही मानना चाहिए।

वास्तुकला

भारत में सोमनाथ जैसे मन्दिर, चित्तौड़गढ़ जैसे किले, राजा-महाराजों के महल, विशाल घाट, तालाब आदि बनवाने की परम्परा बहुत प्राचीन है। इसके संस्कृत ग्रन्थ सैकड़ों की संख्या में उपलब्ध हैं। तथापि भारत में उन ग्रन्थों के अनुसार वास्तुकला की शिक्षा देने वाला एक भी विद्यालय नहीं है जबकि पाश्चात्य वास्तुकला सिखाने वाले सैकड़ों विद्यालय स्थापन हैं। दीर्घ परतन्त्रता का यह कितना घोर दुष्परिणाम है। क्या सारे विद्वज्जनों की मति इतनी भ्रष्ट हो गई है कि वैदिक वास्तुकला के सैकड़ों ग्रन्थ

उपलब्ध है इसका किसी को ज्ञान नहीं और उनका प्रत्यक्ष उपयोग करने की भी सूझबूझ नहीं ? भारत की प्रदीर्घ गुलामी का यह परिणाम है ।

विक्रमादित्य की अर्द्धरात्रि की सैर

विक्रमादित्य के आदर्श शासन की कई कथाएँ प्रचलित हैं । उनमें से एक के अनुसार विक्रमादित्य कभी-कभी रात के सन्नाटे में निजी राजधानी में या अन्य नगरों के गली-कूचों में स्वयं चक्कर लगाते थे । वह इसलिए कि किसी घर से यदि कोई चीख या विलाप सुनाई दे तो उसकी जानकारी ली जाए । क्या कोई आधुनिक शासक ऐसा करता है ? क्या इतिहास की ऐसी परम्पराओं का अनुकरण नहीं करना चाहिए ।

आयुर्वेद

आयुर्वेद एक दैवी शास्त्र है जिसके उपचार सीधे-सादे सरल, शुद्ध, सस्ते होते हैं । औषधि वन से ढूंढ लाना और उसे घिस-पीस कर रोगी को देना यह सारा वैद्य जी स्वयं करते थे । किसी रोगपीड़ित व्यक्ति को रोग से मुक्ति दिलाने के लिए पैसे लेना भी वे पाप समझते थे । समाज, वैद्य जी के पालन-पोषण की व्यवस्था करता था । आधुनिक पाश्चात्य एलोपैथिक (डॉक्टरी) बड़ी खर्चीली होती है । डॉक्टर लोगों की जितनी अधिक पदवियाँ होंगी उतनी ही अधिक महँगी उनकी चिकित्सा होगी । भेजा, हृदय, गुर्दा, आदि के रोगों के अलग-अलग बड़े-बड़े महँगे यन्त्र होते हैं । जहाँ आयुर्वेद में केवल नाड़ी परीक्षण में रोगनिदान होता था, पाश्चात्य डॉक्टरी शास्त्र में मल-मूत्र, रुधिर, थूक आदि विविध प्रकार की जांच करवाने में सैंकड़ों या हजारों रुपये खर्च करने पर भी रोग का पता नहीं चलता ।

औषधि बनाने की प्रक्रिया डॉक्टरों को अपरिचित होती है । औषधि बनाने वाले कोई और होते हैं और रोगी का औषध-उपचार करने वाला कोई और होता है । ऐसी कई दृष्टि से आयुर्वेद की उपेक्षा हो रही है । आयुर्वेद अधमरा-सा हो गया है । आयुर्वेद का पुनरुत्थान होना आवश्यक है । रोगजर्जर, कष्टी, दुःखी रोगी को स्वस्थ करना, इसे आवश्यक सेवा मानते हुए इसके लिए रोगी से कोई धन लेना आयुर्वेद में वर्जित है । अतः पुनः विश्व में आयुर्वेद का प्रसार, प्रचार करना आवश्यक है ।

SHAHJAHAN receives the Persian Ambassador in the Diwan-i-Aam, Red Fort, Delhi (Mughal, c. 1628. MS Onsley, Curators of the Bodleian Library, Oxford).

दिल्ली के लाल किले में पुरातत्व विभाग द्वारा लगाए सूचना फलक के
नुसार तथा इतिहासज्ञों की धारणानुसार शाहजहाँ ने दिल्ली का लालकिला
१६३६ से १६४६ के बीच बनवाया। किन्तु पृष्ठ ३३६ का चित्र देखें। सन्
१६२८ में गद्दी पर आते ही लालकिले के प्रजामण्डप (दीवान ए-आम) में
शाहजहाँ को फारसी राजदूत की भेंट लेता दर्शाया गया है। अतः लालकिला
प्राचीन हिन्दू दुर्ग है। यह चित्र Bodleecian Library, Oxford में रखा
है। यह मुगली दस्तावेज होने से इससे शाहजहाँ से पूर्व लालकिले का
अस्तित्व सिद्ध होता है।

शाहजहाँ जहाँ बैठा है, उसके लगभग एक इंच नीचे की दीवार पर वराह
तथा गाय पानी पीते हुए दिख रहे हैं। आजकल वह चित्र उस दीवार पर
नहीं है। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि शाहजहाँ द्वारा किला कब्जे में लेने
के पश्चात् जो हेरा-फेरी हुई उसमें वे भित्तिचित्र निकाले गए। क्योंकि
उसमें दो ऐसे पशु थे जिनसे मुसलमान चिढ़ते हैं। इससे इतिहासज्ञों ने यह
भी सीखना चाहिए कि ऐतिहासिक इमारतें जैसी आज दीखती हैं वैसी
आरम्भ में नहीं थीं। मुसलमानों के कब्जे में आते ही उनमें कई हेर-फेर
किए गए।

मुगलकालीन ऐसे कई चित्रों से अनेक प्रचलित धारणाओं का भण्डा-फोड़ होता है। फतेहपुर सीकरी के मुगलकालीन दो चित्र हैं जिनसे अकबर से पूर्व उस नगरी का अस्तित्व सिद्ध होता है जबकि इतिहासज्ञ तथा सरकारी अधिकारी अकबर को फतेहपुर सीकरी का निर्माता मानते हैं। अतः मुगल चित्रों का ग्रन्थ प्रकाशित करना एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कार्य है।

यद्यपि पृष्ठ ३४१ पर चित्र में दर्शाई इमारत को 'बीबी का मकबरा' कहते हैं तथापि मूलतः यह कटकेश्वर महादेव का देवालय था। इस्लामी हमलों के पूर्व वह नगर कटकी (उर्फ खड़की) कहलाता था। इससे पांच मील की दूरी पर देवगिरी का पहाड़ी किला है जिस पर अलाउद्दीन खिलजी ने चढ़ाई की थी। देखने में यह इमारत हू-बहू आगरा के तेजोमहालय (ताजमहल) जैसी ही दीखती है। अन्तर केवल इतना है कि ताजमहल अधिक विशाल है और उसका संगमरमर अधिक सुन्दर है।

दक्षिणी भारत के यादव राजा जब उत्तर में हिन्दुस्थान की तीर्थयात्रा
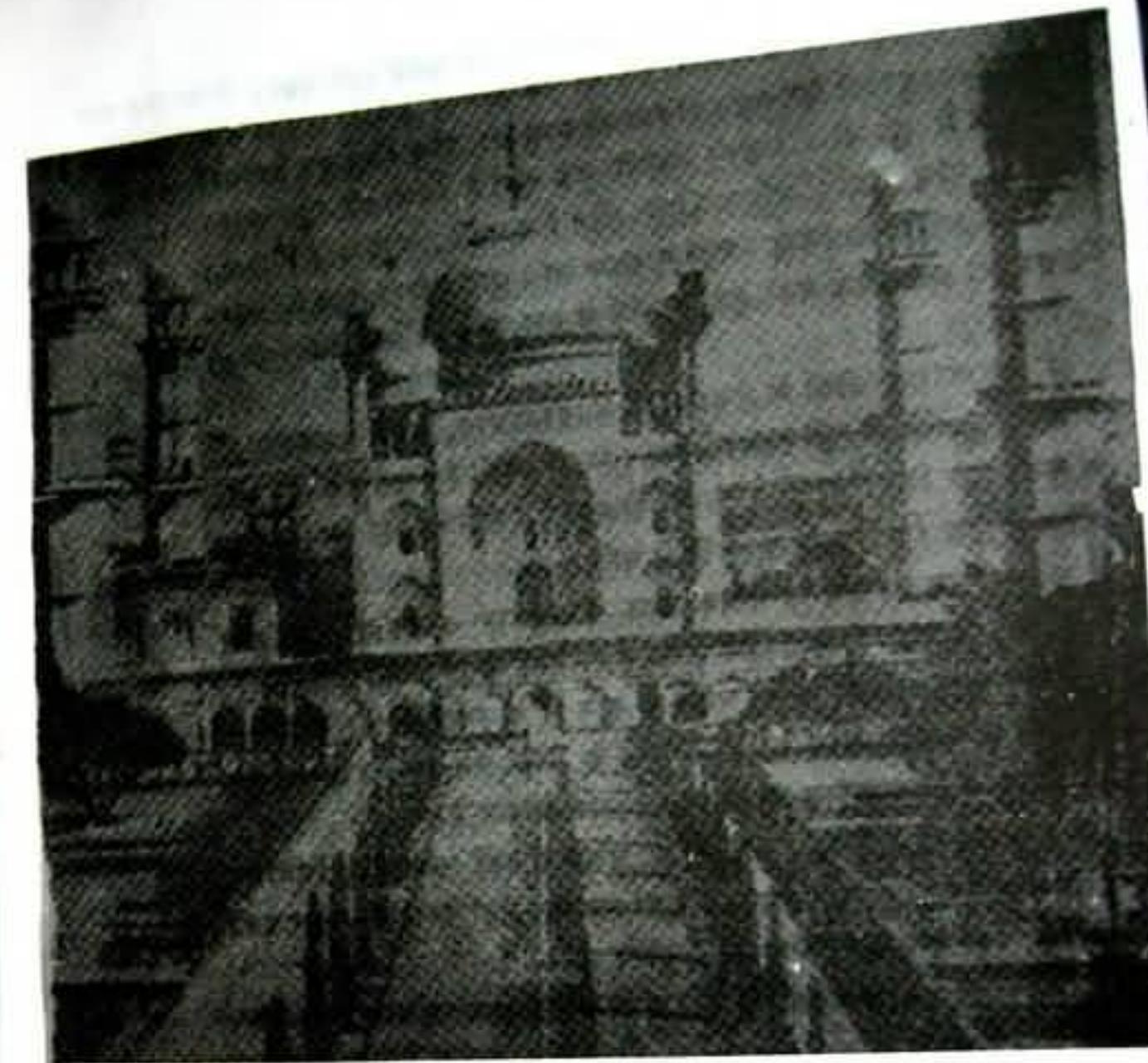
करने जाते तो वे आगरा के विशाल तथा प्रसिद्ध तेजोमहालय का दर्शन करते। उससे मोहित होकर उन्होंने निजी कुलदेवता कटकेश्वर का उसी नमूने का मन्दिर निजी राजधानी में बनवाया। (ऊपर का चित्र)

मुगलों के दक्षिण प्रदेश का सूबेदार बनकर शहजादा औरंगजेब जब से कटकी में रहने लगा तब से कटकी को मुसलमान खुशामदकारों ने औरंगाबाद कहना आरम्भ किया। उस प्रदेश में औरंगजेब ने सारे मन्दिरों को भ्रष्ट कर उनमें असली या नकली कब्रें बनवा दीं। कटकी में भी

कटकेश्वर का मन्दिर भ्रष्ट कर औरंगजेब उसमें रहने लगा।

औरंगजेब अभी शाहजादा ही था जब उसकी हजारों स्त्रियों में से एक रबिया दुर्रानी मर गई। रबिया की मृत्यु तो पांच मील दूर देवगिरी के किले में हुई थी। उसकी असली कब्र कहां है किसी को पता नहीं। क्योंकि पांच हजार महिलाओं में कौन कब, कैसे, कहां मरी? इसका हिसाब-किताब या चिह्न रखना मुश्किल था। अतः औरंगाबाद में इधर-उधर जो अनेक कब्रें बनी हुई हैं उनमें से एक मामूली कब्र रबिया की हो तो हो।

तथाकथित 'बीबी के मकबरे' के केन्द्रीयस्थान, जहां कटकेश्वर का शिवलिंग था, वहां एक इस्लामी चद्दर बिछी रहती है। उसके अन्दर भूमि में कटकेश्वर शिवलिंग ही दफनाया दीखता है। क्योंकि वहां किसी प्रकार की कोई कब्र (मुर्दे का टीला) है ही नहीं।

शिवलिंग का गर्भगृह वैदिक प्रथा के अनुसार अष्टकोना बना हुआ है। इस्लामी प्रथा में अष्टकोण आकार का कोई महत्त्व नहीं होता।

इस हिन्दू मन्दिर के जो चांदी के द्वार थे वे मुगलों द्वारा उखाड़कर लूट लेने के कारण आंग्ल शासन में लोहे के पत्तर लगे हुए जो द्वार लगाए गए हैं उन पर एक आंग्ल कारखाने का नाम अंकित है।

इमारत की कई मंजिल हैं और उसमें सैंकड़ों कक्ष हैं। शिवलिंग पानी में प्रतिष्ठापित था। ऊपर की मंजिल में, जहां इस्लामी चद्दर ढकी होती है, वहां दूसरा बड़ा शिवलिंग होता था।

टेवरनियर नाम का फ्रेंच यात्री कभी औरंगाबाद पहुंचा ही नहीं था, फिर भी उसने वहां का तथाकथित बीबी का मकबरा बनाने में इतना संगमरमर लगा आदि मनगढ़न्त वर्णन लिख रखा है। इसी कारण टेवरनियर की भारत यात्रा का फ्रेंच ग्रन्थ जिन विद्वानों ने अनुवादित कर सम्पादित किया है उन्होंने प्रस्तावना में पाठकों को सावधान किया है कि टेवरनियर विश्वसनीय लेखक नहीं है।

'बीबी का मकबरा' कही जाने वाली इमारत मुगल दरबार द्वारा बनवाई जाती तो मुगल दस्तावेजों में उसका हिसाब-किताब होता। किन्तु उस इमारत के निर्माण का मुगली कागजातों में उल्लेख भी नहीं है। अतः उस इमारत के मुगली निर्माण के बारे में विभिन्न कथाएं प्रचलित हैं। एक कथा यह है कि शाहजादा औरंगजेब ने वह इमारत रबिया दुर्रानी की मृत्यु पर बनवाई। लेकिन बनवाने का कोई उल्लेख नहीं है। रबिया की मृत्यु देवगिरी किले में होने के कारण उसकी कब्र किले में या उस पहाड़ी पर कहीं हो तो हो। रबिया की मृत्यु के समय औरंगजेब उत्तर भारत में था, अतः उसकी आज्ञा से वह इमारत बन नहीं सकती थी। पुरातत्त्व विभाग ने उस इमारत के बाहर लगाए सूचना फलक पर लिखा है कि औरंगजेब के पुत्र मुहम्मद आजम ने वह इमारत अपनी मां की मृत्यु पर बनवाई। किन्तु वह भी सही नहीं हो सकता क्योंकि मुहम्मद आजम उस समय केवल छह वर्ष का था। और यदि पुत्र मां की कब्र बनवाता तो उसे अम्माजान की कब्र कहते, न कि बीबी की। तथापि पुरातत्त्व विभाग ने निजी अन्धी प्रणाली के अनुसार कब्र बनाने का श्रेय मुहम्मद आजम को दे रखा है।

इस घोटाले का लाभ लेकर औरंगाबाद के एक मुसलमान प्राध्यापक ने पी-एच० डी० की उपाधि पाने के लिए जो प्रबन्ध (Thesis) औरंगाबाद के मराठवाड़ा विश्वविद्यालय को प्रस्तुत किया उसमें अपनी एक तिकड़मी कल्पना दौड़ाकर यह निष्कर्ष निकाला कि रबिया दुर्रानी ने निजी मृत्यु से पहले ही निजी शव के आश्रय के लिए वह विशाल इमारत बनवाई। ऐसे निराधार निष्कर्ष सुझाने वाले प्राध्यापक को कोई नई बड़ी उपाधि प्रदान करने की बजाय उसकी पूर्वदत्त उपाधियां भी रद्द करना योग्य होता। किन्तु भारत के कांग्रेसी शासन में मुसलमान प्राध्यापक की ऊटपटांग बातें भी बड़ी प्रशंसायोग्य समझी जाती हैं। अतः उस मुसलमान प्राध्यापक को वह इतिहास विभाग के अन्धे व्यावहारानुसार पी-एच० डी० की उपाधि दे दी गई।

इतिहास के इस उपहास से मुझे बड़ा क्रोध आया। इतिहास से की गई इस खिलवाड़ का उल्लेख कर पत्र द्वारा मैंने अपने मित्रों से मराठवाड़ा विश्वविद्यालय के उपकुलपति का नाम पूछा। इस पर संगमनेर के मेरे सुहृद श्रीरामचन्द्र दीक्षित ने इस सम्बन्ध में कार्यवाही करने की ठान ली। मैंने उन्हें एक शिकायत पत्र लिख कर दिया। उपकुलपति रुग्ण थे, अतः

आई० एच० लतीफ (गवर्नर) के नाम लिखकर पी
शिकायत पत्र कुलपति आई० एच० लतीफ (सही) से भेजा गया। उसमें शिकायत की गई
व्यक्तियों के स्वनामांकन (सही) से भेजा गया । उसमें शिकायत की गई
थी कि उस मुसलमान प्रोफेसर का लिखा प्रबन्ध सर्वथा अयोग्य होने पर
भी पी-एच० डी० उपाधि के लिए मान्य कैसे किया गया इसकी जांच
हो। कुलपति ने वह शिकायत पत्र मराठवाड़ा विश्वविद्यालय को भेजा।
रजिस्ट्रार ने वह शिकायत उस मुसलमान प्रोफेसर को बताकर उससे
स्पष्टीकरण मांगा। वस्तुतः वह कार्यवाही अयोग्य थी। उसने तो नियमों
के अनुसार प्रबन्ध प्रस्तुत किया था जिसके परिणामस्वरूप उसे पी-एच०
डी० की उपाधि दी गई थी। शिकायत तो इतिहास विभाग के उन
वरिष्ठ प्राध्यापकों के विरुद्ध थी जिन्होंने उस प्रबन्ध को पी-एच० डी०
उपाधि के योग्य माना। उन प्राध्यापकों ने यह सोचा कि "जो बीबी का
मकबरा औरंगजेब या उसके पुत्र मुहम्मद आजम ने बनवाया ऐसी
अफवाहें थीं, वह इमारत किसी तीसरे मुसलमान व्यक्ति ने (यानि बेगम
रबिया दुर्रानी ने) बनवाई ऐसा यदि चौथा मुसलमान (यानि वह
प्राध्यापक) कहे तो हमारे बाप का क्या जाता है; आखिर वह इमारत
है तो किसी मुसलमान की ही।" इस प्रकार की लापरवाही और इस्लाम-
तुष्टि की भावना से वह उपाधि उस मुसलमान प्राध्यापक को दी गई थी।

इतिहास विभाग के वरिष्ठ प्राध्यापकों की इस प्रवृत्ति को चुनौती देना
आवश्यक था किन्तु वह मामला वहीं तक चला। उसे और प्रभावी बनाकर
विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग की कार्य-प्रणाली पर जांच आयोग
नियुक्त कराने के लिए जुलूस, नारेबाजी, हड़ताल, दंगा आदि होना
आवश्यक था। भारत का तथा विश्व का खण्डित, विकृत इतिहास ठीक
कराने पर तुला हुआ जनसमुदाय जब तक यह सब नहीं करेगा तब तक
शिक्षाक्षेत्र के अधिकारी निजी स्वार्थ तथा कायरता के कारण प्रचलित
निराधार इतिहास ही चालू रखेंगे।

पश्चिम एशिया के जॉर्डन देश में केसरिया रंग की चट्टानों में अनेक
गुफाएँ खुदी हैं। उनमें प्राचीन विश्व वैदिक साम्राज्य के अन्तर्गत ऋषि-
मुनियों के गुरुकुल होते थे और उनमें वेद-पठन होता था।

ऐसी ही एक गुफा पृष्ठ ३४५ पर चित्र में दिखाई गई है। उसे स्थानीय

लोग 'अल् खजाना' कहते हैं। हो सकता है कि इस प्रदेश के शासक उस
इमारत में निजी खजाना रखते हों।

चट्टानों में खुदे इस गुफा नगर का नाम पेट्रा (Petra) है जो प्रस्तर
नगर का अपभ्रंश है।

चित्र में ऊपर मध्य में कलश बना हुआ है। कलश पवित्र वैदिक चिह्न
है। 'With Lawrehce of Arabia' नाम की पुस्तक में लेखक Lowell
Thomas ने उस नगर का पूरा वर्णन लिख रखा है। इस ग्रन्थ में हम उस
नगर का परिचय दे चुके हैं।

प्राचीन वैदिक साम्राज्य में नगरों से दूर पर्वतीय गुफाओं में ऋषि-
मुनियों के गुरुकुल हुआ करते थे। भारत में, अफगानिस्थान के बामियन

प्रदेश में, यूरोप देश के तुर्कमानीय प्रदेशों में, ब्रिटेन की मार्ग्रेट गुफा आदि ऐसी प्राचीन गुफाएँ देखी जा सकती हैं। गुफाएं शान्त-स्वच्छ वातावरण में होती थीं। ईंट, चूना आदि से बने मकानों को रंग, मरम्मत आदि का खर्चा पड़ता है, वैसा गुफाओं को नहीं पड़ता। मुहम्मद पैगम्बर और उनके दादा-पड़दादा जिस गुफा में योग साधना किया करते थे उस मक्का-मदीना परिसर की पहाड़ी का 'आराफत' नाम 'हरिपाद' का अपभ्रंश है।

इस ग्रन्थ में प्रस्तुत विवरण के अनुसार कृतयुग से महाभारतीय युद्ध तक सारे विश्व में पूर्णतया वैदिक संस्कृति तथा संस्कृत भाषा थी। कौरव-पाण्डव संस्कृतभाषी अन्तिम वैदिक विश्व सम्राट थे। तब तक वेदान्त, संस्कृत, गुरुकुल शिक्षा तथा चातुर्वर्ण्य धर्माश्रम समाज इन्हीं का सर्वत्र प्रचलन था। तत्पश्चात् वैदिक सभ्यता छिन्न-भिन्न, लंगड़ी-लूली अवस्था में विश्व के विविध प्रदेशों में चलती रही। संस्कृत का ज्ञान जैसे-जैसे कम होता गया लोगों में संस्कृत के टूटे-फूटे उच्चारों वाली प्राकृत भाषाएं चल पड़ीं। संस्कृत भाषा का प्रयोग कम होता गया और प्राकृत भाषाओं का प्रयोग बढ़ता गया। संस्कृत ग्रन्थों को प्रमाण मानते हुए उनका भाष्य स्थानीय प्राकृत में दिया जाने लगा। ऐसा करते-करते आयुर्वेद, यूनानी में बदल गया और अल्लाह के नाम से अल्लोपनिषद् भी तैयार हुआ।

अल्ला-अम्बा-आक्का समानार्थी संस्कृत शब्द हैं। अतः अरबस्थानों में शुद्ध वैदिक संस्कृति जैसे-जैसे लोप होने लगी वैसे-वैसे स्थानीय प्राकृत (अरबी) का प्रयोग बढ़ता गया।

स्वामी दयानन्द के 'सत्यार्थप्रकाश' ग्रन्थ में तथा अन्य कुछ लेखकों ने अल्लोपनिषद्, आयुर्वेद तथा फलज्योतिष आदि विषयों के संस्कृत काव्य में, अरबी प्रणाली के उद्धरण देकर कहा गया है कि मुसलमान बने अरबों ने या अन्य मुसलमानों ने भारत में इस्लाम का प्रभाव बढ़ाने के लिए यह षड्यन्त्र रचा।

हमारा निष्कर्ष भिन्न है। हम कहते हैं कि फलज्योतिष विद्या, आयुर्वेद तथा उपनिषद् आदि वैदिक सभ्यता के अभिन्न अंग होने से पंचतन्त्र, हितोपदेश, शतरंज का खेल आदि सहित विश्व के अन्य प्रदेशों की तरह अरबस्थान में भी प्रचलित थे। अतः अरबी में पाए जाने वाले उन विषयों के उद्धरण इस बात के प्रमाण हैं कि अरबस्थान में भी अन्य प्रदेशों तरह पूरी वैदिक संस्कृति थी।

अल्लोपनिषद् का एक उद्धरण देखें—

अस्माल्लां इल्ले मित्रावरुणा दिव्यानि धत्ते।
इल्लल्ले वरुणो राजा पुनर्ददुः।
हयामित्रो इल्लां इल्लल्ले इल्लां वरुणो मित्रस्तेजस्कामः ॥१॥
होतारमिन्द्रो होतारमिन्द्र महा सुरिन्द्राः।
अल्लो ज्येष्ठं श्रेष्ठं परमं पूर्णं ब्राह्मणं अल्लाम् ॥२॥
अल्लो रसूल महामदरकबरस्य अल्लो अल्लाम् ॥३॥
आदल्ला बूक मेककम्। लल्लबूक निखादकम् ॥४॥
अल्लो यज्ञेन हुत हुत्वा। अल्ला सूर्य्यचन्द्रसर्वनक्षत्राः ॥५॥
अल्ला ऋषीणां सर्वदिव्यां इन्द्रः पूर्वं माया परममन्तरिक्षा ॥६॥
अल्लः पृथिव्या अन्तरिक्षं विश्वरूपम् ॥७॥
इल्लांकवर इल्लांकवर इल्लां इल्लल्ले ते इल्लल्लाः ॥८॥
ओम् अल्ला इल्लल्ला अनादि स्वरूपाय अथर्वणा श्यामा हुह्रीं
जनान पशून् सिद्धान् जलचरान् अदृष्टं कुरु कुरु फट ॥९॥
असुरसंहारिणी हुं ह्रीं अल्लो रसूल महमदरकबरस्य
अल्लो अल्लाम् इल्लल्लेति इल्लल्लाः ॥१०॥ इति अल्लोपनिषत्॥

वैद्यक का एक 'अभिनव निघण्टु' नाम का ग्रन्थ है। पण्डित दत्तराम रामनारायण चौबे के तत्वविवेक प्रेस, बम्बई में छपे उस ग्रन्थ का नीचे दिया उद्धरण देखें—

दोषः खिल्लत इति प्रोक्तः स चतुर्द्धा निरूप्यते।
सौदासफरा तथा बलगम् तुरीयं खून उच्यते॥
तवियत् कैफियत् कुव्वत् खासियच्च चतुष्टयम्।
निखिलं द्रव्यसंज्ञेयमतपं किवाप्यनल्पकम्॥
अपरामुसहिलनाम्नी इसहालरेचनं विशः।
नौमनिद्रा समाख्यात मुनक्किम तद्विधायनी॥
खुशी फर्हत् प्रसादः स्यान्मनसोदेहपाटवम्।
उभयं विदधात्येषा मुफर्रह सा प्रकीर्तिता॥

दिमाग दिल जिके मादा एतदंगचतुष्टयम् ।
आजाय रईस इत्युक्तं श्रेष्ठं देहे शरीरिणाम् ॥

भारतीय फलज्योतिष विद्या के ग्रन्थ किस प्रकार संस्कृत मिश्रित अरबी प्राकृत में मुसलमानों में प्रचलित थे उसका एक नमूना नीचे दिया जा रहा है। नवाब खानखाना की खेटकौतुक नाम की एक पुस्तिका है। उसे पण्डित रामरतन वाजपेयी ने लखनऊ में छापा। उसका एक उद्धरण देखें—

यदा माहताबो भवेत्मालखाने मिरीखोयथवा मुश्तरी बख्तखाने ।
अतारिद्विलग्ने भवेद्वख्त पूर्णे भवेद्दोनवारोयथवा बादशाहः ॥१॥
भवेद्दाफताबो यदा षष्ठखाने पुनर्दैत्यपीरोय केन्द्रे गुर्वा ।
सुजातः शुतुर्फौलताश्यो हयाढ्यो जरी जर्जरावश्यदातः चिरायुः ॥२॥
यदा चश्मखोरा भवेद्दोस्तखाने ततो मुश्तरी दोस्तखाने विलग्नात् ।
अतारिद्धनस्थो बृहत्साहिबी स्यात् बृहत् सूर्य मखमल खजानाश्वपूर्णः ॥३॥
तृतीये भवेद्दाफतावस्य पुत्रो यदा माहतावस्य पुत्रो विलग्ने ।
भवेन्मुश्तरी केन्द्रखाने नराणां बृहत् साहिबी तस्य तालेरुजु स्यात् ॥४॥
यदा मुश्तरी पंजखाने मिरीखो यदा बख्तखाने रिपौ आफताबः ।
नरो बावकूफो भवेत्कुंजरेशो बृहद्घोसनोवाहिनी वारणाढ्यः ॥५॥
अतारिद् विलग्ने सुखे माहताबो गुरुस्स्वपखाने तमो लाभखाने ।
जहानस्य नूरी भवेन्नेकबख्तः खजानागजाढ्यो मुलुक साहिबी स्यात् ॥६॥
यदा देवपीरो भवेद्वख्तखाने पुनर्दैत्यपीरोयथवा खपरखाने ।
अतारिद्विलग्ने तृतीये मिराखः शनिर्लाभखाने नरः काबिलः स्यात् ॥७॥
महन् माहताबो व्यये आफताबो यदा मुश्तरी कन्द्रखाने त्रिकोणे ।
भवेन्मानवो देवतेजस्कराढ्यो बृहत् साहिबी बख्तखूबी कमालः ॥८॥
खजानागजाढ्यो भवेल्लश्कराढ्यो महानप्रियो मुश्तरी जायखाने ।
मिरीखोय लाभे बुधः पंजखाने शनिः शत्रुखाने नरः काबिलः स्यात् ॥९॥
कमर केन्द्रखाने शनिः शत्रुखाने त्रिकोणेथवा मुश्तरी चश्मकोरी ।
स जाता नरो सादिरा सद्गुणज्ञो भवेत शायरो मालदारोय खूबी ॥१०॥

ज्योतिष सम्बन्धी प्राकृत अरबी का यह संस्कृत मिश्रत उद्धरण देखें—

हेच फिक्रमत्कर्तव्यं कर्तव्यं जिकरे खुदा ।
मुखातान्ना प्रसादेन सर्वकार्यं फतह भवेत् ॥

सारांश

ईसाई पन्थ प्रसार के लिए सन् ३१२ से रोमन सम्राट् कॉंस्टेंटाइन ने सेना द्वारा यूरोप के लोगों पर अत्याचार किए। उसी प्रकार से सातवीं शताब्दी के आरम्भ से इस्लाम पन्थ प्रसार हेतु अरबों ने प्रथम इराक, मिस्र, ईरान, तुर्कस्थान, अफगानिस्थान आदि को मुसलमान बनाकर उस बढ़ते बल से भारत तथा मलयेशिया, इण्डोनेशिया, बोर्नियो, सारावाक, फिलिपीन आदि देशों में करोड़ों लोगों को मुसलमान बनाया।

उन आक्रमणों में उन्होंने विश्व की वैदिक एकता का सारा इतिहास नष्ट कर दिया। अतः वर्तमान इतिहास किस प्रकार सारा फटा-टूटा, असम्बद्ध, असंगत सा रह गया है उसका विवरण हमने इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है। साथ ही हमने यह भी बताया है कि आरम्भ से विश्व में किस प्रकार वैदिक सभ्यता रही है और वर्तमान सारे पन्थों की परम्पराएँ और परिभाषाएँ सब वैदिक सभ्यता से ही निकली हैं।

ईसाई तथा मुसलमान लोगों ने सारे वैदिक इतिहास को नष्ट कर यह कहना आरम्भ किया कि उनसे इन विश्व के सारे लोग heathen, pagan यानि काफिर थे, अतः उनके इतिहास को पढ़ना, समझना या स्मरण करना निरर्थक है। इस तरह ईसाइयत तथा इस्लाम दोनों ही इतिहास के कट्टर शत्रु रहे हैं। उनके पन्थों के पूर्व का इतिहास उन्होंने पूर्णतया नष्ट करने का यत्न किया तथा तत्पश्चात् का इतिहास आवश्यकतानुसार विकृत किया जिससे उनकी अपनी श्रेष्ठता सिद्ध हो और अन्य सारे धर्महीन प्रतीत हों।

हिदनिझम् (Heathenism) वास्तव में हिन्दनिझम् शब्द है। पेगन

(Pagan) उर्फ पेगनिझम् (Paganism) यह भगवान पन्थ का द्योतक है। अतः उन शब्दों से भी सिद्ध होता है कि ईसाई पन्थ से पूर्व सर्वत्र वैदिक सभ्यता थी।

नॉर्वे-स्वीडन देशों की मान्यता

यूरोप के उत्तर में जो नॉर्वे, स्वीडन, डेन्मार्क आदि देश हैं उनकी पाठ्य-पुस्तकों में यह लिखा है कि उनके पूर्वज हिमालय की घाटी से आए। इधर हमारी भारतीय पाठ्यपुस्तकों में यह लिखा होता है कि यूरोप या अन्य किसी प्रदेश से जो आर्य लोग भारत में आ बसे, वे वैदिक सभ्यता के प्रजनेता थे। यह एक ठोस उदाहरण है कि विश्व का इतिहास किस प्रकार उल्टा-पुल्टा किया गया है और विविध प्रदेशों में किस तरह की परस्पर विरोधी धारणाएं प्रचलित हैं।

मैक्समूलर की जर्मनी में नगण्यता

मैक्समूलर जर्मन नागरिक होते हुए भी ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का नौकर था। भारतीय विद्वानों में मैक्समूलर को वेदों का बड़ा विद्वान माना जाता है तथापि स्वयं जर्मनी में अधिकांश लोगों को मैक्समूलर नाम सर्वथा अपरिचित-सा है।

रोमनगर की स्थापना रामनवमी को हुई

इतालवी परम्परा में रोम नगर की स्थापना का समय ईसापूर्व ७५३वें वर्ष की २१ अप्रैल को हुआ, कहा जाता है। विश्व में वाराणसी, उज्जयिनी, दमस्कस, बगदाद आदि कितने ही प्राचीन नगर हैं तथापि किसी भी नगर के निर्माण का निश्चित दिन तो क्या निश्चित शतक या वर्ष भी ज्ञात नहीं होता। ऐसी परिस्थिति में रोम नगर का निश्चित प्रस्थापना दिन लोगों के स्मरण रहने का मुख्य कारण यह है कि वह रामनवमी का दिन है। (देखें Rome in Colour, by P. C. Pavilo, पृष्ठ ४)। इटली में रामायण परम्परा के अन्य प्रमाणों की चर्चा हम इस ग्रन्थ में पहले ही कर चुके हैं।

रामस और रोमुलस

इटली में ईसाई धर्म प्रसार के पश्चात् रोम नगर की राम परम्परा झुठलाने के लिए ईसाई लोगों ने ऐसी धौंस देना आरम्भ किया कि रामस और रोमुलस नाम के दो भाईयों ने रोम नगर की स्थापना की। वास्तव में वह एक धौंस है। रामस् यह रामः संस्कृत शब्द ही है। उसी तरह राम को रामुलु कहना भी भारत में आन्ध्र प्रदेश की प्रथा है। अतः रामस् और रामुलु दोनों राम नाम के ही प्रकार हैं। तथापि ईसाई इटली में रामप्रथा लुप्त होने के पश्चात् राम के दो पुत्र कुश लव की स्मृति कायम रहकर वही 'दो राम' समझे जाने लगे। सीता वन में वाल्मीकि आश्रम में निवास करती थी तब उसे कुश-लव दो पुत्र हुए और उनका पालन-पोषण सीता ने उसी वन में किया। इसी कारण इटली की ईसाई परम्परा में एक मादा भेड़िये ने अपना दूध पिलाकर रामस् तथा रामुलु को बड़ा किया, ऐसी कथा चल पड़ी। सन् १४०० के लगभग एक मादा भेड़िये के स्तन से दो मानवीय शिशु झपट-लिपटकर दूध पी रहे हैं ऐसी प्रतिमा भी बना दी गई। राम परम्परा को लुप्त कराने की वह ईसाई चालबाजी थी।

चीन का हिन्दुत्व

चीन मूलतः हिन्दू देश था इस हमारे निष्कर्ष की पुष्टि एक चीनी विद्वान द्वारा दिए व्याख्यान से होती है। उस विद्वान का नाम है यूआंग झिआंग (Yuag Xianji, member of the Chinese Political Consultative Committee)। उन्होंने मार्च २७, १९८४ को सी. पी. रामस्वामी अय्यर फाउण्डेशन मद्रास में व्याख्यान दिया था। उसका वृत्त आंग्ल दैनिक हिन्दू के मार्च २८, १९८४ के अंक में छपा था। उस चीनी विद्वान ने कहा "अग्नेय चीन में हाल में मन्दिरों के जो अवशेष प्राप्त हुए हैं उनसे चीन के हिन्दू होने के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। चीनी राजाओं ने वैदिक तथा बौद्ध दोनों प्रणालियों को अपना लिया था। छठी शताब्दी में चीनी राजघराने की दो पीढ़ियां हिन्दू थीं। तत्पश्चात् तंग घराने को राज्याधिकार प्राप्त हुआ। सातवीं से नौवीं शताब्दी तक उस घराने का शासन था। उन्होंने वैदिक तथा बौद्ध दोनों प्रणालियां अपनाईं। क्योंकि बौद्ध परम्परा

हिन्दुत्व का ही एक पहलू था। प्राचीन चीन में धार्मिक कारणों से समाज में कभी संघर्ष नहीं हुआ। दुर्गा को शिवांबु नाम से चीनी जनता पूजती थी। ईसा की ७वीं शताब्दी में बौद्ध परम्परा लुप्त होकर वैदिक परम्परा का पुनरुत्थान हुआ। चीन में भी वैसा ही हुआ और महादेव (शिवशंकर) के मन्दिर जहाँ-तहाँ प्रस्थापित हुए। छठवीं शताब्दी में चीन राजघराने के वासियों के नाम नारायण, शिवदास आदि थे। अभी तक चीन में जो बौद्ध परम्परा है वह वहाँ की प्राचीन वैदिक परम्परा का ही एक रूप है। बौद्ध भिक्षुओं के मठ हिन्दु मठों की तरह ही होते हैं। बौद्ध मन्दिरों में वैदिक देवताओं की मूर्तियाँ भी होती हैं। भारत दशावतार में बुद्ध का भी अन्तर्भाव किया गया है।

प्रचलित इतिहासों का स्वरूप

प्रचलित इतिहास ग्रन्थ आधे अधूरे, असंगत, ऊटपटांग सिद्धान्तों के टेढ़े-मेढ़े संकलन तथा विवरण हैं।

हमने जो यह सुसंगत इतिहास प्रस्तुत किया है वह उन्हीं प्रमाणों पर आधारित है जो आज तक के विद्वानों को उपलब्ध थे। किन्तु वे उन प्रमाणों को जानते हुए भी उनसे योग्य निष्कर्ष निकाल नहीं सके या उनका परस्पर सम्बन्ध प्रस्थापित नहीं कर सके। उदाहरणार्थ इटली के Roma और Ravenna नगरों के नाम सब जानते हैं। किन्तु वे नाम राम तथा रावण से पड़े हैं यह आधुनिक विद्वान नहीं जान सके, यद्यपि रामायण प्रसंग के चित्र भी इटली के ईसा पूर्व घरों में पाए गए हैं। दृष्टि के सामने यह सारे प्रमाण होते हुए भी मस्तिष्क में उनका आकलन या आँकन न हो पाना अर्वाचीन जगत् की इतिहास पठन-पाठन तथा संशोधन पद्धति का महान् दोष है। वैसे किसी जंगली व्यक्ति के हाथ मौलिक मोती आने पर भी वह उसे निकम्मा समझकर फेंक देता है।

इतिहास के आरम्भ का केन्द्र बिन्दु

विविध वन प्रदेशों में किसी प्रकार वानरों से कम अधिक बिखरे मानव बनते गए और उन्होंने अपने आपको अवगत मानव बनाकर

सीरिया असीरिया आदि राज्य स्थापना किए ऐसी मनगढ़न्त धारणाओं से डार्विन का इतिहास आरम्भ होता है। इस ग्रन्थ में हमने यह दर्शाया है कि ईसा पूर्व का डार्विन का वह सिद्धान्त निराधार है। वैदिक परम्परा के अनुसार ब्रह्मा से मनु तथा मनु से अन्य मानव बने। वे विविध जीवन शाखाओं में प्रवीण विद्वान लोग थे।

वेदों की बाबत प्रचलित धारणाएँ

इस ग्रन्थकाल में वेदों सम्बन्धी विविध उल्टी-सीधी धारणाएँ क्यों हैं और उनका हल क्या है? इसका भी समीकरण किया है। वेदों का काल वही समझा जाना चाहिए जो प्रथम मानव पीढ़ी का काल था। वेदों की ऋचाओं का ऊपरी अर्थ करने का कोई लाभ नहीं। क्योंकि वेदों में अनेक विद्या, कला, नीतिशास्त्र आदि सांकेतिक, गूढ़, संक्षिप्त भाषा में सम्मिश्र रूप में प्रस्तुत है। मानवों में ऐसा कोई सर्वज्ञानी नहीं होता जो वेदों के विविध सन्दर्भों के सारे अर्थ समझ सकेगा। अतः वेद सामान्य व्यक्तियों के लिए अनाकलनीय हैं। सिद्ध योगी व्यक्ति ही उनसे एकाध विषय के बोले कुछ गुप्त ज्ञान कण ग्रहण कर सकेगा।

संस्कृत-प्राकृत

संस्कृत से प्राकृत भाषाएँ हुईं या प्राकृत भाषाओं से संस्कृत बनी इसकी बाबत विद्वानों में भिन्न मत हैं। हमारा निष्कर्ष है कि संस्कृत वेदों की भाषा होने से वह मानव की प्रथम देवदत्त भाषा है। संस्कृत के विविध नामों से तथा संस्कृत के आदर्श ढाँचे से हमारे निष्कर्ष की पुष्टि होती है।

जटिल समस्याओं के उत्तर

इतिहास में अनेक समस्याएँ हैं। उनका इस ग्रन्थ में उल्लेख किया गया है और यह भी बतलाया गया है कि राजस्थान तथा ऋषीय देश यह नाम क्यों पड़े? यह शोध का विषय है।

इतिहास सबक

अतीत का ब्योरा देने के साथ-साथ भविष्य के लिए इतिहास मार्गदर्शक भी सिद्ध हो सकता है। सन् १९८३ के दिसम्बर में ब्रिटेन के पर्यावरण विभाग (Department of Environment) ने लोगों को सावधान किया कि Sellafield, cumbria में सागर किनारे पर जो रीड़ें लगी हैं वे अणुशक्ति से प्रभावित होने से उन्हें स्पर्श न किया जाए। इस पर मैंने ब्रिटेन के पर्यावरण विभाग को पत्र द्वारा सूचित किया कि महाभारत के मौसल पर्व में ऐसा ही प्रसंग वर्णित है, महाभारत युद्ध के पश्चात् द्वारिका के यादवों ने एक ऐसी ही प्राणघातक शक्ति से प्रभावित मौसल के टुकड़े-टुकड़े कर द्वारिका सागर में बिखेर दिए। इसके बाद इस सागर तट पर जो रीड़ें उगीं वे घातक अणुशक्ति से प्रभावित थीं। यादव कुमारों ने इन रीड़ों को उखाड़-उखाड़ कर एक-दूसरे को पीटा, जिससे यादवों का बड़ा नाश हुआ। आखिर उस घातक अणुशक्ति का निर्माण वर्तमान युग में भी हुआ अतः उससे बचने के उपाय सोचना आवश्यक है।

इतिहास का दूसरा सबक है कि मानव में धर्म, पन्थ, समाजवादी तथा पूंजीवादी विचार-प्रणाली आदि जो भेदभाव निर्माण होकर शत्रुता बढ़ रही है उसे रोकने के लिए विश्व के सारे मानवों को उनकी प्राचीन वैदिक एकता का ज्ञान कराना आवश्यक है। राष्ट्रसंघ का यूनेस्को (UNESCO) नाम का जो संघटन है उसने इस दिशा में पहल करके सारे देशों में मानवों की संस्कृत भाषा तथा वैदिक संस्कृति वाली विरासत का ज्ञान कराने वाले ग्रन्थ प्रकाशित कर लागू कराने चाहिएं।

वैदिक विरासत विश्वविद्यालय

एक जागतिक वैदिक विरासत विश्वविद्यालय स्थापन करने की आवश्यकता है। उसकी शाखाएँ विश्व के प्रत्येक देश-प्रदेश में हों। उसके प्रमुखतः निम्न उद्देश्य होंगे— (१) विविध पन्थ-प्रणाली के लोगों को उनके वैदिक मूल का ज्ञान करना। (२) इस सम्बन्ध में अधिक संशोधन करना। (३) इस विषय के ग्रन्थ प्रकाशित करना। (४) शास्त्रोक्त वेदपठन की परम्परा जैसी भारत में है वैसी अन्य प्रदेशों में रूढ़ करना। (५) सभी मानवों को वैदिक नियमों के अनुसार जीवन बिताने को सिखाना।

पुणे के भण्डारकर संस्थान से टोकियो तथा हार्वर्ड विश्वविद्यालय तक बौद्ध, ईसाई आदि विविध अवैदिक परम्परा के रईस विद्वान वेदों का संशोधन करने का जो प्रयास करते हैं वह हमारी दृष्टि से विफल, बेकार, हास्यास्पद, अज्ञानी सा है। इसका कारण हम बता चुके हैं कि वेदों से कुछ अल्पस्वरूप ज्ञानकण वही निचोड़ सकता है जो संस्कृत का विद्वान, संन्यस्त वृत्ति का होकर वेदों की ऋचाओं का समाधिस्थ अवस्था में चिन्तन मनन कर सके। प्राचीन सारा साहित्य संस्कृत भाषा में होने से जागतिक वैदिक विरासत विश्वविद्यालय में संस्कृत भाषा को ही शिक्षा माध्यम बनाना होगा।

उपनिषद्, पुराण ग्रन्थ, रामायण, महाभारत से लेकर बाणभट्ट के ग्रन्थों तक का संस्कृत साहित्य उस विद्यालय में सारे छात्रों को सिखाया जाए। तदुपरान्त जो गणित ज्योतिष, फलज्योतिष, व्याकरण, नाट्यशास्त्र, छन्दशास्त्र, अर्थशास्त्र, वास्तुकला, आयुर्वेद आदि शाखाओं में प्रवीण होना उसे उन शाखाओं का ज्ञान दिया जाए।

षोडश संस्कारों सहित सभी धार्मिक विधि, त्योहार, पर्व, व्रत आदि का आचरण समाज में रूढ़ कराना।

वैदिक जीवन-प्रणाली के अनुसार प्रातः ४ बजे से रात के ९ बजे तक प्रत्येक व्यक्ति ने अथक कार्यमग्न रहना चाहिए। प्रातविधि, स्नान, सूर्य नमस्कार, दूध या दही का प्रातःभोज, ईश्वर भजन तथा स्वाध्याय करके दैनन्दिन व्यवसाय में कर्त्तव्य तथा सेवा भाव से जुट जाना, यह वैदिक प्रणाली है। इहलोक-परलोक में सुख-शान्ति तथा समाधान प्राप्त कराने का यही एक विधान है।

आधुनिक आर्थिक परिभाषा में वैदिक प्रणाली को पूंजीवादी समाजवाद (Capitalistic Socialism) या समाजवादी पूंजीवाद (Socialistic Capitalism) कहा जा सकता है। क्योंकि इसमें धन कमाने पर बाह्यतः कोई बन्धन नहीं है। तथापि वैदिक समाज संगठन में सेवाभाव से निजी कर्त्तव्य निभाने वाले सुनार, लोहार, कुम्हार, चमार आदि जो

व्यावसायिक वर्ग किए गए हैं उससे अपने आप प्रत्येक व्यक्ति के मन में मूल्य वृद्धि या वेतन वृद्धि को नियन्त्रित या सीमित रखने की प्रेरणा मिलती रहती है। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति को जन्म से मृत्यु तक विविध प्रसंगों पर दान ही दान देते रहने की परम्परा के कारण वैदिक प्रणाली में धनसंचय न होकर सम्पत्ति को जनसेवा में जुटाते रहने का विधान है। अतः अर्थशास्त्र, मानसशास्त्र, शरीरशास्त्र आदि की दृष्टि से दैवी-वैदिक प्रणाली ही मानव जीवन की सफलता के लिए आदर्श है।

●●●

श्री पुरुषोत्तम नागेश ओक की खोजपूर्ण रचनाएँ

हास्यास्पद अंगरेजी भाषा
क्रिश्चियनिटी कृष्णनीति है
वैदिक विश्वराष्ट्र का इतिहास-१
वैदिक विश्वराष्ट्र का इतिहास-२
वैदिक विश्वराष्ट्र का इतिहास-३
वैदिक विश्वराष्ट्र का इतिहास-४
भारत मे मुस्लिम सुल्तान-१
भारत मे मुस्लिम सुल्तान-२
कौन कहता है अकबर महान् था ?
दिल्ली का लालकिला लालकोट है
आगरा का लालकिला हिन्दू भवन है
फतेहपुर सीकरी हिन्दू नगर
लखनऊ के इमामबाड़े हिन्दू राजभवन हैं
ताजमहल मन्दिर भवन है
भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें
विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय
ताजमहल तेजोमहालय शिव मन्दिर है
फल ज्योतिष (ज्योतिषविज्ञान पर अनूठी पुस्तक)
आरोग्य सौन्दर्य तथा दीर्घायुष्य
Some Blunders of Indian Historical Research

हिन्दी साहित्य सदन

2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54, डी.बी. गुप्ता रोड, करोल बाग, नई दिल्ली-110005